महानिर्वाणतन्त्रम्

साधनात्मकहिन्दीव्याख्यासंवलितम्

भाषाटीकाकारः

स्वरूपावस्थित कपिलदेवनारायण

महानिर्वाणतन्त्रम्

साधनात्मकहिन्दीव्याख्यासंवलितम्

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
424

महानिर्वाणतन्त्रम्

साधनात्मकहिन्दीव्याख्यासंवलितम्

व्याख्याकारः
स्वरूपावस्थितः
कपिलदेवनारायणः

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© सर्वाधिकार सुरक्षित । इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे-इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के विना नहीं किया जा सकता है।

महानिर्वाण तन्त्रम्-कपिलदेव नारायण

ISBN : 978-93-82443-49-0

प्रकाशक :
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : 2013
₹ 500

वितरक :
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

प्रकाशकीय

अति प्रसिद्ध महानिर्वाणतन्त्र को नयी व्याख्या के साथ प्रकाशित करने का उद्देश्य सुरभारती संस्कृत और राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा के साथ-साथ लोक-कल्याण की कामना है । इस तन्त्र के अन्तिम श्लोक में स्वयं महादेव जी कहते हैं—

महानिर्वाणतन्त्रस्य माहात्म्यं किं ब्रवीमि ते ।
विदित्वैतन्महातन्त्रं ब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ॥

अर्थात् मैं इस महानिर्वाणतन्त्र का माहात्म्य तुमसे क्या वर्णन करूँ? इस महानिर्वाणतन्त्र को जान लेने से निर्वाण प्राप्त होता है अर्थात् अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

इस महानिर्वाण तन्त्र की व्याख्या ऐसे साधक-सिद्ध के द्वारा की गयी है, जो कई ग्रन्थों के रचयिता और व्याख्याकार हैं, कई यज्ञ करा चुके हैं एवं कई मन्दिरों का निर्माण करा चुके हैं । इनके बहुत से शिष्य साधक हैं । इस पुस्तक में इनके द्वारा गुप्त विषयों पर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है । यथास्थान आवश्यक यन्त्रों का अङ्कन किया गया है तथा पूजन-विधि भी विस्तार से दी गयी है ।

विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों एवं जिज्ञासुओं के लिये अति उपयोगी सिद्ध होगी; क्योंकि इसी ग्रन्थ में शिवजी ने स्वयं कहा है—

यथा नरेषु तन्त्रज्ञा सरितां जाह्नवी यथा ।
यथाहं त्रिदिवेशानां आगमानामिदं तथा ॥
किं वेदैः किंपुराणैश्च किं शास्त्रैर्बहुभिः शिवे ।
विज्ञातेऽस्मिन्महातन्त्रे सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥

अर्थात् जैसे मनुष्यों में तन्त्रज्ञानी श्रेष्ठ है, नदियों में गंगा जी उत्तम हैं, देवताओं में मैं महादेव हूँ, वैसे ही तन्त्रों में यह महानिर्वाणतन्त्र श्रेष्ठ है । वेद, पुराण और अनेकों शास्त्रों के अध्ययन से क्या प्रयोजन है? हे देवि! इस महातन्त्र का ज्ञानी सभी सिद्धियों को प्राप्त करके सिद्धीश्वर हो जाता है ।

भूमिका

सृष्टि के आदिकाल से ही तन्त्र की विद्यमानता है; क्योंकि इसका आविर्भाव सामवेद और अथर्ववेद से हुआ है । पद्मपुराण और अग्निपुराण से भी इसी बात की सम्पुष्टि होती है । कुल तन्त्रों की संख्या 192 है । पृथ्वी की क्रान्तिरेखा के अनुसार ये तीन वर्गों में विभक्त हैं । प्रत्येक में 64 तन्त्र मान्य हैं । बंगाल आदि पूर्वी प्रान्तों में विष्णुक्रान्त के 64 तन्त्र प्रचलित हैं । नेपाल के समीपवर्ती भूभागों में रथक्रान्त के 64 तन्त्र मान्य हैं । शेष भागों में अश्वक्रान्त वर्ग के 64 तन्त्रों के अनुसार साधना की जाती है । महानिर्वाणतन्त्र रथक्रान्त वर्ग का तन्त्र है ।

हमारे शास्त्रों के अनुसार मानव-जीवन के चार पुरुषार्थ हैं । इनके नाम हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अर्थात् निर्वाण । इस तन्त्र में मोक्ष अर्थात् निर्वाण-प्राप्ति की साधना का ही वर्णन है । सिद्धकौल साधक दरभंगा-नरेश श्रीरामेश्वर सिंह और कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सर जॉन उडरफ के सत्प्रयासों से स्थापित आगम अनुसन्धान समिति के तत्त्वावधान में सन् 1929 में सर जान उडरफ के द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद करके 'द ग्रेट लिबेरशन' नाम से इसे प्रकाशित किया गया था। ब्राह्म समाज के संस्थापक श्री राममोहन राय और उनके गुरु स्वामी हरिहरानन्द के द्वारा ब्राह्म समाज के उपदेशों की रचना इसी के आधार पर की गयी थी ।

इस तन्त्र के प्रकाशन-क्षेत्र में सन् 1876 से सन् 1903 तक की अवधि में उल्लेखनीय नाम हैं—श्री हरिहरानन्द भारती, श्री राममोहन राय, श्री आनन्दचन्द्र वेदान्तवागीश, श्री कृष्णगोपाल भक्त, श्री जगमोहन तर्कालंकार, श्री शाक्तानंन्द सरस्वती, श्री जीवानन्द विद्यासागर, श्री विहारीलाल सरकार, श्रीश्यामाचरण कविरत्न (बंगानुवाद), श्री आर.एम. चट्टोपाध्याय और श्री बलदेव प्रसाद मिश्र (हिन्दी अनुवाद) । इससे पता चलता है कि इस तन्त्र का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसी से इसका अनुवाद अंग्रेजी, बंगला और हिन्दी भाषा में किया जा चुका है ।

उमा-महेश की इच्छा से चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के आग्रह पर मैंने भी इसकी व्याख्या करने का प्रयास किया है । प्रत्येक श्लोक

का शब्दार्थ और भावार्थ पृथक्-पृथक् न करके विषयगत श्लोकों का अनुवाद एक साथ किया गया है । इससे साधकों और पाठकों को एक ही विषय को जानने के लिये कई श्लोकों का अर्थ पृथक्-पृथक् पढ़ने की आवश्यकता नहीं होगी । विषयगत श्लोकों के एक साथ रहने पर संस्कृत के जानकार श्लोकों को संस्कृत में पढ़कर अर्थ समझ जायँगे और जो संस्कृत नहीं जानते, वे केवल हिन्दी अनुवाद-व्याख्या पढ़कर विषयवस्तु को हृदयंगम कर सकते हैं ।

इस व्याख्या में साधन-विधियों के साथ यन्त्रपूजन-विधि का भी वर्णन विस्तार से किया गया है । यथावश्यक यन्त्रों को भी अंकित किया गया है । साधक इस ग्रन्थ के अनुसार साधना करके सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं । पुस्तक आपके करकमलों में है । आशा है, यह आपके लिए उपयोगी सिद्ध होगी; क्योंकि शिवजी स्वयं कहते हैं—

इदं ते कथितं देवि सारात्सारं परात्परम् ।
इहामुत्रार्थदं धर्म्यं पावनं हितकारकम् ॥

स्वरूपावस्थित श्री कपिलदेव नारायण

विषयानुक्रमणी

विषय — पृष्ठाङ्क

प्रथम उल्लास

जीवनिस्तारोपाय प्रश्न

कैलाश-वर्णन 1
उमा-शिव का वर्णन 2
प्रश्न करने की पार्वती जी का प्रार्थना 2
शिवाज्ञा और पार्वती के प्रश्न 3
सत्ययुग के आचार 3
त्रेतायुग के लोकाचार 5
द्वापर युग के लोकाचार 6
कलियुग के लोकाचार 6
तन्त्र-रचना 8
कलियुग में पशुभाव और दिव्यभाव का निषेध 8
कलियुग में मद्य-मांसादि-सेवन से दोष 9
कलियुग में निस्तार-उद्धारोपाय 10

द्वितीय उल्लास

जीवनिस्तारोपाय प्रश्नोत्तर में ब्रह्मोपासना क्रम

सदाशिव का उत्तर 12
कलियुग में लोक कर्त्तव्य 12
महानिर्वाणतन्त्र की प्रशंसा 16
ब्रह्मस्वरूप-प्रतिपादन 16
ब्रह्मोपासना की उपयोगिता 18

तृतीय उल्लास

ब्रह्मोपासना विधि

ब्रह्मोपासना-विधिविषयक प्रश्न 20
श्रीशिव के द्वारा परब्रह्म के लक्षण का प्रतिपादन 20

विषय — पृष्ठाङ्क

ब्रह्म-मन्त्रोद्धार 21
ब्रह्ममन्त्र की प्रशंसा 22
मन्त्रार्थ-प्रतिपादन 24
मन्त्रचैतन्य 25
ब्रह्ममन्त्र का प्रकार 25
न्यास-विधि 26
प्राणायाम 27
ब्रह्म का ध्यान 28
मानस पूजन 28
बाह्य पूजा और उपचार-संशोधन 29
ब्रह्मस्तोत्र 30
ब्रह्मकवच 32
प्रसाद का माहात्म्य 33
ब्रह्ममन्त्र-माहात्म्य 36
ब्रह्ममन्त्रकर्त्तव्य 36
ब्रह्मसन्ध्योपासना 37
ब्रह्मगायत्री 38
ब्रह्मोपासना-माहात्म्य 39
ब्रह्ममन्त्र-ग्रहण-विधि 41
ब्रह्मदीक्षा का फल 42

चतुर्थ उल्लास

परा प्रकृति-साधन उपक्रम

शक्ति-उपासनाविषयक देवी का प्रश्न 45
शक्ति का स्वरूप और नाम-रूपभेद 46
कलियुग में पशु और दिव्यभाव का निषेध 47
शक्ति का सृष्टि-कर्त्तव्य 48
कौल-प्रशंसा 50

विषय	पृष्ठाङ्क
प्रबल कलियुग-लक्षण, अवस्था और स्थान	51
सत्यनिष्ठा की उपवेशनता	52
आगम के अनुसार संस्कार	56

पञ्चम उल्लास

मन्त्रोद्धार-कलशस्थापन-तत्त्वसंस्कार

शक्तिसाधन-वर्णन	60
आद्या के मन्त्रों का उद्धार	61
पूजा के समय पञ्च तत्त्वों, पञ्च मकारों की आवश्यकता	63
गुरु-ध्यान और गुरु-पूजा	64
इष्टदेवता का पूजन	65
स्नानादि विधि	66
तान्त्रिकी सन्ध्या	67
देवी गायत्री	70
देवी-पूजन-विधि	70
विजया-शोधन ग्रहण	72
भूतशुद्धि	74
ऋष्यादि न्यास-करन्यास अंगन्यास	76
ऋषिन्यास	77
करन्यास	77
हृदयादिन्यास	77
अन्तर्मातृका वर्णन्यास	78
बहिर्मातृका न्यास	78
प्राणायाम	79
ऋष्यादि न्यास	79
कराङ्ग न्यास	80
पीठन्यास	81
महाकाली का ध्यान	83
मानसिक पूजन	84
अक्षमाला	86
बाह्य पूजन विशेषार्घ्यस्थापन	90

विषय	पृष्ठाङ्क
पूजन यन्त्र का अंकन	92
कलश-स्थापन कलश-लक्षण	93
सुरा-शोधन	97
मांस-शोधन	98
मत्स्य-शोधन	99
मुद्रा-शोधन	99
पञ्चतत्त्व-शोधन	100

षष्ठ उल्लास

पात्र-स्थापन और चक्र-होमकरणादि

सुराभेद	101
मांस के प्रकार	101
मत्स्यभेद	102
मुद्रा-प्रकार	102
शक्तिभेद	103
शक्ति-शोधन	103
श्रीपात्र-स्थापना-पूजन	104
गुरुपात्र भोग-पात्रादि का स्थापन	108
आनन्द-भैरवादि का तर्पण	109
वटुक-बलि	110
योगिनी-बलि	110
क्षेत्रपाल-बलि	111
गणेश-बलि	111
सर्व-भूत-बलि	111
शिवा-बलि	111
सपुष्प ध्यान	112
भगवती का आवाहन	112
प्राणप्रतिष्ठा	113
सकलीकरण	114
षोडश उपचार	114
उपचारदान और मन्त्र से पूजन	114
षडङ्ग-पूजन	117
प्रथम आवरण	117

विषय	पृष्ठाङ्क
द्वितीय आवरण : गुरुपूजन	118
तीसरा आवरण	118
चतुर्थ आवरण	119
पञ्चम एवं षष्ठ आवरण	119
पशुबलि	120
खड्ग-पूजन	121
शीर्ष बलि-प्रदान	122
हवन	122
जपानुष्ठान	130
आत्म-समर्पण	132
चक्रानुष्ठान	134
पात्र-लक्षण	134
मद्यपान की सीमा और विसर्जन	135

सप्तम उल्लास

स्तोत्र कवच और कुलतत्त्व के लक्षणों का वर्णन

विषय	पृष्ठाङ्क
कालिकाशतनाम स्तोत्र	136
शतनामस्तोत्र	137
फलश्रुति	140
कालिका त्रैलोक्यविजय कवच	142
पुरश्चरण-विधि	144
कुल और कुलाचार के लक्षण	147

अष्टम उल्लास

वर्णाश्रम-आचार-धर्मवर्णन

विषय	पृष्ठाङ्क
वर्णाश्रम	150
आश्रमभेद	152
गृहस्थाश्रम और कर्त्तव्य	152
नारी-कर्त्तव्य	162
ब्राह्मण-वृत्ति	163
क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सामान्य की वृत्ति	164
ब्राह्मण-क्षत्रियों के कर्तव्य	164
वैश्य का कर्त्तव्य	166
शूद्र के कर्तव्य	167
भैरवीचक्र	168
तत्त्वचक्र	175
ब्रह्मचक्र में जातिभेद त्याज्य	177
अवधूताश्रम ही संन्यासाश्रम	177
संन्यास-ग्रहण-विधि	178
पित्रादि को पिण्डदान	179
अग्निस्थापन, प्राण-होम	180
यज्ञोपवीत और शिखा-हवन	182
संन्यासी के कर्त्तव्य	184
संन्यासियों के दाह का निषेध	185

नवम उल्लास

दस प्रकार के संस्कार

विषय	पृष्ठाङ्क
दस संस्कार	187
चरु कर्म	196
गर्भाधान में ऋतुसंस्कार	197
गर्भाधान	201
पुंसवन	202
पञ्चामृत-पान	203
सीमन्तोन्नयन	204
जातकर्म	205
नाड़ी-छेदन	206
नामकरण-अभिषेक	206
निष्क्रमण	207
अन्नप्राशन	208
चूड़ाकरण-मुण्डन	209
उपनयन	211
गायत्री का उपदेश	215
गृहस्थाश्रम-धारण	217
ब्राह्म विवाह-विधान	218
शैवविवाह-विधि	223

विषय	पृष्ठाङ्क
दशम उल्लास	
वृद्धिश्राद्ध पूर्णाभिषेक आदि का वर्णन	
नित्यनैमित्तिक क्रियाविधि	226
वृद्धिश्राद्ध	227
पार्वण श्राद्ध	236
एकोद्दिष्ट श्राद्ध	237
प्रेतश्राद्ध	237
अशौच-निर्णय	238
सहमरण का निषेध	238
ब्रह्ममन्त्रोपासक की इच्छा के अनुसार दाहादि	239
अन्त्येष्टि क्रिया	239
श्राद्ध का अधिकार	240
तिल-काञ्चन दान	240
वृषोत्सर्ग	240
श्राद्धादि कार्य में कौलार्चन	241
कौल-माहात्म्य	241
पूर्णाभिषेक की विधि	243
पूर्णाभिषेक के एक दिन पहले गणेशपूजन	243
तिल-काञ्चन दान	248
वसुधारा	248
गुरुवरण	249
कलश-स्थापन	250
कलश और पात्रस्थापन	251
अभिषेक-मन्त्र	253
गुरुपूजन	256
कौल दीक्षा की प्रशंसा	258
एकादश उल्लास	
पापों के प्रायश्चित का वर्णन	
पापभेद का वर्णन	261
पापी राजा का दण्ड	263
पापभेद से दण्डभेद	264
विधवा के कर्त्तव्य	268
मातृबान्धव-पितृबान्धव-निरूपण	268
भ्रूणहत्यादि पापों का प्रायश्चित्त	269
चोरी आदि के पापों का प्रायश्चित्त	271
साक्षी-निरूपण	272
साक्ष्य में जाल करने का दण्ड	273
शपथ के प्रकार	273
पञ्चतत्त्व-सेवन का माहात्म्य	274
अवैध पान-अतिपान के दोष और दण्ड	275
अशोधित मांस-भक्षण दण्ड	276
अवैध अन्न-भक्षण का प्रायश्चित्त	277
गोवध का प्रायश्चित्त	278
जीववध का प्रायश्चित्त	279
माता-पिता की निन्दा, कौल की निन्दा का प्रायश्चित्त	279
अनेक पापों का प्रायश्चित्त	280
मृत देह-दूषित गृहवापी-कूपादि का शोधन	281
अनेक पापों का प्रायश्चित्त	282
द्वादश उल्लास	
सनातन व्यवहार का वर्णन	
धनाधिकार-निरूपण	284
पिण्डाधिकार-निरूपण	292
अशौच-व्यवस्था	292
दत्तक पुत्र की विधि	293
स्व-उपार्जित धन का अधिकार	295
अनधिकारिता का निरूपण	297
स्थावर सम्पत्ति बेचने का अधिकार	297
वापी-कूपादि में जलपान का अधिकार	298
विविध आचार	300

विषय पृष्ठाङ्क

त्रयोदश उल्लास

देवता-जलाशयादि-प्रतिष्ठा एवं वास्तुयाग विधि का वर्णन

निराकार शक्ति के आकार की कल्पना 301
सकाम उपासना का फल 303
देवालय-संस्कार और प्रतिष्ठा का फल 303
सेतु-निर्माण का फल 304
वृक्ष और उद्यानादि की प्रतिष्ठा का फल 305
जलाशय की प्रतिष्ठा का फल 305
देववाहन-दान का फल 305
देवालय में ध्वज-पताका दान का फल 306
वस्त्रालंकार-दान का फल 307
वास्तुदेव की पूजाविधि 307
वास्तु देवता का ध्यान 310
नवग्रह-पूजन और मन्त्र 311
ग्रहों का ध्यान 313
दिक्पालों का ध्यान 314
ब्रह्मा और अनन्त का ध्यान 315
वास्तु देवता और ग्रहों, दिक्पालों के मन्त्र 316
अन्य देवताओं के मन्त्र आदि अन्य विषय 317
जलाशय आदि के प्रोक्षणमन्त्र 318
वास्तुयाग क्रम 321
गणेश-ध्यान-पूजन 321
जलाशय-संस्कार और उत्सर्ग 323
कूप-संस्कार 323
गृह-प्रतिष्ठा 326

विषय पृष्ठाङ्क

देवप्रतिष्ठा 327
षोडशोपचार पूजन 329
दशोपचार पूजन 330
पञ्चोपचार पूजन 330
उपचार-प्रदान मन्त्र 330
वाहन-दान और मन्त्र 336
वृषभोत्सर्ग 336
सिंह का दान 337
गरुड़ का दान 337
महाकाली की प्रतिष्ठा 338

चतुर्दश उल्लास

शिवलिङ्ग-स्थापन चतुर्विध अवधूत विवरण

अचल लिङ्गप्रतिष्ठा की विधि और माहात्म्य 345
अधिवास 348
सदाशिव का ध्यान 349
शिवबीजमन्त्र 350
गौरीपट्ट का शोधन 350
सर्वदेव बलि 351
शिवस्थापन 351
अष्टमूर्ति-पूजन 355
प्रार्थना आदि 356
अकस्मात् पूजा रुक जाने पर कर्त्तव्य 357
कर्मफल 359
ज्ञान का माहात्म्य 359
चार प्रकार के अवधूत 363
ॐ तत्सत् का माहात्म्य 365
परमहंस के कर्तव्य 367
कौल-माहात्म्य 368
महानिर्वाणतन्त्र का माहात्म्य 370

॥ श्रीः ॥

श्रीमदाद्या-सदाशिवसंवादात्मकं

भगवन्महेश्वरप्रोक्तं

महानिर्वाणतन्त्रम्

साधनात्मकहिन्दीव्याख्यासमन्वितम्

प्रथम उल्लास

निस्तारोपाय प्रश्न

कैलाश-वर्णन

गिरीन्द्रशिखरे रम्ये नानारत्नोपशोभिते ।
नानावृक्षलताकीर्णे नानापक्षिरवैर्युते ॥ 1 ॥
सर्वर्त्तुकुसुमामोदमोदिते सुमनोहरे ।
शैत्यसौगन्ध्यमान्द्याढ्यमरुद्भिरुपवीजिते ॥ 2 ॥
अप्सरोगणसङ्गीतकलध्वनिनिनादिते ।
स्थिरच्छायद्रुमच्छायाच्छादिते स्निग्धमञ्जुले ॥ 3 ॥
मत्तकोकिलसन्दोहसङ्घुष्टविपिनान्तरे ।
सर्वदा स्वगणैः सार्धमृतुराजनिषेविते ॥ 4 ॥
सिद्धचारणगन्धर्वगाणपत्यगणैर्वृते ।
तत्र मौनधरं देवं चराचरजगद्गुरुम् ॥ 5 ॥

विविध भाँति के रत्नों से सुशोभित, उमा-शिव का निवासभूत हिमालय का एक शिख 'कैलाश' है । यह भाँति-भाँति के वृक्षों और लताओं से आच्छादित है । नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव से युक्त है । सभी ऋतुओं में सम्भव सुमनों की सुरभि से सुगन्धित है । यह परम रमणीक है । शीतल-सुगन्धित मन्द वायु से व्याप्त है । अप्सराओं के संगीत की मधुर स्वरलहरियों से गुञ्जित है । स्थिर छायादार द्रुमों से आच्छादित है । यह वनप्रदेश कोकिलों की काकली से परिपूर्ण है । भ्रमरों के सहित ऋतुराज वसन्त यहाँ सदैव

विद्यमान रहते हैं । सिद्ध-चारण-गन्धर्व-गाणपत्य आदि सवों से परिपूर्ण यह शैलशिखर 'कैलास' अत्यन्त ही रमणीक गिरीन्द्र है ।। 1-5 ।।

उमा-शिव का वर्णन

सदाशिवं सदानन्दं करुणामृतसागरम् ।
कर्पूरकुन्दधवलं शुद्धसत्त्वमयं विभुम् ।। 6 ।।
दिगम्बरं दीननाथं योगीन्द्र योगिवल्लभम् ।
गङ्गाशीकरसंसिक्तजटामण्डलमण्डितम् ।। 7 ।।
विभूतिभूषितं शान्तं व्यालमालं कपालिनम् ।
त्रिलोचनं त्रिलोकेशं त्रिशूलवरधारिणम् ।। 8 ।।
आशुतोषं ज्ञानमयं कैवल्यफलदायकम् ।
निर्विकल्पं निरातङ्कं निर्विशेषं निरञ्जनम् ।। 9 ।।
सर्वेषां हितकर्त्तारं देवदेवं निरामयम् ।
प्रसन्नवदनं वीक्ष्य लोकानां हितकाम्यया ।
विनयावनता देवी पार्वती शिवमब्रवीत् ।। 10 ।।

सदाशिव चराचर जगत् के गुरु हैं । वे मौन रहते हैं और दयारूप अमृत के सागर हैं । इनका वर्ण कपूर और कुन्दपुष्प के समान गौर है । ये विशुद्ध सत्त्वगुण-स्वरूप हैं । ये व्यापक पुरुष दिगम्वर हैं । ये सभी दीनों के नाथ श्रेष्ठ योगी हैं । ये योगियों के प्रिय हैं । गंगाजल से सिक्त जटासमूह से सुशोभित हैं । सारे शरीर में भस्म रमाये हुए हैं । इनका अन्तःकरण शान्त और संयमित है । गले में सर्पों की माला है । हाथ में मनुष्य की खोपड़ी है । ये तीनों लोकों के ईश्वर त्रिशूलधारी हैं । शीघ्र प्रसन्न होने वाले आशुतोष हैं । निरञ्जन, निरामय सबके कल्याणकर्त्ता हैं । देवों के देव का मुख प्रसन्नतायुक्त है । सदानन्द सदाशिव के समीप विनयावनत पार्वती देवी ने लोकहित की कामना से उनसे पूछने की आज्ञा माँगी ।। 6-10 ।।

प्रश्न करने की पार्वती जी की प्रार्थना

देवदेव! जगन्नाथ! मन्नाथ! करुणानिधे ।
त्वदधीनास्मि देवेश! तवाज्ञाकारिणी सदा ।। 11 ।।
विनाज्ञया मया किञ्चिद्भाषितुं नैव शक्यते ।
कृपावलेशो मयि चेत्स्नेहोऽस्ति यदि मां प्रति ।। 12 ।।
तदा निवेद्यते किञ्चिन्मनसा यद्विचारितम् ।

त्वदन्य: संशयस्यास्य कस्त्रिलोक्यां महेश्वर ।
छेत्ता भवितुमर्हो वा सर्वज्ञ: सर्वशास्त्रवित् ।। 13 ।।

हे देवों के देव! संसार के स्वामी!! मेरे स्वामी!!! करुणानिधान!!!! मैं तुम्हारे अधीन हूँ । मैं सदैव तुम्हारी आज्ञा का पालन करने वाली हूँ । आपके आदेश के अतिरिक्त और कुछ कहने में समर्थ नहीं हूँ । यदि मेरे ऊपर अत्यल्प भी कृपा हो और स्नेह हो तो मैं अपने विचारों को आपके समक्ष प्रस्तुत करती हूँ । हे महेश्वर! तीनों लोकों में तुम्हारे अतिरिक्त और कौन है, जो मेरे संशय को दूर करने में सक्षम है । तुम्हीं सर्वज्ञ हो और सभी शास्त्रों के ज्ञाता हो ।। 11-13 ।।

शिवाज्ञा और पार्वती के प्रश्न

किमुच्यते महाप्राज्ञे कथ्यतां प्राणवल्लभे ।
यदकथ्यं गणेशेऽपि स्कन्दे सेनापतावपि ।। 14 ।।
तवाग्रे कथयिष्यामि सुगोप्यमपि यद्भवेत् ।
किमस्ति त्रिषु लोकेषु गोपनीयं तवाग्रत: ।। 15 ।।
मम रूपासि देवि त्वं न भेदोऽस्ति त्वया मम ।
सर्वज्ञा किं न जानासि त्वनभिज्ञेव पृच्छसि ।। 16 ।।
इति देववच: श्रुत्वा पार्वती हृष्टमानसा ।
विनयावनता साध्वी परिपप्रच्छ शङ्करम् ।। 17 ।।

सदाशिव ने कहा कि हे महाप्राज्ञे! हे प्राणवल्लभे! तुम जो कुछ कहना चाहती हो, उसे कहो । अति गोपनीय होने पर भी प्रिय पुत्र गणेश और सेनापति कार्त्तिकेय को भी जो कहने के योग्य नहीं होगा, उसे भी तुम्हें बताऊँगा । तीनों लोकों में तुम्हारे लिये क्या गोपनीय है? हे देवि! तुम मेरा ही रूप हो तथा तुझमें और मुझमें कोई भेद नहीं है । तुम सर्वज्ञा हो । तुम्हें क्या ज्ञात नहीं है, जो अनजान के समान पूछती हो? महादेव के इस प्रकार के वचन सुनकर प्रसन्न मन होकर पार्वती ने विनयावनत होकर शंकर के सम्मुख अपनी जिज्ञासा को प्रकट किया ।। 14-17 ।।

सत्ययुग के आचार

भगवन् ! सर्वभूतेश! सर्वधर्मविदांवर ।
कृपावता भगवता ब्रह्मान्तर्यामिणा पुरा ।। 18 ।।
प्रकाशिताश्चतुर्वेदा: सर्वधर्मोपबृंहिता: ।
वर्णाश्रमादिनियमा यत्र चैव प्रतिष्ठिता: ।। 19 ।।

त्वदुक्तयोगयज्ञाद्यैः कर्मभिर्भुवि मानवाः ।
देवान्पितॄन्प्रीणयन्तः पुण्यशीलाः कृते युगे ।। 20 ।।
स्वाध्यायध्यानतपसा दयादानैर्जितेन्द्रियाः ।
महाबला महावीर्या महासत्त्वपराक्रमाः ।। 21 ।।
देवायतनगा मर्त्या देवकल्पा दृढव्रताः ।
सत्यधर्मपराः सर्वे साधवः सत्यवादिनः ।। 22 ।।
राजानः सत्यसङ्कल्पाः प्रजापालनतत्पराः ।
मातृवत्परयोषित्सु पुत्रवत्परसूनुषु ।। 23 ।।
लोष्ठवत्परवित्तेषु पश्यन्तो मानवास्तदा ।
आसन्स्वधर्मनिरताः सदा सन्मार्गवर्त्तिनः ।। 24 ।।
न मिथ्याभाषिणः केचिन्न प्रमादरताः क्वचित् ।
न चौरा न परद्रोहकारका न दुराशयाः ।। 25 ।।
न मत्सरा नातिरुष्टा नातिलुब्धा न कामुकाः ।
सदन्तःकरणाः सर्वे सर्वदानन्दमानसाः ।। 26 ।।
भूमयः सर्वसस्याढ्याः पर्ज्जन्याः कालवर्षिणः ।
गावोऽपि दुग्धसम्पन्नाः पादपाः फलशालिनः ।। 27 ।।
नाकालमृत्युस्तत्रासीन्न दुर्भिक्षं न वा रुजः ।
हृष्टाः पुष्टाः सदारोग्यास्तेजोरूपगुणान्विताः ।। 28 ।।
स्त्रियो न व्यभिचारिण्यः पतिभक्तिपरायणाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः स्वाचारवर्तिनः ।। 29 ।।
स्वैः स्वैर्धर्मैर्यजन्तस्ते निस्तारपदवीं गताः ।

श्रीपार्वती ने कहा कि हे भगवन्! सर्वभूतेश!! हे सर्वविदांवर!!! तुम छः ऐश्वर्यों से युक्त, कृपालु और सर्वान्तर्यामी हो । सृष्टि के प्रारम्भ में तुम्हारे द्वारा चारो वेद प्रकाशित हुए हैं और इन वेदों से ही सभी धर्मों की स्थापना हुई एवं वर्णाश्रमादि के नियम प्रतिष्ठित हुए । उन्हीं वेदों में कथित योग-यज्ञादिरूप सभी कर्मों के द्वारा पृथ्वी पर पुनीत सभी मनुष्यों ने सत्ययुग में सभी देवताओं और पितरों को प्रसन्न किया । सत्ययुग में मनुष्य पुण्यकर्मा थे । स्वाध्याय-ध्यान-तपस्या-दया-दानादि द्वारा जितेन्द्रिय होते थे । वे बड़े बलवान, वीर्यवान और अतीव सत्य पराक्रमी थे । मनुष्य मरणधर्मा होने पर भी स्वर्गादि जाने में सक्षम थें । देवतुल्य थे एवं नियम-पालन करने में दृढ़ थें । सभी मनुष्य भद्र, सत्यधर्मावलम्बी और सत्यवादी थे । उस युग में राजवर्ग सत्यनिष्ठ और प्रजापालन में तत्पर था । परस्त्री मातृवत् थी । परपुत्र पुत्रवत् स्नेहभाजन था ।

तत्कालीन मनुष्य पराए धन को मिट्टी के समान देखते थे । सभी अपने धर्म का पालन करते थे और सन्मार्ग पर चलते थे । उस युग में सभी सत्यवादी थे । किसी भी समय कोई प्रमाद, चोरी और परद्रोह नहीं करता था । कोई दुष्टाशय नहीं था । कोई भी मनुष्य ईर्ष्यालु, अति क्रोधी और अतिकामी नहीं था । सबों का अन्तःकरण उत्तम था । हृदय सदैव आनन्दपूर्ण था । सारी पृथ्वी सभी फसलों से आच्छादित रहती थी । बादल यथासमय वर्षा करते थे । सारी गौवें दुधारू थीं, सारे पेड़ फलते थे । किसी की अकाल-मृत्यु नहीं होती थी, न अकाल पड़ता था, न रोग होते थे । सारे मनुष्य हृष्ट-पुष्ट-स्वस्थ, तेजस्वी और गुणवान होते थे । स्त्रियों में व्यभिचार नहीं था । पातिव्रत धर्म की प्रबलता थी । सत्ययुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने आचारानुसार वर्ण-धर्म का पालन करते हुए मोक्ष प्राप्त करते थे ।। 18-29 ।।

त्रेतायुग के लोकाचार

कृते व्यतीते त्रेतायां दृष्ट्वा धर्मव्यतिक्रमम् ।। 30 ।।
वेदोक्तकर्मभिर्मर्त्या न शक्ताः स्वेष्टसाधने ।
बहुक्लेशकरं कर्म वैदिकं भूरिसाधनम् ।। 31 ।।
कर्तुं न योग्या मनुजाश्चिन्ताव्याकुलमानसाः ।
त्यक्तुं कर्त्तुं न चार्हन्ति सदा कातरचेतसः ।। 32 ।।
वेदार्थयुक्तशास्त्राणि स्मृतिरूपाणि भूतले ।
तदा त्वं प्रकटीकृत्य तपःस्वाध्यायदुर्बलान् ।। 33 ।।
लोकानतारयः पापाद्दुःखशोकामयप्रदात् ।
त्वां विना कोऽस्ति जीवानां घोरसंसारसागरे ।। 34 ।।
भर्त्ता पाता समुद्धर्त्ता पितृवत्प्रियकृत्प्रभुः ।

सत्ययुग के व्यतीत होने पर इन सभी धर्मों में व्यतिक्रम दृष्टिगोचर होने लगा । इस त्रेतायुग में मनुष्य वेदोक्त कर्मों से अपने-अपने अभीष्ट सिद्ध करने में समर्थ नहीं थे । अत्यधिक साधन-अपेक्षित वैदिक कर्म अति कष्टसाध्य हो गये थे । बहुविध चिन्ताग्रस्त मनुष्य उनका पालन करने में सक्षम नहीं थे तो भी वैदिक कर्मत्यागजनित दोष के भय से लोग उन कर्मों का त्याग भी नहीं कर सकते थे । फलतः अपनी इस असमर्थता से लोग सदैव व्यथित-चित्त रहते थे । उसी समय आपने भूतल पर स्मृतिरूप वेदार्थयुक्त शास्त्र का प्रणयन किया । दुःख-शोक-रोगप्रद पाप के होने पर तपस्या-स्वाध्याय करने में असमर्थ मनुष्य

उसके द्वारा अपना उद्धार करने लगे । इस भयानक भवसागर में आपके अतिरिक्त जीवों का पालन-रक्षा-उद्धार करने वाले पिता के समान प्रिय करने वाला प्रभु और कौन है? ।। 30-34 ।।

द्वापर युग के लोकाचार

ततोऽपि द्वापरे प्राप्ते स्मृत्युक्तसुकृतोज्झिते ।। 35 ।।
धर्मार्द्धलोपे मनुजे आधिव्याधिसमाकुले ।
संहिताद्युपदेशेन त्वयैवोद्धारिता नराः ।। 36 ।।

इसके पश्चात् द्वापर युग के आने पर मनुष्यों ने स्मृतियों में निश्चित सुकर्मों का परित्याग कर दिया । धर्म का आधा भाग ही लोकाचार में रह गया । मनुष्य मानसिक व्यथा और व्याधियों से विकल हो उठा । उस समय तुम्हारे द्वारा व्यास इत्यादि के रूप में संहिता-शास्त्रादि के उपदेश से सबका उद्धार हुआ ।। 35-36 ।।

कलियुग के लोकाचार

आयाते पापिनि कलौ सर्वधर्मविलोपिनि ।
दुराचारे दुष्प्रपञ्चे दुष्टकर्मप्रवर्तके ।। 37 ।।
न वेदाः प्रभवस्तत्र स्मृतीनां स्मरणं कुतः ।
नानेतिहासयुक्तानां नानामार्गप्रदर्शिनाम् ।। 38 ।।
बहुलानां पुराणानां विनाशो भविता विभो ।
तदा लोका भविष्यन्ति धर्मकर्मबहिर्मुखाः ।। 39 ।।
उच्छृङ्खला मदोन्मत्ताः पापकर्मरताः सदा ।
कामुका लोलुपाः क्रूरा निष्ठुरा दुर्मुखाः शठाः ।। 40 ।।
स्वल्पायुर्मन्दमतयो रोगशोकसमाकुलाः ।
निःश्रीका निर्बला नीचा नीचाचारपरायणाः ।। 41 ।।
नीचसंसर्गनिरताः परवित्तापहारकाः ।
परनिन्दापरद्रोहपरिवादपराः खलाः ।। 42 ।।
परस्त्रीहरणे पापशङ्काभयविवर्जिताः ।
निर्धना मलिना दीना दरिद्राश्चिररोगिणः ।। 43 ।।
विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ध्यावन्दनवर्जिताः ।
अयाज्ययाजका लुब्धा दुर्वृत्ताः पापकारिणः ।। 44 ।।
असत्यभाषिणो मूर्खा दाम्भिका दुष्प्रपञ्चकाः ।
कन्याविक्रयिणो व्रात्यास्तपोव्रतपराङ्मुखाः ।। 45 ।।
लोकप्रतारणार्थाय जपपूजापरायणाः ।

पाखण्डाः पण्डितम्मन्याः श्रद्धाभक्तिविवर्जिताः ।। 46 ।।
कदाहाराः कदाचारा धृतकाः शूद्रसेवकाः ।
शूद्रान्नभोजिनः क्रूरा वृषलीरतिकामुकाः ।। 47 ।।
दास्यन्ति धनलोभेन स्वदारान्नीचजातिषु ।
ब्राह्मण्यचिह्नमेतावत्केवलं सूत्रधारणम् ।। 48 ।।
नैव पानादिनियमो भक्ष्याभक्ष्यविवेचनम् ।
धर्मशास्त्रे सदा निन्दा साधुद्रोहो निरन्तरम् ।। 49 ।।
सत्कथालापमात्रञ्च न तेषां मनसि क्वचित् ।

इसके पश्चात् पापस्वरूप, सभी धर्मों को समाप्त करने वाला, दुराचार और दुष्कर्म फैलाने वाला, दुष्ट कर्मों का प्रवर्त्तक कलियुग आया । इस समय वेद शक्तिहीन हो गये । सभी स्मृतियाँ विस्मृत हो गयीं । विविध इतिहासयुक्त नाना मार्गप्रदर्शक सभी पुराण नष्ट हो गये । हे विभो! पुराणादि शास्त्रों के विनष्ट होने पर सभी मनुष्य धर्म-कर्म से विमुख हो गये । परम्परारहित होकर सभी मदोन्मत्त, पाप-कर्मी, कामुक, अति लोभी, निर्दय, कुवचन-भाषी और मूर्ख होंगे । सभी अल्पायु, मन्दबुद्धि, रोग-शोक से आकुल, श्रीहीन, बलहीन, नीच, नीचाचार-परायण होंगे । सदैव नीचों की संगति करने वाले, दूसरों के धन का हरण करने वाले, परनिन्दा में लग्न, परद्रोही और परस्त्रीगामी होंगे । परायी स्त्री का हरण करने में पाप की शंका और भय से रहित होंगे । सभी निर्धन, मलिन, दीन, दरिद्र एवं दीर्घ रोगी होंगे । सन्ध्यावन्दन से रहित सभी शूद्र के समान आचार वाले होंगे। अयाज्य, अपकृष्ट जाति के पुरोहित लोभी, दुर्वृत्त, पापी, झूठे, मूर्ख, घमण्डी, दुष्ट, कथा का विस्तार करने वाले, कन्या बेचने वाले, संस्कार-विहीन और तप-व्रत से रहित होंगे । लोगों को ठगने के लिए वे जप-पूजापरायण होंगे । वे पाखण्डी अपने-आपको पण्डित कहकर अभिमानी तथा श्रद्धाभक्ति से रहित होंगे । कलि के ब्राह्मण निन्द्य आहारी, निन्द्य व्यवहारी और अपना पेट पालने के लिये जीवित रहने वाले होंगे । वे शूद्र के सेवक, शूद्र का अन्न भक्षण करने वाले, क्रूर और शूद्र-पत्नी से यौनाचार की इच्छा रखने वाले होंगे । ये धन के लोभ से अपनी स्त्री का नीच जाति में दान देंगे । इन लोगों का ब्राह्मणसम्बन्धी पहचान केवल जनेऊ-धारणमात्र रहेगा । इन ब्राह्मणों के खान-पान में भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं रहेगा । ये सदैव धर्मशास्त्र के निन्दक और साधु-द्रोही होंगे । इनके मन में कभी सत्कथा की बात तक नहीं उठेगी ।। 37-49 ।।

तन्त्र-रचना

त्वया कृतानि तन्त्राणि जीवोद्धरणहेतवे ॥ 50 ॥
निगमागमजातानि भुक्तिमुक्तिकराणि च ।
देवीनां यत्र देवानां मन्त्रयन्त्रादिसाधनम् ॥ 51 ॥
कथिता बहवो न्यासाः सृष्टिस्थित्यादिलक्षणाः ।
बद्धपद्मासनादीनि गदितान्यपि भूरिशः ॥ 52 ॥
पशुवीरदिव्यभावा देवतामन्त्रसिद्धिदाः ।
शवासनं चितारोहो मुण्डसाधनमेव च ॥ 53 ॥
लतासाधनकर्माणि त्वयोक्तानि सहस्रशः ।

जीवों के उद्धार के लिये तुम्हारे द्वारा सभी तन्त्र प्रणीत हुए हैं । भोग-मोक्षप्रद निगम-आगम-शास्त्रों की रचना हुई है । इस तन्त्रादि शास्त्र में देव-देवीगण के मन्त्र-यन्त्रादि के साधनों के वर्णन हैं । सृष्टि-स्थिति-संहार आदि बहुविध न्यासों के वर्णन हैं । पद्मासन आदि के साथ-साथ अनेक प्रकार के न्यास बताए गये हैं । सभी देवताओं के मन्त्रों की सिद्धि देने वाले पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभावों के वर्णन हैं । इसमें शवासन, चितारोहण, मुण्डसाधन, लतासाधनादि सभी असंख्य कर्म तुम्हारे द्वारा दर्शाये गये हैं ।। 50-53 ।।

कलियुग में पशुभाव और दिव्यभाव का निषेध

पशुभावदिव्यभावौ स्वयमेव निवारितौ ॥ 54 ॥
कलौ न पशुभावोऽस्ति दिव्यभावः कुतो भवेत् ।
पत्रं पुष्पं फलं तोयं स्वयमेवाहरेत्पशुः ॥ 55॥
न शूद्रदर्शनं कुर्यान्मनसा न स्त्रियं स्मरेत् ।
दिव्यश्च देवताप्रायः शुद्धान्तःकरणः सदा ॥ 56 ॥
द्वन्द्वातीतो वीतरागः सर्वभूतसमः क्षमी ।
कलिकल्मषयुक्तानां सर्वदास्थिरचेतसाम् ॥ 57 ॥
निद्रालस्यप्रसक्तानां भावशुद्धिः कथं भवेत् ।

परन्तु इस तन्त्रशास्त्र में स्वयं तुमने पशु और दिव्यभाव को निषिद्ध बताया है । कलियुग में जब पशुभाव ही नहीं रहेगा तब दिव्यभाव कैसे हो सकता है? क्योंकि पशुभाव वालों का कर्तव्य है कि वे पत्र-पुष्प-फल-जल को स्वयं ही लावें । शूद्र पर दृष्टि न पड़े । मन में भी स्त्री का स्मरण न करें । दिव्य भावावलम्बी व्यक्ति को देवता के समान होना है । सदैव शुद्ध अन्तःकरण

वाला, द्वन्द्व-सहिष्णु, वासनाहीन, सभी प्राणियों में सम भावयुक्त और क्षमाशील होना है; किन्तु कलियुग में मनुष्य कलि के पाप से युक्त, सर्वदा अस्थिर चित्त, निद्रा और आलस्ययुक्त होंगे । इन लोगों की भावशुद्धि किस भाँति से होगी? ।। 54-57 ।।

कलियुग में मद्य-मांसादि-सेवन से दोष

वीरसाधनकर्माणि पञ्चतत्त्वोदितानि च ।। 58 ।।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।
एतानि पञ्च तत्त्वानि त्वया प्रोक्तानि शङ्कर ।। 59 ।।
कलिजा मानवा लुब्धाः शिश्नोदरपरायणाः ।
लोभात्तत्र पतिष्यन्ति न करिष्यन्ति साधनम् ।। 60 ।।
इन्द्रियाणां सुखार्थाय पीत्वा च बहुलं मधु ।
भविष्यन्ति मदोन्मत्ता हिताहितविवर्जिताः ।। 61 ।।
परस्त्रीधर्षकाः केचिद्दस्यवो बहवो भुवि ।
न करिष्यन्ति ते मत्ताः पापा योनिविचारणम् ।। 62 ।।
अतिपानादिदोषेण रोगिणो बहवः क्षितौ ।
शक्तिहीना बुद्धिहीना भूत्वा च विकलेन्द्रियाः ।। 63 ।।
ह्रदे गर्त्ते प्रान्तरे च प्रासादात्पर्वतादति ।
पतिष्यन्ति मरिष्यन्ति मनुजा मदविह्वलाः ।। 64 ।।
केचिद्विवादयिष्यन्ति गुरुभिः स्वजनैरपि ।
केचिन्मौना मृतप्राया अपरे बहुजल्पकाः ।। 65 ।।
अकार्यकारिणः क्रूरा धर्ममार्गविलोपकाः ।
हिताय यानि कर्माणि कथितानि त्वया प्रभो ।। 66 ।।
मन्ये तानि महादेव विपरीतानि मानवे ।
के वा योगं करिष्यन्ति न्यासजातानि केऽपि वा ।। 67 ।।
स्तोत्रपाठं यन्त्रलिपिं पुरश्चर्यां जगत्पते ।
युगधर्मप्रभावेण स्वभावेन कलौ नराः ।। 68 ।।
भविष्यन्त्यतिदुर्वृत्ताः सर्वथा पापकारिणः ।

हे शंकर! आपने पञ्चतत्त्वो का वर्णन किया है, जिनसे वीरसाधन होता है । मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन को आपने पञ्चतत्त्व कहा है । कलिकाल में उत्पन्न सभी मनुष्य शिश्नोदर-परायण होते हैं । ये सब लोभवश पञ्चतत्त्वों के सेवन से पतित होंगे । साधना नहीं करेंगे । वे सभी इन्द्रियसुख के

लिए मदिरा पीकर मदोन्मत्त हो जायेंगे । हित-अहित के ज्ञान से विहीन हो जायेंगे । उनमें से कुछ परायी स्त्रियों का पतन करने वाले होंगे। बहुत-से चोरी का सहारा लेंगे । वे सभी पापी योनि का विचार नहीं करेंगे । असीमित पानादि के दोष से पृथ्वी पर मदविह्वल बहुत लोग शक्तिहीन, रोगी, बुद्धिविहीन और विकलेन्द्रिय होकर जलाशय, गर्त, जंगल, महल और पर्वत से गिर कर मर जायेंगे । इन सब मतवालों में से कुछ तो गुरुजनों और स्वजनों से विवाद करेंगे, कुछ चुप रहेंगे । अतिपान से कुछ मृतप्राय या बकवादी हो जायेंगे । ये सब अनुचित कार्य, क्रूर कर्मकर्त्ता और धर्म-पथ का विलोप करने वाले होंगे । हे प्रभो महादेव! हितसाधन के लिये जिन सारे कर्मों को आपने बतलाया है, वे सभी मनुष्यों के लिय उल्टे हो जायेंगे । कौन व्यक्ति योग का आश्रय लेगा ? कौन व्यक्ति न्यासों को करने में समर्थ होगा? अथवा कौन स्तोत्र का पाठ करेगा? कौन व्यक्ति यन्त्राधार में पूजन करेगा या यन्त्र धारण करेगा? अथवा कौन व्यक्ति पुरश्चरण करेगा? हे जगत्पते! युगधर्म के प्रभाव से मनुष्य स्वभावतः बड़े दुराचारी और पापरत होंगे ।। ५८-६८ ।।

कलियुग में निस्तार-उद्धारोपाय

तेषामुपायं दीनेश कृपया कथय प्रभो ।। 69 ।।
आयुरारोग्यवर्चस्यं बलवीर्यविवर्धनम् ।
विद्याबुद्धिप्रद नृणामप्रयत्नशुभङ्करम् ।। 70 ।।
येन लोका भविष्यन्ति महाबलपराक्रमाः ।
शुद्धचित्ताः परहिता मातापित्रोः प्रियङ्कराः ।। 71 ।।
स्वदारनिष्ठाः पुरुषाः परस्त्रीषु पराङ्मुखाः ।
देवतागुरुभक्ताश्च पुत्रस्वजनपोषकाः ।। 72 ।।
ब्रह्मज्ञा ब्रह्मविद्याश्च ब्रह्मचिन्तनमानसाः ।
सिद्ध्यर्थं लोकयात्रायाः कथयस्व हिताय यत् ।। 73 ।।
कर्त्तव्यं यदकर्त्तव्यं वर्णाश्रमविभेदतः ।
विना त्वां सर्वलोकानां कस्त्राता भुवनत्रये ।। 74 ।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमात्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-सदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नो नाम प्रथमोल्लासः

❖

श्रीपार्वती ने कहा कि हे दिनेश प्रभु! कलियुग में उत्पन्न मनुष्यों के

निस्तार का उपाय बताने की कृपा कीजिये, जिससे कि उनकी आयु, आरोग्य, तेज, बल, वीर्य की वृद्धि हो सके । उन्हें विद्या, बुद्धि प्राप्त हो । विना प्रयत्न के परम मंगल का लाभ हो । जिससे सभी लोग महाबली और पराक्रमी हों । शुद्ध हृदय होकर परोपकार में तत्पर हों । माता-पिता का प्रिय कार्य करने वाले हों । जिससे सभी पुरुष स्वपत्नी-निष्ठ हों । परस्त्री-विमुख होकर देवता और गुरु के भक्त हों । अपने पुत्रों और स्वजनों के पोषक हों । उस उपाय को बताइये, जिससे सभी ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मविद्या के ज्ञाता और ब्रह्म के चिन्तन में अनुरक्त हों । मनुष्यों के लोकयात्रा के निर्वाह-हेतु और पारलौकिक हित के हेतु आप कृपया उसी उपाय का वर्णन कीजिये । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि वर्ण और आश्रमभेद से जो कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य हैं, उन्हें कृपया प्रकट कीजिये । तीनों लोकों में आपके सिवा सभी लोकों का उद्धार करने वाला दूसरा कौन है? ।। 69-74 ।।

जीवनिस्तारोपाय-प्रश्न नामक प्रथम उल्लास सम्पूर्ण

❖

द्वितीय उल्लास

जीव-निस्तारोपाय

सदाशिव का उत्तर

इति देव्या वचः श्रुत्वा शङ्करो लोकशङ्करः ।
कथयामास तत्त्वेन महाकारुण्यवारिधिः ॥ 1 ॥
साधु पृष्टं महाभागे जगतां हितकारिणी ।
एतादृशः शुभः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा ॥ 2 ॥
धन्यासि सुकृतज्ञासि हितासि कलिजन्मनाम् ।
यद्यदुक्तं त्वया भद्रे सत्यं सत्यं यथार्थतः ॥ 3 ॥
सर्वज्ञा त्वं त्रिकालज्ञा धर्मज्ञा परमेश्वरि ।
भूतं भवद्भविष्यञ्च धर्ममुक्तं त्वया प्रिये ॥ 4 ॥
यथातत्त्वं यथान्यायं यथायोग्यं न संशयः ।

महाकरुणासागर, सबों के कल्याणकारी शंकर ने आद्या देवी के इस प्रकार के वचन सुनकर प्रकृत कथन का प्रारम्भ किया । सदाशिव ने कहा कि हे महाभागे! तुम जगत्-हितैषिणी हो, तुमने उत्तम प्रश्न किया है । इस प्रकार कल्याणकारी तथ्य को किसी ने जानना नहीं चाहा । हे भद्रे! तुम धन्य हो, जीवों की सुकृति को जानने वाली हो । कलिकाल में उत्पन्न सभी मनुष्यों की तुम वास्तविक हितकारिणी हो । तुमने जो-जो कहा है, वह सब अति ही सत्य हैं । इसमें सन्देह नहीं है । हे परमेश्वरि! तुम धर्म को जानने वाली हो । त्रिकालज्ञा हो; अतः सर्वज्ञा हो । हे प्रिये! भूत-भविष्य-वर्त्तमान में धर्म-युक्त जो कथन हैं, वह यथार्थ, यथायोग्य और न्यायसम्मत हैं; इसमें सन्देह नहीं हैं ।। 1-4 ।।

कलियुग में लोक कर्त्तव्य

कलिकल्मषदीनानां द्विजादीनां सुरेश्वरि ॥ 5 ॥
मेध्यामेध्यविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा ।
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत् ॥ 6 ॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये ॥ 7 ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे ।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान्यजेत्सुधीः ॥ 8 ॥
कलावागममुल्लङ्घ्य योऽन्यमार्गे प्रवर्त्तते ।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ 9 ॥
सर्वैर्वेदैः पुराणैश्च स्मृतिभिः संहितादिभिः ।
प्रतिपाद्योऽस्मि नान्योऽस्ति प्रभुजर्गति मां विना ॥ 10 ॥
आमनन्ति च ते सर्वे मत्पदं लोकपावनम् ।
मन्मार्गविमुखा लोकाः पाषण्डा ब्रह्मघातिनः ॥ 11 ॥
अतो मन्मतमुत्सृज्य यो यत्कर्म समाचरेत् ।
निष्फलं तद्भवेद्देवि कर्त्तापि नारकी भवेत् ॥ 12 ॥
मूढो मन्मतमुत्सृज्य योऽन्यन्मतमुपाश्रयेत् ।
ब्रह्महा पितृहा स्त्रीघ्नः स भवेन्नात्र संशयः ॥ 13 ॥
कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः ।
शस्ताः कर्मसु सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु ॥ 14 ॥
निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव ।
सत्यादौ सफला आसन्कलौ ते मृतका इव ॥ 15 ॥
पाञ्चालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रियसमन्विताः ।
अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः ॥ 16 ॥
अन्यमन्त्रैः कृतं कर्म वन्ध्यास्त्रीसङ्गमो यथा ।
न तत्र फलसिद्धिः स्याच्छ्रम एव हि केवलम् ॥ 17 ॥
कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः ।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥ 18 ॥
मद्वक्त्रादुदितं धर्मं हित्वाऽन्यद्धर्ममीहते ।
अमृतं स्वगृहे त्यक्त्वा क्षीरमार्कं स वाञ्छति ॥ 19 ॥
नान्यः पन्था मुक्तिहेतुरिहामुत्र सुखाप्तये ।
यथा तन्त्रोदितो मार्गो मोक्षाय च सुखाय च ॥ 20 ॥
तन्त्राणि बहुधोक्तानि नानाख्यानान्वितानि च ।
सिद्धानां साधकानां च विधानानि च भूरिशः ॥ 21 ॥

अधिकारिविभेदेन पशुबाहुल्यतः प्रिये ।
कुलाचारोदितं धर्मं गुप्तार्थं कथितं क्वचित् ।। 22 ।।
जीवप्रवृत्तिकारीणि कानिचित्कथितान्यपि ।
देवा नानाविधाः प्रोक्ता देव्योऽपि बहुधा प्रिये ।। 23 ।।
भैरवाश्चैव वेताला बटुका नायिकागणाः ।
शाक्ताः शैवा वैष्णवाश्च सौरगाणपतादयः ।। 24 ।।
नानामन्त्राश्च यन्त्राणि सिद्धोपाया ह्यनेकशः ।
भूरिप्रयाससाध्यानि यथोक्तफलदानि च ।। 25 ।।
यथायथा कृताः प्रश्ना येन येन यदा यदा ।
तदा तस्योपकाराय तथैवोक्तं मया प्रिये ।। 26 ।।
सर्वलोकोपकाराय सर्वप्राणिहिताय च ।
युगधर्मानुसारेण याथातथ्येन पार्वति ।। 27 ।।
त्वया यादृक्कृताः प्रश्ना न केनापि पुरा कृताः ।
तव स्नेहेन वक्ष्यामि सारात्सारं परात्परम् ।। 28 ।।

महादेव ने कहा कि हे सुरेश्वरि! कलियुग में पापजनित दुर्गति-प्राप्त पवित्रापवित्र के विचार से विहीन ब्राह्मणादि लोगों की शुद्धि वेदोक्त कर्मों से नहीं होगी । पुराण-संहिता और सभी स्मृतियों से भी मनुष्यों को इष्टसिद्धि नहीं होगी । हे प्रिये! मैं सत्य-सत्य, पुनः सत्य कहता हूँ कि कलिकाल में आगमोक्त पथ के अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं है । हे शिवे! पूर्वकाल में श्रुति-स्मृति-पुराणादि मेरे ही वचन हैं । कलिकाल में धैर्यवान व्यक्ति आगमोक्त विधि से ही देवगण की पूजा करे । हे शांकरि! कलियुग में आगम शास्त्र को छोड़कर जो व्यक्ति दूसरा मार्ग अपनायेगा, उसका उद्धार नहीं होगा, यह मैं सत्य कहता हूँ, इसमें सन्देह नहीं । वेद-पुराण-स्मृति और संहितादि शास्त्र द्वारा मैं ही प्रतिपाद्य हूँ । उनमें अन्य किसी का प्रतिपादन नहीं है । अतएव जगत् में मेरे सिवा सर्वेश्वर प्रभु कोई नहीं है । वेदादि सभी शास्त्र मेरे पद को लोकपावन मानते हैं । मेरे मार्ग से विमुख सभी लोग ब्रह्मघाती और पाखण्डी हैं । मेरे मत को छोड़कर जो कोई जो कुछ कर्म करता है, हे देवि! वह कर्म इसीलिए निष्फल होता है और उस कर्म को करने वाला नरकगामी होता है ।

जो मूर्ख मेरे मत का परित्याग करके दूसरे मत को ग्रहण करता है, वह ब्रह्महत्यारे, पितृहत्यारे और स्त्री-घातकों के समान पापी होता है । इसमें सन्देह

नहीं है । कलियुग में सभी मन्त्र सिद्ध और शीघ्र फलदायक हैं । जप-यज्ञ-क्रियादि में और सभी कर्मों में वे प्रशस्त हैं । कलिकाल में वेदोक्त मन्त्र विषहीन सर्प के समान शक्ति-विहीन होते हैं । सत्यादि युग में वे सभी मन्त्र फल देने में समर्थ थे; किन्तु कलिकाल में वे मृत के समान निष्फल हैं । जिस प्रकार दीवार में अंकित पुतलियाँ आँख-कान-नाक आदि सभी इन्द्रियों से युक्त होने पर भी कार्य करने, देखने-सुनने, चलने-फिरने में अशक्त हैं, उसी प्रकार तान्त्रिक मन्त्रों के सिवा दूसरे मन्त्र इष्ट कार्यों को सम्पन्न करने में असफल रहते हैं । तन्त्र में कथित मन्त्रों से भिन्न मन्त्र द्वारा कर्म करने पर फल उसी प्रकार नहीं मिलता, जिस प्रकार कि वन्ध्या स्त्री के सम्पर्क से सन्तानरूपी फल प्राप्त नहीं होता; वह निष्फल होता है, केवल श्रममात्र होता है । जो मनुष्य इस कलिकाल में अन्य शास्त्र में कथित पथ से सिद्धि पाने की इच्छा करता है, वह दुर्बुद्धि मानो प्यासा होकर गंगा किनारे कुआँ खोदता है । मेरे मुख से कथित धर्म का त्याग करके जो मूर्ख अन्य धर्म को चाहता है, वह मानो अपने घर में अमृत को छोड़कर मदार वृक्ष से उत्पन्न दूध की कामना करता है । तन्त्रोक्त पथ जिस प्रकार सुख-मोक्ष का हेतु, मुक्ति का कारण और इस लोक और परलोक में सुख-प्राप्ति का साधन है, उस प्रकार दूसरा कोई पथ नहीं है । हे प्रिये! विविध आख्यानों से युक्त अनेक प्रकार के तन्त्रों का वर्णन मेरे द्वारा किया गया है । सभी सिद्ध और सभी साधन-विधान का विस्तार से वर्णन किया गया है । पशुभाव वालों की अधिकता होने से अधिकारी-भेद से कुलाचारोक्त धर्म कहीं-कहीं गुप्त रखने के लिये भी कहा है । जीवों की प्रवृत्ति कराने वाले कुछ तन्त्रकर्मों के भी वर्णन हैं । विविध प्रकार के देव और बहुत प्रकार की देवियों के बारे में वर्णन हैं । भैरवगण, वेतालगण, वटुकगण, सभी नायिकाएँ और शाक्त-शैव-वैष्णव-सौर-गाणपत्य के बारे में भी वर्णन किये गये हैं । नाना प्रकार के मन्त्र-यन्त्र और अनेक प्रकार के सिद्धोपायों को बतलाया गया है । हे प्रिये! जिस-जिस समय जिन-जिन व्यक्तियों ने जो-जो प्रश्न किया है, उन लोगों के हितार्थ तदनुरूप कहा गया है । हे पार्वति! समस्त लोकों के हितार्थ एवं सभी प्राणियों के कल्याण के लिये युग-धर्मानुसार यथोचित रूप से तुमने जिस प्रकार का प्रश्न किया है, उस प्रकार का प्रश्न पहले किसी ने नहीं किया है । तुम्हारे स्नेहवश इस सारपूर्ण परात्पर विषय को कहता हूँ ।। 5-28 ।।

महानिर्वाणतन्त्र की प्रशंसा

वेदानामागमानां च तन्त्राणां च विशेषतः ।
सारमुद्धृत्य देवेशि तवाग्रे कथ्यते मया ।। 29 ।।
यथा नरेषु तन्त्रज्ञाः सरितां जाह्नवी यथा ।
यथाहं त्रिदिवेशानामागमानामिदं तथा ।। 30 ।।
किं वेदैः किं पुराणैश्च किं शास्त्रैर्बहुभिः शिवे ।
विज्ञातेऽस्मिन्महातन्त्रे सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।। 31 ।।
यतो जगन्मङ्गलाय त्वयाहं विनियोजितः ।
अतस्ते कथयिष्यामि यद्विश्वहितकृद्भवेत् ।। 32 ।।

हे देवेशि! वेद-आगम के सभी तन्त्रों का सार निकाल कर तुम्हें बतलाता हूँ । जैसे मनुष्यों में तन्त्रज्ञानी श्रेष्ठ है, जैसे नदियों में गंगा जी अद्वितीय हैं, जैसे देवनाओं में मैं महादेव हूँ, वैसे ही तन्त्रों में यह 'महानिर्वाणतन्त्र' उत्तम है । हे शिवे! सभी वेदों, पुराणों और अनेक शास्त्रों को जानने की क्या आवश्यकता है? केवल इसी महातन्त्र के ज्ञान से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है । जिस प्रकार संसार के कल्याण के लिये तुम्हारे द्वारा मैं नियुक्त किया गया हूँ, उसी प्रकार जिससे विश्व का कल्याण हो, उसी का वर्णन मैं करता हूँ ।। 29-32 ।।

ब्रह्मस्वरूप-प्रतिपादन

कृते विश्वहिते देवि विश्वेशः परमेश्वरि ।
प्रीतो भवति विश्वात्मा यतो विश्वं तदाश्रितम् ।। 33 ।।
स एक एव सद्रूपः सत्योऽद्वैतः परात्परः ।
स्वप्रकाशः सदापूर्णः सच्चिदानन्दलक्षणः ।। 34 ।।
निर्विकारो निराधारो निर्विशेषो निराकुलः ।
गुणातीतः सर्वसाक्षी सर्वात्मा सर्वदृग्विभुः ।। 35 ।।
गूढः सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी सनातनः ।
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ।। 36 ।।
लोकातीतो लोकहेतुरवाङ्मनसगोचरः ।
स वेत्ति विश्वं सर्वज्ञस्तं न जानाति कश्चन ।। 37 ।।
तदधीनं जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तदालम्बनतस्तिष्ठेदवितर्क्यमिदं जगत् ।। 38 ।।
तत्सत्यतामुपाश्रित्य सद्विद्भाति पृथक्पृथक् ।

तेनैव हेतुभूतेन वयं जाता महेश्वरि ।। 39 ।।
कारणं सर्वभूतानां स एकः परमेश्वरः ।
लोकेषु सृष्टिकरणात्स्रष्टा ब्रह्मेति गीयते ।। 40 ।।
विष्णुः पालयिता देवि संहर्त्ताहं तदिच्छया ।
इन्द्रादयो लोकपालाः सर्वे तद्वशवर्तिनः ।। 41 ।।
स्वे स्वेऽधिकारे निरतास्ते शासन्ति तदाज्ञया ।
त्वं परा प्रकृतिस्तस्य पूज्यासि भुवनत्रये ।। 42 ।।
तेनान्तर्यामिरूपेण तत्तद्विषययोजिताः ।
स्वस्वकर्म प्रकुर्वन्ति न स्वतन्त्राः कदाचन ।। 43 ।।
यद्भयाद्वाति वातोऽपि सूर्यस्तपति यद्भयात् ।
वर्षन्ति तोयदाः काले पुष्यन्ति तरवो वने ।। 44 ।।
कालं कालयते काले मृत्योर्मृत्युर्भियो भयम् ।
वेदान्तवेद्यो भगवान्यत्तच्छब्दोपलक्षितः ।। 45 ।।
सर्वे देवाश्च देव्यश्च तन्मयाः सुरवन्दिते ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तन्मयं सकलं जगत् ।। 46 ।।
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत् ।
तदाराधनतो देवि सर्वेषां प्रीणनं भवेत् ।। 47 ।।
तरोर्मूलाभिषेकेण यथा तद्भुजपल्लवाः ।
तृप्यन्ति तदनुष्ठानात्तथा सर्वेऽमरादयः ।। 48 ।।

हे देवि! हे परमेश्वरि!! विश्व का हित करने से विश्व का ईश्वर प्रसन्न होता है; क्योंकि वही जगत् का आत्मा है और संसार उसी का आश्रय लेकर स्थित है । वह एक, अद्वितीय, सत्य, सद्‌रूप, परात्पर, स्वप्रकाश, सदा पूर्ण और सच्चिदानन्दस्वरूप है । वह निर्विकार, निराधार, निर्विशेष, आकुलता से शून्य है । वह गुणातीत, सब प्रकार के शुभ-अशुभ कर्मों का साक्षात् द्रष्टा, सभी का आत्मा, सबको देखने वाला विभु है । वह सर्वव्यापी सभी भूतों में गूढ़भाव से अवस्थित है । उसका न आदि है और न अन्त है । वह स्वयं सभी इन्द्रियों से रहित है; किन्तु सभी इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के विषय उसी से क्रियाशील हैं । वह लोकातीत, त्रिभुवन का हेतु, बीजस्वरूप और मन-वचन से अज्ञेय है । वह सर्वज्ञ संसार को पूर्ण रूप से जानने वाला है; पर उसे कोई नहीं जानता । यह सम्पूर्ण संसार उसके अधीन है । स्थावर-जंगमयुक्त ये तीनों लोक उसी के सहारे टिके हुए हैं । तर्क-वितर्क से परे यह जगत् परमात्मा के सत्यत्व का

आश्रय लेकर पृथ्वी, जल, वायु इत्यादि रूपों में पृथक्-पृथक् सत्य के समान प्रतीत होता है ।

हे महेश्वरि! वह ब्रह्म हेतुभूत होकर भी मुझसे ही उत्पन्न हुआ है । वही परमेश्वर सबों का एकमात्र कारण है । उसी परमेश्वर के द्वारा नियुक्त होकर ब्रह्मा सारे लोकों की सृष्टि करते हैं और 'स्रष्टा' नाम से पुकारे जाते हैं । उनकी इच्छा से नियुक्त विष्णु इस जगत् का पालन करते हैं और 'पालनकर्त्ता' के नाम से विश्रुत हैं । उन्हीं की इच्छा से नियुक्त मैं प्रलयकाल में जगत् का संहार करता हूँ और 'संहर्त्ता' नाम से विख्यात हूँ । इन्द्रादि सभी लोकपाल उनके वशीभूत होकर उन्हीं की आज्ञानुसार अधिकारानुरूप जगत् का शासन करते हैं । तुम उसकी परा प्रकृति हो; इसीलिये त्रिलोकपूज्य हो । वही अन्तर्यामी परमात्मा उन्हें यथा-आवश्यक यथायोग्य विषयों में नियुक्त करके उनसे अपने-अपने कर्म करवाता है । जीवसमूह किसी काल में स्वतन्त्र नहीं है ।

हे देवि! जिसके भय से पवन प्रवहमान रहता है, जिसके भय से सूर्य गर्मी और प्रकाश देता है, सारे मेघ यथासमय वर्षा करते हैं, जिसके शासन में जंगल के सभी वृक्ष विशेष सुमनों से युक्त होते हैं, जो प्रलयकाल में साक्षात् काल का नाश करते हैं, जो साक्षात् मृत्यु के भी मृत्युस्वरूप हैं, वे ही वेदान्त-वेद्य ज्ञेय परम ब्रह्म हैं । यह-वह शब्दों से जाने जाते हैं । हे सुरवन्दिते! सभी देव-देवियों का समूह उसी परमात्मा का स्वरूप है । ब्रह्मा से लेकर तृणादि-गुच्छ तक सारा जगत् उसी का आवास है, परमात्मा-मय है । इस परमेश्वर के तुष्ट होने पर सारा जगत् परितुष्ट होता है । उसे प्रसन्न करने पर सारा जगत् प्रसन्न हो जाता है । उसकी आराधना करने से सबों में प्रेम उत्पन्न होता है । हे देवि! जैसे वृक्षमूल के सिञ्चन से उसकी डालियाँ, पत्ते सभी तृप्त होते हैं, वैसे ही परमेश्वर की आराधना करने से देवादि सभी सन्तुष्ट होते हैं ।। 33-48 ।।

ब्रह्मोपासना की उपयोगिता

यथा तवार्चनाद्ध्यानात्पूजनाज्जपनात्प्रिये ।
भवन्ति तुष्टाः सुन्दर्यस्तथा जानीहि सुव्रते ।। 49 ।।
यथा गच्छन्ति सरितोऽवशेनापि सरित्पतिम् ।
तथार्च्चादीनि कर्माणि तदुद्देश्यानि पार्वति ।। 50 ।।
यो यो यान्यान्यजेदेवाञ्छ्रद्धया यद्यदाप्तये ।
तत्तद्ददाति सोऽध्यक्षस्तैस्तैर्देवगणैः शिवे ।। 51 ।।

बहुनात्र किमुक्तेन तवाग्रे कथ्यते प्रिये ।
ध्येयः पूज्यः सुखाराध्यस्तं विना नास्ति मुक्तये ।। 52 ।।
नायासो नोपवासश्च कायक्लेशो न विद्यते ।
नैवाचारादिनियमो नोपचाराश्च भूरिशः ।। 53 ।।
न दिक्कालविचारोऽस्ति न मुद्रान्याससंहतिः ।
यत्साधने कुलेशानि तं विना कोऽन्यमाश्रयेत् ।। 54 ।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नोत्तरे ब्रह्मोपासनक्रमो नाम द्वितीयोल्लासः

❖

हे सुव्रते! जैसे तुम्हारी अर्चना से, ध्यान-पूजा और जप करने से सभी देवियाँ प्रसन्न होती हैं, वैसे ही सर्वेश्वर के अर्चनादि से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं, यह जान लो । जैसे नदियाँ विवश होकर सरिता स्वामी सागर में मिलती हैं, वैसे ही सभी देवों के पूजनादि कर्म हे देवि! उसी सर्वेश्वर के लिये सम्पन्न होते हैं । जो-जो व्यक्ति जिस-जिस फल की इच्छा से जिस-जिस देवता की पूजा श्रद्धा से करता है, हे शिवे! वही अध्यक्ष परमेश्वर पुरुषोत्तम उन-उन देवताओं के द्वारा वही-वही फल उस-उस मनुष्य को प्रदान करता है । हे प्रिये! इसके बारे में और क्या कहूँ । तुमसे इतना भर कहता हूँ कि उस परमात्मा के अतिरिक्त मोक्ष के लिये ध्येय, पूज्य और सुखाराध्य दूसरा कोई नहीं है । उस परब्रह्म की उपासना में श्रम नहीं है, उपवास नहीं है, शरीरसम्बन्धी कोई कष्ट नहीं है, आचारादि कोई नियम नहीं है, बहुत से उपचारों की आवश्यकता नहीं है, दिशा और काल का विचार नहीं है, मुद्रा और न्यास अपेक्षित नहीं है । हे कुलेशानि! जिसके साधन में पूर्वोक्त श्रमादि नहीं हैं तो उससे भिन्न अन्य किसी का आश्रय कोई क्यों ग्रहण करेगा? ।। 49-54 ।।

जीवनिस्तारोपायप्रश्नोत्तर में ब्रह्मोपासनाक्रम नामक द्वितीय उल्लास सम्पूर्ण

❖

तृतीय उल्लास

ब्रह्मोपासना-विधि

ब्रह्मोपासना-विधिविषयक प्रश्न

देवदेव महादेव देवतानां गुरोर्गुरुः ।
वक्ता त्वं सर्वशास्त्राणां मन्त्राणां साधनस्य च ।। 1 ।।
कथितं यत्परं ब्रह्म परमेशं परात्परम् ।
यस्योपासनतो मर्त्यो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ।। 2 ।।
केनोपायेन भगवन् परमात्मा प्रसीदति ।
किं तस्य साधनं देव मन्त्रः को वा प्रकीर्तितः ।। 3 ।।
किं ध्यानं किं विधानं च परेशस्य महात्मनः ।
तत्त्वेन श्रोतुमिच्छामि कृपया कथय प्रभो ।। 4 ।।

देवी पार्वती ने कहा कि हे देव-देव! आप देवताओं के गुरु के गुरु हैं । आप सभी शास्त्रों, सभी मन्त्रों और सभी साधनों के ज्ञाता तथा वक्ता हैं । हे भगवन्! जिन परात्पर परमेश्वर परब्रह्म का आपने वर्णन किया है और जिनकी उपासना से मरणाधर्मा मनुष्य भोग-मोक्ष प्राप्त करेंगे, उन परमात्मा को किस उपाय से प्रसन्न करना पड़ता है? अथवा उनकी साधना का विधान क्या है? या उनके मन्त्र का स्वरूप क्या है? किस प्रकार का ध्यान-विधान है? इसके प्रकृति-तत्त्व को जानने की मेरी इच्छा है । आप इन्हें बताने की कृपा करें ।। 1-4 ।।

श्रीशिव के द्वारा परब्रह्म के लक्षण का प्रतिपादन

अतिगुह्यं परं तत्त्वं शृणु मत्प्राणवल्लभे ।
रहस्यमेतत्कल्याणि न कुत्रापि प्रकाशितम् ।। 5 ।।
तव स्नेहेन वक्ष्यामि मम प्राणाधिकं परम् ।
ज्ञेयं भवति तद्ब्रह्म सच्चिद्विश्वमयं परम् ।। 6 ।।
यथातत्त्वस्वरूपेण लक्षणैर्वा महेश्वरि ।
सत्तामात्रं निर्विशेषमवाङ्मनसगोचरम् ।। 7 ।।
असत्त्रिलोकीसद्भानं स्वरूपं ब्रह्मणः स्मृतम् ।
समाधियोगैस्तद्वेद्यं सर्वत्र समदृष्टिभिः ।

द्वन्द्वातीतैर्निर्विकल्पैर्देहात्माध्यासवर्जितैः ॥ 8 ॥
यतो विश्वं समुद्भूतं येन जातं च तिष्ठति ।
यस्मिन्सर्वाणि लीयन्ते ज्ञेयं तद्ब्रह्म लक्षणैः ॥ 9 ॥
स्वरूपबुद्ध्या यद्वेद्यं तदेव लक्षणैः शिवे ।
लक्षणैराप्तुमिच्छूनां विहितं तत्र साधनम् ॥ 10 ॥
तत्साधनं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहिता प्रिये ॥ 11 ॥

सदाशिव ने कहा कि हे मेरी प्राणवल्लभे! यह परम तत्त्व अति गुह्य है । हे कल्याणि! मैंने अब तक इस रहस्य का प्रकाशन कहीं नहीं किया है; किन्तु तुम्हारे स्नेहवश अब मैं तुम्हें बतलाता हूँ । यह तत्त्व मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है । सत्-चित् जगत् स्वरूप उसी परब्रह्म को स्वरूपलक्षण और तटस्थ लक्षण के द्वारा यथावत् जाना जाता है । परब्रह्म का स्वरूपलक्षण इस प्रकार का है—वह सत्तामात्र परमार्थ-स्वरूप है । वह निर्विशेष है । स्वगतभेदशून्य है । वह मन-वाणी से ज्ञेय नहीं है । उसी के सत्त्व से मिथ्याभूत त्रिलोक का सत्यत्व प्रतीत होता है । वह शत्रु-मित्र आदि में सर्वत्र समदर्शी है । वह सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से परे है । वह विविधात्मक भेद-कल्पनाओं से पृथक् है । जो योगी शरीरनिष्ठ आत्मत्व बुद्धि से रहित हैं, उन्हीं के द्वारा समाधि की अवस्था में उस ब्रह्म का स्वरूप जाना जाता है ।

ब्रह्म का तटस्थ लक्षण यह है कि यह विश्व उसी से उत्पन्न है और उत्पन्न विश्व उसी में स्थित है । प्रलयकाल में यह चराचर जगत् उसी में लय हो जाता है । वह सर्व रूपमय है । इस तटस्थ लक्षण से वह ज्ञेय है । हे शिवे! जो ब्रह्म स्वरूपलक्षण से ज्ञेय है, वही तटस्थ लक्षण से भी जाना जा सकता है । स्वरूपलक्षण द्वारा जानने में साधन की अपेक्षा नहीं है; परन्तु तटस्थ लक्षण द्वारा ब्रह्म-प्राप्ति की इच्छा करने पर विहित साधन अपेक्षित हैं । हे प्रिये! तटस्थ लक्षण द्वारा ज्ञेय ब्रह्म का साधन बतलाता हूँ; सावधानी-पूर्वक सुनो । 5-11 ॥

ब्रह्म-मन्त्रोद्धार

तत्रादौ कथयाम्याद्ये मन्त्रोद्धारं महेशितुः ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सच्चित्पदमुदाहरेत् ।
एकं पदान्ते ब्रह्मेति मन्त्रोद्धारः प्रकीर्त्तितः ॥ 12 ॥
सन्धिक्रमेण मिलितः सप्तार्णोऽयं मनुर्मतः ।
तारहीनेन देवेशि षड्वर्णोऽयं मनुर्भवेत् ॥ 13 ॥

उस साधन में सर्वप्रथम परब्रह्म के मन्त्र का उद्धार बतलाता हूँ । पहले प्रणव 'ॐ' का उच्चारण करके 'सच्चित्' पद कहना चाहिये । इसके बाद 'एकं' पद, तब 'ब्रह्म' पद कहने से मन्त्र का उद्धार होता है । सन्धिक्रम से इन पदों को मिलाने से 'ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म'—यह सात अक्षरों का ब्रह्ममन्त्र बनता है । इसमें 'ॐ' को हटा देने से छः अक्षरों का मन्त्र 'सच्चिदेकं ब्रह्म' बनता है ।। 12-13 ।।

ब्रह्ममन्त्र की प्रशंसा

सर्वमन्त्रोत्तमः साक्षाद्धर्मार्थकाममोक्षदः ।
नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ।। 14 ।।
न तिथिर्न च नक्षत्रं न राशिगणनं तथा ।
कुलाकुलादिनियमो न संस्कारोऽत्र विद्यते ।
सर्वथा सिद्धमन्त्रोऽयं नात्र कार्या विचारणा ।। 15 ।।
बहुजन्मार्जितैः पुण्यैः सद्गुरुर्यदि लभ्यते ।
तदा तद्वक्त्रतो ज्ञात्वा जन्मसाफल्यमाप्नुयात् ।। 16 ।।
चतुर्वर्गं करे कृत्वा परत्रेह च मोदते ।। 17 ।।
स धन्यः स कृतार्थश्च स कृती स च धार्मिकः ।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।। 18 ।।
सर्वशास्त्रेषु निष्णातः सर्वलोकप्रतिष्ठितः ।
यस्य कर्णपथोपान्तप्राप्तो मन्त्रमहामणिः ।। 19 ।।
धन्या माता पिता तस्य पवित्रं तत्कुलं शिवे ।
पितरस्तस्य सन्तुष्टा मोदन्ते त्रिदशैः सह ।
गायन्ति गायनीं गाथां पुलकाञ्चितविग्रहाः ।। 20 ।।
अस्मत्कुले कुलश्रेष्ठो जातो ब्रह्मोपदेशिकः ।
किमस्माकं गयापिण्डैः किं तीर्थैः श्राद्धतर्पणैः ।। 21 ।।
किं दानैः किं जपैर्होमैः किमन्यैर्बहुसाधनैः ।
वयमक्षयतृप्ताः स्मः सत्पुत्रस्यास्य साधनात् ।। 22 ।।
शृणु देवि जगद्वन्द्ये सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
परब्रह्मोपासकानां किमन्यैः साधनान्तरैः ।। 23 ।।
मन्त्रग्रहणमात्रेण देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
ब्रह्मभूतस्य देवेशि किमवाप्यं जगत्त्रये ।। 24 ।।
किं कुर्वन्ति ग्रहा रुष्टा वेतालाश्चेटकादयः ।

पिशाचा गुह्यका भूता डाकिन्यो मातृकादयः ।
तस्य दर्शनमात्रेण पलायन्ते पराङ्मुखाः ।। 25 ।।
रक्षितो ब्रह्ममन्त्रेण प्रावृतो ब्रह्मतेजसा ।
किं बिभेति ग्रहादिभ्यो मार्त्तण्ड इव चापरः ।। 26 ।।
तं दृष्ट्वा ते भयापन्नाः सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः ।
विद्रवन्ति च नश्यन्ति पतङ्गा इव पावके ।। 27 ।।
न तस्य दुरितं किञ्चिद्ब्रह्मनिष्ठस्य देहिनः ।
सत्यपूतस्य शुद्धस्य सर्वप्राणिहितस्य च ।
को वोपद्रवमन्विच्छेदात्मावघातकं विना ।। 28 ।।
ये द्रुह्यन्ति खलाः पापाः परब्रह्मोपदेशिने ।
स्वद्रोहं ते प्रकुर्वन्ति ह्यतिरिक्तायतः सतः ।। 29 ।।
स तु सर्वहितः साधुः सर्वेषां प्रियकारकः ।
तस्यानिष्टे कृते देवि को वा स्यान्निरुपद्रवः ।। 30 ।।

यह मन्त्र सभी मन्त्रों में श्रेष्ठ उत्तमोत्तम है । इससे चतुर्वर्ग—धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति होती है । इस मन्त्र में सिद्धादि चक्र का विचार अपेक्षित नहीं है । अरि-मित्रादि दोषों से यह दूषित नहीं होता । इस मन्त्र को ग्रहण करने में तिथि-नक्षत्र-राशि-कुलाकुल आदि चक्रों की गणना आवश्यक नहीं है । इसमें दश संस्कार भी अपेक्षित नहीं हैं । यह मन्त्र सर्वथा सिद्ध है; अतएव इसके सम्बन्ध में किसी प्रकार के विचार की अपेक्षा नहीं है । अनेक जन्मों के अर्जित पुण्यों के फल से यदि सद्गुरु मिल जाय तो उसी गुरु के मुख से निःसृत मन्त्र को प्राप्त करके ग्रहण कर लेना चाहिये । इस मन्त्र को प्राप्त करते ही तत्काल जन्म सफल हो जाता है । वह ब्रह्मोपासक धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चतुर्वर्ग-पुरुषार्थ को पाकर इस लोक और परलोक में आनन्द का भोग करता है । ब्रह्ममन्त्ररूपी महामणि जिनके कानों में पहुँचता है, वे ही धन्य हैं, कृतार्थ हैं, कृती हैं, धार्मिक हैं, सभी तीर्थ-स्नात हैं, सभी यज्ञों में दीक्षित हैं, सभी शास्त्रों में निपुण हैं और वे ही सभी लोकों में प्रतिष्ठित होते हैं । ऐसा ही कथन है ।

हे शिवे! जिन्हें ब्रह्ममन्त्र प्राप्त हुआ है, उनके माता-पिता धन्य हैं । उनका कुल पवित्र है । उनके पितृगण सन्तुष्ट होकर देवगण के सहित आनन्द का अनुभव करते हैं । वे पुलकित शरीर होकर यह गाथा गाते रहते हैं कि हमारे कुल में उत्पन्न पुत्र ने ब्रह्ममन्त्र में दीक्षित होकर कुल को पवित्र कर दिया है ।

हमलोगों के लिये अब गया में पिण्डदान की क्या आवश्यकता है? तीर्थाटन, तीर्थ-श्राद्ध और तीर्थ-तर्पण की क्या आवश्यकता है? हमारे इस सत्पुत्र ने सद्गुरु से ब्रह्ममन्त्र की दीक्षा-ग्रहण का जो साधन किया है; उसी से हमें अक्षय तृप्ति की प्राप्ति हो रही है ।

हे जगद्वन्द्ये! मैं सत्य-सत्य कहता हूँ, सुनो; ब्रह्म-मन्त्र के सभी उपासकों के लिये किसी अन्य साधना की आवश्यकता नहीं है । इस ब्रह्म-मन्त्र के ग्रहण करने-मात्र से देहधारी ब्रह्ममय हो जाता है । हे देवेशि! जो ब्रह्मभूत है, उसके लिये तीनों जगत् में क्या दुष्प्राप्य है ? सभी वस्तुएँ उसके लिय सुलभ हो जाती हैं । ग्रह, वेताल, चेटक, पिशाच, गुह्यक, भूत, डाकिनी और मातृका आदि रुष्ट होकर भी उसका क्या कर सकते हैं? वे ब्रह्मोपासक को देखकर ही पीछे मुड़कर भाग जाते हैं । वह ब्रह्ममन्त्र से रक्षित रहता है । वह ब्रह्मतेज से आच्छादित रहता है । वह इस संसार में दूसरे सूर्य के समान प्रकाशमान रहता है; अतः ग्रहादि से उसे क्या भय होगा? वह कभी भयभीत नहीं होता । जैसे सिंह को देखकर हाथियों का समूह भय से भाग जाता है, वैसे ही उस साधक को देखते ही पूर्वोक्त सभी ग्रहादि भाग जाते हैं । जैसे फतिंगे अग्नि में नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही ग्रहादि उसके तेज से नष्ट हो जाते हैं । वह ब्रह्मनिष्ठ साधक सत्यपूत, शुद्ध अन्तःकरण वाला और सबों का हितैषी होता है । पाप कभी उसका स्पर्श भी नहीं कर पाता । आत्मघाती के अतिरिक्त और कौन मनुष्य ऐसे महात्मा का अनिष्ट करने की इच्छा करेगा? दुष्ट स्वभाव के जो पापात्मा ब्रह्मोपासक का अनिष्ट करने के लिये उद्यत होते हैं, वे अपना ही अनिष्ट करते हैं । परब्रह्मोपासक सत्स्वरूप ब्रह्म से भिन्न नहीं होता । हे देवि! वह ब्रह्मोपासक सबका हितैषी साधु होता है । सबों का प्रिय करने वाला होता है । ऐसे महात्मा का अनिष्ट करके कौन मनुष्य शान्ति से रह सकता है? ।। 14-30 ।।

मन्त्रार्थ-प्रतिपादन

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं यो न जानाति साधकः ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि तस्य मन्त्रो न सिद्ध्यति ।। 31 ।।
अतोऽस्यार्थं च चैतन्यं कथयामि शृणु प्रिये ।
अकारेण जगत्पाता संहर्त्ता स्यादुकारतः ।
मकारेण जगत्स्रष्टा प्रणवार्थ उदाहृतः ।। 32 ।।
सच्छब्देन सदास्थायि चिच्चैतन्यं प्रकीर्तितम् ।। 33 ।।

एकमद्वैतमीशानि बृहत्त्वाद्ब्रह्म गीयते ।
मन्त्रार्थः कथितो देवि साधकाभीष्टसिद्धिदः ।। 34 ।।

जो साधक मन्त्रार्थ और मन्त्र-चैतन्य नहीं जानता, उसे सौ लाख जप करने पर भी मन्त्र की सिद्धि नहीं होती । हे प्रिये! इसीलिए मैं इस मन्त्र का अर्थ और चैतन्य का वर्णन करता हूँ; सुनो ।

'अ उ म' इन तीन वर्णों के संयोग से ॐ मन्त्र बनाता है । अकार का अर्थ संसार का रक्षक होता है । उकार का अर्थ संहार करने वाला होता है और मकार का अर्थ जगत् की सृष्टि करने वाला होता है । 'ॐ' का अर्थ यही कहा गया है । 'सत्' का अर्थ सदा विद्यमान रहने वाला है । 'चित्' शब्द का अर्थ चैतन्य है एवं 'एक' शब्द का अर्थ अद्वैत है । हे ईशानि ! बृहत् होने से ही ब्रह्म को 'ब्रह्म' कहते हैं । हे देवि! सभी साधकों को अभीष्ट-सिद्धि देने वाले इस मन्त्रार्थ का वर्णन किया गया ।। 31-34 ।।

मन्त्रचैतन्य

मन्त्रचैतन्यमेतत्तु तदधिष्ठातृदेवता ।
तज्ज्ञानं परमेशानि भक्तानां सिद्धिदायकम् ।। 35 ।।
अस्याधिष्ठातृ देवेशि सर्वव्यापि सनातनम् ।
अवितर्क्यं निराकारं वाचातीतं निरञ्जनम् ।। 36 ।।

हे परमेशानि! मन्त्र का अधिष्ठातृ देवता ही मन्त्रचैतन्य है । मन्त्र का अधिष्ठातृ देवतासम्बन्धी ज्ञान भक्तों को सिद्धि दिलाता है । हे देवेशि! इस मन्त्र का जो अधिष्ठातृ देवता ब्रह्म है, वह सभी पदार्थों में व्याप्त रहने वाला है । वह सनातन, अतर्क्य, निराकार, वाणी के परे और निरञ्जन है ।। 35-36 ।।

ब्रह्ममन्त्र का प्रकार

वाङ्मायाकमलाद्येन तारहीनेन पार्वति ।
दीयते विविधा विद्या माया श्रीः सर्वतोमुखी ।। 37 ।।
तारेण तारहीनेन प्रत्येकं सकलं पदम् ।
युग्मायुग्मक्रमेणापि मन्त्रोऽयं विविधो भवेत् ।। 38 ।।

हे देवि! इस पूर्वोक्त मन्त्र से प्रणव 'ॐ' हटाकर उसके स्थान पर 'ऐं' वाग्बीज, 'ह्रीं' माया, 'श्रीं' लक्ष्मी को प्रारम्भ में लगाने से क्रमशः विविध विद्यायें, विविध मायायें और विविध प्रकार के लक्ष्मी-प्रदायक मन्त्र बनते हैं । मन्त्र देने की विधि है कि 'ऐं सच्चिदेकं ब्रह्म' मन्त्र से विद्या प्रदान करे । 'ह्रीं

सच्चिदेकं ब्रह्म' मन्त्र के द्वारा माया प्रदान करे तथा 'श्रीं सच्चिदेकं ब्रह्म' द्वारा लक्ष्मी प्रदान करे ।

पूर्वोक्त मन्त्र के प्रत्येक पद में अथवा समस्त पद में ॐ जोड़कर या ॐ-रहित करके अथवा उक्त मन्त्र के दो-दो पदों में ॐ जोड़कर या छोड़कर उच्चारण करने से अनेक प्रकार के मन्त्र बनते हैं ।

1. प्रत्येक पद में ॐ जोड़ने से जो मन्त्र बनते हैं, वे हैं—ॐ सत्, ॐ चित्, ॐ एकम्, ॐ ब्रह्म । प्रणव से रहित जो मन्त्र बनते हैं, वे हैं—सत्, चित्, एकं, ब्रह्म ।

2. समस्त पद में प्रणव जोड़कर 'ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म' मन्त्र बनता है । प्रणव से रहित 'सच्चिदेकं ब्रह्म' मन्त्र होता है ।

3. दो-दो पदों में प्रणव जोड़ने से जो मन्त्र बनते हैं, वे हैं—ॐ सद् ब्रह्म, ॐ चित् ब्रह्म, ॐ एकं ब्रह्म, ॐ सच्चित्, ॐ चिदेकम् । प्रणव छोड़ने पर जो मन्त्र बनते हैं, वे हैं—सद् ब्रह्म, चिद् ब्रह्म, एकं ब्रह्म, सच्चिद्, चिदेकम् ।। 37-38 ।।

न्यास-विधि

ऋषिः सदाशिवो ह्यस्य छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
देवता परमं ब्रह्म सर्वान्तर्यामि निर्गुणम् ।। 39 ।।
चतुर्वर्गफलावाप्त्यै विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
अङ्गन्यासकरन्यासौ कथयामि शृणु प्रिये ।। 40 ।।
तारं सच्चिदेकमिति ब्रह्मेति सकलं ततः ।
अङ्गुष्ठतर्जनीमध्यानामिकासु महेश्वरि ।। 41 ।।
कनिष्ठयोः करतलपृष्ठयोः सुरवन्दिते ।
नमः स्वाहावषट्हुंवौषट्-फडन्तैर्यथाक्रमम् ।। 42 ।।
न्यसेन्न्यासोक्तविधिना साधकः सुसमाहितः ।
हृदादिकरपर्यन्तमेवमेव विधीयते ।। 43 ।।

इस मन्त्र के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता निर्गुण सर्वान्तर्यामी परम ब्रह्म और चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति के लिये विनियोग होता है । न्यास इस प्रकार से करे—

ऋष्यादि न्यास—

सदाशिवाय ऋषये नमः शिरसि ।

अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे ।

सर्वान्तर्यामी निर्गुण परमब्रह्मणे देवतायै नमः हृदि ।

धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये विनियोगः सर्वाङ्गे ।

करन्यास-अंगन्यास—हे प्रिये! करन्यास और अंगन्यास को बतलाता हूँ ।

करन्यास—

1 ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । 4. एकं अनामिकाभ्यां हुँ ।

2. सत् तर्जनीभ्यां स्वाहा । 5. ब्रह्म कनिष्ठाभ्यां वौषट् ।

3. चित् मध्यमाभ्यां वषट् । 6. ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

अंगन्यास—

1. ॐ हृदयाय नमः । 4. एकं कवचाय हुं ।

2. सत् शिरसे स्वाहा । 5. ब्रह्म नेत्रत्रयाय वौषट् ।

3. चित् शिखायै वषट्। 6. ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म अस्त्राय फट् ।

।। 39-43 ।।

प्राणायाम

प्राणायामं ततः कुर्यान्मूलेन प्रणवेन वा ।
मध्यमानामिकाभ्यां च दक्षहस्तस्य पार्वति ।। 44 ।।
वामनासापुटं धृत्वा दक्षनासापुटेन च ।
पूरयेत्पवनं मन्त्री मूलमष्टमितं जपन् ।। 45 ।।
अङ्गुष्ठेन दक्षनासां धृत्वा कुम्भकयोगतः ।
जपेद्द्वात्रिंशतावृत्त्या ततो दक्षिणनासया ।। 46 ।।
शनैः शनैस्त्यजेद्वायुं जपन्षोडशधा मनुम् ।
वामनासापुटेऽप्येवं पूरकुम्भकरेचकम् ।। 47 ।।
पुनर्दक्षिणतः कुर्यात्पूर्ववत्सुरपूजिते ।
प्राणायामविधिः प्रोक्तो ब्रह्ममन्त्रस्य साधने ।। 48 ।।
ततो ध्यानं प्रकुर्वीत साधकाभीष्टसाधनम् ।। 49 ।।

हे पार्वति! तदनन्तर मूल मन्त्र 'ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म' या केवल 'ॐ' से प्राणायाम करे। दाँयें हाथ की मध्यमा-अनामिका अंगुलियों से बाँयें नासापुट को बन्द करके दाहिने नासापुट से श्वास लेते हुए आठ बार प्रणव का जप मन ही मन करे। तब अंगूठे से दाँयें नासापुट को बन्द करके श्वास रोकते हुए बत्तीस बार 'ॐ' का जप मन ही मन करे। तब बाँयें नासापुट से धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए सोलह बार 'ॐ' का जप करे। इसके पश्चात् बाँयें नासापुट से पूरक-कुम्भक एवं दाहिने नासापुट से रेचक करे अर्थात् आठ बार ॐ जपते हुए बाँयें नासापुट से पूरक करे। फिर वायु रोककर बत्तीस बार ॐ का जप करे। तब सोलह बार ॐ जपते हुए दाँयें नासापुट से वायु को धीरे-धीरे निकाले। इस प्रकार तीन बार ऐसा ही करे। हे सुरवन्दिते! इस प्रकार ब्रह्म-साधन प्राणायाम की विधि बतलायी गयी। इसके बाद साधक के अभीष्ट को सिद्ध करने वाले ध्यान का वर्णन करता हूँ ॥ 44-49 ॥

ब्रह्म का ध्यान

हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहं,
हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ।
जननमरणभीतिभ्रंशि सच्चित्स्वरूपं,
सकलभुवनबीजं ब्रह्म चैतन्यमीडे ॥ 50 ॥

जो निर्विशेष, नाना प्रकार के भेदों से रहित है, जो चेष्टारहित है, जो ब्रह्मा-विष्णु-महेश के द्वारा ज्ञेय है, जो योगियों के द्वारा ध्यानगम्य है, जिसके द्वारा जन्म-मृत्यु का भय दूर होता है, जो नित्य और ज्ञानस्वरूप है, जो सभी भुवनों का बीज है, ऐसे सत्-चित्-स्वरूप चैतन्य ब्रह्म का ध्यान मैं अपने हृदयकमल के मध्य में करता हूँ ॥ 50 ॥

मानस-पूजन

ध्यात्वैवं परमं ब्रह्म मानसैरुपचारकैः ।
पूजयेत्परया भक्त्या ब्रह्मसायुज्यहेतवे ॥ 51 ॥
गन्धं दद्यान्महीतत्त्वं पुष्पमाकाशमेव च ।
धूपं दद्याद्वायुतत्त्वं दीपं तेजः समर्पयेत् ।
नैवेद्यं तोयतत्त्वेन प्रदद्यात्परमात्मने ॥ 52 ॥

ततो जप्त्वा महामन्त्रं मनसा साधकोत्तमः ।
समर्प्य ब्रह्मणे पश्चाद्बहिः पूजां समारभेत् ।। 53 ।।

ब्रह्म-सायुज्य की प्राप्ति के लिये परा भक्ति के साथ परम ब्रह्म का ऐसा ही ध्यान करके मानस उपचारों से उनकी पूजा करे । मानस पूजन में ब्रह्म को महाभूत तत्त्वों का अर्पण करे । पृथ्वी तत्त्व को गन्ध, आकाश तत्त्व को पुष्प, वायु तत्त्व को धूप, तेजस्तत्त्व को दीप और जल तत्त्व को नैवेद्य के रूप में परमात्मा को समर्पित करे । जैसे—

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं सर्मपयामि : अधोमुख कनिष्ठांगुष्ठ से ।
हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि : अधोमुख तर्जनी-अंगुष्ठ से ।
हं वाय्वात्मकं धूपम् आघ्रापयामि : ऊर्ध्वमुख तर्जनी-अंगुष्ठ से ।
रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि : उर्ध्वमुख मध्यमा-अंगुष्ठ से ।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि : उर्ध्वमुख अनामा-अंगुष्ठ से ।

सं सर्वात्मकान् ताम्बूलादिसर्वोपचारान् समर्पयामि : उर्ध्वमुख सभी अंगुलियों के साथ अंगूठा मिलाकर ।

तदनन्तर श्रेष्ठ साधक पूर्वोक्त महामन्त्र 'ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म' का मानसिक जप करके जप का समर्पण ब्रह्म को करने के उपरान्त वाह्य पूजा आरम्भ करे ।

बाह्य पूजा और उपचार-संशोधन

उपस्थितानि द्रव्याणि गन्धपुष्पादिकानि च ।
वस्त्रालङ्करणादीनि भक्ष्यपेयानि यानि च ।। 54 ।।
मन्त्रेणानेन संशोध्य ध्यात्वा ब्रह्म सनातनम् ।
निमील्य नेत्रे मतिमानर्पयेत्परमात्मने ।। 55 ।।
ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।। 56 ।।
ततो नेत्रे समुन्मील्य जप्त्वा मूलं स्वशक्तितः ।
तज्जपं ब्रह्मसात्कृत्वा स्तोत्रं च कवचं पठेत् ।। 57 ।।

गन्ध-पुष्पादि-वस्त्रालंकारादि और भक्ष्य-भोज्य-पेयादि उपलब्ध उपचारों को निम्नलिखित मन्त्र से संशोधित करके दोनों आँखें बन्द करके बुद्धिमान साधक सनातन ब्रह्म का ध्यान करता हुआ परमात्मा को उपचार समर्पित करे ।

संशोधन मन्त्र श्लोक 56 है । इस मन्त्र को पढ़कर पूजन सामग्री पर जल छिड़के । श्लोक 56 का अर्थ है—यह पात्र ब्रह्म है । हवनीय द्रव्य ब्रह्म हैं । हवनकर्त्ता ब्रह्म है । जो ब्रह्म में चित्त को एकाग्र करता है, वह ब्रह्म को ही प्राप्त करता है । पूजन इस प्रकार करे—

ब्रह्म ध्यायामि । आवाहयामि । आसनं समर्पयामि । पाद्यं समर्पयामि । अर्घ्यं समर्पयामि । आचमनीयं समर्पयामि । स्नानं समर्पयामि । वस्त्रालङ्कारान् समर्पयामि । यज्ञोपवीतं समर्पयामि । गन्धान् धारयामि । परब्रह्मणे नमः नानाविधपरिमलपत्र-पुष्पाणि समर्पयामि । ॐ सच्चिदेकं ब्रह्मं—ब्रह्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

तर्पण करे—ब्रह्मणे नमः धूपम् आघ्रापयामि । दीपं दर्शयामि । नैवेद्यं समर्पयामि । मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं ताम्बूलं च समर्पयामि, कर्पूरनीराजनं दर्शयामि ।

ॐ परमेश्वराय विद्महे परतत्त्वाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् । परब्रह्मणे नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि । प्रदक्षिणानमस्कारान् समर्पयामि । समस्तराजोपचारदेवोपचारान् सर्मपयामि । अनया पूजया परब्रह्म परमेश्वरः सुप्रीतः सुप्रसन्नो वरदो भवतु ।

इसके बाद यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप करके दोनों नेत्रों को बन्द करके उपरोक्त ब्रह्मार्पण मन्त्र का उच्चारण करके ब्रह्म को जप का समर्पण करे । तदनन्तर स्तोत्र और कवच का पाठ करे ।। 54-57 ।।

ब्रह्मस्तोत्र

स्तोत्रं शृणु महेशानि ब्रह्मणः परमात्मनः ।
यच्छ्रुत्वा साधको देवि ब्रह्मसायुज्यमश्नुते ।। 58 ।।
ॐ नमस्ते सते सर्वलोकाश्रयाय,
नमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय ।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय,
नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय ।। 59 ।।
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं,
त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम् ।

त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ,
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥ 60 ॥
भयानां भयं भीषणं भीषणानां,
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैःपदानां नियन्तृत्वमेकं,
परेषां परं रक्षकं रक्षकाणाम् ॥ 61 ॥
परेश प्रभो सर्वरूपाप्रकाशि-
न्ननिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्य सत्य ।
अचिन्त्याक्षर व्यापकाव्यक्ततत्त्व
जगद्भासकाधीश पायादपायात् ॥ 62 ॥
तदेकं स्मरामस्तदेकं जपाम-
स्तदेकं जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं,
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥ 63 ॥
पञ्चरत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
यः पठेत्प्रयतो भूत्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ 64 ॥
प्रदोषेऽदः पठेन्नित्यं सोमवारे विशेषतः ।
श्रावयेद्बोधयेत्प्राज्ञो ब्रह्मनिष्ठान्स्वबान्धवान् ॥ 65 ॥
इति ते कथितं देवि पञ्चरत्नं महेशितुः ।

हे महेशानि ! हे देवि ! परमात्मा ब्रह्म के स्तोत्र को सुनो, जिसके श्रवण से साधक को ब्रह्मसायुज्य प्राप्त होता है । तुम नित्य हो । तुम सब लोकों का आश्रय हो । तुम्हें नमस्कार करता हूँ । तुम ज्ञानस्वरूप हो । विश्व की आत्मास्वरूप हो । अद्वैत-तत्त्व मुक्तिदायक! तुम्हें नमस्कार है । तुम सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म हो । तुम्हें नमस्कार है । एकमात्र आश्रय तुम्हीं हो । तुम अद्वितीय वरणीय हो । जगत् का एकमात्र कारण तुम्हीं हो । तुम विश्वरूप हो । एकमात्र तुम्हीं जगत् के सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और अन्त में संहारकर्त्ता हो । तुम्हीं एकमात्र परम पुरुष हो । तुम निश्चल और विविध कल्पनाओं से रहित हो ।

तुम भय के भय हो । तुम भयानकों के भयानक हो । प्राणियों की एकमात्र गति तुम्हीं हो । तुम स्वयं पवित्र हो और सबकी पवित्रता के जनक हो । उच्च पद पर अधिष्ठित ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि के नियामक तुम्हीं हो ।

तुम सभी श्रेष्ठ पदार्थों में श्रेष्ठ हो और रक्षकों के रक्षक हो । हे परेश ब्रह्मादि देवों के स्वामी ! हे प्रभो!! तुम सर्वरूप अविनाशी, अनिर्देश्य और सभी इन्द्रियों से अगम्य हो । किसी भी इन्द्रिय से तुम्हें जाना नहीं जा सकता । हे सत्यस्वरूप! हे अचिन्त्य! हे अक्षर! हे व्यापक! हे अव्यक्त तत्त्व! हे जगत् भासकाधीश अर्थात् चन्द्र-सूर्यादि के अधीश्वर! अथवा हे जगत् भासक! हे अधीश! तुम हम लोगों को अपायरूपी भक्तिविश्लेष और ज्ञानविश्लेष होने से बचाओ । उसी एकमात्र ब्रह्म का स्मरण हम करते हैं । उसी अद्वितीय ब्रह्म का जप हम करते हैं । उसी जगत् साक्षीस्वरूप ब्रह्म को हम प्रणाम करते हैं, जो तुम हो । वही तुम सत् हो । जगत् का एकमात्र निधान अर्थात् आश्रय हो । तुम स्वयं आश्रयरहित हो । तुम वही ईश्वर हो, जो भवसागर का जहाजस्वरूप हैं । हम तुम्हारा आश्रय ग्रहण करते हैं ।

परमात्मा ब्रह्म के पञ्चरत्न नामक इस स्तोत्र का जो संयत होकर पाठ करता है, वह ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त करता है । प्रतिदिन प्रदोष वेला में इस पञ्चरत्न स्तोत्र का पाठ करना चाहिये । विशेषतः सोमवार को ज्ञानी व्यक्ति अपने ब्रह्मनिष्ठ बान्धवों को इस स्तोत्र को सुनाये और समझा दे । हे देवि! परमेश्वर के पञ्चरत्न स्तोत्र का वर्णन मैंने तुझको बताया है ।। 58-65 ।।

ब्रह्मकवच

कवचं शृणु चार्वङ्गि जगन्मङ्गलनामकम् ।
पठनाद्धारणाद्यस्य ब्रह्मज्ञो जायते ध्रुवम् ।। 66 ।।
परमात्मा शिरः पातु हृदयं परमेश्वरः ।
कण्ठं पातु जगत्पाता वदनं सर्वदृग्विभुः ।। 67 ।।
करौ मे पातु विश्वात्मा पादौ रक्षतु चिन्मयः ।
सर्वाङ्गं सर्वदा पातु परं ब्रह्म सनातनम् ।। 68 ।।
श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य सदाशिवः ।
ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुबिति परमब्रह्मदेवता ।
चतुर्वर्गफलावाप्त्यै विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।। 69 ।।
यः पठेद्ब्रह्मकवचमृषिन्यासपुरःसरम् ।
स ब्रह्मज्ञानमासाद्य साक्षाद्ब्रह्ममयो भवेत् ।। 70 ।।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।। 71 ।।

इत्येतत्परमब्रह्मकवचं ते प्रकाशितम् ।
दद्यात्प्रियाय शिष्याय गुरुभक्ताय धीमते ।। 72 ।।
पठित्वा स्तोत्रकवचं प्रणमेत्साधकाग्रणी: ।। 73 ।।
ॐ नमस्ते परमं ब्रह्म नमस्ते परमात्मने ।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमो नम: ।। 74 ।।

हे चार्वङ्गी! उनके जगन्मंगल कवच को सुनो । इस कवच के पाठ से और धारण करने से मनुष्य निश्चय ही ब्रह्मज्ञानी हो जाता है ।

परमात्मा हमारे शिरोदेश की रक्षा करें । परमेश्वर हमारे हृदय की रक्षा करें । जगत् का पालन करने वाले हमारे कण्ठ की रक्षा करें । सर्वदर्शी विभु मेरे मुख की रक्षा करें । विश्वात्मा हमारे दोनों हाथों की रक्षा करें । चिन्मय हमारे दोनों पैरों की रक्षा करें । सनातन पर ब्रह्म सदैव हमारे सर्वांगों की रक्षा करें । इस जगन्मंगल कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता परब्रह्म, चतुर्वर्गफल-प्राप्ति के हेतु विनियोग है । जो ऋषि-न्यास करके इस ब्रह्मकवच का पाठ करता है, वह ब्रह्मज्ञान पाकर साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है । जो इस कवच को भोजपत्र पर लिखकर सोने के ताबीज में रखकर कण्ठ या दाँयीं भुजा में धारण करता है, वह सभी प्रकार की सिद्धियों का स्वामी होता है । तुमको मैंने इस परम ब्रह्म के कवच को बतलाया । इसे गुरुभक्त, बुद्धिमान, प्रिय शिष्य को ही देना चाहिये । श्रेष्ठ साधक कवचस्तोत्र का पाठ करके परब्रह्म को प्रणाम करे । नमस्कार-मन्त्र श्लोक 74 है । तुम परम ब्रह्म हो, तुम्हें नमस्कार है । तुम परमात्मा हो, तुम्हें नमस्कार है । तुम गुणातीत हो, तुम्हें नमस्कार है । तुम सत्स्वरूप हो, तुम्हें बारम्बार नमस्कार है ।। 66-74 ।।

प्रसाद का माहात्म्य

वाचिकं कायिकं वापि मानसं वा यथामति ।
आराधने परेशस्य भावशुद्धिर्विधीयते ।। 75 ।।
एवं सम्पूज्य मतिमान्स्वजनैर्बान्धवै: सह ।
महाप्रसादं स्वीकुर्याद्ब्रह्मण: परमात्मन: ।। 76 ।।
पूजने परमेशस्य नावाहनविसर्जने ।
सर्वत्र सर्वकालेषु साधयेद्ब्रह्मसाधनम् ।। 77 ।।
अस्नातो वा कृतस्नानो भुक्तो वापि बुभुक्षित: ।
पूजयेत्परमात्मानं सदा निर्मलमानस: ।। 78 ।।

अनेन ब्रह्ममन्त्रेण भक्ष्यपेयादिकञ्च यत् ।
दीयते परमेशाय तदेव पावनं महत् ॥ 79 ॥
गङ्गातोये शिलादौ च स्पृष्टदोषोऽपि वर्त्तते ।
परब्रह्मार्पिते द्रव्ये स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥ 80 ॥
पक्वं वापि न पक्वं वा मन्त्रेणानेन मन्त्रितम् ।
साधको ब्रह्मसात्कृत्वा भुञ्जीयात्स्वजनैः सह ॥ 81 ॥
नात्र वर्णविचारोऽस्ति नोच्छिष्टादिविवेचनम् ।
न कालनियमोऽप्यत्र शौचाशौचं तथैव च ॥ 82 ॥
यथाकाले यथादेशे यथायोगे न लभ्यते ।
ब्रह्मसात्कृतनैवेद्यमश्नीयादविचारयन् ॥ 83 ॥
आनीतं श्वपचेनापि श्वमुखादपि निःसृतम् ।
तदन्नं पावनं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥ 84 ॥
किं पुनर्मनुजादीनां वक्तव्यं देववन्दिते ।
परमेशस्य नैवेद्यसेवनाद्यत्फलं भवेत् ॥ 85 ॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्यन्यपातकैः ।
सकृत्प्रसादग्रहणान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ 86 ॥
सार्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नानदानेन यत्फलम् ।
तत्फलं लभते मर्त्त्यो ब्रह्मार्पितनिषेवणात् ॥ 87 ॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा यत्फलमश्नुते ।
भक्षिते ब्रह्मनैवेद्ये तस्मात्कोटिगुणं लभेत् ॥ 88 ॥
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ।
महाप्रसादमाहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥ 89 ॥
यत्र कुत्र स्थितो वापि प्राप्य ब्रह्मार्पितामृतम् ।
गृहीत्वा कीकशो वापि ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ 90 ॥
यदि स्यान्नीचजातीयमन्नं ब्रह्मणि भावितम् ।
तदन्नं ब्राह्मणैर्ग्राह्यमपि वेदान्तपारगैः ॥ 91 ॥
जातिभेदो न कर्त्तव्यः प्रसादे परमात्मनः ।
योऽशुद्धबुद्धिं कुरुते स महापातकी भवेत् ॥ 92 ॥
वरं पापशतं कुर्याद्वरं विप्रवधं प्रिये ।
परब्रह्मार्पिते ह्यन्ने न कुर्यादवहेलनम् ॥ 93 ॥
ये त्यजन्ति नरा मूढा महामन्त्रेण संस्कृतम् ।
अन्नतोयादिकं भद्रे पितृंस्ते पातयन्त्यधः ॥ 94 ॥

स्वयमप्यन्धतामिस्रे पतन्त्याभूतसम्प्लवम् ।
ब्रह्मसात्कृतनैवेद्यद्वेष्टृणां नास्ति निष्कृतिः ।। 95 ।।

परब्रह्म की आराधना में साधक अपनी इच्छानुसार कायिक, वाचिक या मानसिक नमस्कार कर सकता है । जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो, उसी विधि को अपनाना चाहिये । ज्ञानी मनुष्य इसी प्रकार ब्रह्म की पूजा करके स्वजनों के साथ महाप्रसाद ग्रहण करे । परब्रह्म की पूजा में न आवाहन होता है और न ही विसर्जन । सभी समय सभी स्थानों में ब्रह्म की साधना हो सकती है । नहाकर या विना नहाये, खाकर या विना खाये, किसी भी अवस्था में किसी समय विशुद्ध चित्त होकर परमात्मा की पूजा करे । इस ब्रह्ममन्त्र के द्वारा जो भी भक्ष्य-पेयादि उपचार परब्रह्म को समर्पित किया जाता है, वह अति पवित्रकारी हो जाता है । गंगाजल या शालग्रामशिला में अर्पित वस्तु को स्पर्शदोष लग सकता है; परन्तु परब्रह्म को अर्पित वस्तु में स्पर्श- दोष नहीं लगता । जो भी पदार्थ पका हो या कच्चा, उसे ब्रह्ममन्त्र से ब्रह्मसात् करके साधक स्वजनों के साथ भोजन कर सकता है । ब्रह्म को निवेदित वस्तु के खाने में ब्राह्मणादि वर्ण का विचार नहीं होता । उच्छिष्टादि का भी विचार नहीं होता । इसमें समय-असमय, पवित्र-अपवित्र की व्यवस्था नहीं है । जिस समय, जिस स्थान में, जिसके द्वारा ब्रह्मार्पित प्रसाद प्राप्त हो, उसका भोजन विना विचारे करना चाहिये ।

ब्रह्मसात् किया हुआ अन्न यदि चाण्डाल लाये या कुत्ते के मुख से लाया गया हो तो भी वह पवित्र है । यह देवदुर्लभ होता है । हे सुरवन्दिते! मनुष्यों के लिये इसकी दुर्लभता की क्या बात कही जाय? यदि कोई मनुष्य महापापी हो या किसी अन्य पातक से युक्त हो, वह भी यदि एक बार प्रसाद ग्रहण कर ले तो वह सभी पापों से मुक्त हो जायेगा; इसमें कोई सन्देह नहीं है । साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान और दान करने से जो पुण्य-फल होता है, वही फल ब्रह्मार्पित वस्तु के सेवन से मनुष्यों को मिलता है । अश्वमेधादि यज्ञ से जो फल मनुष्य भोगते हैं, उससे कोटिगुणा अधिक फल ब्रह्म को निवेदित वस्तु के भक्षण से मिलता है । यदि एक हजार करोड़ जीभ हो, सौ करोड़ मुख हों तो भी महाप्रसाद के माहात्म्य का वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सकते । जहाँ भी स्थित हो, ब्रह्म को अर्पित महाप्रसाद मिलने पर उसे ग्रहण करने से चाण्डाल भी ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करते हैं । यदि नीच जाति के लोगों का अन्न है, ब्रह्म

को समर्पित हुआ है तो वेदान्तपारगामी ब्राह्मण भी उसे ग्रहण कर सकता है । परम ब्रह्म का प्रसाद ग्रहण करते समय जातिभेद का विचार नहीं करना चाहिये । जो इस महाप्रसाद को नीच जाति के स्पर्श से अशुद्ध समझता है, वह महापापी होता है । हे प्रिये! भले ही सौ पाप करे, भले ब्रह्महत्या करे; परन्तु ब्रह्म को अर्पित अन्न की अवेहलना न करे । हे भद्रे! जो मूर्ख इस महामन्त्र द्वारा संस्कृत अन्न-जल आदि का त्याग करते हैं, उनके पितरों का अधःपतन होता है । स्वयं वे प्रलयकाल तक अन्धतामिस्र नरक में पड़े रहते हैं । जिन्हें ब्रह्म को निवेदित अन्न से द्वेष होता है, उनका कोई निस्तार नहीं होता ।। 75-95 ।।

ब्रह्ममन्त्र-माहात्म्य

पुण्यायन्ते क्रियाः सर्वाः कुकृतिः सुकृतायते ।
स्वेच्छाचारोऽत्र विहितो महामन्त्रस्य साधने ।। 96 ।।
किं तस्य वैदिकाचारैस्तान्त्रिकैर्वापि तस्य किम् ।
ब्रह्मनिष्ठस्य विदुषः स्वेच्छाचारो विधिः स्मृतः ।। 97 ।।
कृतेनास्य फलं नास्ति नाकृतेनापि किल्बिषम् ।
निर्विघ्नः प्रत्यवायोऽस्य ब्रह्ममन्त्रस्य साधनात् ।। 98 ।।

जो महामन्त्र का साधन करते हैं, उनके अपुनीत कर्म भी पुनीत कर्मों में बदल जाते हैं । सुषुप्ति भी सुकर्मस्वरूप होती है । स्वेच्छाचार भी विहित कर्म माना जाता है । जो मनुष्य एकनिष्ठ ब्रह्मज्ञानी है, उसे वैदिकाचार से क्या प्रयोजन? अथवा तान्त्रिक अनुष्ठान से क्या प्रयोजन? उसका स्वेच्छाचार ही विधान कहा जाता है । ब्रह्मनिष्ठ मनुष्य जो भी वैध कर्मानुष्ठान करते हैं, उनसे उन्हें कोई फल नहीं मिलता । जिन वैध कर्मों का अनुष्ठान नहीं करते, उससे भी उन्हें कोई पाप नहीं होता । ब्रह्ममन्त्र के साधन के कारण उन्हें कोई विघ्न या दोष नहीं होता ।। 96-98 ।।

ब्रह्ममन्त्रकर्त्तव्य

अस्मिन्धर्मे महेशि स्यात्सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
परोपकारनिरतो निर्विकारः सदाशयः ।। 99 ।।
मात्सर्यहीनोऽदम्भी च दयावाञ्छुद्धमानसः ।
मातापित्रोः प्रीतिकारी तयोः सेवनतत्परः ।। 100 ।।
ब्रह्मश्रोता ब्रह्ममन्ता ब्रह्मान्वेषणमानसः ।
यतात्मा दृढबुद्धिः स्यात्साक्षाद्ब्रह्मेति भावयन् ।। 101 ।।

न मिथ्याभाषणं कुर्य्यान्नापरानिष्टचिन्तनम् ।
परस्त्रीगमनं चैव ब्रह्ममन्त्री विवर्ज्जयेत् ।। 102 ।।
तत्सदिति वदेद्देवि प्रारम्भे सर्वकर्मणाम् ।
ब्रह्मार्पणमस्तु वाक्यं पानभोजनकर्मणोः ।। 103 ।।
येनोपायेन मर्त्त्यानां लोकयात्रा प्रसिद्ध्यति ।
तदेव कार्यं ब्रह्मज्ञैरिदं धर्मं सनातनम् ।। 104 ।।

हे महेश्वरि! ब्रह्ममन्त्र-साधन धर्म का अनुष्ठान करते समय सत्यवादी, जितेन्द्रिय, परोपकार-परायण, निर्विकार चित्त और सदाशय रहना अपेक्षित है । ब्रह्मनिष्ठ मनुष्य मात्सर्य-विहीन, दम्भरहित, दयालु, विशुद्ध हृदय, माता-पिता का प्रिय करने वाला और माता-पिता की सेवा में तत्पर रहता है । वह सदैव ब्रह्म-प्रतिपादनसम्बन्धी बातों का श्रवण करता है । सर्वदा ब्रह्म का अनुसन्धान या ब्रह्मतत्त्व की जिज्ञासा करता है । वह सदैव संयत चित और दृढ़-बुद्धि रहता है । सदैव वह ब्रह्मसाक्षात्कार की भावना रखता है । वह कभी मिथ्या भाषण नहीं करता । दूसरों का अनिष्ट कभी नहीं करता । ब्रह्ममन्त्रोपासक परस्त्रीगमन नहीं करता है । ब्रह्मनिष्ठ मनुष्य सभी कर्मों के आरम्भ में 'तत्सत्' शब्द का उच्चारण करता है । हे देवि! ब्रह्मनिष्ठ मनुष्य खाने-पीने आदि सभी कार्यों में 'ब्रह्मार्पणमस्तु' वचन उच्चारण करे । जिस उपाय से सभी मनुष्यों की लोक-यात्रा का निर्वाह उत्तम रूप से हो, ब्रह्मज्ञ मनुष्य को वही उपाय करना चाहिये । यही सनातन धर्म है ।। 99-104 ।।

ब्रह्मसन्ध्योपासना

अथ सन्ध्याविधिं वक्ष्ये ब्रह्ममन्त्रस्य शाम्भवि ।
यां कृत्वा ब्रह्मसम्पत्तिं लभन्ते भुवि मानवाः ।। 105 ।।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने यथादेशे यथासने ।
पूर्ववत्परमब्रह्म ध्यात्वा साधकसत्तमः ।। 106 ।।
अष्टोत्तरशतं देवि गायत्रीजपमाचरेत् ।
जपं समर्प्य विधिवत्पूर्ववत्प्रणमेत्सुधीः ।। 107 ।।
एषा सन्ध्या मया प्रोक्ता सर्वथा ब्रह्मसाधने ।
यदनुष्ठानतो मन्त्री शुद्धान्तःकरणो भवेत् ।। 108 ।।

हे शाम्भवि! अब ब्रह्ममन्त्र की सन्ध्योपासना-विधि बतलाता हूँ । इस सन्ध्या-वन्दन को करके ब्रह्मनिष्ठ उपासक पृथ्वी पर ब्रह्मरूप सम्पत्ति प्राप्त कर

सकते हैं । हे देवि! साधकश्रेष्ठ सुधी प्रातः, मध्याह्न और शाम के समय में उपयुक्त स्थान पर यथोचित आसन पर पूर्ववत् बैठकर परम ब्रह्म का ध्यान करके 108 बार ब्रह्मगायत्री का जप करे । तब यथाविधि 'ब्रह्मार्पणमस्तु' कहकर जप समर्पित करे । पूर्ववत् प्रणाम करे। ब्रह्ममन्त्र से सम्बन्धित सन्ध्याविधि का वर्णन मैंने किया । इस सन्ध्या का अनुष्ठान करने से साधक का अन्तःकरण शुद्ध होता है ।। 105-108 ।।

ब्रह्मगायत्री

गायत्रीं शृणु चार्वङ्गि सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
परमेश्वरं ङेऽन्तमुक्त्वा विद्महे तदनन्तरम् ।। 109 ।।
परतत्त्वाय पदतो धीमहीति वदेत्प्रिये ।
तदनन्तरमीशानि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ।। 110 ।।
इयं श्रीब्रह्मगायत्री चतुर्वर्गप्रदायिनी ।
पूजनं यजनं चैव स्नानं पानं च भोजनम् ।। 111 ।।
यद्यत्कर्म प्रकुर्वीत ब्रह्ममन्त्रेण साधयेत् ।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय प्रणम्य ब्रह्मदं गुरुम् ।। 112 ।।
ध्यात्वा च परमं ब्रह्म यथाशक्ति मनुं स्मरेत् ।
पूर्ववत्प्रणमेद्ब्रह्म प्रातःकृत्यमिदं स्मृतम् ।। 113 ।।
द्वात्रिंशता सहस्रेण जपेनास्य पुरस्क्रिया ।
तद्दशांशेन हवनं तर्पणं तद्दशांशतः ।। 114 ।।
सेचनं तद्दशांशेन तद्दशांशेन सुन्दरि ।
ब्राह्मणान्भोजयेन्मन्त्री पुरश्चरणकर्मणि ।। 115 ।।
भक्ष्याभक्ष्यविचारोऽत्र त्याज्यं ग्राह्यं न विद्यते ।
न कालशुद्धिनियमो न वा स्थाननिरूपणम् ।। 116 ।।
अभुक्तो वापि भुक्तो वा स्नातो वाऽस्नात एव वा ।
साधयेत्परमं मन्त्रं स्वेच्छाचारेण साधकः ।। 117 ।।
विनाऽऽयासं विना क्लेशं स्तोत्रं च कवचं विना ।
विना न्यासं विना मुद्रां विना सेतुं वरानने ।। 118 ।।
विना चौरगणेशादि जपं च कुल्लुकां विना ।
अकस्मात्परमब्रह्मसाक्षात्कारो भवेद्ध्रुवम् ।। 119 ।।

हे चार्वङ्गि! अव सर्व पापनाशिनी ब्रह्मगायत्री को बतलाता हूँ; सुनो । 'परमेश्वराय विद्महे परतत्त्वाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्' श्लोक 109 के

उत्तरार्द्ध से लेकर श्लोक 110 के पूर्वार्ध तक का उद्धार करने पर यह गायत्री बनती है । पहले 'परमेश्वर' शब्द में चतुर्थी विभक्ति का एकवचन मिलाकर फिर 'विद्महे' उच्चारण करना चाहिये । हे प्रिये! इसके पश्चात् 'परतत्त्वाय' उच्चारण करे । इसके बाद 'तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्' पद का उच्चारण करे । इस ब्रह्म-गायत्री से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष- रूप चतुर्वर्ग पाया जा सकता है । पूजा-यात्रा-स्नान-पान-भोजन आदि सभी कर्मों को इसी ब्रह्ममन्त्र से सिद्ध करे । ब्राह्ममुहूर्त में उठकर ब्रह्ममन्त्र देने वाले गुरु को प्रणाम करने के बाद परम ब्रह्म का ध्यान करके यथाशक्ति मन्त्र का स्मरण करे । तब पूर्ववत् ब्रह्म को नमस्कार करे । ब्रह्मोपासकों के लिए यही प्रातः-कृत्य कहा गया है ।

पुरश्चरण बत्तीस हजार जप से होता है । जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये । अर्थात् 32000 जप, 3200 हवन, 320 तर्पण, 32 मार्जन और 3 ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये । ब्रह्ममन्त्र का पुरश्चरण करते समय भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं है । त्याज्यात्याज्य विचारणीय नहीं है । काल-शुद्धि का नियम नहीं है । स्थान का निरूपण नहीं है । उपवास रहकर या भोजन करके, स्नान करके या विना नहाये, यथेच्छानुसार इस परम मन्त्र की साधना करे । इस ब्रह्मसाधन के सम्बन्ध में क्लेश नहीं है, परिश्रम नहीं है, स्तोत्र या कवच का पाठ नहीं है, न्यास या मुद्रा का प्रदर्शन आवश्यक नहीं है ।

इस ब्रह्ममन्त्र के साधन के सम्बन्ध में चौरगणेशादि के मन्त्र का जप करना नहीं होता । कुल्लुका-विन्यास भी नहीं होता । इन सभी अनुष्ठानों के न करने पर भी अल्प काल में निश्चय ही परम ब्रह्म का साक्षात्कार-लाभ होता है ।। 109-119 ।।

ब्रह्मोपासना-माहात्म्य

सङ्कल्पोऽस्मिन्महामन्त्रे मानसः परिकीर्तितः ।
साधने ब्रह्ममन्त्रस्य भावशुद्धिर्विधीयते ।। 120 ।।
सर्वं ब्रह्ममयं देवि भावयेद्ब्रह्मसाधकः ।
न चास्य प्रत्यवायोऽस्ति नाङ्गवैगुण्यमेव च ।
महामनोः साधने तु व्यङ्गं साङ्गायते ध्रुवम् ।। 121 ।।
कलौ पापयुगे घोरे तपोहीनेऽतिदुस्तरे ।
निस्तारबीजमेतावद्ब्रह्ममन्त्रस्य साधनम् ।। 122 ।।

साधनानि बहूक्तानि नानातन्त्रागमादिषु ।
कलौ दुर्बलजीवानामसाध्यानि महेश्वरि ।। 123 ।।
अल्पायुष: स्वल्पवृत्ता अन्नाधीनासव: प्रिये ।
लुब्धा धनार्जने व्यग्रा: सदा चञ्चलमानसा: ।। 124 ।।
समाधावस्थिरधियो योगक्लेशासहिष्णव: ।
तेषां हिताय मोक्षाय ब्रह्ममार्गोऽयमीरित: ।। 125 ।।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
ब्रह्मदीक्षां विना देवि कैवल्याय सुखाय च ।। 126 ।।
प्रात:कृत्यं प्रातरेव सन्ध्यां कुर्यात्त्रिकालत: ।
मध्याह्ने पूजनं कुर्यात्सर्वतन्त्रेष्वयं विधि: ।
परब्रह्मोपासने तु साधकेच्छाविधि: शिवे ।। 127 ।।
विधय: किङ्करा यत्र निषेधा: प्रभवोऽपि न ।
स्वेच्छाचारेणेष्टसिद्धिस्तद्विना कोऽन्यमाश्रयेत् ।। 128 ।।

इस महामन्त्र के साधन के बारे में मानसिक संकल्प का वर्णन किया जाता है । हे देवि! ब्रह्मसाधक सबों के ब्रह्ममय होने की भावना करे । इस ब्रह्मसाधना में त्रुटि होने से अंगवैगुण्य नहीं होता, प्रत्यवाय भी नहीं होते । इस महामन्त्र के साधन में किसी अंग के हीन होने पर भी यह निश्चित रूप से सांग हो जाता है । अति दुस्तर तपस्याहीन इस घोर पापमय कलियुग में ब्रह्ममन्त्र का साधन ही एकमात्र निस्तार का उपाय है । हे महेश्वरि! विविध तन्त्रों और विविध आगमादि शास्त्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के साधन-विषयों का वर्णन है; परन्तु कलियुग में दुर्बल मनुष्य के लिये वे सब असाध्य के समान ही हैं । हे प्रिये! कलियुग में मनुष्य अल्पायु होते हैं; अतः वे बड़े अनुष्ठान नहीं कर पाते । अन्न में ही उनके प्राण रहते हैं । वे लोभी, धन कमाने में व्याकुल और सर्वदा चञ्चल चित्त होते हैं । समाधि में उनकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती । वे योगजन्य कष्ट सहने में असमर्थ रहते हैं । अतः उनके हित और मोक्ष के लिये मैंने ब्रह्मोपासना के इस पथ को प्रकट किया है ।

हे देवि! मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि कलियुग में ब्रह्ममन्त्र की दीक्षा के अतिरिक्त सुख और मोक्ष के लिए अन्य कोई उपाय नहीं है । प्रातःकृत्य सम्पन्न करके त्रिकाल सन्ध्या और मध्याह्न पूजन का विधान सभी तन्त्रों में है । हे शिवे! परम ब्रह्म की उपासना में साधक की इच्छा ही विधिस्वरूप मानी जाती

हैं । ब्रह्म-साधन में सभी शास्त्रीय विधियाँ दासीस्वरूपा हो जाती हैं । सारे निषेधों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता । स्वेच्छानुरूप आचरण से ही इष्टसिद्धि होती है । ऐसे ब्रह्मसाधन का परित्याग करके अन्य किसका सहारा लिया जा सकता है?।। 120-128 ।।

ब्रह्ममन्त्र-ग्रहण-विधि

ब्रह्मज्ञानी गुरुं प्राप्य शान्तं निश्चलमानसम् ।
धृत्वा तच्चरणाम्भोजं प्रार्थयेद्भक्तिभावत: ।। 129 ।।
करुणामय दीनेश तवाहं शरणागत: ।
त्वत्पदाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि यशोधन ।। 130 ।।
इति प्रार्थ्य गुरुं पश्चात्पूजयित्वा स्वशक्तित: ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तूष्णीं तिष्ठेद्गुरो: पुर: ।। 131 ।।
गुरुर्विचार्य विधिवद्यथोक्तं शिष्यलक्षणम् ।
आहूय कृपया दद्यात्सच्छिष्याय महामनुम् ।। 132 ।।
उपविश्यासने ज्ञानी प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुख: ।
स्ववामे शिष्यमानीय कारुण्येनावलोकयेत् ।। 133 ।।
तत: शिष्यस्य शिरसि ऋषिन्यासपुर:सरम् ।
जपेदष्टशतं मन्त्रं साधकस्येष्टसिद्धये ।। 134 ।।
दक्षकर्णे ब्राह्मणानामितरेषाञ्च वामत: ।
सप्रधा श्रावयेन्मन्त्रं सद्गुरु: करुणानिधि: ।। 135 ।।
उपदेशविधि: प्रोक्तो ब्रह्ममन्त्रस्य कालिके ।
नात्र पूजाद्यपेक्षास्ति सङ्कल्पं मानसञ्चरेत् ।। 136 ।।
तत: श्रीगुरुपादाब्जे दण्डवत्पतितं शिशुम् ।
उत्थापयेद्गुरु: स्नेहादिमं मन्त्रमुदीरयन् ।। 137 ।।
उत्तिष्ठ वत्स मुक्तोऽसि ब्रह्मज्ञानपरो भव ।
जितेन्द्रिय: सत्यवादी बलारोग्यं सदास्तु ते ।। 138 ।।
तत उत्थाय गुरवे यथाशक्त्यनुसारत: ।
दक्षिणां स्वं फलं वापि दद्यात्साधकसत्तम: ।
गुरोराज्ञावशी भूत्वा विहरेद्देववद्भुवि ।। 139 ।।
मन्त्रग्रहणमात्रेण तदात्मा तन्मयो भवेत् ।
ब्रह्मभूतस्य देवेशि किमन्यैर्बहुसाधनै: ।
इति संक्षेपतो ब्रह्मदीक्षा ते कथिता प्रिये ।। 140 ।।
गुरुकारुण्यमात्रेण ब्रह्मदीक्षां समाचरेत् ।। 141 ।।

स्थिरचित्त, प्रशान्त, ब्रह्मज्ञानी गुरु को पाते ही उनके चरणकमलों को पकड़कर भक्ति-भाव से प्रार्थना करे कि हे करुणामय! हे दीनों के ईश्वर!! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ । हे यशोधन! मेरे मस्तक पर अपने पदपद्मों की छाया प्रदान करें ।

इस प्रकार की प्रार्थना करके शिष्य गुरु की यथाशक्ति पूजा करे । तदनन्तर गुरु के सामने हाथ जोड़कर चुपचाप बैठे । तब गुरु यथाविधि शिष्य के लक्षणों की परीक्षा करके उस शिष्य को बुलाकर कृपापूर्ण हृदय से ब्रह्म के महामन्त्र को प्रदान करे । तदनन्तर ज्ञानी गुरु पूर्व या उत्तरमुख होकर आसन पर बैठे । शिष्य को अपनी बाँयीं ओर बैठाकर करुणार्द्र हृदय से देखे । इसके पश्चात् साधक की इष्टसिद्धि के लिये ऋषि न्यास करके शिष्य के मस्तक पर एक सौ आठ बार ब्रह्ममन्त्र का जप करे । तब करुणाकर गुरु ब्राह्मण शिष्य के दाँयें कान में और अन्य जातियों के बाँयें कान में सात बार मन्त्र सुनाये । हे कालिके! तुझसे मैंने ब्रह्ममन्त्र के उपदेश की विधि का वर्णन किया । इसमें पूजनादि अपेक्षित नहीं हैं । इसमें केवल मानसिक संकल्प करना होता है । तत्पश्चात् शिष्य गुरु के चरणों में दण्डवत् गिरे और गुरु उसे निम्न मन्त्र पढ़ते हुए उठावे । श्लोक 138 रूप में यह मन्त्र है । हे पुत्र! उठो, तुम मुक्त हो । तुम ब्रह्मज्ञानपरायण बनो । तुम सत्यवादी और जितेन्द्रिय रहो । बल और आरोग्य सदैव तुम्हारे साथ रहें । तब साधकश्रेष्ठ उठकर गुरु को यथाशक्ति दक्षिणा के रूप में धन या फल प्रदान करे । तदनन्तर शिष्य गुरु का आज्ञाकारी होकर देवता के समान भूमण्डल पर विचरण करे । जो ब्रह्ममन्त्र की दीक्षा लेता है, उसकी आत्मा मन्त्र-ग्रहण करने-मात्र से ही ब्रह्ममय हो जाती है । हे देवि! जो ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, उसे अन्य बहुत से साधनों की क्या आवश्यकता रह जाती है? हे प्रिये! यह मैंने संक्षेप में ब्रह्म-दीक्षा का वर्णन तुम्हारे लिये किया । जिस समय गुरु की दया हो, उसी समय ब्रह्ममन्त्र की दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।। 129-141 ।।

ब्रह्मदीक्षा का फल

शाक्ताः शैवा वैष्णवाश्च सौरा गाणपतास्तथा ।
विप्रा विप्रेतराश्चैव सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः ।। 142 ।।
अहं मृत्युञ्जयो देवि देवदेवो जगद्गुरुः ।
स्वेच्छाचारी निर्विकल्पो मन्त्रस्यास्यप्रसादतः ।। 143 ।।

अमुमेव ब्रह्ममन्त्रं मत्तः पूर्व्वमुपासिताः ।
ब्रह्मा ब्रह्मर्षयश्चापि देवा देवर्षयस्तथा ॥ 144 ॥
देवर्षिवक्त्रान्मुनयस्तेभ्यो राजर्षयः प्रिये ।
उपासिता ब्रह्मभूताः परमात्मप्रसादतः ॥ 145 ॥
ब्राह्मे मनौ महेशानि विचारो नास्ति कुत्रचित् ।
स्वीयमन्त्रं गुरुर्दद्याच्छिष्येभ्यो ह्यविचारयन् ॥ 146 ॥
पितापि दीक्षयेत्पुत्रान्भ्राता भ्रातॄन्पतिः स्त्रियम् ।
मातुलो भागिनेयांश्च नप्तॄन्मातामहोऽपि च ॥ 147 ॥
स्वमन्त्रदाने यो दोषस्तथा पित्रादिदीक्षया ।
सिद्धे ब्रह्ममहामन्त्रे तद्दोषो नैव विद्यते ॥ 148 ॥
ब्रह्मज्ञानिमुखाच्छ्रुत्वा येन केन विधानतः ।
ब्रह्मभूतो नरः पूतः पुण्यपापैर्न लिप्यते ॥ 149 ॥
ब्रह्ममन्त्रोपासिता ये गृहस्था ब्राह्मणादयः ।
स्वस्ववर्णोत्तमास्ते तु पूज्या मान्या विशेषतः ॥ 150 ॥
ब्राह्मणा यतयः साक्षादितरे ब्राह्मणैः समाः ।
तस्मात्सर्वे पूजयेयुर्ब्रह्मज्ञान्ब्रह्मदीक्षितान् ॥ 151 ॥
ये च तानवमन्यन्ते ते नरा ब्रह्मघातिनः ।
पतन्ति घोरनरके यावद्भास्करतारकम् ॥ 152 ॥
यत्पापं स्त्रीवधे प्रोक्तं यत्पापं भ्रूणघातने ।
तस्मात्कोटिगुणं पापं ब्रह्मोपासकनिन्दनात् ॥ 153 ॥
यथा ब्रह्मोपदेशेन विमुक्ताः सर्वपातकैः ।
गच्छन्ति ब्रह्मसायुज्यं तथैव तव साधनात् ॥ 154 ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नोत्तरे
परब्रह्मोपदेशकथनं नाम तृतीयोल्लासः

❖

शाक्त हो या शैव, वैष्णव हो या सौर अथवा गाणपत्य हो, जिस मन्त्र का उपासक हो, ब्राह्मण हो या अन्य किसी जाति का हो; सभी ब्रह्ममन्त्र के अधिकारी हैं । हे देवि! मैं इसी मन्त्र के प्रसाद से मृत्युञ्जय, देव-देव, जगद्गुरु, स्वेच्छाचारी और निर्विकल्प होकर रहता हूँ । पूर्वकाल में ब्रह्मा और भृगु आदि महर्षिगण, इन्द्र आदि देवतावृन्द, नारद आदि देवर्षिवृन्द ने मुझसे इसी ब्रह्ममन्त्र को प्राप्त करके उपासना की है । हे प्रिये! नारद के मुख से

व्यासादि मुनिगण और उनसे जनकादि राजर्षिगण ने इस महामन्त्र को प्राप्त करके परमात्मा की प्रसन्नता से ब्रह्मस्वरूप प्राप्त किया है । हे महेश्वरि! ब्रह्ममन्त्र में किसी विषय का विचार नहीं है । गुरु विना विचार किये शिष्य को अपना मन्त्र दे सकता है । पिता पुत्र को, भाई भाई को, पति स्त्री को, मामा भाञ्जे को और नाना नानी को दीक्षित कर सकता है । अपना मन्त्र देने में जो दोष कहा गया है और पिता आदि से दीक्षा-प्राप्ति में जो दोष उल्लिखित हैं, वे सभी दोष इस महासिद्ध ब्रह्ममन्त्र में लागू नहीं होते । ब्रह्मज्ञानी गुरु के मुख से जिस-किसी विधान से ब्रह्ममन्त्र को सुनकर मनुष्य ब्रह्मभूत होकर पवित्र हो जाता है । जिससे वह पुण्य-पाप में लिप्त नहीं होता । ब्राह्मण या अन्य जाति के जो मनुष्य ब्रह्ममन्त्र की उपासना करते हैं, वे सब अपने-अपने वर्ण के लोगों में श्रेष्ठ, पूज्य और विशेष रूप से मान्य होते हैं । ब्रह्मोपासक ब्राह्मण साक्षात् यतिस्वरूप होते हैं । अन्य जाति के लोग ब्राह्मण के समान होते हैं । इस प्रकार ब्रह्म में दीक्षित ब्रह्मज्ञ व्यक्ति की पूजा सभी को करनी चाहिये । जो ब्रह्मज्ञ व्यक्ति की अवमानना करते हैं, वे ब्रह्मघातक होते हैं । जब तक सूर्य और तारे हैं तब तक वे घोर नरक में रहते हैं । स्त्री-हत्या करने से जो पाप होता है, भ्रूण-हत्या से जो पाप होता है, उससे करोड़गुना अधिक पाप ब्रह्मोपासक की निन्दा करने से होता है । ब्रह्ममन्त्र में उपदिष्ट होकर मनुष्य जिस प्रकार सब पापों से मुक्त होकर ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारी उपासना से भी ब्रह्मसायुज्य प्राप्त किया जा सकता है ।। 142-149 ।।

जीवनिस्तारोपायप्रश्नोत्तर में परब्रह्म उपदेशकथन नामक
तृतीय उल्लास सम्पूर्ण

❖

चतुर्थ उल्लास

'परा' प्रकृति-साधन उपक्रम

शक्ति-उपासनाविषयक देवी का प्रश्न

श्रुत्वा सम्यक्परब्रह्मोपासनं परमेश्वरी ।
परमानन्दसम्पन्ना शङ्करं परिपृच्छति ॥ 1 ॥
कथितं यत्त्वया नाथ ब्रह्मोपासनमुत्तमम् ।
सर्वलोकप्रियकरं साक्षाद्ब्रह्मपदप्रदम् ॥ 2 ॥
तेजोबुद्धिबलैश्वर्य्यदायकं सुखसाधनम् ।
तृप्तास्मि जगदीशान तव वाक्यामृतप्लुता ॥ 3 ॥
यदुक्तं करुणासिन्धो यथा ब्रह्मनिषेवणात् ।
गच्छन्ति ब्रह्मसायुज्यं तथैव मम साधनात् ॥ 4 ॥
एतद्वेदितुमिच्छामि मदीयं साधनं परम् ।
ब्रह्मसायुज्यजननं यत्त्वया कथितं प्रभो ॥ 5 ॥
विधानं कीदृशं तस्य साधनं केन वर्त्मना ।
मन्त्रः को वात्र विहितो ध्यानपूजादिकं च किम् ॥ 6 ॥
सविशेषं सावशेषमामूलाद्वक्तुमर्हसि ।
मम प्रीतिकरं देव लोकानां हितकारकम् ।
को ह्यन्यस्त्वामृते शम्भो! भवव्याधिभिषग्गुरुः ॥ 7 ॥

परब्रह्म की उपासना का विवरण सुनने के बाद परमानन्दित भगवती ने शंकर से जिज्ञासा की कि हे नाथ! आपने ब्रह्म-उपासना के बारे में जो कुछ कहा है, वह सभी को प्रिय है । साक्षात् ब्रह्मपद देने वाला है । इस ब्रह्मसाधन से तेज-बुद्धि-बल और ऐश्वर्य की वृद्धि होती है । यह सभी सुखों का साधन है । हे जगदीश्वर! मैं आपके वचनामृत से परम सन्तुष्ट हूँ । हे दयासागर! आपने कहा है कि ब्रह्मसाधन से जैसे ब्रह्मसायुज्य प्राप्त होता है, वैसे ही मेरी साधना से भी ब्रह्म का सायुज्य पाया जा सकता है । हे प्रभो! आपने जो बताया है कि मेरी साधना से भी ब्रह्मसायुज्य मिलता है, वह साधना किस प्रकार से होती है, उसे बताने की कृपा करें । मेरी साधना की विधि किस प्रकार की है? किस मार्ग का अवलम्बन करना होगा? या कौन साधन करना होगा? उसका मन्त्र क्या

है? ध्यान-पूजा आदि क्या हैं? हे देव-देव! आप यह सब विशेष रूप से और सम्पूर्ण रूप से आद्योपान्त बताइये । इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी और लोगों का कल्याण होगा । हे शम्भो! आपके अतिरिक्त अन्य कौन संसाररूपी व्याधि का निवारण करने में समर्थ होगा? आप ही सद्वैद्य और उपदेष्टा हैं ।। 1-7 ।।

शक्ति का स्वरूप और नाम-रूपभेद

इति देव्या वचः श्रुत्वा देवदेवो महेश्वरः ।
उवाच परया प्रीत्या पार्वतीं पार्वतीपतिः ।। 8 ।।
शृणु देवि महाभागे तवाराधनकारणम् ।
तव साधनतो येन ब्रह्मसायुज्यमश्नुते ।। 9 ।।
त्वं परा प्रकृतिः साक्षाद्ब्रह्मणः परमात्मनः ।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे ।। 10 ।।
महदाद्यणुपर्यन्तं यदेतत्सचराचरम् ।
त्वयैवोत्पादितं भद्रे त्वदधीनमिदं जगत् ।। 11 ।।
त्वमाद्या सर्वविद्यानामस्माकमपि जन्मभूः ।
त्वं जानासि जगत्सर्वं न त्वां जानाति कश्चन ।। 12 ।।
त्वं काली तारिणी दुर्गा षोडशी भुवनेश्वरी ।
धूमावती त्वं बगला भैरवी छिन्नमस्तका ।। 13 ।।
त्वमन्नपूर्णा वाग्देवी त्वं देवि कमलालया ।
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वदेवमयी तनुः ।। 14 ।।
त्वमेव सूक्ष्मा स्थूला त्वं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
निराकारापि साकारा कस्त्वां वेदितुमर्हति ।। 15 ।।
उपासकानां कार्यार्थं श्रेयसे जगतामपि ।
दानवानां विनाशाय धत्से नानाविधास्तनूः ।। 16 ।।
चतुर्भुजा त्वं द्विभुजा षड्भुजाष्टभुजा तथा ।
त्वमेव विश्वरक्षार्थं नानाशस्त्रास्त्रधारिणी ।। 17 ।।

पार्वतीपति देव-देव महादेव ने पार्वती के ये वचन सुनकर स्नेहपूर्वक कहा कि हे महाभागे! हे देवि!! मनुष्य तुम्हारी साधना द्वारा ब्रह्मसायुज्य जिस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं, इस हेतु मैं तुम्हारी आराधना का वह प्रकार बतलाता हूँ । सुनो; तुम परम ब्रह्म की साक्षात् परमा प्रकृति अर्थात् शक्ति हो । यह सारा संसार तुम्हीं से उत्पन्न हुआ है । हे शिवे! तुम समस्त जगत् की जननी हो ।

हे भद्रे! महत् तत्त्व से परमाणु तक और स्थूल-सूक्ष्म सारा स्थावर-जंगमस्वरूप जगत् तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ है । यह सारा संसार तुम्हारे ही अधीन है । तुम सबकी आद्या सर्वप्रथम आविर्भूत हुई हो । सारी विद्यायें और हम सब तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं । सारे संसार के सभी विषयों का ज्ञान तुम्हें है; पर तुम्हें कोई नहीं जान सकता । तुम्हीं काली हो । तुम तारा हो । तुम दुर्गा हो । तुम षोड़शी ललिता महात्रिपुरसुन्दरी हो ।; तुम भुवनेश्वरी हो । तुम धूमावती हो । तुम बगलामुखी हो । तुम त्रिपुरभैरवी हो । तुम छिन्नमस्तिका हो । तुम अन्नपूर्णा हो । तुम वागेश्वरी हो । तुम मातंगी हो । तुम कमलालया लक्ष्मी हो । तुम सर्व शक्तिस्वरूपा हो । तुम सर्वदेवमयी हो ।

तुम सूक्ष्मा हो । तुम स्थूला हो । तुम व्यक्त स्वरूपा हो । तुम अव्यक्त स्वरूपा हो । तुम निराकारा होकर भी साकारा हो । तुम किसी को ज्ञेय नहीं हो । तुम उपासकों के कार्य के लिये, जगत् के कल्याण के लिये और दानवादि के संहार के लिये समय-समय पर विविध रूप में अवतरित होती हो, प्रकट होती हो । विश्व की रक्षा के लिये तुम कभी चतुर्भुजा, कभी अष्टभुजा होकर विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण करती हो । सभी तन्त्रों में उन्हीं विविध रूप-भेदों के विविध प्रकार वाले मन्त्र और विविध प्रकार वाले यन्त्रादि और विविध साधनों का प्रतिपादन किया गया है ।। 8-17 ।।

कलियुग में पशु और दिव्यभाव का निषेध

तत्तद्रूपविभेदेन मन्त्रयन्त्रादिसाधनम् ।
कथितं सर्वतन्त्रेषु भावाश्च कथितास्त्रयः ।। 18 ।।
पशुभावः कलौ नास्ति दिव्यभावोऽपि दुर्लभः ।
वीरसाधनकर्माणि प्रत्यक्षाणि कलौ युगे ।। 19 ।।
कुलाचारं विना देवि ! कलौ सिद्धिर्न जायते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधयेत्कुलसाधनम् ।। 20 ।।
कुलाचारेण देवेशि! ब्रह्मज्ञानं प्रजायते ।
ब्रह्मज्ञानयुतो मर्त्यो जीवन्मुक्तो न संशयः ।। 21 ।।
ज्ञानेन मेध्यमखिलममेध्यं ज्ञानतो भवेत् ।
ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने मेध्यामेध्यं न विद्यते ।। 22 ।।
यो जानाति परं ब्रह्म सर्वव्यापि सनातनम् ।
किमस्त्यमेध्यं तस्याग्रे सर्वं ब्रह्मेति जानतः ।। 23 ।।

त्वं सर्वरूपिणी देवी सर्वेषां जननी परा ।
तुष्टायां त्वयि देवेशि! सर्वेषां तोषणं भवेत् ॥ 24 ॥

तीन प्रकार के भाव से साधना की जाती है । नामतः पहला पशुभाव, दूसरा वीरभाव और तीसरा दिव्यभाव । कलियुग में पशुभाव के साधक नहीं हैं और दिव्यभाव भी दुर्लभ है । कलियुग में वीरभाव की साधना ही प्रत्यक्ष फलदायक है । हे देवि! कलियुग में कुलाचार के विना सिद्धि नहीं प्राप्त होती है । अतएव सभी प्रयत्न करके वीराचारी कुलाचारी साधना ही करनी चाहिये । हे देवि! कुलाचार से ब्रह्मज्ञान का आविर्भाव होता है । जिस मनुष्य को ब्रह्मज्ञान होता है, वही जीवन्मुक्त होता है; इसमें सन्देह नहीं है । शास्त्रों के ज्ञान से ही सभी वस्तुएँ पवित्र लगती हैं । उसी ज्ञान से सभी वस्तुएँ अपवित्र प्रतीत होती हैं; परन्तु जब ब्रह्मज्ञान होता है तब कोई भी वस्तु पवित्र या अपवित्र नहीं रहता । जिसे यह ज्ञान हो जाता है कि परब्रह्म सर्वव्यापी है, उसके लिये कौन-सी वस्तु अपवित्र हो सकती है? क्योंकि वह सारे संसार को ब्रह्मरूप ही मानता है । हे देवेशि! तुम सर्वस्वरूपिणी हो । संसारचक्र के द्वारा क्रीड़ा करती हो । तुम ही सबकी परम जननी हो । तुम्हारे परितुष्ट होने पर सभी परितुष्ट हो जाते हैं।। 18-24 ।।

शक्ति का सृष्टि-कर्त्तव्य

सृष्टेरादौ त्वमेकासीत्तमोरूपमगोचरम् ।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं परब्रह्मसिसृक्षया ॥ 25 ॥
महत्तत्त्वादिभूतान्तं त्वया सृष्टमिदं जगत् ।
निमित्तमात्रं तद्ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ 26 ॥
सद्रूपं सर्वतोव्यापि सर्वमावृत्त्य तिष्ठति ।
सदेकरूपं चिन्मात्रं निर्लिप्तं सर्ववस्तुषु ॥ 27 ॥
न करोति न चाश्नाति न गच्छति न तिष्ठति ।
सत्यं ज्ञानमनाद्यन्तमवाङ्मनसगोचरम् ॥ 28 ॥
तस्येच्छामात्रमालम्ब्य त्वं महायोगिनी परा ।
करोषि पासि हंस्यन्ते जगदेतच्चराचरम् ॥ 29 ॥
तव रूपं महाकालो जगत्संहारकारकः ।
महासंहारसमये कालः सर्वं ग्रसिष्यति ॥ 30 ॥
कलनात्सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः ।
महाकालस्य कलनात्त्वमाद्या कालिका परा ॥ 31 ॥

कालसंग्रसनात्काली सर्वेषामादिरूपिणी ।
कालत्वादादिभूतत्वादाद्याकालीति गीयते ॥ 32 ॥
पुन: स्वरूपमासाद्य तमोरूपं निराकृति: ।
वाचातीतं मनोगम्यं त्वमेकैवावशिष्यसे ॥ 33 ॥
साकारापि निराकारा मायया बहुरूपिणी ।
त्वं सर्वादिरनादिस्त्वं कर्त्री हर्त्री च पालिका ॥ 34 ॥
अतस्ते कथितं भद्रे ब्रह्ममन्त्रेण दीक्षित: ।
यत्फलं समवाप्नोति तत्फलं तव साधनात् ॥ 35 ॥
नानाचारेण भावेन देशकालाधिकारिणाम् ।
विभेदात्कथितं देवि कुत्रचिद् गुप्तसाधनम् ॥ 36 ॥
ये यत्राधिकृता मर्त्यास्ते तत्र फलभागिन: ।
भविष्यन्ति तरिष्यन्ति मानुषा गतकिल्बिषा: ॥ 37 ॥

सृष्टि के प्रारम्भ में तुम्हीं तमोरूप अर्थात् प्रकृतिरूप से विद्यमान रहती हो । तुम्हारा वह रूप मन और वाणी से नहीं जाना जा सकता । परब्रह्म की सृष्टि करने की इच्छा से तुम जगत् की सृष्टि करती हो । महत्तत्त्व से पृथ्वी तक सभी महाभूतों से तुम्हीं सारे संसार का सर्जन करती हो । तुम सभी कारणों का कारण हो । वह ब्रह्म निमित्तमात्र रहता है । वह सत्स्वरूप और सर्वव्यापी है । वह सारे संसार को वेष्टित करके अवस्थित रहता है । सभी वस्तुओं में वह सर्वदा एकरूप और परिणामरहित है । वह चिन्मात्र और निर्लिप्त है । वह कोई कार्य नहीं करता । वह खाता नहीं है । वह चलता नहीं है । किसी वस्तुविशेष में उसका अवस्थान नहीं है । वह निष्क्रिय है । वह सत्यस्वरूप है । वह आदि-अन्त से रहित है । वह मन और वाणी से ज्ञेय नहीं है । तुम परात्परा महायोगिनी हो। तुम उस ब्रह्म की इच्छामात्र के सहारे इस चराचर जगत् की सृष्टि करती हो, इसका पालन करती हो तथा अन्त में सारे जगत् का प्रलय करती हो ।

संसार का संहारक महाकाल है, जो तुम्हारा ही एक रूप है । यही महाकाल महाप्रलय के समय सबको ग्रसित कर लेता है । सभी प्राणियों का कलन अर्थात् ग्रास करता है । इसी से उसे 'महाकाल' कहा जाता है । तुम महाकाल का कलन अर्थात् ग्रास करती है । इसी से तुम्हारा नाम 'आद्या परमा कालिका' है । तुम काल का ग्रास करती हो, इसी से तुम 'काली' हो । तुम

सबों का प्रारम्भ हो । तुम सबकी कालस्वरूपा और आदिभूता हो । इसी से संसार में तुमको आद्या काली कहते हैं । सर्वसंहार के समय प्रलयकाल में तुम वाणी से अतीत, मन से अगम्य, तमोमय, आकृतिरहित स्वरूप का अवलम्बन करके अकेली स्थित रहती हो । तुम साकारा होकर भी निराकारा हो । तुम माया से अगणित रूप धारण करती हो । तुम सबकी आदि हो, अनादि हो, कर्त्री-हर्त्री और पालिका हो । इसीलिये हे भद्रे! मैं तुमसे कहता हूँ कि ब्रह्ममन्त्र में दीक्षित मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वह तुम्हारे साधन से भी उसी फल को पा सकता है । हे देवि! देश-काल और अधिकारभेद से मैं विविध आचारों और भावों को प्रकट करता हूँ । किसी-किसी तन्त्र में मैंने गुप्त साधन का वर्णन किया है । जिस साधन का जो मनुष्य अधिकारी होता है, उनमें से वह अपने अधिकार के अनुरूप अनुष्ठान करके इष्टार्थ प्राप्त करता है । पापहित होकर वह भवसागर को पार कर जाता है । ।। 25-37 ।।

कौल-प्रशंसा

बहुजन्मार्जितैः पुण्यैः कुलाचारे मतिर्भवेत् ।
कुलाचारेण पूतात्मा साक्षाच्छिवमयो हि सः ।। 38 ।।
यत्रास्ति भोगबाहुल्यं तत्र योगस्य का कथा ।
योगेऽपि भोगविरहः कौलस्तूभयमश्नुते ।। 39 ।।
एकश्चेत्कुलतत्त्वज्ञः पूजितो येन सुव्रते ।
सर्वे देवाश्च देव्यश्च पूजिता नात्र संशयः ।। 40 ।।
पृथिवीं हेमसम्पूर्णां दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात् ।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं लभते कौलिकार्च्चनात् ।। 41 ।।
श्वपचोऽपि कुलज्ञानी ब्राह्मणादतिरिच्यते ।
कुलाचारविहीनस्तु ब्राह्मणः श्वपचाधमः ।। 42 ।।
कौलधर्मात्परो धर्मो नास्ति ज्ञाने तु मामके ।
यस्यानुष्ठानमात्रेण ब्रह्मज्ञानी नरो भवेत् ।। 43 ।।
सत्यं ब्रवीमि ते देवि हृदि कृत्वावधारय ।
सर्वधर्मोत्तमात्कौलात्परो धर्मो न विद्यते ।। 44 ।।
अयं तु परमो मार्गो गुप्तोऽस्ति पशुसङ्कटे ।
व्यक्तीभविष्यत्यचिरात्संवृत्ते प्रबले कलौ ।। 45 ।।

अनेक जन्मों के अर्जित पुण्य-प्रताप से जीव की प्रवृत्ति कुलाचार में होती

है । कुलाचार से जिसकी आत्मा पवित्र होती है, वह साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है । जहाँ भोग का बाहुल्य होता है; वहाँ क्या योग की सम्भावना हो सकती है? जहाँ योग का अनुष्ठान होता है, वहाँ भोग की सम्भावना दृष्टिगत नहीं होती । कुलाचार में प्रवृत्त जीव भोग और योग—दोनों का भोग करता है । हे सुव्रते! जिसके द्वारा कुलतत्त्व-ज्ञानी एक साधक की पूजा की जाती है, उसके द्वारा सभी देव और सभी देवियाँ पूजा पा जाती हैं; इसमें सन्देह नहीं है । सोने से भरी हुई पृथ्वी का दान करने में जो फल मिलता है, उससे करोड़गुना अधिक पुण्य कुलाचारनिरत एक साधक की पूजा करने से मिलता है । यदि चाण्डाल भी कुलतत्त्व का ज्ञानी है तो वह ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है; परन्तु यदि ब्राह्मण कुलाचारहीन है तो वह चाण्डाल से भी नीच है । मैं जानता हूँ कि कुलधर्म से कोई दूसरा धर्म श्रेष्ठ नहीं है । यह जो कुलधर्म है, इसके अनुष्ठान-मात्र से मनुष्य ब्रह्मज्ञानी हो जाते हैं । हे देवि! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि तुम इसे हृदय में धारण कर लो । कुल-धर्म सभी धर्मों से उत्तम है । इससे श्रेष्ठ कोई अन्य धर्म नहीं है । यही परम पथ है । पशुसमूह से गुप्त है । जब प्रबल कलिकाल होगा तब शीघ्र ही यह पथ प्रकाशित हो उठेगा ।। 38-45 ।।

प्रबल कलियुग–लक्षण, अवस्था और स्थान

कलिकाले प्रवृद्धे तु सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
न स्थास्यन्ति विना कौलात्पशवो मानवा भुवि ।। 46 ।।
यदा तु वैदिकी दीक्षा दीक्षा पौराणिकी तथा ।
न स्थास्यति वरारोहे ! तदैव प्रबलः कलिः ।। 47 ।।
यदा तु पुण्यपापानां परीक्षा वेदसम्भवा ।
न स्थास्यति शिवे शान्ते तदैव प्रबलः कलिः ।। 48 ।।
क्वचिच्छिन्ना क्वचिद्भिन्ना यदा सुरतरङ्गिणी ।
भविष्यति कुलेशानि ! तदैव प्रबलः कलिः ।। 49 ।।
यदा तु म्लेच्छजातीया राजानो धनलोलुपाः ।
भविष्यन्ति महाप्राज्ञे ! तदैव प्रबलः कलिः ।। 50 ।।
यदा स्त्रियोऽतिदुर्द्दान्ताः कर्कशाः कलहे रताः ।
गर्हिष्यन्ति च भर्तारं तदैव प्रबलः कलिः ।। 51 ।।
यदा तु मानवा भूमौ स्त्रीजिताः कामकिङ्कराः ।
द्रुह्यन्ति गुरुमित्रादींस्तदैव प्रबलः कलिः ।। 52 ।।
यदा क्षोणी स्वल्पफला तोयदाः स्तोकवर्षिणः ।

असम्यक्फलिनो वृक्षास्तदैव प्रबलः कलिः ।। 53 ।।
भ्रातरः स्वजनामात्या यदा धनकणेहया ।
मिथः सम्प्रहरिष्यन्ति तदैव प्रबलः कलिः ।। 54 ।।
प्रकटे मद्यमांसादौ निन्दादण्डविवर्जिते ।
गूढपानं चरिष्यन्ति तदैव प्रबलः कलिः ।। 55 ।।
सत्यत्रेताद्वापरेषु तथा मद्यादिसेवनम् ।
कलावपि तथा कुर्यात्कुलधर्मानुसारतः ।। 56 ।।

मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि जब कलिकाल प्रकृष्ट रूप में बढ़ेगा तब कौलाचारी मनुष्यों के अतिरिक्त पश्वाचारी साधक पृथ्वी पर नहीं होंगे । हे वरारोहे! जब देखना कि पृथ्वी पर वैदिकी और पौराणिकी दीक्षा नहीं है तभी समझना कि कलिकाल प्रबल है । हे शान्ते शिवे! जिस समय पाप-पुण्य की वेदोक्त परीक्षा नहीं रहेगी, तभी विवेचन करना कि कलि प्रबल है । हे कुलेश्वरि! जिस समय गंगा कहीं छिन्न और कहीं भिन्न रूप में होगी तभी समझना कि कलि प्रबल है । जिस समय स्त्रियाँ बहुत दुर्दान्त कर्कश-भाषिणी और कलहतत्परा होकर स्वामी की निन्दा करेंगी तभी समझना कि कलि प्रबल है । जिस समय धरती पर मनुष्य कामकिङ्कर और स्त्री के वश में होकर गुरु-मित्र आदि की अवमानना करेंगे तभी समझना कि कलि प्रबल है । जब धरती कम फल देने वाली होगी तभी समझना कि कलि प्रबल है । जिस समय भाई, स्वजन और मन्त्रीगण धन-लाभ की इच्छा से आपस में झगड़ा करके मारपीट करने लगें तभी समझना कि कलि प्रबल है । जब खुले स्थान में मद्य-मांस पीने-खाने में निन्दा न हो, दण्ड वर्जित हो और सभी मनुष्य छिपकर मदिरापान करें तभी समझना कि कलि प्रबल है । सत्य, त्रेता, द्वापर युग में जिस प्रकार प्रकट रूप से मद्यादि का सेवन किया जाता था, उसी प्रकार कलियुग में भी कुलधर्मानुसार मद्यादि का सेवन कर सकते हैं ।। 46-56 ।।

सत्यनिष्ठा की उपवेशनता

ये कुर्वन्ति कुलाचारं सत्यपूता जितेन्द्रियाः ।
व्यक्ताचारा दयाशीला न हि तान्बाधते कलिः ।। 57 ।।
गुरुशुश्रूषणे युक्ता भक्ता मातृपदाम्बुजे ।
अनुरक्ताः स्वदारेषु न हि तान्बाधते कलिः ।। 58 ।।
सत्यव्रताः सत्यनिष्ठाः सत्यधर्मपरायणाः ।

कुलसाधनसत्या ये न हि तान्बाधते कलिः ॥ 59 ॥
कुलमार्गेण तत्त्वानि शोधितानि च योगिने ।
ये दद्युः सत्यवचसे न हि तान्बाधते कलिः ॥ 60 ॥
हिंसामात्सर्यरहिता दम्भद्वेषविवर्ज्जिताः ।
कुलधर्मेषु निष्ठा ये न हि तान्बाधते कलिः ॥ 61 ॥
कौलिकैः सह संसर्गं वसतिं कुलसाधुषु ।
कुर्वन्ति कौलसेवां ये न हि तान्बाधते कलिः ॥ 62 ॥
नानावेषधराः कौला कुलाचारेषु निश्चलाः ।
सेवन्ते त्वां कुलाचारैर्न हि तान्बाधते कलिः ॥ 63 ॥
स्नानं दानं तपस्तीर्थं व्रतं तर्पणमेव च ।
ये कुर्वन्ति कुलाचारैर्न हि तान्बाधते कलिः ॥ 64 ॥
जीवसेकादिसंस्काराः पितृश्राद्धादिकाः क्रियाः ।
ये कुर्वन्ति कुलाचारैर्न हि तान्बाधते कलिः ॥ 65 ॥
कुलतत्त्वं कुलद्रव्यं कुलयोगिनमेव च ।
नमस्कुर्वन्ति ये भक्त्या न हि तान्बाधते कलिः ॥ 66 ॥
कौटिल्यानृतहीनानां स्वच्छानां कुलमार्गिणाम् ।
परोपकारव्रतिनां साधूनां किङ्करः कलिः ॥ 67 ॥
कलेर्दोषसमूहस्य महानेको गुणः प्रिये ।
सत्यप्रतिज्ञकौलीनां श्रेयः सङ्कल्पमात्रतः ॥ 68 ॥
अपरे तु युगे देवि पुण्यं पापं च मानसम् ।
नृणामासीत्कलौ पुण्यं केवलं न तु दुष्कृतम् ॥ 69 ॥
कुलाचारैर्विहीना ये सततासत्यभाषिणः ।
परद्रोहपरा ये च ते नराः कलिकिङ्कराः ॥ 70 ॥
कुलवर्त्मस्वभक्ता ये परयोषित्सु कामुकाः ।
द्वेष्टारः कुलनिष्ठानां ते ज्ञेयाः कलिकिङ्कराः ॥ 71 ॥
युगाचारप्रसङ्गेन कलेः प्राबल्यलक्षणम् ।
संक्षेपात्कथितं भद्रे ! प्रीतये तव पार्वति ॥ 72 ॥
प्रकटेऽत्र कलौ देवि सर्वे धर्माश्च दुर्बलाः ।
स्थास्यत्येकं सत्यमात्रं तस्मात्सत्यमयो भवेत् ॥ 73 ॥
सत्यधर्मं समाश्रित्य यत्कर्म कुरुते नरः ।
तदेव सफलं कर्म सत्यं जानीहि सुव्रते ॥ 74 ॥
न हि सत्यात्परो धर्मो न पापमनृतात्परम् ।
तस्मात्सर्वात्मना मर्त्यः सत्यमेकं समाश्रयेत् ॥ 75 ॥

सत्यहीना वृथा पूजा सत्यहीनो वृथा जपः ।
सत्यहीनं तपो व्यर्थमूषरे वपनं यथा ।। 76 ।।
सत्यरूपं परं ब्रह्म सत्यं हि परमं तपः ।
सत्यमूलाः क्रियाः सर्वाः सत्यात्परतरो न हि ।। 77 ।।
अत एव मया प्रोक्तं दुष्कृते प्रबले कलौ ।
कुलाचारोऽपि सत्येन कर्त्तव्यो व्यक्तभावतः ।। 78 ।।
गोपानाद्धीयते सत्यं न गुप्तिरनृतं विना ।
तस्मात्प्रकाशतः कुर्यात्कौलिकः कुलसाधनम् ।। 79 ।।
कुलधर्मस्य गुप्त्यर्थं नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ।
यदुक्तं कुलतन्त्रेषु न शस्तं प्रबले कलौ ।। 80 ।।
कृते धर्मश्चतुष्पादस्त्रेतायां पादहीनकः ।
द्विपादो द्वापरे देवि पादमात्रं कलौ युगे ।। 81 ।।
तत्रापि सत्यं बलवत्तपः खञ्जं दयापि च ।
सत्यपादे कृते लोपे धर्मलोपः प्रजायते ।। 82 ।।
तस्मात्सत्यं समाश्रित्य सर्वकर्माणि साधयेत् ।
कुलाचारं विना यत्र नास्त्युपायः कुलेश्वरि ।। 83 ।।
तत्रानृतप्रवेशश्चेत्कुतो निःश्रेयसं भवेत् ।
सर्वथा सत्यपूतात्मा मन्मुखेरितवर्त्मना ।। 84 ।।
सर्वकर्म नरः कुर्यात्स्वस्ववर्णाश्रमोदितम् ।
दीक्षां पूजां जपं होमं पुरश्चरणतर्पणम् ।। 85 ।।

जो मनुष्य सत्य से पवित्र और जितेन्द्रिय होकर कुलाचार का अनुष्ठान करेंगे, जिनका आचार सर्वत्र व्यक्त रहेगा, जो दयालु होंगे, उन्हें कलि पीड़ा नहीं दे सकेगा । जो गुरुसेवा में निरत रहेंगे, जो माता के पादपद्मों में भक्ति करेंगे, जो अपनी पत्नी में अनुरक्त रहेंगे, उन्हें कलि पीड़ा नहीं दे सकेगा । जो सत्यव्रत, सत्यनिष्ठा और सत्य-धर्मपरायण होकर कुलसाधन को सत्य कहकर विश्वास रक्खेंगे, उन्हें कलि पीड़ा नहीं दे सकेगा । जो कुलधर्म की पद्धति के अनुसार शोधित मत्स्य-मांस-मद्य आदि सत्यवादी योगी को प्रदान करेंगे, उन्हें कलि पीड़ा नहीं दे सकेगा । जो हिंसा और मात्सर्य से रहित होंगे, जो दम्भ और द्वेष से शून्य होंगे एवं जो कुलधर्मनिष्ठ होंगे, कलि उन्हें पीड़ा नहीं दे सकेगा । जो कौलों का सत्संग करेंगे, कुलसाधकों के निकट निवास करेंगे, कुलसाधुओं की सेवा करेंगे, वे कलि से पीड़ित नहीं होंगे । जो कुलधर्मावलम्बी

कुलाचार से विचलित न होकर विविध वेश धारण करते हुए कुलाचारक्रम से तुम्हारी पूजा करेंगे, उन्हें कलि-पीड़ा नहीं होगी । जो कुलाचार के अनुसार स्नान-दान-तपस्या-तीर्थ-दर्शन-व्रत और तर्पण करेंगे, उन्हें कलि नहीं सतायेगा । जो कुलाचार के अनुसार गर्भाधान आदि संस्कारों से संस्कृत होकर पितृश्राद्ध आदि करेंगे, उन्हें कलि-पीड़ा नहीं भोगनी पड़ेगी । जो भक्तिपूर्वक कुलतत्त्व और कुलद्रव्य की अर्चना करेंगे और कुलयोगी को नमस्कार करेंगे; उन्हें कलि-पीड़ा नहीं होगी । कुटिलता और मिथ्याचारविहीन निर्मल अन्तःकरण वाले कुलमार्गानुसारी और परोपकार व्रत में दीक्षित साधकों के लिये कलि दास के समान रहेगा । हे प्रिये! कलि के दोषसमूह के मध्य एक प्रधान गुण भी है कि सत्यप्रतिज्ञ कौलिकों को संकल्पमात्र से श्रेय प्राप्त होता है । हे देवि! अन्य युग में मनुष्य के पाप-पुण्य मानसिक भी होते थे, किन्तु कलियुग में केवल मानसिक पुण्य होता है, पाप नहीं होता ।

जो सर्वदा झूठ बोलते हैं, दूसरों का अनिष्ट करने में लगे रहते हैं, कुलाचार-विहीन हैं, वे सब कलि के किंकर होते हैं । जो कुलमार्ग में भक्ति नहीं रखते, जो पराई स्त्रियों में आसक्त रहते हैं और जो कुलाचारियों से द्वेष करते हैं, वे कलि के दास होते हैं । हे पार्वती! हे भद्रे!! युगाचार के प्रसंग में तुम्हारी प्रसन्नता के लिये संक्षेप में यह कलि की प्रबलता के लक्षणों का वर्णन किया गया । हे देवि! इव कलि के प्रबल होने पर सभी धर्म दुर्बल हो जायँगे; किन्तु एकमात्र सत्य ही रहेगा । अतएव सत्यमय होना सबका कर्त्तव्य है । हे सुव्रते! सत्य धर्म का आश्रय लेकर मनुष्य जो कर्म करेगा, वही कर्म सफल होगा; इसे सत्य समझना चाहिये । सत्य के अतिरिक्त और कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है । झूठ के समान और कोई पापकर्म नहीं है । अतएव मनुष्य का परम कर्त्तव्य है कि सभी अवस्थाओं में वह सत्य का ही अवलम्बन करे । रेतीली भूमि में जैसे बीजवपन निष्फल होता है, वैसे ही सत्यहीन पूजा व्यर्थ होती है, सत्यहीन जप व्यर्थ होता है । सत्यहीन तपस्या भी व्यर्थ होती है । सत्यरूप ही परम ब्रह्म है । सत्य ही परम तपस्यारूप है । सारी क्रियायें सत्यमूलक हैं । सत्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है । अतएव मैंने कहा है कि पापमय कलि के प्रबल होने पर सत्य का अवलम्बन करके प्रकट रूप से कुलाचार का अनुष्ठान करे । छिपाने से सत्य की हानि होती है । झूठ बोले विना गोपन करना सम्भव नहीं होता; अतएव कौलिक प्रकट रूप में कुलसाधन करे । मैंने पहले कुलतन्त्र में कहा

हैं कि कुल-धर्म की रक्षा के लिये झूठ बोलना निन्दित नहीं है; परन्तु कलि की प्रबलता होने पर यह उपदेश प्रशस्त नहीं है ।

सत्ययुग में चतुष्पाद अर्थात् पूर्ण धर्म था । त्रेतायुग में उसका एक पद कम हो गया और उसके तीन पद ही रह गए । द्वापर युग में धर्म द्विपादमात्र रहता है एवं कलियुग में उसी धर्म का केवल एक पाद शेष रहता है । धर्म का यह एक पाद भी तपस्या और दयारूप में दो भागों में विभक्त हो जाता है । केवल सत्य अंश ही दृढ़ रहता है । इस समय यह सत्यरूप पाद भग्न करने से धर्म का लोप हो जायगा । हे कुलेश्वरि! इसीलिए सत्य का सम्यक् रूप से अवलम्बन करके ही सारे कार्यों को सम्पन्न करना चाहिये । इस कलिकाल में यदि मिथ्या आचार में कोई प्रवेश करता है तो मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं होगी । अतएव सर्वतोभाव से सत्य के सेवन से पवित्रात्मा होकर मेरे द्वारा प्रदर्शित मार्ग के अनुसार मनुष्य अपने-अपने वर्ण और आश्रम के उपयोगी दीक्षा को ग्रहण करके पूजा-जप-हवन-पुरश्चरण-तर्पण आदि सारे कर्मों का आचरण करे ।। 57-85 ।।

आगम के अनुसार संस्कार

व्रतोद्वाहौ पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातकर्म तथा नामचूडाकरणमेव च ।। 86 ।।
मृतक्रियां पितृश्राद्धं कुर्यादागमसम्मतम् ।
तीर्थश्राद्धं वृषोत्सर्गं शारदोत्सवमेव च ।। 87 ।।
यात्रागृहप्रवेशं च नववस्त्रादिधारणम् ।
वापीकूपतडागानां संस्कारं तिथिकर्म च ।। 88 ।।
गृहारम्भं प्रतिष्ठां च देवानां स्थापनं तथा ।
दिवाकृत्यं निशाकृत्यं पर्वकृत्यं तथैव च ।। 89 ।।
ऋतुमासवर्षकृत्यं नित्यं नैमित्तिकं च यत् ।
कर्त्तव्यं यदकर्त्तव्यं त्याज्यं ग्राह्यं च यद्भवेत् ।। 90 ।।
मयोक्तेन विधानेन तत्सर्वं साधयेन्नरः ।। 91 ।।
न कुर्याद्यदि मोहेन दुर्मत्याऽश्रद्धयापि वा ।
विनष्टः सर्वकर्मभ्यो विष्ठायां स भवेत्कृमिः ।। 92 ।।
यदि मन्मतमुत्सृज्य महेशि प्रबले कलौ ।
यदा यत्क्रियते कर्म विपरीताय तद्भवेत् ।। 93 ।।
मन्मतासम्मता दीक्षा साधकप्राणघातिनी ।
पूजापि विफला देवि हुतं भस्मार्पणं तथा ।। 94 ।।

देवताः कुपितास्तस्य विघ्नस्तस्य पदेपदे ॥ 95 ॥
कलिकाले प्रवृद्धे तु ज्ञात्वा मच्छास्त्रमम्बिके ।
योऽन्यमार्गैः क्रियां कुर्यात्स महापातकी भवेत् ॥ 96 ॥
व्रतोद्वाहौ प्रकुर्वाणो योऽन्यमार्गेण मानवः ।
स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ 97 ॥
व्रते ब्रह्मवधः प्रोक्तो व्रात्यो माणवको भवेत् ।
केवलं सूत्रवाहोऽसौ चाण्डालादधमोऽपि सः ॥ 98 ॥
उद्वाहितापि या नारी जानीयात्तां तु गर्हिताम् ।
उद्वोढापि भवेत्पापी संसर्गात्कुलनायिके ॥ 99 ॥
वेश्यागमनजं पापं तस्य पुंसो दिने दिने ।
तद्धस्तदत्ततोयादि नैव गृह्णन्ति देवताः ॥ 100 ॥
पितरोऽपि न चाश्नन्ति यतस्तन्मलपूयवत् ।
तयोरपत्यं कानीनः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ 101 ॥
दैवे पैत्रे कुलाचारे नाधिकारोऽस्य जायते ।
अशाम्भवेन मार्गेण देवतास्थापनं चरेत् ॥ 102 ॥
न सान्निध्यं भवेत्तत्र देवतायाः कथञ्चन ।
इहामुत्र फलं नास्ति कायक्लेशो धनक्षयः ॥ 103 ॥
आगमोक्तविधिं हित्वा यः श्राद्धं कुरुते नरः ।
श्राद्धं तद्विफलं सोऽपि पितृभिर्नरकं व्रजेत् ॥ 104 ॥
तत्तोयं शोणितसमं पिण्डो मलमयो भवेत् ।
तस्मान्मर्त्यः प्रयत्नेन शाङ्करं मतमाश्रयेत् ॥ 105 ॥
बहुनात्र किमुक्तेन सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
अशाम्भवं कृतं कर्म सर्वं देवि निरर्थकम् ॥ 106 ॥
अस्तु तावत्परो धर्मः पूर्वधर्मोऽपि नश्यति ।
शाम्भवाचारहीनस्य नरकान्नैव निष्कृतिः ॥ 107 ॥
मदुदीरितमार्गेण नित्यनैमित्तकर्मणाम् ।
साधनं यन्महेशानि ! तदेव तव साधनम् ॥ 108 ॥
विशेषाराधनं तत्र मन्त्रयन्त्रादिसंयुतम् ।
भेषजं कलिरोगाणां श्रूयतां गदतो मम ॥ 109 ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्ने
पराप्रकृतिसाधनोपक्रमो नाम चतुर्थोल्लासः

विशेषकर इस रूप में व्रत, उद्वाह, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, अन्त्येष्टि क्रिया, पितृश्राद्ध आगमसम्मत ही करे । तीर्थ-श्राद्ध, वृषोत्सर्ग, शारदोत्सव यात्रा, गृहप्रवेश, नूतन वस्त्रालंकारादि परिधान, वापी-कूप-गृहारम्भ और गृह-प्रतिष्ठा, देवतास्थापन, दिवाकृत्य, रात्रिकृत्य, पर्वकृत्य, मासकृत्य, ऋतुकृत्य, वर्ष-कृत्य, नित्य-नैमित्तिक कर्म, कर्तव्य कर्म, अकर्तव्य कर्म, त्याज्य कर्म, ग्राह्य कर्म—सबका निर्दिष्ट विधान के अनुसार साधन करे । यदि कोई मनुष्य मोह, दुर्बुद्धि या अश्रद्धा के वश में होकर उक्त सभी कर्मों को निर्दिष्ट विधि से नहीं करता, तो वह सभी कर्मों से बहिष्कृत होकर अन्त में विष्ठा में कृमि का जन्म ग्रहण करता है ।

हे महेश्वरि! कलियुग के प्रबल होने पर यदि कोई मेरे मत के सिवा दूसरे मत से कर्म करता है तो वह कर्म उल्टा फल देने वाला होगा । हे देवि! मेरे मत से भिन्न दीक्षा साधक की प्राणघातिनी होगी और भस्म में आहुति देने के समान ही उसकी पूजा भी निष्फल होगी । देवता उस पर क्रोधित होंगे और पद-पद पर विघ्न होंगे । हे अम्बिके! कलिकाल के प्रबल होने पर जो मनुष्य मेरे द्वारा कथित शास्त्र को जानते हुए भी दूसरे पथ के अनुसार कर्म करेगा, वह महापापी होगा । जो मनुष्य अन्य पथ को अपनाकर व्रत या विवाह करेगा, वह तब तक नरक में रहेगा, जब तक चन्द्र-सूर्य रहेंगे । अन्य मत से उपनयन होने पर ब्रह्महत्या का पाप लगेगा । जिसका उपनयन होगा, वह व्रात्य होगा । वह व्यक्ति केवल सूत्रवाही होगा और चाण्डाल से भी अधिक अधम होगा । हे कुलनायिके! अन्य पद्धति के अनुसार जिस नारी का विवाह होगा, वह नारी निन्दिता होगी । विवाह करने वाला पति पुरुष भी उसके संसर्ग से पापी होगा, यह जानना चाहिये । देवता उस नारी के हाथ से अन्न-जलादि ग्रहण नहीं करेंगे और पितर भी उसे नहीं ग्रहण करेंगे; क्योंकि वह मल-मूत्र के समान होता है । उस स्त्री-पुरुष की जो सन्तान होगी, वह सर्व धर्म-बहिष्कृत होगी; अतः अशाम्भव शास्त्रतन्त्र से भिन्न शास्त्रानुसार देवकर्म, पितृकर्म और कुलाचार कर्म में उसका अधिकार नहीं होगा । अशाम्भव तन्त्रशास्त्र से भिन्न शास्त्र की पद्धति से देवमूर्ति की स्थापना करने से, उस मूर्ति में देवता का सान्निध्य नहीं होगा । उससे इह लोक या परलोक में कोई फल नहीं प्राप्त होगा । उससे केवल शरीर को कष्ट और धननाश होगा । जो मनुष्य आगमोक्त विधि का त्याग करके श्राद्ध करेगा, उसका वह श्राद्ध निष्फल होगा । श्राद्धकर्त्ता अपने पितरों के साथ

नरकगामी होगा । उसके द्वारा दिया गया जल रक्त के समान और पिण्ड मल के समान होगा । अतएव मनुष्यों को सर्वतोभाव से शंकर द्वारा प्रतिपादित प्रदर्शित मत का आश्रय ग्रहण करना परम कर्त्तव्य है । हे देवि! और अधिक क्या कहूँ? मैं सत्य सत्य कहता हूँ कि शिव से असम्मत जो भी कार्य होंगे, वे सब निष्फल होंगे । जो शिव-प्रोक्त आचार से हीन हैं, उनके उन कर्मों से धर्म होना तो दूर रहा, उनका पूर्वसञ्चित धर्म भी नष्ट हो जायेगा और नरक से उनका उद्धार भी नहीं होगा । हे महेशानि! मेरे द्वारा प्रतिपादित पद्धति के अनुसार जो नित्यनैमित्तिक कर्म का साधन है, वही तुम्हारी साधना का आधार होगा । उनके बीच कलिरूप रोग की औषधि-स्वरूप बहुविध मन्त्र और यन्त्रादि से संयुक्त तुम्हारी विशेष आराधना मैं बतलाता हूँ; सुनो ।। 86-109।।

पराप्रकृतिसाधनोपक्रम नामक चतुर्थोल्लास सम्पूर्ण

❖

पञ्चम उल्लास

मन्त्रोद्धार-कलस्थापन-तत्त्वसंस्कार

शक्तिसाधन-वर्णन

त्वमाद्या परमा शक्तिः सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
तव शक्त्या वयं शक्ताः सृष्टिस्थितिलयादिषु ॥ 1 ॥
तव रूपाण्यनन्तानि नानावर्णाकृतीनि च ।
नानाप्रयाससाध्यानि वर्णितुं केन शक्यते ॥ 2 ॥
तव कारुण्यलेशेन कुलतन्त्रागमादिषु ।
तेषामर्च्चासाधनानि कथितानि यथामति ॥ 3 ॥
गुप्तसाधनमेतत्तु न कुत्रापि प्रकाशितम् ।
अस्य प्रसादात्कल्याणि मयि ते करुणेदृशी ॥ 4 ॥
त्वया पृष्टमिदानीं तन्नाहं गोपयितुं क्षमः ।
कथयामि तव प्रीत्यै मम प्राणाधिकं प्रिये ॥ 5 ॥
सर्वदुःखप्रशमनं सर्वापद्विनिवारकम् ।
त्वत्प्राप्तिमूलमचिरात्तव सन्तोषकारणम् ॥ 6 ॥
कलिकल्मषहीनानां नृणां स्वल्पायुषां प्रिये ।
बहुप्रयासासक्तानामेतदेव परं धनम् ॥ 7 ॥
न चात्र न्यासबाहुल्यं नोपवासादिसंयमः ।
सुखसाध्यमबाहुल्यं भक्तानां फलदं महत् ॥ 8 ॥
तत्रादौ शृणु देवेशि मन्त्रोद्धारक्रमं शिवे ।
यस्य श्रवणमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रजायते ॥ 9 ॥

श्री सदाशिव ने कहा कि हे देवि! तुम आद्या परमशक्ति हो, तुम सर्वशक्ति-स्वरूपा हो । तुम्हारी शक्ति के प्रभाव से ही मैं सृष्टि, स्थिति और प्रलयादि नाशकार्य करने में समर्थ होता हूँ । तुम्हारे विविध वर्ण और विविध आकृति और बहु प्रयास वाली साधनाओं के अनन्त रूप हैं । उन सब रूपों का वर्णन कौन कर सकता है? तुम्हारी कृपा से कुलतन्त्र आदि और आगमसमूह में उन्हीं सब रूपों की तुम्हारी पूजा और साधना का वर्णन मैंने यथामति किया है; परन्तु इस गुप्त साधन को कहीं प्रकट नहीं किया है । हे कल्याणि! इस गुप्त

साधन के प्रभाव से ही तुम्हारी ऐसी कृपा मुझ पर हुई है । हे प्रिये! इस समय तुम्हारे द्वारा पूछे जाने पर मैं इसे गुप्त रखने में समर्थ नहीं हूँ । अतएव प्राणाधिक प्रिय होने पर भी उसे तुम्हारी प्रसन्नता के लिये बतलाता हूँ । इस गुप्त साधन से सभी दुःखों का अन्त होता है । सभी विपत्तियाँ नष्ट होती हैं । तुम्हें सन्तुष्टि होती है । तुम शीघ्र ही साधक को दर्शन देती हो । हे प्रिये! कलिकाल में कलि के पापों से व्यग्र, अधिक परिश्रम करने में असमर्थ मनुष्यों के लिये यह गुप्त साधन परम धन है । इस गुप्त साधन में न्यासों की अधिकता नहीं है । उपवास आदि संयम नहीं हैं । यह साधन सुखसाध्य और संक्षिप्त है । भक्तों को इससे चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है । अतः यह अति उत्तम है । हे देवेशि शिवे! इससे सम्बन्धित मन्त्रोद्धारक्रम का वर्णन सर्वप्रथम करता हूँ । इसके श्रवणमात्र से ही मनुष्य जीवन्मुक्त हो जायेंगे ।। 1-9 ।।

आद्या के मन्त्रों का उद्धार

प्राणेशस्तैजसारूढो भैरुण्डाव्योमबिन्दुमान् ।
बीजमेतत्समुद्धृत्य द्वितीयमुद्धरेत्प्रिये ।। 10 ।।
सन्ध्या रक्तसमारूढा वामनेत्रेन्दुसंहिता ।
तृतीयं शृणु कल्याणि! दीपसंस्थः प्रजापतिः ।। 11 ।।
गोविन्दबिन्दुसंयुक्तः साधकानां सुखावहः ।
बीजत्रयन्ते परमेश्वरि सम्बोधनं पदम् ।। 12 ।।
वह्निकान्तावधिः प्रोक्तो दशार्णोऽयं मनुः शिवे ।
सर्वविद्यामयी देवि विद्येयं परमेश्वरि ।। 13 ।।
आद्यत्रयाणां बीजानां प्रत्येकं त्रयमेव वा ।
प्रजपेत्साधकाधीशः सर्वकामार्थसिद्धये ।। 14 ।।
बीजमाद्यत्रयं हित्वा सप्तार्णापि दशाक्षरी ।
कामवाग्भवताराद्या सप्तार्णाष्टाक्षरी त्रिधा ।। 15 ।।
दशार्णांमन्त्रणपदात्कालिके पदमुच्चरेत् ।
पुनराद्यत्रयं बीजं वह्निजायां ततो वदेत् ।। 16 ।।
षोडशीयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
वध्वाद्या प्रणवाद्या चेदेषा सप्रदशी द्विधा ।। 17 ।।
तव मन्त्रा ह्यसंख्याताः कोटिकोट्यर्बुदास्तथा ।
संक्षेपादत्र कथिता मन्त्राणां द्वादश प्रिये ।। 18 ।।
येषु येषु च तन्त्रेषु ये ये मन्त्राः प्रकीर्तिताः ।

ते सर्वे तव मन्त्राः स्युस्त्वमाद्या प्रकृतिर्यतः ।। 19 ।।
एतेषां सर्वमन्त्राणामेकमेव हि साधनम् ।
कथयामि तव प्रीत्यै तथा लोकहिताय च ।। 20 ।।

हे प्रिये! तेजस् अर्थात् रेफ में आरूढ़ प्राणेश अर्थात् 'ह' हकार में भेरुण्डा अर्थात् 'ई' का योग करके उनमें व्योम=बिन्दु अर्थात् अनुस्वार शोभित करके 'ह्रीं' बीज का उद्धार करके दूसरे बीज का उद्धार करे । सन्ध्या='श' को रक्त अर्थात् 'र' पर आरोहित करे । उसमें वाम नेत्र=ई और इन्दु अर्थात् अनुस्वार के योग से दूसरा बीज 'श्रीं' बनता है । हे कल्याणि! इसके बाद तीसरे बीज का उद्धार सुनो । प्रजापति=क को दीप=र के ऊपर करे । उनमें गोविन्द 'ई' और बिन्दु=अनुस्वार का संयोग करे । इससे 'क्रीं' बीज बनता है । यह साधकों को सुख-प्रदायक है । इन तीन बीजों के बाद 'परमेश्वरि' पद रखे । यह सम्बोधन पद है । इनके बाद वह्निकान्ता अर्थात् 'स्वाहा' पद रखे । इस प्रकार दश अक्षर वाला जो मन्त्र बनता है, वह है—'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा' । सर्व विद्यास्वरूपा उक्त मन्त्र की देवी परमेश्वरी विद्या हैं । श्रेष्ठ साधक सर्वाभीष्ट-सिद्धि के लिये प्रारम्भिक तीन बीजों में से एक-एक बीज का अथवा तीनों बीजों का जप करते हैं ।

पहले तीन बीजों 'ह्रीं श्रीं क्रीं' को छोड़ने से वह दशाक्षर मन्त्र सप्ताक्षर हो जाता है; यथा—परमेश्वरि स्वाहा । सप्ताक्षर मन्त्र के पहले कामबीज क्लीं, वाग्बीज ऐं और तार 'ॐ' जोड़ने से तीन अष्टाक्षर मन्त्र बनते हैं । यथा—1. क्लीं परमेश्वरि स्वाहा, 2. ऐं परमेश्वरि स्वाहा और 3. ॐ परमेश्वरि स्वाहा । पूर्वोक्त दशाक्षर मन्त्र के सम्बोधन पद के बाद में कालिके पद का उच्चारण करे । उसके बाद आदि के तीन बीज 'ह्रीं श्रीं क्रीं' का उच्चारण करके वह्निवधू 'स्वाहा' पद का उच्चारण करे । इस प्रकार यह मन्त्र बनता है—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा । यह सोलह वर्णों का मन्त्र षोड़शी नाम से प्रसिद्ध होकर तन्त्रों में गुप्त है । उक्त षोड़शी मन्त्र के पहले 'स्त्रीं' और प्रणव 'ॐ' लगाने से सत्रह अक्षरों के दो मन्त्र बनते हैं । यथा—1. स्त्रीं ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा और 2. ॐ ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा । हे प्रिये! तुम्हारे कोटि-कोटि अर्बुद मन्त्र हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती । यहाँ पर संक्षेप में बारह मन्त्रों का वर्णन किया गया है । यथा—

1. ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा ।

2. परमेश्वरि स्वाहा ।

3. ह्रीं परमेश्वरि स्वाहा ।

4. श्रीं परमेश्वरि स्वाहा ।

5. क्रीं परमेश्वरि स्वाहा ।

6. क्लीं ऐं ॐ परमेश्वरि स्वाहा ।

7. क्लीं परमेश्वरि स्वाहा ।

8. ऐं परमेश्वरि स्वाहा ।

9. ॐ परमेश्वरि स्वाहा ।

10. ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा ।

11. स्त्रीं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा ।

12. ॐ ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा ।

जिस-जिस तन्त्र में जिन-जिन मन्त्रों का वर्णन है, वे सभी तुम्हारे मन्त्र हैं; क्योंकि तुम्हीं आद्या प्रकृति हो । इन सभी मन्त्रों की साधना एक ही प्रकार से की जाती है । जगतहित में और तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं उस साधन का वर्णन करता हूँ ।। 10-20 ।।

पूजा के समय पञ्च तत्त्वों, पञ्च मकारों की आवश्यकता

कुलाचारं विना देवि शक्तिमन्त्रो न सिद्धिदः ।
तस्मात्कुलाचारतो वै साधयेच्छक्तिसाधनम् ।। 21 ।।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।
शक्तिपूजाविधावाद्ये पञ्चतत्त्वं प्रकीर्तितम् ।। 22 ।।
पञ्चतत्त्वं विना पूजा अभिचाराय कल्पते ।
नष्टा सिद्धिः साधकस्य प्रत्यूहाश्च पदे पदे ।। 23 ।।
शिलायां सस्यवापे च यथा नैवाङ्कुरो भवेत् ।
पञ्चतत्त्वविहीनायां पूजायां न फलोद्भवः ।। 24 ।।

हे देवि! कुलाचार के विना शक्तिमन्त्र सिद्धिप्रदायक नहीं होते; अतः कुलाचार में तत्पर रहकर शक्ति-साधना करनी चाहिये । हे आद्ये! शक्ति-पूजा

के विधान में मद्य- मांस-मत्स्य-मुद्रा और मैथुन—ये पाँचों तत्त्व आवश्यक हैं। पञ्चतत्त्व के विना पूजा करने से वह अभिचार के समान प्राणघातक हो जाती हैं। उससे साधक को इष्ट-सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती और पग-पग पर विघ्न होते हैं। पत्थर के ऊपर बीज बोने से जैसे अंकुर नहीं निकलते, वैसे ही पञ्चतत्त्व-विहीन पूजा से फल नहीं मिलता ।। 21-24 ।।

गुरु-ध्यान और गुरु-पूजा

प्रातःकृत्यं विना देवि नाधिकारी तु कर्मसु ।
तस्मादादौ प्रवक्ष्यामि प्रातःकृत्यं यथोचितम् ।। 25 ।।
रजनीशेषयामस्य शेषार्द्धमरुणोदयः ।
तदा साधक उत्थाय मुक्तस्वापः कृतासनः ।
ध्यायेच्छिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ।। 26 ।।
श्वेताम्बरपरीधानं श्वेतमाल्यानुलेपनम् ।
वराभयकरं शान्तकरुणामयविग्रहम् ।। 27 ।।
वामेनोत्पलधारिण्या शक्त्यालिङ्गितविग्रहम् ।
स्मेराननं सुप्रसन्नं साधकाभीष्टदायकम् ।। 28 ।।
एवं ध्यात्वा कुलेशानि मानसैरुपचारकैः ।
पूजयित्वा जपेन्मन्त्री वाग्भवं बीजमुत्तमम् ।। 29 ।।
यथाशक्ति जपं कृत्वा समर्प्य दक्षिणे करे ।
ततस्तु प्रणमेद्धीमान्मन्त्रेणानेन सद्गुरुम् ।। 30 ।।
भवपाशविनाशाय ज्ञानदृष्टिप्रदर्शिने ।
नमः सद्गुरवे तुभ्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिने ।। 31 ।।
नराकृतिपरब्रह्मरूपायाज्ञानहारिणे ।
कुलधर्मप्रकाशाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। 32 ।।

हे देवि! प्रातःकृत्य न करने से कर्म में अधिकार नहीं होता; अतः सबसे पहले यथोचित प्रातःकृत्य बतलाता हूँ। रात्रि के अन्तिम प्रहर के शेषार्द्ध को अरुणोदय काल कहते हैं। उसी समय निद्रा छोड़कर साधक उठ जाए और अपने मस्तक में श्वेत कमल पर बैठे दो हाथों वाले द्विनेत्र गुरु का ध्यान करे। श्लोक 27 और 28 गुरुध्यान-मन्त्र है।

गुरु के वस्त्र श्वेत हैं। माला श्वेत है। श्वेत चन्दन का लेप लगा हुआ है। एक हाथ में वर मुद्रा और दूसरे हाथ में अभय मुद्रा है। वे शान्त और

करुणामय हैं । उनके देखने से प्रतीत होता है कि वे दयालु हैं । उनकी शक्ति उनकी बाई ओर स्थित है । उनके हाथ में कमल है और वे गुरु का आलिङ्गन किए हुए हैं । मुस्कानयुक्त उनका मुखड़ा है । वे अति प्रसन्न हैं और साधुजनों को अभीष्ट वर प्रदान करते हैं । हे कुलेश्वरि! मन्त्र-साधक इस प्रकार गुरु का ध्यान करके मानसिक उपचारों से उनकी पूजा करे ।

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि ।
हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि ।
यं वाय्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि ।
रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि ।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि ।
सं सर्वात्मकं सर्वोपचारान् समर्पयामि ।

गुरुमन्त्रश्रेष्ठ वाग्भव बीज 'ऐं' का जप करे । बुद्धिमान् साधक यथाशक्ति जप करके गुरुदेव के दाँयें हाथ में जप को समर्पित करे । श्लोक 31 और 32का पाठ करते हुए प्रणाम करे ।

संसार-बन्धन को काटने के लिये आपने मेरी ज्ञानदृष्टि को खोल दिया है । आप भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं । अतः आप सद्गुरु हैं । आपको नमस्कार है । जो मनुष्यरूप होकर भी परम ब्रह्मस्वरूप हैं, जो अज्ञान के विनाशक हैं और कुलधर्म के प्रकाशक हैं, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ।। 25-32 ।।

इष्टदेवता का पूजन

प्रणम्यैवं गुरुं तत्र चिन्तयेन्निजदेवताम् ।
पूर्ववत्पूजयित्वा तां मूलमन्त्रजपं चरेत् ।। 33 ।।
यथाशक्ति जपं कृत्वा देव्या वामकरेऽर्पयेत् ।
मन्त्रेणानेन मतिमान्प्रणमेदिष्टदेवताम् ।। 34 ।।
नमः सर्वस्वरूपिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः ।
आद्यायै कालिकायै ते कर्त्र्यै हर्त्र्यै नमो नमः ।। 35 ।।

इस प्रकार गुरुदेव को प्रणाम करके अपने इष्टदेवता का ध्यान करे । तब पूर्ववत् मानस उपचारों से अपने देवता का पूजन करके मूल मन्त्र का जप करे । यथाशक्ति मन्त्र का जप करके देवी के बाँयें हाथ में जप को समर्पित करे । श्लोक 35 का उच्चारण करके साधक इष्टदेवता को प्रणाम करे । तुम

सर्वस्वरूपिणी हो, तुम्हें नमस्कार । तुम जगद्धात्री हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार । तुम जगत् की सृष्टि और विनाश करने वाली हो । आद्या कालिके! तुम्हें बार-बार नमस्कार ।। 33-35 ।।

स्नानादि विधि

नमस्कृत्य बहिर्गच्छेद्वामपादपुरःसरम् ।
त्यक्त्वा मूत्रपुरीषं च दन्तधावनमाचरेत् ।। 36 ।।
ततो गत्वा जलाभ्याशे स्नानं कृत्वा यथाविधि ।
आदावप उपस्पृश्य प्रविशेत्सलिले ततः ।। 37 ।।
नाभिमात्रजले स्थित्वा मलानामपनुत्तये ।
सकृत्स्नात्वा तथोन्मज्ज्य मन्त्रमाचमनं चरेत् ।। 38 ।।
आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैः स्वाहान्तैः साधकाग्रणीः ।
त्रिःप्राश्यापो द्विरुन्मृज्ज्य त्वाचमेत्कुलसाधकः ।। 39 ।।
कुलयन्त्रं मन्त्रगर्भं विलिख्य सलिले सुधीः ।
मूलमन्त्रं द्वादशधा तस्योपरि जपेत्प्रिये ।। 40 ।।
तेजोरूपं जलं ध्यात्वा सूर्यमुद्दिश्य देशिकः ।
तत्तोयैस्त्र्यञ्जलीन्दत्त्वा तेनैव पाथसा त्रिधा ।
अभिषिच्य स्वमूर्द्धानं सप्रच्छिद्राणि रोधयेत् ।। 41 ।।
ततस्तु देवताप्रीत्यै त्रिर्निमज्ज्य जलान्तरे ।
उत्थाय गात्रं सम्मार्ज्य पिदध्याच्छुद्धवाससी ।। 42 ।।
मृत्स्नया भस्मना वापि त्रिपुण्ड्रं बिन्दुसंयुतम् ।
ललाटे तिलकं कुर्य्याद्गायत्र्या बद्धकुन्तलः ।। 43 ।।
वैदिकीं तान्त्रिकीञ्चैव यथानुक्रमयोगतः ।
सन्ध्यां समाचरेन्मन्त्री तान्त्रिकीं शृणु कथ्यते ।। 44 ।।

इस प्रकार इष्टदेवता को प्रणाम करके पहले बाँयाँ पैर आगे रखकर बाहर निकले । तब मल-मूत्र का त्याग कर दतुवन करे । इसके बाद जलाशय पर जाकर पहले आचमन करे, तब जल में प्रवेश करे । नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर शरीर का मैल दूर करने के लिये स्नान करे । डुबकी लगाकर आचमन करे । श्रेष्ठ कुलसाधक निम्न मन्त्रों से तीन बार जल पीये—1. आत्मतत्त्वाय स्वाहा, 2. विद्यातत्त्वाय स्वाहा, 3. शिवतत्त्वाय स्वाहा । फिर ओष्ठाधर के मार्जन के लिये दो बार आचमन करे ।

बुद्धिमान साधक जल में त्रिकोण कुलयन्त्र लिखकर उसके बीच में मूल मन्त्र को लिखे । हे प्रिये! उसके ऊपर बारह बार मूल मन्त्र का जप करे । इसके बाद साधक.उस मन्त्रपूत जल को तेजोरूप मानकर सूर्यदेव को तीन जलाञ्जलि देकर उसी जल से तीन बार अपने मस्तक को अभिषिक्त करे । तब अपने मुख. दोनों नासाछिद्रों, दोनों कानों, दोनों आखों के सातों छिद्रों को अपनी अंगुलियों से बन्द करे । तब देवता की प्रसन्नता के लिये जल में तीन बार डुबकी लगाकर बाहर निकले । शरीर को पोंछकर दो शुद्ध वस्त्र उत्तरीय और परिधेय पहने । इसके बाद गायत्री से शिखा-बन्धन करे । मिट्टी या भस्म से अपने ललाट में बिन्दुयुक्त त्रिपुण्ड्र तिलक धारण करे। तब साधक वैदिकी सन्ध्या करे । तदनन्तर तान्त्रिकी सन्ध्या करे ।। 36-44 ।।

तान्त्रिकी सन्ध्या

आचम्य पूर्ववत्तोयैस्तीर्थान्यावाहयेच्छिवे ।। 45 ।।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।। 46 ।।
मन्त्रेणानेन मतिमान्मुद्रयाङ्कुशसंज्ञया ।
आवाह्य तीर्थं सलिले मूलं द्वादशधा जपेत् ।। 47 ।।
ततस्तत्तोयतो बिन्दूंस्त्रिधा भूमौ विनिक्षिपेत् ।
मध्यमानामिकायोगान्मूलोच्चारणपूर्वकम् ।। 48 ।।
सप्तवारं स्वमूर्द्धानमभिषिच्य ततो जलम् ।
वामहस्ते समादाय छादयेद्दक्षपाणिना ।। 49 ।।
ईशानवायुवरुणवह्नीन्द्रबीजपञ्चकम् ।
प्रजप्य सप्तधा तोयं दक्षहस्ते समानयेत् ।। 50 ।।
वीक्ष्य तेजोमयं ध्यात्वा चेडयाकृष्य साधकः ।
देहान्तः कलुषं तेन रेचयेत्पिङ्गलाख्यया ।। 51 ।।
निष्कृष्य पुरतो वज्रशिलायामस्त्रमुच्चरन् ।
त्रिवारं ताडयेन्मन्त्री हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ।। 52 ।।
आचम्योक्तेन मन्त्रेण सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।। 53 ।।
तारमायाहंस इति घृणिसूर्य ततः परम् ।
इदमर्घ्यं तुभ्यमुक्त्वा दद्यात्स्वाहेत्युदीरयन् ।। 54 ।।
ततो ध्यायेन्महादेवीं गायत्रीं परदेवताम् ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने त्रिरूपां गुणभेदतः ।। 55 ।।

प्रात:र्ब्राह्मीं रक्तवर्णां द्विभुजां च कुमारिकाम् ।
कमण्डलुं तीर्थपर्णमक्षमालां च बिभ्रतीम् ।
कृष्णाजिनाम्बरधरां हंसारूढां शुचिस्मिताम् ।। 56 ।।
मध्याह्ने तां श्यामवर्णां वैष्णवीं च चतुर्भुजाम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणीं गरूडासनाम् ।। 57 ।।
पीनोत्तुङ्गकुचद्वन्द्वां वनमालाविभूषिताम् ।
युवतिं सततं ध्यायेन्मध्ये मार्त्तण्डमण्डले ।। 58 ।।
सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद्यतिः।
शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम् ।। 59 ।।
त्रिनेत्रां वरदां पाशं शूलं च नृकरोटिकाम् ।
बिभ्रतीं करपद्मैश्च वृद्धां गलितयौवनाम् ।। 60 ।।
एवं ध्यात्वा महादेव्यैं जलानामञ्जलित्रयम् ।
दत्त्वा जपेत्तु गायत्रीं दशधा शतधापि वा ।। 61 ।।
गायत्रीं शृणु देवेशि वदामि तव भावतः ।
आद्यायै पदमुच्चार्य विद्महे तदनन्तरम् ।। 62 ।।
परमेश्वर्य्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयात् ।
एषा तु तव गायत्री महापापप्रणाशिनी ।। 63 ।।
त्रिसन्ध्यमेतां प्रजपन्सन्ध्यायाः फलमाप्नुयात् ।
ततस्तु तर्पयेद्भद्रे देवर्षिपितृदेवताः ।। 64 ।।
प्रणवं सद्वितीयाख्यां तर्पयामि नमः पदम् ।
शक्तौ तु प्रणवे मायां नमः स्थाने द्विठं वदेत् ।। 65 ।।
मूलान्ते सर्वभूतान्ते निवासिन्यै पदं वदेत् ।
सर्वस्वरूपाङ्गेयुक्तां सायुधायै तथा पठेत् ।। 66 ।।
सावरणां सचतुर्थीं तद्वदेव परात्पराम् ।
आद्याय कालिकायै च इदमर्घ्यं ततो द्विठः ।। 67 ।।
अनेनार्घ्यं महादेव्यै दत्त्वा मूलं जपेत्सुधीः ।
यथाशक्ति जपं कृत्वा देव्या वामकरेऽर्पयेत् ।। 68 ।।
प्रणम्य देवीं पूजार्थं जलमादाय साधकः ।
नत्वा तीर्थं पठन्स्तोत्रं देवताध्यानतत्परः ।। 69 ।।
यागमण्डपमागत्य पाणिपादो विशोधयेत् ।
ततो द्वारस्य पुरतः सामान्यार्घ्यं प्रकल्पयेत् ।। 70 ।।

हे शिवे! जल से पूर्ववत् मन्त्रों से आचमन करे और श्लोक 45 से तीर्थों

का आवाहन करे । हे गंगे! हे यमुने! हे सरस्वति! हे गोदावरि! हे नर्मदे, सिन्धु, कावेरी! तुम इस जल में सन्निहित हो जाओ । बुद्धिमान साधक श्लोक 45 का पाठ करते हुए अंकुश मुद्रा से जल में तीर्थों का आवाहन करे । आवाहित तीर्थजल के ऊपर बारह बार मूल मन्त्र का जप करे । तब मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए मध्यमा-अनामा अंगुलियों से उस जल में से तीन बार जलविन्दु छिड़के । इसी प्रकार जल बाईं हथेली में लेकर दाँयें हाथ से उसे ढक ले । हाथ के उस जल के ऊपर ईशानबीज 'हं', वायुबीज 'यं', वरुणबीज 'वं', वह्निबीज 'रं', इन्द्रबीज 'लं'—इन पाँच बीजों का अर्थात् 'हं यं वं रं लं' को चार बार जपकर उस जल को दाँईं हथेली पर ले ले । तब साधक उस जल को देखकर उसे तेजोमय मानकर बाँईं नासिका द्वारा भीतर खींचकर उस जल के साथ शारीरिक और मानसिक पापों को दाँईं नासिका से निकाल दे । इस प्रकार साधक पापों को निकालकर 'फट्' बोलते हुए उस जल को अपने सामने कल्पित वज्रशिला के ऊपर तीन बार ताड़ित करके दोनों हाथों को धो ले । इसके बाद आचमन करके 'ॐ ह्रीं घृणिः सूर्य इदमर्घ्यं तुभ्यं स्वाहा' मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे । तदनन्तर प्रातःकाल, मध्याह्न काल और सन्ध्या काल में गुण- तारतम्य के अनुसार त्रिरूपिणी परम देवता महादेवी गायत्री का ध्यान करे । श्लोक 56 प्रभाती ध्यान है । श्लोक 57 मध्याह्नकालिक ध्यान है और श्लोक 59-60 सन्ध्याकालीन ध्यान है ।

प्रातःकाल रक्तवर्णा, द्विभुजा, कुमारी, तीर्थोदकपूर्ण कमण्डलु और निर्मल मालाधारिणी, कृष्णाजिन वसनावृता, हंसारूढ़ा और मधुर मुस्कानशोभिता ब्राह्मी, ब्रह्मशक्ति का ध्यान करे ।

मध्य दिवस में श्याम वर्णा, चतुर्भुजी, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारिणी, गरुड़ारूढा, युवती, पीनोत्तुंगस्तनी, वनमालासुशोभिता, वैष्णवी शक्ति का ध्यान सूर्यमण्डल में करे ।

सन्ध्याकाल में जितेन्द्रिय साधक श्वेत वर्णा, श्वेत वस्त्रपरिधाना, वृषासनासीना, त्रिनेत्रा, चार करकंजों में वर, पाश, शूल और नरकपालधारिणी, वृद्धा एवं विगत यौवना वरदा गायत्री का स्मरण करे ।

इस प्रकार ध्यान करके देवी को तीन अञ्जलि जल देकर सौ बार या दस बार गायत्री का जप करे ।

देवी गायत्री

हे देवेशि! मैं तुम्हारे लिए देवी गायत्री मन्त्र बतलाता हूँ; सुनो । पहले 'आद्यायै' पद, तब 'विद्महे' तब 'परमेश्वर्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयात्' के उच्चारण करने से आद्या काली गायत्री यह होती है—'आद्यायै विद्महे परमेश्वर्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयात्' । इसका अर्थ है कि हम आद्या शक्ति को प्राप्त करने के लिये उनका ध्यान करते हैं । उनमें पूर्ण रूप से विश्वास रखते हैं । वही जगत् कारणस्वरूपा काली हम सबको धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति में प्रयत्नशील रक्खें । महापापविनाशिनी इस गायत्री का वर्णन मैंने किया । हे भद्रे! जो तीनों सन्ध्याओं में इसका जप करते हैं, उन्हें नित्य त्रिसन्ध्या करने का फल प्राप्त होता है ।

इसके बाद देव, ऋषि, पितर और इष्टदेवता का तर्पण करे । पहले प्रणव का उच्चारण करके द्वितीयान्त उनके नामों का उच्चारण करते हुए अन्त में 'तर्पयामि नमः' पद का उच्चारण करे । इष्टदेवता शक्ति के तर्पण में प्रणव के स्थान पर मायाबीज ह्रीं का और नमः के स्थान पर द्विठ अर्थात् 'स्वाहा' का उच्चारण करे ।

मूलमन्त्र 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा' के बाद 'सर्वभूत', उसके बाद 'निवासिन्यै' तब 'सर्वस्वरूपायै' तब 'सायुधायै' तब 'सावरणायै परात्परायै आद्यायै कालिकायै' तब 'इदमर्घ्यं स्वाहा' उच्चारण करना चाहिये । इस प्रकार यह मन्त्र बनता है—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा सर्वभूतनिवासिन्यै सर्वस्वरूपायै सायुधायै सावरणायै परात्परायै आद्यायै कालिकायै इममर्घ्यं स्वाहा । इसी मन्त्र से साधक महादेवी को अर्घ्य प्रदान करे । इसके बाद यथाशक्ति मूलमन्त्र का जप करके देवी के बाँयें हाथ में जप को समर्पित करे । तब साधक देवी के प्रणाम-पूजन के लिये जल ग्रहण कर, तीर्थ को नमस्कार कर स्तवपाठ करते-करते इष्ट-देवता का ध्यान करते हुए यागमण्डप में आकर हाथ-पैर का शोधन करे । इसके बाद द्वारदेश के सामने सामान्यार्घ्य-स्थापन करे ।। 45-70 ।।

देवी-पूजन-विधि

त्रिकोणवृत्तभूबिम्बं मण्डलं रचयेत्सुधीः ।
आधारशक्तिं सम्पूज्य तत्राधारं नियोजयेत् ।। 71 ।।
अस्त्रेण पात्रं प्रक्षाल्य हृन्मन्त्रेण प्रपूज्य च ।
निक्षिप्य गन्धपुष्पं च तीर्थान्यावाहयेत्ततः ।। 72 ।।
आधारपात्रतोयेषु वह्न्यर्कशशिमण्डलम् ।
पूजयित्वा तद्दशधा मायाबीजेन मन्त्रयेत् ।। 73 ।।

प्रदर्शयेद्धेनुयोनिं समान्यार्घ्यमिदं स्मृतम् ।
ततस्तज्जलपुष्पैश्च पूजयेद्द्वारदेवता: ।। 74 ।।
गणेशं क्षेत्रपालं च बटुकं योगिनीं तथा ।
गङ्गां च यमुनां चैव लक्ष्मीं वाणीं ततो यजेत् ।। 75 ।।
किञ्चित्स्पृशन्वामशाखां वामपादपुर:सरम् ।
स्मरन्देव्या: पदाम्भोजं मण्डपं प्रविशेत्सुधी: ।। 76 ।।
नैर्ऋत्यां दिशि वास्त्वीशं ब्रह्माणं च समर्च्चयन् ।
सामान्यार्घ्यस्य तोयेन प्रोक्षयेद्योगमन्दिरम् ।। 77 ।।
अनन्तरं साधकेन्द्रो दिव्यदृष्ट्यवलोकनै: ।
दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्राद्भिश्चान्तरिक्षगान् ।। 78 ।।
पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमानिति विघ्नान्निवारयेत् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरैर्यागमण्डपम् ।। 79 ।।
धूपयेत्स्वोपवेशार्थं चतुरस्त्रं त्रिकोणकम् ।
विलिख्य पूजयेत्तत्र कामरूपाय हृन्मनु: ।। 80 ।।
तत्रासनं समास्तीर्य काममाधारशक्तित: ।
कमलासनाय नमो मन्त्रेणैवासनं यजेत् ।। 81 ।।
उपविश्यासने विद्वान् प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुख: ।
बद्धवीरासनो मन्त्री विजयां परिशोधयेत् ।। 82 ।।

ज्ञानी साधक पहले एक त्रिकोण बनाए । उसके बाहर एक गोलाकार मण्डल बनाए और उसके बाहर एक चतुरस्त्र मण्डल बनाए ।

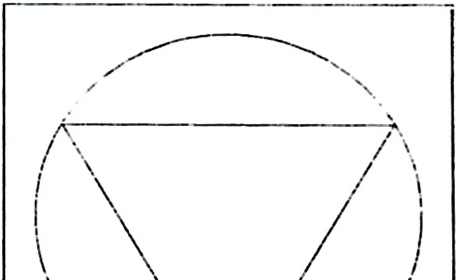

सामान्यार्घ्य स्थापन

इसमें 'ॐ आधारशक्तये नमः' मन्त्र से आधारशक्ति की पूजा गन्धाक्षत-पुष्प से करे । उस पर आधार स्थापित करे । 'फट्' मन्त्र से पात्र को धोकर उस आधार पर रक्खे । 'नमः' मन्त्र से उसमें जल भरे । उसमें गन्ध-पुष्प डालकर सभी तीर्थों का आवाहन करे । आधार पर अग्नि का, पात्र में सूर्यमण्डल का और जल में चन्द्र- मण्डल का पूजन करे । दस बार मायाबीज 'ह्रीं' के जप से जल को पवित्र करे । तब उस पर धेनुमुद्रा और योनिमुद्रा को प्रदर्शित करे । इसे ही सामान्यार्घ्य कहते हैं । उस जल और फूल से द्वारदेवताओं का पूजन करे । इन द्वारदेवताओं में गणेश, क्षेत्रपाल, वटुक, योगिनी, गंगा, यमुना, लक्ष्मी और सरस्वती का पूजन क्रमशः निम्न मन्त्रों से करे—गं गणेशाय नमः । क्षं क्षेत्रपालाय नमः । वं बटुकाय नमः । यां योगिन्यै नमः । गां गङ्गायै नमः । यां यमुनायै नमः । श्रीं लक्ष्म्यै नमः । ऐं सरस्वत्यै नमः ।

इसके पश्चात् ज्ञानी साधक चौखट के बाँयीं ओर के काष्ठ को कुछ छूते हुए, बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर, देवी के पादपद्मों को स्मरण करते हुए पूजागृह में प्रवेश करे । तब पूजागृह के मध्य के नैर्ऋत्य कोण में निम्न मन्त्रों से गन्ध-पुष्प द्वारा वास्तु-पुरुष, ईश और ब्रह्मा का अर्चन करे । पूजन मन्त्र है—ॐ वास्तुपुरुषाय नमः । ॐ ईशाय नमः । ॐ ब्रह्मणे नमः ।

इसके बाद सामान्यार्घ्य जल से यागमन्दिर को प्रोक्षित करे । तब साधक एक-टक दृष्टि से ऊपर की ओर देखकर सभी विघ्नों को दूर करने की भावना करे । 'फट्' मन्त्र से जल फेंककर आकाशसम्बन्धी सभी विघ्नों को दूर करे । तब पैर की एँड़ी से पृथ्वी पर तीन बार आघात करके भूमि पर स्थित रहने वाले सभी विघ्नों को दूर करने की भावना करे । पूजागृह को चन्दन, अगर, कस्तूरी और कपूर जलाकर सुगन्धित करे । तब अपने बैठने के लिये चतुर्भुज के अन्दर त्रिभुज मण्डल बनाकर उसमें 'कामरूपाय नमः' से कामरूप की पूजा करे । उस मण्डल के ऊपर आसन बिछाकर कामबीज 'क्लीं' बोलते हुए 'आधारशक्तये कमलासनाय नमः' से आसन का पूजन करे । धर्मात्मा साधक पूर्व या उत्तरमुख होकर वीरासन में उस पूजित आसन पर बैठकर विजया का शोधन करे ।।71-82।।

विजया-शोधन ग्रहण

तारं मायां समुच्चार्य्य अमृते अमृतोद्भवे ।
अमृतवर्षिणी ततोऽमृतमाकर्षय द्विधा ।। 83 ।।

सिद्धिं देहि ततो ब्रूयात् कालिकां मे ततः परम् ।
वशमानय ठद्वन्द्वं संविदाशोधने मनुः ॥ 84 ॥
मूलमन्त्रं सप्तवारं प्रजप्य विजयोपरि ।
आवाहन्यादिमुद्रां च धेनुयोनिं प्रदर्शयेत् ॥ 85 ॥
गुरुं पद्मे सहस्रारे यथा सङ्केतमुद्रया ।
त्रिधैव तर्पयेद्देवि हृदि मूलं समुच्चरन् ॥ 86 ॥
वाग्भवं वद युग्मञ्च वाग्वादिनि पदं ततः ।
मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि ।
स्वाहान्तेनैव मनुना जुहुयात्कुण्डलीमुखे ॥ 87 ॥
स्वीकृत्य संविदां वामकर्णोद्ध्र्वे श्रीगुरुं नमेत् ।
दक्षिणे च गणेशानमाद्यां मध्ये सनातनीम् ॥ 88 ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा देवी ध्यानपरायणः ।
पूजाद्रव्याणि सर्वाणि दक्षिणे स्थापयेत्सुधीः ।
वामे सुवासितं तोयं कुलद्रव्याणि यानि च ॥ 89 ॥
अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण सामान्यार्घ्योदकेन च ।
सम्प्रोक्ष्य सर्ववस्तूनि वेष्टयेज्जलधारया ।
वह्निबीजेन देवेशि वह्नेः प्राक्षारमाचरेत् ॥ 90 ॥
पुष्पचन्दनसंयुक्तमादाय करयोर्द्वयोः ।
अस्त्रेण घर्षयित्वा तत्प्रक्षिपेत्करशुद्धये ॥ 91 ॥
तर्जनीमध्यमाभ्यां च वामपाणितले शिवे ।
ऊर्ध्वोर्ध्वतालत्रितयं दत्त्वा दिग्बन्धनं ततः ।
अस्त्रेण छोटिकाभिश्च भूतशुद्धिमथाचरेत् ॥ 92 ॥

उद्धार करने पर संविदा-शोधन का जो मन्त्र बनता है. वह इस प्रकार का है—'ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणी अमृतमाकर्षयाकर्षय सिद्धिं देहि कालिकां मे वशमानय स्वाहा' । तब विजया के ऊपर सात बार मूल मन्त्र का जप करके आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापनी, सन्निरोधिनी, सम्मुखीकरणी, धेनु और योनि मुद्रायें दिखाये । जिस प्रकार गुरूपदिष्ट तत्त्वमुद्रा से सहस्रार पद्म में विजया से तीन बार तर्पण गुरु का करे. उसी प्रकार मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए हृदय में देवी का तर्पण तीन बार करे । वाग्वादिनी मन्त्र 'ऐं वद वद वाग्वादिनी मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वतत्त्ववशंकरी स्वाहा' कहते हुए कुण्डलिनी के मुख में विजया की आहुति प्रदान करे ।

इस प्रकार विजया ग्रहण करके बायें कान पर श्रीगुरु को, दायें कान पर गणेश को और मध्य में सनातनी आद्या काली को प्रणाम करे । ज्ञानी साधक हाथ जोड़कर देवी का ध्यान करके सारे पूजन द्रव्य को अपनी दाँयीं ओर और सुवासित जल तथा कुलद्रव्य को अपनी बाँयीं ओर रक्खे । मूल मन्त्र के अन्त में 'फट्' जोड़कर पढ़ते हुए सामान्य अर्घ्य के कुछ जल से सारी पूजासामग्री को प्रोक्षित करे । उसे जलधारा से वेष्टित करे । तब वह्निबीज 'रं' से अग्निप्राचीर की कल्पना करे । तब दोनों हाथों में चन्दनलिप्त फूल लेकर 'फट्' बोलते हुए फूलों को मसले । इस प्रकार शुद्धि करके मसले हुए पुष्पों को फेंक दे । हे शिवे! परस्पर मिली हुई तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों से हथेली पर क्रमशः ऊपर और इसके ऊपर भी ताली बजाए । 'फट्' बोलते हुए चुटकी बजाकर दशो दिशाओं को बाँधकर दिग्बन्धन करे ।। 83-92 ।।

भूतशुद्धि

स्वाङ्के निधाय च करावुत्तानौ साधकोत्तमः ।
मनः निवेश्य मूले च हुङ्कारेणैव कुण्डलीम् ।। 93 ।।
उत्थाप्य हंसमन्त्रेण पृथिव्या सहितां तु ताम् ।
स्वाधिष्ठानं समानीय तत्त्वं तत्त्वे नियोजयेत् ।। 94 ।।
गन्धादिघ्राणसंयुक्तां पृथिवीमप्सु संहरेत् ।
रसादिजिह्वया सार्द्धं जलमग्नौ विलापयेत् ।। 95 ।।
रूपादिचक्षुषा सार्द्धमग्निं वायौ विलाप्य च ।
स्पर्शादित्वग्युतं वायुमाकाशे प्रविलापयेत् ।। 96 ।।
अहङ्कारे हरेद्व्योम सशब्दं तन्महत्यपि ।
महत्तत्त्वं च प्रकृतौ तां ब्रह्मणि विलापयेत् ।। 97 ।।
इत्थं विलाप्य मतिमान्वामकुक्षौ विचिन्तयेत् ।
पुरुषं कृष्णवर्णं च रक्तश्मश्रुविलोचनम् ।। 98 ।।
रक्तचर्मधरं क्रुद्धमङ्गुष्ठपरिमाणकम् ।
सर्वपापस्वरूपं च सर्वदाऽधोमुखस्थितम् ।। 99 ।।

साधकश्रेष्ठ अपनी गोद में हथेलियों को उत्तान रक्खे और मन को प्रथम पद्म मूलाधार में सन्निवेशित करे । हुंकार करके कुण्डलिनी को ऊपर उठाए । हंस मन्त्र जपते हुए पृथ्वी के सहित उसे नाभिमूल में स्थित द्वितीय पद्म स्वाधिष्ठान में लाकर पृथ्वी आदि सभी कार्यतत्त्वों को क्रमशः जल आदि

कारणतत्त्व में प्रविष्ट करे । नासिका, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दसहित पृथ्वी को जल में घोल दे । रसनेन्द्रिय जीभ, रस, रूप, स्पर्श, शब्दसहित जल को अग्नि में विलीन करे । तब रूपदर्शी चक्षु, रूप, स्पर्श, शब्दसहित अग्नि को वायु में विलीन कर दे । त्वगेन्द्रिय स्पर्श शब्दसहित वायु को आकाश में मिला दे । शब्देन्द्रिय श्रोत्र, शब्द को आकाश में, आकाश को अहंकार में, अहंकार को बुद्धि में, बुद्धि को प्रकृति में और सर्वग्रासिनी प्रकृति को ब्रह्म में विलीन करे । बुद्धिमान साधक इस प्रकार सभी तत्त्वों को विलीन करके अपनी बाँयीं कुक्षि में कृष्ण वर्ण, ताम्र, लोहित, शुभ्र, आरक्त नयन, ढाल-तलवारधारी, क्रोधित, अंगूठे जितने लम्बे, सदैव अधोमुखी सर्वपापस्वरूप पुरुष का ध्यान करे ।। 93-99।।

ततस्तु वामनासायां यं बीजं धूम्रवर्णकम् ।
सञ्चिन्त्य पूरयेत्तेन वायुं षोडशमात्रया ।।
तेन पापात्मकं देहं शोधयेत्साधकाग्रणीः ।। 100 ।।
नाभौ रं रक्तवर्णं च ध्यात्वा तज्जातवह्निना ।
चतुःषष्ट्या कुम्भकेन देहेत्पापरतां तनुम् ।। 101 ।।
ललाटे वारुणं बीजं शुक्लवर्णं विचिन्त्य च ।
द्वात्रिंशता रेचकेन प्लावयेदमृताम्भसा ।। 102 ।।
आपादशीर्षपर्यन्तमाप्लाव्य तदनन्तरम् ।
उत्पन्नं भावयेद्देहं नवीनं देवतामयम् ।। 103 ।।
पृथ्वीबीजं पीतवर्णं मूलाधारे विचिन्तयन् ।
तेन दिव्यावलोकेन दृढीकुर्य्यान्निजां तनूम् ।। 104 ।।
हृदये हस्तमादाय आं ह्रीं क्रौं हं समुच्चरन् ।
सोऽहंमन्त्रेण तद्देहे देव्याः प्राणान्निधापयेत् ।। 105 ।।
भूतशुद्धिं विधायेत्थं देवीभावपरायणः ।
समाहितमनाः कुर्यान्मातृकान्यासमम्बिके ।। 106 ।।

इसके बाद बाँयीं नासिका से धूम्र वर्ण 'यं' बीज का ध्यान करके सोलह बार जप करते हुए पूरक करे । साधकोत्तम पूरक द्वारा खींची वायु से पापपुरुष का शरीर सुखा दे । नाभि में लाल रंग के 'रं' बीज का ध्यान करते हुये कुम्भक में चौंसठ बार 'रं' बीज का जप करे । उससे उत्पन्न अग्नि से पापपरायण अपने शरीर को भस्म कर दे । ललाट में श्वेत वर्ण वारुण बीज 'वं' का ध्यान करते हुये पूरित और कुम्भित वायु को छोड़ते हुये 'वं' का 32 बार जप करते हुए

इससे उत्पन्न अमृतजल से भस्म शरीर को प्लावित कर दे । इस प्रकार पैर से मस्तक तक प्लावित करने के बाद देवमय नयी देह के उत्पन्न होने की कल्पना करे । तब मूलाधार पद्म में पीले रंग के पृथ्वीबीज 'लं' का ध्यान करते हुए उच्चारण करे । निर्निमेष दर्शन से तत्काल उत्पन्न अपने शरीर को दृढ़ करे । अपने हृदय पर हाथ रखकर 'आं ह्रीं क्रों हंसः' का उच्चारण करके 'सोहं' बोलकर उस नवजात शरीर को देवमय मानकर उसमें देवी की प्राणप्रतिष्ठा करे । हे देवि! इस प्रकार भूतशुद्धि करके यह भावना करे कि 'मैं देवीस्वरूप' हूँ । अपने को देवीस्वरूप मानकर एकाग्र चित्त से मातृकान्यास करे ।।100-106 ।।

ऋष्यादि न्यास-करन्यास अंगन्यास

मातृकाया ऋषिर्ब्रह्मा गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।
देवता मातृका देवी बीजं व्यञ्जनसंज्ञकम् ।। 107 ।।
स्वराश्च शक्तयः सर्गः कीलकं परिकीर्तितम् ।
लिपिन्यासे महादेवि विनियोगः प्रयोजितः ।
ऋषिन्यासं विधायैवं कराङ्गन्यासमाचरेत् ।। 108 ।।
अंआंमध्ये कवर्गं च इंईंमध्ये चवर्गकम् ।
उंऊंमध्ये टवर्गं तु एंऐंमध्ये तवर्गकम् ।। 109 ।।
ओंऔं मध्ये पवर्गं तु यादिक्षान्तं वरानने ।
बिन्दुसर्गान्तराले च षडङ्गे मन्त्र ईरितः ।। 110 ।।
विन्यस्य न्यासविधिना ध्यायेन्मातृसरस्वतीम् ।। 111 ।।
पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्यां च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ।। 112 ।।
ध्यात्वैवं मातृकां देवीं षट्सु चक्रेषु विन्यसेत् ।
हक्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे कण्ठे च षोडश स्वरान् ।। 113 ।।
हृदम्बुजे कादिठान्तान्विन्यस्य कुलसाधकः ।
डादिफान्तान्नाभिदेशे बादिलान्तांश्च लिङ्गके ।। 114 ।।
मूलाधारे चतुःपत्रे वादिसान्तान्प्रविन्यसेत् ।
इत्यन्तर्मनसा न्यस्य मातृकार्णान्बहिर्न्यसेत् ।। 115 ।।
ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः ।
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गस्य दोःपत्सन्ध्यग्रगेषु च ।। 116 ।।

पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयांसयोः ।
ककुद्यंसे च हृत्पूर्वं पाणिपादयुगे ततः ॥ 117 ॥
जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकार्णान्यथाक्रमम् ।
इत्थं लिपिं प्रविन्यस्य प्राणायामं समाचरेत् ॥ 118 ॥

ऋष्यादि न्यास का विनियोग—अस्य मातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री छन्दः । मातृका सरस्वती देवता । व्यञ्जनाः बीजाः । स्वराः शक्तयः । सर्गः कीलकः । लिपिन्यासे विनियोगः ।

ऋषिन्यास

1. ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि ।
2. गायत्रीछन्दसे नमः मुखे ।
3. मातृका सरस्वती देवतायै नमः हृदि ।
4. व्यञ्जनाबीजेभ्यो नमः गुह्ये ।
5. स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः पादयोः ।
6. सर्गः कीलकेभ्यो नमः नाभौ ।
7. मम आद्याकालिकाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगाय नमः करसम्पुटे ।

करन्यास

1. अं कं खं गं घं ङं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
2. इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः ।
3. उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः ।
4. एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः ।
5. ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
6. अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास

1. अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः ।
2. इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा ।
3. उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् ।
4. एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम् ।

5. ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् ।

6. अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अस्त्राय फट् ।

इसके बाद मातृका सरस्वती का ध्यान करे । यह ध्यान श्लोक 112 में वर्णित है । मातृका सरस्वती का मुख, बाहू, पाद, कटिदेश और वक्षःस्थल पचास वर्णों में विभक्त है । इनका किरीट उज्ज्वल शशिकला से निबद्ध है । इनके स्तन भारी और ऊच्च हैं । इनके चार करकंजों में तत्त्वमुद्रा, अक्षमाला, अमृतपूर्ण कलश और विद्या है । ऐसी शुक्लवर्णा, त्रिनेत्रा, वाग्देवता का मैं शरणापन्न होता हूँ ।

अन्तर्मातृका वर्णन्यास

इस प्रकार मातृका देवी के ध्यान के बाद षट्चक्रों में मातृका-न्यास करे । कुल-साधक भ्रूमध्य-स्थित आज्ञाचक्र में 'हं क्षं' का न्यास करे । कण्ठ-स्थित विशुद्धि-चक्र में सोलह स्वरों 'अ आ ई इ उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः' का न्यास करे । हृदयस्थ अनाहत चक्र में क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ बारह व्यञ्जनों का न्यास करे । नाभिदेशस्थ मणिपूर के दस दलों में ड ढ ण त थ द ध न प फ का न्यास करे । लिंगमूल में स्थित स्वाधिष्ठान चक्र के छः दलों में ब भ म य र ल का न्यास करे । रीढ़ के नीचले भाग में स्थित मूलाधार चक्र के चार दलों में व श ष स का न्यास करे ।

बहिर्मातृका न्यास

1. अं नमः ललाटे । 2. आं नमः मुखे । 3. इं नमः दक्षनेत्रे । 4. ईं नमः वामनेत्रे । 5. उं नमः दक्षकर्णे । 6. ऊं नमः वामकर्णे । 7. ऋं नमः दक्षनासापुटे । 8. ॠं नमः वामनासापुटे। 9. ऌं नमः दक्षकपोले । 10. ॡं नमः वामकपोले । 11. एं नमः उर्ध्वोष्ठे । 12. ऐं नमः अधरोष्ठे । 13. ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ । 14. औं नमः अधोदन्तपंक्तौ । 15. अं नम जिह्वाग्रे । 16. अः नमः कण्ठे । 17. कं नमः दक्षबाहुमूले । 18. खं नमः दक्षकूर्परे । 19. गं नमः दक्षमणिबन्धे। 20. घं नमः दक्षकरांगुलिमूले । 21. ङं नमः दक्षकरांगुल्यग्रे । 22. चं नमः वामबाहुमूले । 23. छं नमः वामकूर्परे । 24. जं नमः वाममणिबन्धे। 25. झं नमः वामकरांगुलिमूले। 26. ञं नमः वामकरांगुल्यग्रे । 27. टं नमः दक्षोरुमूले । 28. ठं नमः दक्षजानुनि । 29.

डं नमः दक्षगुल्फे । 30. ढं नमः दक्षपादांगुलिमूले । 31. णं नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे । 32. तं नमः वामोरुमूले । 33. थं नमः वामजानुनि । 34. दं नमः वामगुल्फे । 35. धं नमः वामपादांगुलिमूले । 36. नं नमः वामपादांगुल्यग्रे । 37. पं नमः दक्षपार्श्वे । 38. फं नमः वामपार्श्वे। 39. बं नमः पृष्ठे । 40. भं नमः नाभौ । 41. मं नमः जठरे । 42. यं नमः हृदये । 43. रं नम दक्षकुक्षौ । 44. लं नमः गलपृष्ठे । 45. वं नमः वामकुक्षौ । 46. शं नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम् । 47. षं नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम् । 48. सं नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम् । 49. हं नमः हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम् । 50. लं नमः कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तम् । 51. क्षं नमः कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम् ।। 113-118 ।।

प्राणायाम

मायाबीजं षोडशधा जप्त्वा वामेन वायुना ।
पूरयेदात्मनो देहं चतुःषष्ट्या तु कुम्भयेत् ।। 119 ।।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्धृत्वा नासाद्वयं सुधीः ।
द्वात्रिंशता जपन्बीजं वायुं दक्षेण रेचयेत् ।। 120 ।।
पुनः पुनस्त्रिरावृत्त्या प्राणायाम इति स्मृतः ।
प्राणायामं विधायेत्थमृषिन्यासं समाचरेत् ।। 121 ।।

मायाबीज 'ह्रीं' का सोलह बार जप करते हुए पूरक करे । इससे सर्वांग को पूर्ण समझे । दाँयें हाथ की कनिष्ठा, अनामा और अंगुष्ठ से दोनों नासापुटों को बन्द करके 64 बार ह्रीं का जप करते हुए कुम्भक करे । नासापुट से अंगूठे को हटाकर बाँयीं नासा को बन्द करके 32 बार ह्रीं का जप करते हुए धीरे-धीरे रेचक करे । तीन बार इस क्रिया को करना प्राणायाम कहा जाता है । इसके बाद ऋष्यादि न्यास करे ।। 119-121 ।।

ऋष्यादि न्यास

अस्य मन्त्रस्य ऋषयो ब्रह्मा ब्रह्मर्षयस्तथा ।
गायत्र्यादीनि छन्दांसि आद्या काली तु देवता ।। 122 ।।
आद्याबीजं बीजमिति शक्तिर्माया प्रकीर्तिता ।
कमला कीलकं प्रोक्तं स्थानेष्वेतेषु वै न्यसेत् ।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादसर्वाङ्गकेषु च ।। 123 ।।
मूलमन्त्रेण हस्ताभ्यामापादमस्तकावधि ।

मस्तकात्पादपर्यन्तं सप्तधा वा त्रिधा न्यसेत् ।
अयं तु व्यापकन्यासो यथोक्तफलसिद्धिदः ॥ 124 ॥

ब्रह्मणे ब्रह्मर्षये नमः शिरसि ।
गायत्री छन्दसे नमः मुखे ।
आद्या काली देवतायै नमः हृदये ।
क्रीं बीजेभ्यो नमः गुह्ये ।
ह्रीं शक्तिभ्यो नमः पादयोः ।
श्रीं कीलकेभ्यो नमः नाभौ ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा—मन्त्रोच्चार करते हुए दोनों हाथों से चरणों से मस्तक तक और मस्तक से चरणों तक सात बार या तीन बार न्यास करे ।।122-124।।

यद्बीजाद्या भवेद्विद्यात्तद्बीजेनाङ्गकल्पना ।
अथवा मूलमन्त्रेण षड्दीर्घेण विना प्रिये ॥ 125 ॥
अङ्गुष्ठाभ्यां तर्जनीभ्यां मध्यमाभ्यां तथैव च ।
अनामिकाभ्यां कनिष्ठाभ्यां करयोस्तलपृष्ठयोः ।
नमः स्वाहा वषट् हुं च वौषट् फट्क्रमशः सुधीः ॥ 126 ॥
हृदयाय नमः पूर्वं मस्तके वह्निवल्लभा ।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम् ॥ 127 ॥

कराङ्ग न्यास

करन्यास— ह्रां अङ्गुष्ठाभ्या नमः । ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं ।
ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् ।
ह्रूँ मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

अथवा

ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा ।
ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट् ।
ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अनामिकाभ्यां हुम् ।
ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट् ।
ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

षडंगन्यास—ह्रां हृदयाय नमः । ह्रैं कवचाय हुं ।
ह्रीं शिरसे स्वाहा । ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ह्रूं शिखायै वषट् । ह्रः अस्त्राय फट् ।

अथवा

ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा हृदयाय नमः ।
ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा शिरसे स्वाहा ।
ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा शिखायै वषट् ।
ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा कवचाय हुं ।
ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अस्त्राय फट्।। 125-127 ।।

पीठन्यास

नेत्रत्रयाय वौषट् च अस्त्रायफडितिक्रमात् ।
षडङ्गानि विधायेत्थं पीठन्यासं समाचरेत् ।। 128 ।।
आधारशक्तिं कूर्मं च शेषं पृथ्वीं तथैव च ।
सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं पारिजाततरुं ततः ।। 129 ।।
चिन्तामणिगृहं चैव मणिमाणिक्यवेदिकाम् ।
तत्र पद्मासनं वीरो विन्यसेद्धृदयाम्बुजे ।। 130 ।।
दक्षवामांसयोर्वामकटी दक्षकटी तथा ।
धर्मं ज्ञानं तथैश्वर्य्यं वैराग्यं क्रमतो न्यसेत् ।। 131 ।।
मुखपार्श्वे नाभिदक्षपार्श्वे साधकसत्तमः ।
नञ्पूर्वाणि च तान्येव धर्मादीनि यथा मम् ।। 132 ।।
आनन्दकन्दं हृदये सूर्यं सोम हुताशनम् ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव बिन्दुयुक्तादिमाक्षरैः ।
केसरान् कर्णिकांश्चैव पत्रेषु पीठनायिकाः ।। 133 ।।
मङ्गला विजया भद्रा जयन्ती चापराजिता ।
नन्दिनी नारसिंही च वैष्णवीत्यष्टनायिकाः ।। 134 ।।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः ।
कपाली भीषणश्चैव संहारीत्यष्ट भैरवाः ।
दलाग्रेषु न्यसेदेतान् प्राणायामं ततश्चरेत् ।। 135 ।।

हृदयकमल में—

आधारशक्तये नमः । मणिद्वीपाय नमः ।
कुमार्यै नमः । पारिजाततरवे नमः ।
शेषाय नमः । चिन्तामाणिगृहाय नमः ।
पृथिव्यै नमः । मणिमाणिक्यवेदिकायै नमः।
सुधाम्बुधये नमः । पद्मासनाय नमः ।

दक्षस्कन्धे धर्माय नमः । हृदये— आनन्दकन्दाय नमः ।
वामस्कन्धे ज्ञानाय नमः । सूर्याय नमः ।
वामकटौ ऐश्वर्याय नमः । सोमाय नमः ।
दक्षकटौ वैराग्याय नमः । अग्नये नमः ।
मुखे अधर्माय नमः । सं सत्त्वाय नमः ।
वामपार्श्वे अज्ञानाय नमः । रं रजसे नमः ।
नाभौ अनैश्वर्याय नमः । तं तमसे नमः ।
दक्षपार्श्वे अवैराग्याय नमः । केसकेभ्यो नमः ।
कर्णिकायै नमः ।

पीठपद्म के पत्रों में इनका न्यास करे —

1. मङ्गलायै नमः । 5. अपराजितायै नमः
2. विजयायै नमः । 6. नन्दिन्यै नमः ।
3. भद्रायै नमः । 7. नारसिंह्यै नमः ।
4. जयन्त्यै नमः । 8. वैष्णव्यै नमः ।

अष्टपद्मपत्र के अग्र भाग में—

1. असितांगभैरवाय नमः । 5. भयंकरभैरवाय नमः ।
2. रुरुभैरवाय नमः । 6. कपालिभैरवाय नमः ।
3. चण्डभैरवाय नमः। 7. भीषणभैरवायः नमः ।
4. क्रोधोन्मत्तभैरवाय नमः । 8. संहारभैरवाय नमः ।। 128-135 ।।

महाकाली का ध्यान

गन्धपुष्पे समादाय करकच्छपमुद्रया ।
हृदि हस्तौ समाधाय ध्यायेद्देवीं सनातनीम् ।। 136 ।।
ध्यानं तु द्विविधं प्रोक्तं सरूपारूपभेदतः ।
अरूपं तव यद्ध्यानमवाङ्मनसगोचरम् ।। 137 ।।
अव्यक्तं सर्वतोव्याप्तमिदमित्थं विवर्जितम् ।
अगम्यं योगिभिर्गम्यं कृच्छ्रैर्बहुसमाधिभिः ।। 138 ।।
मनसो धारणार्थाय शीघ्रं स्वाभीष्टसिद्धये ।
सूक्ष्मध्यानप्रबोधाय स्थूलध्यानं वदामि ते ।। 139 ।।
अरूपायाः कालिकायाः कालमातुर्महाद्युतेः ।
गुणक्रियानुसारेण क्रियते रूपकल्पना ।। 140 ।।
मेघाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां रक्ताम्बरं बिभ्रतीं
पाणिभ्यामभयं वरं च विलसद्रक्तारविन्दस्थिताम् ।
नृत्यन्तं पुरतो निपीय मधुरं माध्वीकमद्यं महा-
कालं वीक्ष्य विकासिताननवरामाद्यां भजे कालिकाम् ।। 141 ।।

इसके वाद कच्छप मुद्रा बनाए हुए हाथों में गन्ध-फूल लेकर हृदय पर दोनों हाथ रखकर सनातनी देवी का ध्यान करे । ध्यान के दो प्रकार हैं—पहला साकार और दूसरा निराकार । सरूप अर्थात् साकार अरूप अर्थात् निराकार । तुम्हारा निराकार ध्यान वाणी और मन से अज्ञेय है । अव्यक्त सर्वव्यापी रूप सामान्य जनों के लिए दुर्ज्ञेय है । उपदेश से परे है । बड़े कष्ट और बड़ी समाधि द्वारा केवल योगियों को ज्ञेय है । इस समय मन में धारण करने योग्य शीघ्र अभीष्ट सिद्धिदायक, निराकार ध्यान के प्रबोध के लिये तुम्हारा स्थूल ध्यान बतलाता हूँ । वस्तुतः निराकार काल- जननी, महाज्योति कालिका के गुण-क्रियानुसार उनकी रूपकल्पना की जाती है । श्लोक 141 ध्यानमन्त्र है ।

महाकाली का वर्ण मेघ के समान है । ललाट पर चन्द्ररेखा है । इनके तीन नेत्र हैं । इनके वस्त्र लाल हैं । इनके दो हाथों में वर और अभय मुद्रा हैं । ये विकसित लाल कमल पर विराजमान हैं । महुआ के फूल से निर्मित मधुर मद्य का पान की हुई हैं । अपने सम्मुख महाकाल को नाचते हुए देखकर उनका मुख प्रफुल्ल हो उठा है । ऐसी महाकाली का मैं भजन करता हूँ ।। 136-141 ।।

मानसिक पूजन

एवं ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा तु साधकः ।
पूजयेत्परया भक्त्या मानसैरुपचारकैः ।। 142 ।।
हृत्पद्ममासनं दद्यात्सहस्त्रारच्युतामृतैः ।
पाद्यं चरणयोर्दद्यान्मनस्त्वर्घ्यं निवेदयेत् ।। 143 ।।
तेनामृतेनाचमनं स्नानीयमपि कल्पयेत् ।
आकाशतत्त्वं वसनं गन्धं तु गन्धतत्त्वकम् ।। 144 ।।
चित्तं प्रकल्पयेत्पुष्पं धूपं प्राणान्प्रकल्पयेत् ।
तेजस्तत्त्वं तु दीपार्थे नैवेद्यं च सुधाम्बुधिम् ।। 145 ।।
अनाहतध्वनिं घण्टां वायुतत्त्वं च चामरम् ।
नृत्यमिन्द्रियकर्माणि चाञ्चल्यं मनसस्तथा ।। 146 ।।
पुष्पं नानाविधं दद्यादात्मनो भावसिद्धये ।
अमायमनहङ्कारमरागममदं तथा ।। 147 ।।
अमोहकमदम्भं च अद्वेषाक्षोभके तथा ।
अमात्सर्यमलोभं च दशपुष्पं प्रकीर्तितम् ।। 148 ।।
अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।
दयाक्षमाज्ञानपुष्पं पञ्चपुष्पं ततः परम् ।। 149 ।।
इति पञ्चदशैः पुष्पैर्भावरूपैः प्रपूजयेत् ।
सुधाम्बुधिं मांसशैलं भर्जितं मीनपर्वतम् ।। 150 ।।
मुद्गराशिं सुभक्तं च घृताक्तं पायसं तथा ।
कुलामृतं च तत्पुष्पं पीठक्षालनवारि च ।। 151 ।।
कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत् ।
माला वर्णमयी प्रोक्ता कुण्डली सूत्रयन्त्रिता ।। 152 ।।

साधक अपने सिर पर फूल रखकर ऊपर वर्णित ध्यान करके परम भक्ति से मानसोपचारों से उनका पूजन करे ।

1. आसनरूप में हृदयकमल को करता तुझे समर्पित ।
2. सहस्त्रदल कमलच्युत अमृत का अर्घ्य करता तुझे समर्पित ।
3. सहस्त्रदलपद्मच्युत सुधा से करता आचमन तुझे समर्पित ।
4. सहस्त्रार पद्मच्युत सुधाम्बु स्नानार्थ तुझे समर्पित ।
5. आकाश तत्त्वरूपी गन्ध करता तुझे समर्पित ।
6. गन्ध तत्त्वरूपी गन्ध करता तुझे समर्पित ।

7. चित्तरूपी पुष्पों को करता तुझे समर्पित ।
8. पञ्च प्राणों का धूप करता तुझे समर्पित ।
9. तेजस्तत्त्व का दीपक करता तुझे समर्पित ।
10. सुधासिन्धु नैवेद्यरूप में करता तुझे समर्पित ।
11. अनहद नाद का घंटाध्वनि करता तुझे समर्पित ।
12. वायु तत्त्व का चामर करता तुझे समर्पित ।
13. इन्द्रियों के सभी कार्य, मन की चञ्चलता का करता नृत्य समर्पित ।
14. मायाराहित्य पुष्प को करता तुझे समर्पित ।
15. अहंकारहीनता पुष्प को करता तुझे समर्पित ।
16. रागहीनता पुष्प को करता तुझे समर्पित ।
17. मदविहीनता प्रसून करता तुझे समर्पित ।
18. मोहराहित्य पुष्प को करता तुझे समर्पित ।
19. दम्भहीनता पुष्प को करता तुझे समर्पित ।
20. द्वेषहीनता पुष्प को करता तुझे समर्पित ।
21. क्षोभहीनता पुष्प को करता तुझे समर्पित ।
22. मात्सर्यहीनता भावपुष्प को करता तुझे समर्पित ।
23. लोभहीनता भावपुष्प को करता तुझे समर्पित ।
24. अहिंसारूपी परम पुष्प को करता तुझे समर्पित ।
25. इन्द्रियनिग्रहरूप सुमन को करता तुझे समर्पित ।
26. दयास्वरूपी भावपुष्प को करता तुझे समर्पित ।
27. क्षमास्वरूपी भावपुष्प को करता तुझे समर्पित ।
28. ज्ञानरूप का पुष्पसुभग यह करता तुझे समर्पित ।

इस प्रकार पन्द्रह भावपुष्पों से पूजा करे । इसके बाद सुधासिन्धु, मांसपर्वत,तले मत्स्य का पर्वत, मुद्रा की राशि, उत्तम अन्न, घृताक्त पायस, कुलामृत, स्वयम्भू कुसुम, पीठक्षालन जल, योनि-प्रक्षालन जल मन ही मन देवी को देकर विघ्नकारक काम-क्रोध की बलि देकर जप आरम्भ करे । कुण्डलिनी-सूत्र में गुथी हुई मातृकाओं की अक्षमाला से जप करे ।। 142-152 ।।

अक्षमाला

सबिन्दुं मन्त्रमुच्चार्य मूलमन्त्रं समुच्चरेत् ।
अकारादिलकारान्तमनुलोम इति स्मृतः ।। 153 ।।
पुनर्लकारमारभ्य श्रीकण्ठान्तं मनुं जपेत् ।
विलोम इति विख्यातः क्षकारो मेरुरुच्यते ।। 154 ।।
अष्टवर्गान्तिमैर्वर्णैः सहमूलमथाष्टकम् ।
एवमष्टोत्तरशतं जप्त्वा चेमं समर्पयेत् ।। 155 ।।
सर्वान्तरात्मनि लये स्वान्तर्ज्योतिःस्वरूपिणी ।
गृहाणान्तर्जपं मातराद्ये कालि नमोऽस्तु ते ।। 156 ।।
समर्प्य जपमेतेन साष्टाङ्गं प्रणमेद्धिया ।
इत्यन्तर्यजनं कृत्वा बहिः पूजां समारभेत् ।। 157 ।।

अनुस्वारसहित अं से ल तक के पचास वर्णों के साथ मूल मन्त्र का जप करे । 'क्ष' मेरु है, तब अनुस्वारयुक्त लकार से अकार तक के पचास वर्णों के साथ मूल मन्त्र का जप करे । तब आठ वर्गों के प्रथमाक्षर में अनुस्वार लगाकर जप करे । इस प्रकार 108 मन्त्र जप होता है । वर्णों से सम्पुटित जप श्रेष्ठ होता है ।

1. अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा अं ।
2. आं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा आं ।
3. इं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा इं ।
4. ईं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ईं ।
5. उं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा उं ।
6. ऊं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ऊं ।
7. ऋं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ऋं ।
8. ॠं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ॠं ।
9. ऌं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ऌं ।
10. ॡं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ॡं ।
11. एं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा एं ।
12. ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ऐं ।
13. ओं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ओं ।

14. औं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा औं ।
15. अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा अं ।
16. अः ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा अः ।
17. कं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा कं ।
18. खं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा खं ।
19. गं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा गं ।
20. घं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा घं ।
21. ङं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ङं ।
22. चं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा चं ।
23. छं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा छं ।
24. जं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा जं ।
25. झं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा झं ।
26. ञं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ञं ।
27. टं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा टं ।
28. ठं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ठं ।
29. डं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा डं ।
30. ढं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ढं ।
31. णं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा णं ।
32. तं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा तं ।
33. थं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा थं ।
34. दं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा दं ।
35. धं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा धं ।
36. नं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा नं ।
37. पं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा पं ।
38. फं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा फं ।
39. बं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा बं ।
40. भं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा भं ।
41. मं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा मं ।
42. यं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा यं ।
43. रं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा रं ।

44. लं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा लं ।
45. वं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा वं ।
46. शं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा शं ।
47. षं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा षं ।
48. सं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा सं ।
49. हं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा हं ।
50. ळं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ळं ।

यहाँ तक अनुलोम जप हुआ; 'क्षं' सुमेरु है । अव विलोम जप होता है—

51. ळं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ळं ।
52. हं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा हं ।
53. सं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा सं ।
54. षं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा षं ।
55. शं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा शं ।
56. वं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा वं ।
57. लं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा लं ।
58. रं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा रं ।
59. यं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा यं ।
60. मं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा मं ।
61. भं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा भं ।
62. बं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा बं ।
63. फं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा फं ।
64. पं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा पं ।
65. नं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा नं ।
66. धं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा धं ।
67. दं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा दं ।
68. थं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा थं ।
69. तं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा तं ।
70. णं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा णं ।

71. ढं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ढं ।
72. डं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा डं ।
73. ठं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ठं ।
74. टं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा टं ।
75. ञं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ञं ।
76. झं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा झं ।
77. जं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा जं ।
78. छं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा छं ।
79. चं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा चं ।
80. ङं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ङं ।
81. घं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा घं ।
82. गं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा गं !
83. खं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा खं ।
84. कं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा कं ।
85. अः ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा अः ।
86. अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा अं ।
87. औं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा औं ।
88. ओं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ओं ।
89. ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ऐं ।
90. एं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा एं ।
91. लॄं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा लॄं ।
92. लृं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा लृं ।
93. ॠं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ॠं ।
94. ऋं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ऋं ।
95. ऊं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ऊं ।
96. उं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा उं ।
97. ईं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ईं ।
98. इं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा इं ।
99. आं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा आं ।
100. अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा अं ।

101. अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा अं ।
102. कं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा कं ।
103. चं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा चं ।
104. टं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा टं ।
105. तं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा तं ।
106. पं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा पं ।
107. यं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा यं ।
108. शं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा शं ।

इस जप को श्लोक 156 का उच्चारण करके देवी के बाँयें हाथ में समर्पित करे । हे सर्वान्तःकरणवासिनी! हे अन्तरात्मज्योतिःस्वरूपे! हे मातः! हे आद्ये कालिके! तुमको मैं प्रणाम करता हूँ । मेरे इस मानस जप को ग्रहण करो । इस प्रकार जप समर्पित करके मन ही मन भगवती को प्रणाम करे । इसके बाद बाह्य पूजा प्रारम्भ करे ।। 153-157 ।।

बाह्य पूजन विशेषार्घ्यस्थापन

विशेषार्घस्य संस्कारस्तत्रादौ कथ्यते शृणु ।
यस्य स्थापनमात्रेण देवता सुप्रसीदति ।। 158 ।।
दृष्ट्वार्घ्यपात्रं योगिन्यो ब्रह्माद्या देवतागणाः ।
भैरवा अपि नृत्यन्ति प्रीत्या सिद्धिं ददत्यपि ।। 159 ।।
स्ववामे पुरतो भूमौ सामान्यार्घ्यस्य वारिणा ।
मायागर्भं त्रिकोणं च वृत्तं च चतुरस्रकम् ।। 160 ।।
विलिख्य पूजयेत्तत्र मायाबीजपुरःसरम् ।
ङेन्तामाधारशक्तिं च नमःशब्दावसानिकाम् ।। 161 ।।
ततः प्रक्षालिताधारं विन्यस्य मण्डलोपरि ।
मं वह्निमण्डलं ङेन्तं दशकलात्मने ततः ।। 162 ।।
नमोऽन्तेन च सम्पूज्य क्षालयेदर्घ्यपात्रकम् ।
अस्त्रेण स्थापयेत्तत्र आधारोपरि साधकः ।। 163 ।।
अमर्कमण्डलायोक्त्वा द्वादशान्तकलात्मने ।
नमोऽन्तेन यजेत्पात्रं मूलेनैव प्रपूरयेत् ।। 164 ।।
त्रिभागमलिनापूर्य शेषं तोयेन साधकः ।
गन्धपुष्पे तत्र दत्त्वा पूजयेदमुनाम्बिके ।। 165 ।।
षष्ठस्वरं बिन्दुयुक्तं ङेऽन्तं वै चन्द्रमण्डलम् ।
षोडशान्ते कलाशब्दादात्मने नम इत्यपि ।। 166 ।।

ततस्तु श्रैफले पत्रे रक्तचन्दनचर्चितम् ।
दूर्वा पुष्पं साक्षतं च कृत्वा तत्र निधापयेत् ।। 167 ।।
मूलेन तीर्थमावाह्य तत्र देवीं विभाव्य च ।
पूजयेद्गन्धपुष्पाभ्यां मूलं द्वादशधा जपेत् ।। 168 ।।
धेनुयोनीं दर्शयित्वा धूपदीपौ प्रदर्शयेत् ।
तदम्बु प्रोक्षणीपात्रे किञ्चिन्नि:क्षिप्य साधकः ।। 169 ।।
आत्मानं देयवस्तूनि प्रोक्षयेत्तेन मन्त्रवित् ।
पूजासमाप्तिपर्यन्तमर्घ्यपात्रं न चालयेत् ।। 170 ।।

हे देवि! पहले विशेषार्घ्य का संस्कार बतलाता हूँ, सुनो । विशेषार्घ्य के स्थापन से ही देवता प्रसन्न होता है । ब्रह्मा आदि देवता, योगिनियाँ और भैरववृन्द अर्घ्यपात्र का दर्शन करके नाचने लगते हैं और प्रसन्न हृदय से सिद्धि प्रदान करते हैं । अपनी बाँईं ओर सामने की भूमि पर समान्यार्घ्य जल से एक त्रिकोण बनाए । इसके मध्य में मायाबीज 'ह्रीं' का अंकन करे । त्रिकोण के बाहर एक वृत्त बनावे । उसके बाहर एक चतुरस्त्र बनाए । यन्त्र निम्न प्रकार होता है—

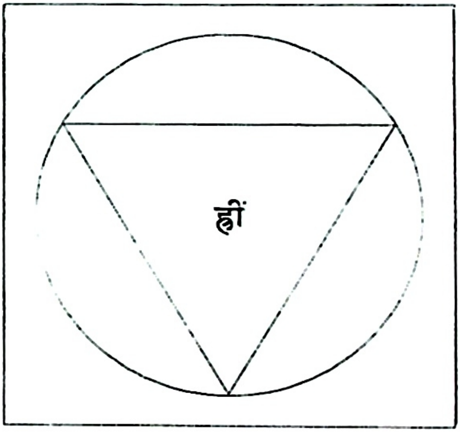

'ह्रीं' आधारशक्तये नमः' से इसका पूजन करे । तब इस पर प्रच्छालित आधार की स्थापना करे । 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' से पूजा करे । फट् मन्त्र से अर्घ्यपात्र को धोकर उस आधार पर स्थापित करे । तब 'अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' से उस पात्र में पूजा करे । इसके बाद मूल मन्त्र से अर्घ्यपात्र के तीन चौथाई को मद्य से और एक चौथाई जल से भरकर उसमें गन्ध-पुष्प छोड़े । तब रक्षा मन्त्र से उसमें पूजा करे । इसके बाद 'उं

चन्द्रमण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' से पूजा करके बेलपत्र, लाल चन्दनलिप्त दूब, पुष्प, अक्षत एकत्र करके उस पात्र के आगे स्थापित करे । तब मूल मन्त्र से उसमें तीर्थों का आवाहन करे । देवी का ध्यान करके गन्ध-पुष्प से पूजा कर बारह बांर मूल मन्त्र का जप करे । इसके बाद साधक धेनु और योनिमुद्रायें दिखाकर धूप-दीप प्रदान करे । तब उस जल में-से थोड़ा जल प्रोक्षणी पात्र में डालकर उससे अपना तथा पूजन-सामग्रियों का प्रोक्षण करे । मन्त्रज्ञ साधक पूजा की समाप्ति तक विशेषार्घ्य पात्र को हिलावे नहीं।। 158-170 ।।

पूजन यन्त्र का अंकन

विशेषार्घ्यस्य संस्कारः कथितोऽयं शुचिस्मिते ।
यन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि समस्तपुरुषार्थदम् ।। 171 ।।
मायागर्भं त्रिकोणं च तद्वाह्ये वृत्तयुग्मकम् ।
तयोर्मध्ये युग्मयुग्मक्रमात्षोडशकेसरान् ।। 172 ।।
तद्वाह्येऽष्टदलं पद्मं तद्वहिर्भूपुरं लिखेत् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तसुरेखं सुमनोहरम् ।। 173 ।।
स्वर्णे वा राजते ताम्रे कुण्डगोलविलेपिते ।
स्वयम्भूकुसुमैर्युक्ते चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।। 174 ।।
कुशीदेनाथवा लिप्ते स्वर्णमय्या शलाकया ।
मालूरकण्टकेनापि मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।। 175 ।।
विलिखेद्यन्त्रराजं तु देवताभावसिद्धये ।
अथवोत्कीलरेखाभिः स्फाटिके विद्रुमेऽपि वा ।। 176 ।।
वैदूर्ये कारयेद्यन्त्रं कारुकेण सुशिल्पिना ।
शुभप्रतिष्ठितं कृत्वा स्थापयेद्भवनान्तरे ।। 177 ।।
नश्यन्ति दुष्टभूतानि ग्रहरोगभयानि च ।
पुत्रपौत्रसुखैश्वर्यैर्मोदते तस्य मन्दिरम् ।।
दाता भर्त्ता यशस्वी च भवेद्यन्त्रप्रसादतः ।। 178 ।।
एवं यन्त्रं समालिख्य रत्नसिंहासने पुरः ।
संस्थाप्य पीठन्यासोक्तविधिना पीठदेवताः ।
सम्पूज्य कर्णिकामध्ये पूजयेन्मूलदेवताम् ।। 179 ।।

हे शुचिस्मिते! विशेषार्घ्य संस्कार का वर्णन हो चुका । अब धर्मार्थ-काम-मोक्षप्रदायक यन्त्रराज को अंकित करने की विधि बतलाता हूँ । पहले एक त्रिभुज बनावें । उसमें मायाबीज ह्रीं लिखें । उसके बाहर दो वृत्त बनावें । दोनों

वृत्तों के मध्य में दो-दो करके सोलह केशर बनावे । इन वृत्तद्वय के बाहर अष्टदल पद्म बनावे । इसके बाहर चार द्वारयुक्त सरल रेखा वाला सुन्दर भूपुर बनावे । पूजन यन्त्र इस प्रकार होता है ।

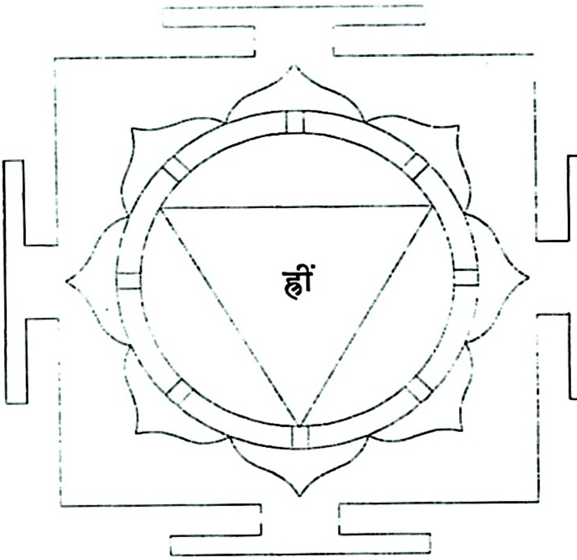

कुण्डगोल (विधवा स्त्री का मासिक रजःस्राव) द्वारा अथवा कुमारी कन्या के प्रथम रजःस्राव 'स्वयम्भू कुसुम' से लिप्त या चन्दन-अगर-कुंकुम से लिप्त अथवा लाल चन्दनलिप्त स्वर्णपत्र या रजतपत्र या ताम्रपत्र पर सोने की कलम से या बेल के काँटे से यन्त्र को अंकित करे । यन्त्राङ्कन के समय मूल मन्त्र का जप करता रहे । इससे देवताभाव की सिद्धि होती है । अथवा स्फटिक, मूँगा, वैडूर्य में उत्तम शिल्पकार के द्वारा मन्त्ररेखाएँ खुदवा कर प्राणप्रतिष्ठापूर्वक घर के अन्दर इस यन्त्र की स्थापना करे या कराए । जिस घर में यह यन्त्र स्थापित रहता है, उस घर में इसके प्रभाव से भूतगण, ग्रहसमुदाय, रोग, भय आदि की पीड़ा नहीं होती हैं । इस घर से ये सब दूर रहते हैं । वह घर पुत्र-पौत्र-सुख-ऐश्वर्य से आनन्दित रहता हैं । इस यन्त्र के प्रसाद से वह साधक स्वयं दाता, भर्ता और यशस्वी होता है ।

इस प्रकार का यन्त्र बनाकर अपने सामने सिंहासन पर स्थापित करना चाहिये । पीठव्यासोक्त विधि से पीठ देवताओं की पूजा करके कर्णिका के मध्य में मूल देवता की पूजा करे ।। 171-179 ।।

कलश-स्थापन कलश-लक्षण

कलशस्थापनं वक्ष्ये चक्रानुष्ठानमेव च ।
येनानुष्ठानमात्रेण देवता सुप्रसीदति ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नूनमिच्छासिद्धिः प्रजायते ।। 180 ।।
कलां कलां गृहीत्वा तु देवानां विश्वकर्मणा ।
निर्मितोऽयं स वै यस्मात्कलशस्तेन कथ्यते ।। 181 ।।
षट्त्रिंशदङ्गुलायामं षोडशाङ्गुलमुच्चकैः ।
चतुरङ्गुलिकं कण्ठं मुखं तस्य षडङ्गुलम् ।
पञ्चाङ्गुलिमितं मूलं विधानं घटनिर्मितौ ।। 182 ।।
सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यजं मृत्तिकोद्भवम् ।
पाषाणं काचजं वापि घटमक्षतमव्रणम् ।
कारयेद्देवताप्रीत्यै वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।। 183 ।।
सौवर्णं भोगदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदायकम् ।
ताम्रं प्रीतिकरं ज्ञेयं कांस्यजं पुष्टिवर्द्धनम् ।
काचं वश्यकरं प्रोक्तं पाषाणं स्तम्भकर्मणि ।
मृन्मयं सर्वकार्येषु सुदृश्यं सुपरिष्कृतम् ।। 184 ।।
स्ववामभागे षट्कोणं तन्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रकम् ।
तद्बहिर्वृत्तमालिख्य चतुरस्रं ततो बहिः ।
सिन्दूररजसा वापि रक्तचन्दनकेन वा ।
निर्माय मण्डलं तत्र यजेदाधारदेवताम् ।। 186 ।।
मायामाधारशक्तिं च ङेनमोऽन्तां समुद्धरेत् ।
नमसा क्षालिताधारं स्थापयेन्मण्डलोपरि ।। 187 ।।
अस्त्रेण क्षालितं कुम्भं तत्राधारे निवेशयेत् ।। 188 ।।
क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुसमायुतैः ।
मूलं समुच्चरन्मन्त्री कारणेन प्रपूरयेत् ।। 189 ।।
आधारकुम्भतीर्थेषु वह्न्यर्कशशिमण्डलम् ।
पूर्ववत्पूजयेद्विद्वान् देवीभावपरायणः ।। 190 ।।
रक्तचन्दनसिन्दूररक्तमाल्यानुलेपनैः ।
भूषयित्वा तु कलशं पञ्चीकरणमाचरेत् ।। 191 ।।
फटा दर्भेण सन्ताड्य हुंबीजेनावगुण्ठयेत् ।
ह्रींदिव्यदृष्ट्या संवीक्ष्य नमसाभ्युक्षणं चरेत् ।

मूलेन गन्धं त्रिर्दद्यात्पञ्चीकरणमीरितम् ।। 192 ।।
प्रणम्य कलशं रक्तपुष्पं दत्त्वा विशोधयेत् ।। 193 ।।

अब कलश-स्थापन और चक्रानुष्ठान का वर्णन किया जाता है । ऐसा करने से निश्चय ही देवता को बड़ी प्रसन्नता होती है । मन्त्र सिद्ध होता है । इच्छासिद्धि की प्राप्ति होती है ।

विश्वकर्मा के द्वारा देवताओं का एक-एक अंश लेकर कलश की रचना हुई है । इसी से इसका नाम कलश है । कलश की चौड़ाई 36 अंगुल और ऊँचाई 16 अंगुल होती है । इसके कण्ठ का परिमाण चार अंगुल होता है । मुख का विस्तार 6 अंगुल होता है तथा तल का परिमाण 5 अंगुल होता है ।

देवता की प्रीति के लिये सोना, चाँदी, ताम्बा, कांसा, मिट्टी, पत्थर या काँच का कलश बनवाना चाहिये । कलश में टूट-फूट या छिद्र नहीं होना चाहिये । इसके बनवाने में धन की कञ्जूसी न करे । स्वर्णकलश से भोग प्राप्त होता है । चाँदी के कलश से मोक्ष मिलता है । ताम्बे के कलश से प्रीति की वृद्धि होती है । काँसे का कलश पुष्टिवर्द्धक होता है । काँच का कलश वशीकरण कर्म में प्रशस्त होता है । पत्थर से निर्मित कलश से स्तम्भन होता है और मिट्टी के कलश से सभी कार्य सिद्ध होते हैं । पूर्वोक्त द्रव्यों से निर्मित कलश सभी प्रकार से सुन्दर और सुडौल दिखना चाहिये ।

अपनी बाँईं ओर एक षट्कोण बनाकर उसके मध्य में एक शून्य बनाए । उसके बाहर एक वृत्त बनाए । वृत के बाहर एक चतुर्भुज बनाए । यह यन्त्र इस प्रकार का होता है —

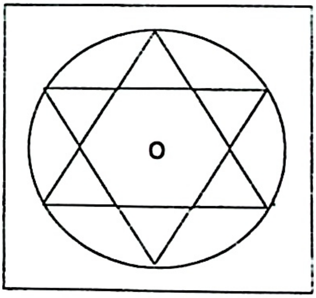

इस प्रकार सिन्दूर या लाल चन्दन से मण्डल बनाकर उस पर आधारदेवता का पूजन 'ह्रीं आधारशक्तये नमः' मन्त्र से करे । इसके बाद 'नमः' से आधार

(त्रिपाद) को धोकर मण्डल के ऊपर स्थापित करे अथवा मिट्टी रक्खे । तब 'फट्' से घट को धोकर उसे आधार पर स्थापित करे । मन्त्रज्ञ साधक 'क्ष' से लेकर 'अ' तक के वर्णों को अनुस्वारयुक्त करके उच्चारण करते हुए कलश को मद्य से पूर्ण करे । कुलाचारी साधक देवीभाव-परायण होकर आधार में वह्निमण्डल का, कलश में सूर्यमण्डल का और कुम्भ के मद्य में चन्द्रमण्डल का पूजन करे । अग्निमण्डल में दश वह्निकला का पूजन करे । जैसे—

1. यं धूम्रार्चिष्कलायै नमः । 6. षं सुश्रीकलायै नमः ।
2. रं उष्माकलायै नमः । 7. सं सुरूपाकलायै नमः ।
3. लं ज्वलिनीकलायै नमः । 8. हं कपिलाकलायै नमः ।
4. वं ज्वालिनीकलायै नमः । 9. लं हव्यवाहिनीकलायै नमः ।
5. शं विस्फुलिङ्गिनीकलायै नमः । 10. क्षं कव्यवाहिनीकलायै नमः ।

सूर्यमण्डल में बारह सूर्यकलाओं का पूजन होता है । जैसे—

1. कं भं तपिनीकलायै नमः । 7. छं दं सुषुम्नाकलायै नमः ।
2. खं वं तापिनीकलायै नमः । 8. जं थं भोगदाकलायै नमः ।
3. गं फं धूम्राकलायै नमः । 9. झं तं विश्वाकलायै नमः ।
4. घं पं मरीचिकलायै नमः । 10. ञं णं बोधिनीकलायै नमः ।
5. ङं नं ज्वलिनीकलायै नमः । 11. टं ढं धारिणीकलायै नमः ।
6. चं धं रुचिकलायै नमः । 12. ठं डं क्षमाकलायै नमः ।

सोममण्डल में सोलह सोमकलाओं की पूजा होती है । जैसे—

1. अं अमृताकलायै नमः । 9. लृं चन्द्रिकाकलायै नमः ।
2. आं मानदाकलायै नमः । 10. लॄं कान्तिकलायै नमः ।
3. इं पूषाकलायै नमः । 11. एं ज्योत्स्नाकलायै नमः ।
4. ईं तुष्टिकलायै नमः । 12. ऐं श्रीकलायै नमः ।
5. उं पुष्टिकलायै नमः । 13. ओं प्रीतिकलायै नमः ।
6. ऊँ रतिकलायै नमः । 14. औं अंगदाकलायै नमः ।
7. ऋं शशिनीकलायै नमः । 15. अं पूर्णाकलायै नमः ।
8. ॠं धृतिकलायै नमः । 16. अः पूर्णामृताकलायै नमः ।

तब लाल चन्दन, सिन्दूर, लाल माला आदि से कलश को सुशोभित करके पञ्चीकरण करे । 'फट्' बोलते हुए कुश से कलश का ताड़न करे । 'हं' बोलते हुये अवगुण्ठन मुद्रा द्वारा कलश को अवगुण्ठित करे । अपलक दृष्टि से कलश को देखकर विघ्नोत्सारण करे । 'नमः' बोलकर जल से कलश को अभ्युक्षित करे । मूल मन्त्र से कलश में तीन बार चन्दन छिड़के । यही पञ्चीकरण होता है । कलश को प्रणाम करे । लाल फूल चढ़ाये और तब सुरा का शोधन करे ।। 180-193 ।।

सुरा-शोधन

एवमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ।। 194 ।।
सूर्यमण्डलमध्यस्थे वरुणालयसम्भवे ।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ।। 195 ।।
वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ।। 196 ।।
ह्रींहंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिदुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजाऋतं बृहत् ।। 197 ।।
वारुणेन च बीजेन षड्दीर्घस्वरभाजिना ।
ब्रह्मशापविशब्दान्ते मोचितायै पदं वदेत् ।।
सुधादेव्यै नमः पश्चात्सप्तधा ब्रह्मशापनुत् ।। 198 ।।
अङ्कुशं दीर्घषट्केण युतं श्रीमायया युतम् ।
सुधा पश्चाद्ब्रह्मशापं मोचयेति पदं ततः ।
अमृतं स्रावयद्वन्द्वं द्विठान्तो मनुरीरितः ।। 199 ।।
एवं शापान्मोचयित्वा यजेत्तत्र समाहितः ।
आनन्दभैरवं देवमानन्दभैरवीं तथा ।। 200 ।।
हसक्षमलशब्दान्ते वरयूं मिलितं वदेत् ।
आनन्दभैरवं ङेऽन्तं वषडन्तो मनुर्मतः ।। 201 ।।
अस्यास्यं विपरीतं च श्रवणे वामलोचना ।
सुधादेव्यै वौषडन्तो मनुरस्याः प्रपूजने ।। 202 ।।
सामरस्यं तयोस्तत्र ध्यात्वा तदमृतप्लुतम् ।
द्रव्यं विभाव्य तस्योर्ध्वे मूलं द्वादशधा जपेत् ।। 203 ।।
मूलेन देवताबुद्ध्या दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं ततः ।

दर्शयेद् धूपदीपौ च घण्टावादनपूर्वकम् ।। 204 ।।
इत्थं तीर्थस्य संस्कारः सर्वदा देवपूजने ।
व्रते होमे विवाहे च तथैवोत्सवकर्मणि ।। 205 ।।

194 से 199 तक के श्लोक सुरा-शोधन के मन्त्र हैं । इनसे सुरा का शोधन होता है । परब्रह्म अद्वितीय, स्थूल, सूक्ष्म तथा नित्य है । मैं उसके द्वारा कचजनित ब्रह्महत्या का नाश करता हूँ । हे सुरा देवि! सूर्यमण्डल में रहने वाली, सागर से उत्पन्ने! हे अमाबीजमयी! तुम शुक्राचार्य के शाप से मुक्त हो जाओ । ब्रह्मानन्दमय प्रणव यदि वेदों का बीजस्वरूप है तो हे देवि! उस सत्य के प्रताप से तुम्हारी ब्रह्महत्या नष्ट हो जाय । परम हंस तेजोमय स्वर्ग में रहता है । वसुरूप में वह स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य अन्तरिक्ष में घूमता है । पृथ्वी पर वह वैदिक अग्नि और होतारूप में है । उसकी पूजा अतिथिरूप में होती है । वह गृहस्थ की अग्नि में, मनुष्य की चेतना में और सत्य-लोक में रहता है । सत्य और आकाश में वह स्थित है । श्लोक 198 के उद्धार करने पर जो मन्त्र बनता है, वह है—'वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः' । इस मन्त्र का सात बार पाठ करने से ब्रह्म का शाप दूर होता है । श्लोक 199 के उद्धार करने से जो मन्त्र बनता है, वह है—'क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः श्रीं ह्रीं सुधा ब्रह्मशापं मोचय अमृतं श्रावय श्रावय स्वाहा ।'

इस प्रकार शापमोचन करके एकाग्र हृदय से उसमें आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी की पूजा करे । श्लोक 201 का उद्धार करने पर आनन्दभैरव का निम्न मन्त्र बनता है—'ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवाय वषट् ।' इससे आनन्दभैरव का पूजन करे ।

श्लोक 202 के मन्त्रोद्धार करने पर आनन्दभैरवी का मन्त्र इस प्रकार का होता है—'स ह क्ष म ल व र यीं आनन्दभैरव्यै सुधादेव्यै वौषट् ।' उस कलश में आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी की समरसता का ध्यान करके उनके अमृत से उसे संसिक्त मानकर उसके ऊपर बारह बार मूल मन्त्र का जप करे । तब देवता मानकर उस मद्य के ऊपर मूल मन्त्र का पाठ करते हुए तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान कर घंटी बजाते हुए धूप-दीप दिखाये । देवपूजा, व्रत, हवन, विवाह और अन्य उत्सवों में इसी प्रकार सुरा का संस्कार करे ।। 194-205 ।।

मांस-शोधन

मांसमानीय पुरतस्त्रिकोणमण्डलोपरि ।
फटाभ्युक्ष्य वायुवह्निबीजाभ्यां मन्त्रयेत्त्रिधा ।। 206 ।।

कवचेनावगुण्ठ्याथ संरक्षेच्चस्त्रमन्त्रतः ।
धेन्वा वममृतीकृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।। 207 ।।
विष्णोर्वक्षसि या देवी या देवी शङ्करस्य च ।
मांसं कुरु पवित्रं मे तद्विष्णोः परमं पदम् ।। 208 ।।

सम्मुख-स्थित त्रिकोणमण्डल पर मांसपात्र को लाकर 'फट्' से अभ्युक्षित करे । वायुबीजं 'यं' और वह्निबीजं 'रं' से तीन बार अभिमन्त्रित करे । तब कवचमन्त्र 'हूं' बोलते हुए अवगुण्ठन मुद्रा से उसे अवगुण्ठित करे । अस्त्रमन्त्र 'फट्' से उसकी रक्षा करे । तब 'वं' मन्त्र बोलकर धेनुमुद्रा से उसका अमृतीकरण करे । इसके बाद मन्त्ररूप श्लोक 208 का पाठ करे । जो देवी विष्णु के वक्षःस्थल पर और जो देवी शंकर के वक्षःस्थल पर विराजती हैं, वह मेरे इस मांस को पवित्र करें । वह मेरे लिये विष्णु का प्रधान पद निश्चित करें । यही मांस-शोधन की विधि है ।। 206-208 ।।

मत्स्य-शोधन

इत्थं मीनं समानीय प्रोक्तमन्त्रेण संस्कृतम् ।
मन्त्रेणानेन मतिमांस्तं मीनमभिमन्त्रयेत् ।। 209 ।।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।। 210 ।।

कुलधर्मज्ञ साधक मत्स्यपात्र लाकर पूर्वोक्त मांसशोधन मन्त्रों से उसे शोधित करे । इसके बाद श्लोक 210 में वर्णित त्र्यम्बक मन्त्र से अभिमन्त्रित करे । उस त्र्यम्बक शिव की हम पूजा करते हैं, जो सुगन्धि और पुष्टि की वृद्धि करने वाला है । खरबूजे को जैसे लता-पत्र से अलग किया जाता है, उसी प्रकार हम बन्धनों से मुक्त हो जायँ और अन्त में मृत्यु से मुक्त होकर परमात्मा में लय हो जायँ ।। 209-210 ।।

मुद्रा-शोधन

तथैव मुद्रामादाय शोधयेदमुना प्रिये ।
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ।।
ओं तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ।। 211 ।।

मुद्रापात्र को लाकर पूर्वोक्त प्रकार से शोधित करके श्लोक 211 मन्त्र से अभिमन्त्रित करे । हम जैसे सूर्य को देखते हैं, वैसे ही विष्णु का परमपद सर्वदा दिखाई देता है । जो अपने मन को वश में रखता है और जागता रहता है, वह विष्णु के परम पद का दर्शन करता है ।। 211 ।।

पञ्चतत्त्व-शोधन

अथवा सर्वतत्त्वानि मूलेनैव विशोधयेत् ।
मूले तु श्रद्दधानो यः किं तस्य दलशाखया ।। 212 ।।
केवलं मूलमन्त्रेण यद्द्रव्यं शोधितं भवेत् ।
तदेव देवताप्रीत्यै सुप्रशस्तं मयोच्यते ।। 213 ।।
यदा कालस्य संक्षेपात्साधकानवकाशतः ।
सर्वं मूलेन संशोध्य महादेव्यै निवेदयेत् ।। 214 ।।
न चात्र प्रत्यवायोऽस्ति नाङ्गवैगुण्यदूषणम् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमिति शङ्करशासनम् ।। 215 ।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मन्त्रोद्धारकलशस्थापन-तत्त्वसंस्कारोनाम पञ्चमोऽध्यायः

❖

अथवा मूलमन्त्र से ही पाँचों तत्त्वों का शोधन करे । जिसे मूल मन्त्र पर श्रद्धा है, उसे शाखापल्लव से क्या प्रयोजन? मैं कहता हूँ कि केवल मूल मन्त्र से जो द्रव्य-शोधन होता है, वह देवता की प्रीति के लिये सर्वाधिक उत्तम होता है । जिस समय साधक को समय की कमी हो, उस समय सभी द्रव्यों को मूलमन्त्र से ही शोधित करके महादेवी को निवेदित करे । मूल मन्त्रों से शोधित सभी तत्त्वों को देवी को निवेदित करने में कोई दोष नहीं होगा और न किसी अंग में कमी होने का दोष होगा, यह सत्य है । यह सत्य है । पुनः कहता हूँ कि यह सत्य है । यह शंकर का शासन है ।। 212-215 ।।

मन्त्रोद्धार-कलशस्थापन-तत्त्वसंस्कार नामक पञ्चमोल्लास सम्पूर्ण

❖

षष्ठ उल्लास

पात्र-स्थापन और चक्र-होमकरणादि

सुराभेद

यत्त्वया कथितं पञ्चतत्त्वं पूजादिकर्मणि।
विशिष्य कथ्यतां नाथ यदि तेऽस्ति कृपा मयि ॥ 1 ॥
गौडी पैष्टी तथा माध्वी त्रिविधा चोत्तमा सुरा।
सैवा नानाविधा प्रोक्ता तालखर्जूरसम्भवा ॥
तथा देशविभेदेन नानाद्रव्यविभेदतः।
बहुधेयं समाख्याता प्रशस्ता देवतार्चने ॥ 2 ॥
येन केन समुत्पन्ना येन केनाहृतापि वा।
नात्र जातिविभेदोऽस्ति शोधिता सर्वसिद्धिदा ॥ 3 ॥

श्रीदेवी ने पूछा कि हे नाथ! आपने पूजनादि कर्म के लिए पाँच तत्त्वों का उल्लेख किया है। इस समय मुझ पर यदि आपकी कृपा हो तो पञ्चतत्त्वों का विशेष वर्णन कीजिए।

श्री सदाशिव ने कहा कि उत्तम सुरा तीन प्रकार की होती है। पहली गौड़ी, दूसरी पैष्टी और तीसरी माध्वी। सुरा ताड़ और खजूर से विविध प्रकार की बनती है। देशभेद और द्रव्यभेद से सुरा अनेक प्रकार की होती है। सभी सुरा देवी-पूजन के लिये प्रशस्त मानी जाती है। सुरा किसी रूप से समुत्पन्न हो, किसी के द्वारा लाई गई हो, शोधित होने पर सभी सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। सुरा के सम्बन्ध में जाति का विचार नहीं है ॥ 1-3 ॥

मांस के प्रकार

मांसं तु त्रिविधं प्रोक्तं जलभूचरखेचरम्।
यस्मात्तस्मात्समानीतं येन तेन विघातितम्।
तत्सर्वं देवताप्रीत्यै भवेदेव न संशयः ॥ 4 ॥
साधकेच्छा बलवती देये वस्तुनि दैवते।
यद्यदात्मप्रियं द्रव्यं तत्तदिष्टाय कल्पयेत् ॥ 5 ॥

बलिदानविधौ देवि विहितः पुरुषः पशुः ।
स्त्रीपशुर्न च हन्तव्यस्तत्र शाम्भवशासनात् ।। 6 ।।

मांस तीन प्रकार का होता है—एक जलचर का मांस, दूसरा भूचर का मांस और तीसरा खेचर का मांस । मांस किसी स्थान से आया हो, किसी के द्वारा लाया गया हो, वह सभी देवों को प्रसन्नता-प्रदायक होता है; इसमें सन्देह नहीं है। देवता को देय वस्तु के सम्बन्ध में साधक की इच्छा ही प्रधान है । जो वस्तु अपने को प्रिय हो, वही इष्ट-देवता को प्रदान करनी चाहिये । हे देवि! बलिदान में नरपशु ही विहित है । महादेव का शासन है कि मादा पशु की हत्या नहीं करनी चाहिये ।। 4-6 ।।

मत्स्यभेद

उत्तमास्त्रिविधा मत्स्याः शालपाठीनरोहिताः ।। 7 ।।
मध्यमाः कण्टकैर्हीना अधमा बहुकण्टकाः ।
तेऽपि देव्यै प्रदातव्या यदि सुष्ठु विभर्जिताः ।। 8 ।।

तीन प्रकार के उत्तम मत्स्य शाल, वोयाल और रोहू हैं । अन्य कण्टकहीन मछली मध्यम और बहुत काँटों वाली मछली अधम होती है । बहुत काँटों वाली मछली अच्छी तरह तलकर देवी को दे सकते हैं ।। 7-8।।

मुद्रा-प्रकार

मुद्रापि त्रिविधा प्रोक्ता उत्तमादिविभेदतः ।
चन्द्रबिम्बनिभं शुभ्रं शालितण्डुलसम्भवम् ।
यवगोधूमजं वापि घृतपक्वं मनोरमम् ।। 9 ।।
मुद्रेयमुत्तमा मध्या भृष्टधान्यादिसम्भवा ।
भर्जितान्यन्यबीजानि अधमा परिकीर्त्तिता ।। 10 ।।
मांसं मीनश्च मुद्रा च फलमूलानि यानि च ।
सुधादाने देवतायै संज्ञैषां शुद्धिरीरिता ।। 11 ।।
विना शुद्ध्या हेतुदानं पूजनं तर्पणं तथा ।
निष्फलं जायते देवि देवता न प्रसीदति ।। 12 ।।
शुद्धिं विना मद्यपानं केवलं विषभक्षणम् ।
चिररोगी भवेन्मन्त्री स्वल्पायुर्म्रियतेऽचिरात् ।। 13 ।।

उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से मुद्रा तीन प्रकार की होती है । चन्द्रविम्ब जैसा शुभ्र, शालि तण्डुल से निर्मित अथवा यव और गेहूँ से निर्मित

घी में पकी सुन्दर मुद्रा उत्तम होती है । भ्रष्ट धान्य की मुद्रा फुटहा मध्यम होती है एवं अन्य प्रकार की वनस्पति—शाक से बनी मुद्रा अधम मानी जाती है ।

देवी को सुरा देते समय जो मांस, मत्स्य, मुद्रा, फल, मूल आदि दिया जाता है, उनको 'शुद्धि' कहते हैं । शुद्धि के विना देवी का जो पूजन या तर्पण सुरा से किया जाता है, वह निष्फल होता है, उससे देवता की प्रसन्नता नहीं होती । शुद्धि के विना मद्यपान विषपान के समान होता है । ऐसा पापी चिररोगी तथा अल्पायु होकर शीघ्र ही काल-कवलित हो जाता है ।। 9-13।।

शक्तिभेद

शेषतत्त्वं महेशानि निर्बीजे प्रबले कलौ ।
स्वकीया केवला ज्ञेया सर्वदोषविवर्जिता ।। 14 ।।
अथवात्र स्वयम्भ्वादिकुसुमं प्राणवल्लभे ।
कथितं तत्प्रतिनिधौ कुसीदं परिकीर्त्तितम् ।। 15 ।।
अशोधितानि तत्त्वानि पत्रपुष्पफलानि च ।
नैव दद्यान्महादेव्यै दत्त्वा वै नारकी भवेत् ।। 16 ।।

हे महेशानि! कलि के प्रबल होने पर पञ्चम तत्त्व के हेतु शक्ति के रूप में सर्व-दोषरहित अपनी पत्नी का ही शोधन करना चाहिये । हे प्राणवल्लभे! मैंने जो स्वयम्भू कुसुमादि का जिक्र किया है, उनके बदले लाल चन्दन का ही उपयोग करना चाहिये । उपरोक्त पञ्चतत्त्व और फल-मूल-पत्र विना शोधन के देवी को नहीं देना चाहिये अन्यथा साधक नरकगामी होता है ।। 14-16 ।।

शक्ति-शोधन

श्रीपात्रस्थापनं कुर्यात्स्वीयया गुणशीलया ।
अभिषिञ्चेत्कारणेन सामान्यार्घ्योदकेन वा ।। 17 ।।
आदौ बालः समुच्चार्य्य त्रिपुरायै ततो वदेत् ।
नमःशब्दावसाने च इमां शक्तिमुदीरयेत् ।। 18 ।।
पवित्रीकुरु शब्दान्ते मम शक्तिं कुरु द्विठः ।। 19 ।।
अदीक्षिता यदा नारी कर्णे मायां समुच्चरेत् ।
शक्तयोऽन्याः पूजनीया नार्यस्ताडनकर्मणि ।। 20 ।।

अपनी गुणवती पत्नी से श्रीपात्र का स्थापन करावे । पत्नी को सुरा या सामान्यार्घ्य जल से अभिषिक्त करे । अभिषेक मन्त्र का वर्णन श्लोक 18,19

में है। उद्धार करने पर मन्त्र होता है—'ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रीकुरु मम शक्तिं कुरु स्वाहा'।

यदि नारी अदीक्षित हो तो उसके कान में मायाबीज 'ह्रीं' का उच्चारण करे। मैथुन तत्त्व के सम्पादन के लिये जो अन्य परकीया शक्तियाँ हों, उनका पूजन करना चाहिये ।। 17-20 ।।

श्रीपात्र-स्थापना-पूजन

अथात्मयन्त्रयोर्मध्ये मायागर्भं त्रिकोणकम् ।
वृत्तषट्कोणमालिख्य चतुरस्रं लिखेद्बहिः ।। 21 ।।
अस्रकोणे पूर्णशैलमुड्डीयानं तथैव च ।
जालन्धरं कामरूपं सचतुर्थीनमोऽन्तकम् ।
निजनामादिबीजाढ्यं पूजयेत्साधकोत्तमः ।। 22 ।।
षट्कोणेषु षडङ्गानि मूलेनैव त्रिकोणकम् ।
मायामाधारशक्तिं च नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् ।। 23 ।।
नमसा क्षालिताधारं संस्थाप्य तत्र पूर्ववत् ।
वृत्तोपरि यजेद्वह्नेः कलाः स्वस्वादिमाक्षरैः ।। 24 ।।
धूम्रार्च्चिर्ज्वलिनीसूक्ष्माज्वालिनीविस्फुलिङ्गिनी ।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहा तथा ।। 25 ।।
सचतुर्थीनमोऽन्तेन पूज्या वह्नेः कला दश ।। 26 ।।
मंवह्निमण्डलायेति दशान्ते च कलात्मने ।
अवसाने नमो दत्त्वा पूजयेद्वह्निमण्डलम् ।। 27 ।।
ततोऽर्घ्यपात्रमानीय फट्कारेण विशोधितम् ।
आधारे स्थापयित्वा तु कलाः सूर्यस्य द्वादश ।
कभादिवर्णबीजेन ठडान्तेन प्रपूजयेत् ।। 28 ।।
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ।
सुधूम्रा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा ।। 29 ।।
अं सूर्यमण्डलायेति द्वादशान्ते कलात्मने ।
नमोऽन्तेनार्घ्यपात्रे तु पूजयेत्सूर्यमण्डलम् ।। 30 ।।
विलोममातृकां तद्वन्मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
त्रिभागं पूरयेन्मन्त्री कलशस्थेन हेतुना ।। 31 ।।
विशेषार्घ्यं जलैः शेषं पूरयित्वा समाहितः ।

षोडशस्वरबीजेन र्नामममन्त्रेण पूजयेत् ।
सचतुर्थीनमोऽन्तेन कला: सोमस्य षोडश ॥ 32 ॥
अमृता मानदा पूजा तुष्टि: पुष्टी रतिर्धृति: ।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्री: प्रीतिरङ्गदा ।
पूर्णा पूर्णमृता कामदायिन्य: शशिन: कला: ॥ 33 ॥
ऊंसोममण्डलायेति षोडशान्ते कलात्मने ।
नमोऽन्तेन यजेन्मन्त्री पूर्ववत्सोममण्डलम् ॥ 34 ॥
दूर्वाक्षतं रक्तपुष्पं वर्वरामपराजिताम् ।
मायया प्रक्षिपेत्पात्रे तीर्थमावाहयेदपि ॥ 35 ॥
कवचेनावगुण्ठ्यास्त्रमुद्रया रक्षणं चरेत् ।
धेन्वा चैवामृतीकृत्य च्छादयेन्मत्स्यमुद्रया ॥ 36 ॥
मूलं सञ्जप्य दशधा देवतावाहनं चरेत् ।
आवाह्य पुष्पाञ्जलिना पूजयेदिष्टदेवताम् ।
अखण्डाद्यै: पञ्चमन्त्रैर्मन्त्रयेत्तदनन्तरम् ॥ 37 ॥
अखण्डकरसानन्दाकरे परसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेहि कुलरूपिणी ॥ 38 ॥
अनङ्गस्थामृताकारे शुद्धज्ञानकलेवरे ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन्वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ॥ 39 ॥
तद्रूपेणैकरस्यं च कृत्वार्घ्यं तत्स्वरूपिणी ।
भूत्वा कलामृताकारमपि विस्फुरणं कुरु ॥ 40 ॥
ब्रह्माण्डरससम्भूतमशेषरससम्भवम् ।
आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमावह ॥ 41 ॥
अहंतापात्रभरितमिदंतापरमामृतम् ।
पराहंतामये वह्नौ होमस्वीकारलक्षणम् ॥ 42 ॥
इत्यामन्त्र्य ततस्तस्मिञ्छिवयो: सामरस्यकम् ।
विभाव्य पूजयेद्धूपदीपावपि च दर्शयेत् ॥ 43 ॥
इति श्रीपात्रसंस्कार: कथित: कुलपूजने ।
अकृत्वा पापभाङ्मन्त्री पूजा च विफला भवेत् ॥ 44 ॥

अपने और स्थापित श्रीयन्त्र के बीच में एक त्रिकोण बनाकर उसके मध्य में मायाबीजं 'ह्रीं' अंकित करे । त्रिकोण के बाहर षट्कोण बनावे । इसके बाहर एक चतुरस्र बनावे ।

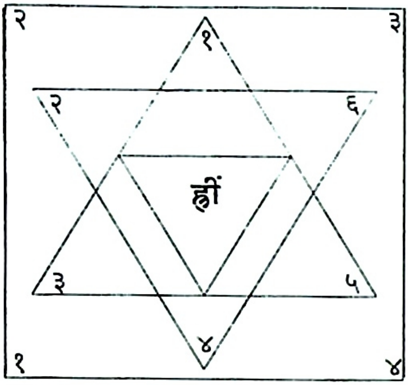

चतुष्कोण के चारो कोनों में पूजा क्रमांकित क्रम से करे—1. पूं पूर्णशैलाय पीठाय नमः । 2. उं उड्डीयानाय पीठाय नमः । 3. जां जालन्धर पीठाय नमः । 4. कां कामरूपपीठाय नमः ।

षट्कोण के छः कोणों में अंकित क्रमानुसार अधिष्ठातृ देवताओं का पूजन करे—1. ह्रां नमः 2. ह्रीं नमः 3. ह्रूं नमः 4. ह्रैं नमः 5. ह्रौं नमः 6. ह्रः नमः ।

त्रिकोण में 'ह्रीं आधारशक्तये नमः' से आधारशक्ति की पूजा करे । इसके बाद 'नमः' से प्रक्षालित आधार को स्थापित करके उसमें नाम के पहले अक्षर का सानुस्वार उच्चारणसहित वह्नि की दश कलाओं की पूजा करे । जैसे—

1. धूं धूम्राकलायै नमः । 6. विस्फुलिङ्गिनीकलायै नमः ।
2. अं अर्चिकलायै नमः । 7. सुं सुश्रीकलायै नमः ।
3. जं ज्वलिनीकलायै नमः । 8. सुं सुरूपा कलायै नमः ।
4. जं ज्वालिनीकलायै नमः । 9. हं हव्यवहा कलायै नमः ।
5. सूं सूक्ष्माकलायै नमः । 10. कं कव्यवहा कलायै नमः ।

'मं वह्निमण्डलाय दश कलात्मने नमः' से वह्निमण्डल की पूजा करे ।

'फट्' से अर्घ्य पात्र को शोधित करके आधार पर स्थापित करके क से ठ ड तक के वर्णों का उच्चारण सानुस्वार करके सूर्य की द्वादश कलाओं का पूजन करे । जैसे--

1. कं भं तपिनीकलायै नमः । 3. गं फं धूम्राकलायै नमः ।
2. खं बं तापिनीकलायै नमः ।4. घं पं मरीचिकलायै नमः।

5. ङं नं ज्वलिनीकलायै नमः। 9. झं तं विश्वाकलायै नमः ।
6. चं धं रुचिकलायै नमः । 10. ञं णं बोधिनीकलायै नमः ।
7. छं दं सुषुम्नाकलायै नमः । 11. टं ढं धारिणीकलायै नमः ।
8. जं थं भोगदाकलायै नमः । 12. ठं डं क्षमाकलायै नमः ।

'अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' से अर्घ्यपात्र में सूर्यमण्डल की पूजा करे ।

मन्त्रज्ञ साधक अ से क्ष तक के वर्णों का सानुस्वार विलोम उच्चारण करके अन्त में मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए कलशस्थ सुरा से अर्घ्यपात्र के तीन भाग को पूर्ण करे । इसके बाद एकाग्रचित्त से विशेषार्घ्य जल से अर्घ्य-पात्र के शेष भाग को पूर्ण करे । सोलह स्वरों के सानुस्वार उच्चारणपूर्वक चतुर्थ्यन्त नाम का उच्चारण करके अन्त में 'नमः' जोड़कर चन्द्रमा की सोलह कलाओं का पूजन करे । जैसे—

क्षं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ।

लं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ।

हं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ।

इसी प्रकार सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं ईं इं आं अं में से प्रत्येक के साथ 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा' का उच्चारण करे ।

सोलह सोमकलाओं का पूजन—

1. अं अमृताकलायै नमः । 9. ऌं चन्द्रिका कलायै नमः ।
2. आं मानदाकलायै नमः । 10. ॡं कान्तिकलायै नमः ।
3. इं पूषाकलायै नमः । 11. एं ज्योत्स्नाकलायै नमः ।
4. ईं तुष्टिकलायै नमः । 12. ऐं श्रीकलायै नमः ।
5. उं पुष्टिकलायै नमः । 13. ओं प्रीतिकलायै नमः ।
6. ऊं रतिकलायै नमः । 14. औं अंगदाकलायै नमः ।
7. ऋं धृतिकलायै नमः । 15. अं पूर्णाकलायै नमः ।
8. ॠं शशिनीकलायै नमः । 16. अः पूर्णामृताकलायै नमः ।

ये सोलह सोमकलाएँ अभीष्ट को पूरी करने वाली हैं । तब उस अर्घ्यपात्र के जल में 'उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' से सोममण्डल की पूजा करे ।

दूर्वा, अक्षत, लाल फूल, वर्वरापत्र, अपराजिता पुष्प लेकर 'ह्रीं' बोलते हुए अर्घ्यपात्र में छोड़े और सभी तीर्थों का आवाहन करे । तब 'हूँ' बीज से अर्घ्यपात्रस्थ सुरा का अवगुण्ठन करे । अस्त्रमुद्रा से रक्षा करे । धेनुमुद्रा से उसका अमृतीकरण करके मत्स्यमुद्रा से आच्छादित करे । तब अर्घ्यपात्रस्थ सुरा के ऊपर दश बार मूल मन्त्र का जप करे । इष्टदेवता का आवाहन करे । पुष्पाञ्जलि देकर निम्नांकित पाँच मन्त्रों से सुरा का अभिमन्त्रण करे । श्लोक 38-42 मन्त्र हैं ।

हे कुलरूपिणि! तुम अखण्डरसानन्ददायिनी, परसुधात्मनी हो । तुम इस सुरा को अपने स्वच्छन्द स्फुरण से आनन्ददायी अमृतोपम करो । तुम अनंगस्थ हो, अमृत-स्वरूपा हो, विशुद्ध ज्ञान ही तुम्हारा शरीर है । क्लिन्नरूप इस वस्तु में अमृतत्व स्थापित करो । हे सुरास्वरूपिणि! तुम प्रधान माधुर्य रसरूप में इस पूजनार्घ्यरूप मद्य को प्रधान माधुर्य-विशिष्ट करके कुलामृतस्वरूप होकर हमें स्फूर्ति देने का साधन बनो । सुधा से पूर्ण यह महापात्र ब्रह्माण्ड रस से युक्त अशेष रस का सागर है । इसे पीयूष रसमय बना दो । आत्मभावरूप पात्र में धारित, इदंभावरूप परम अमृत को परात्मरूप वह्नि में समर्पित होमाहुति को स्वीकारलक्षता प्रदान करो । इस प्रकार सुरा को अभिमन्त्रित करके शिव और शिवानी की समरसता का ध्यान-पूजन करके धूप-दीप प्रदान करे । कुलपूजा से सम्बन्धित इस 'श्रीपात्र-संस्कार' का वर्णन तुम्हें सुनाया । मन्त्रज्ञ साधक यदि इस प्रकार का संस्कार नहीं करता तो वह पाप का भागी होता है और उसकी पूजा निष्फल होती है ।। 21-44 ।।

गुरुपात्र भोग-पात्रादि का स्थापन

घटश्रीपात्रयोर्मध्ये पात्राणि स्थापयेद्बुधः ।
गुरुपात्रं भोगपात्रं शक्तिपात्रमतः परम् ।। 45 ।।
योगिनीवीरपात्रे च बलिपात्रं ततः परम् ।
पाद्याचमनयोः पात्रं श्रीपात्रेण नवक्रमात् ।
सामान्यार्घ्यस्य विधिना पात्राणां स्थापनं चरेत् ।। 46 ।।

कलशस्थामृतेनैव त्रिभागं परिपूर्य च ।
माषप्रमाणं पात्रेषु शुद्धिखण्डं नियोजयेत् ।। 47 ।।
वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्याममृतं पात्रसंस्थितम् ।
गृहीत्वा शुद्धिखण्डेन दक्षया तत्त्वमुद्रया ।
सर्वत्र तर्पणं कुर्याद्विधिरेष प्रकीर्त्तितः ।। 48 ।।

ज्ञानी साधक कलश और श्रीपात्र के बीच में नौ पात्र स्थापित करे; जिनमें गुरु-पात्र, भोगपात्र, शक्तिपात्र, योगिनीपात्र, वीरपात्र, बलिपात्र, आचमनपात्र और पाद्य-पात्र होते हैं । इन सभी पात्रों के तीन भाग को कलशस्थ सुधा से भर कर सबमें उड़द के दाने के बराबर शुद्धिखण्ड डाले । तब बाँयें हाथ के अंगूठे और अनामिका से पात्रस्थित अमृत शुद्धि के सहित लेकर तत्त्व मुद्रित दाँयें हाथ से सभी पात्रों से तर्पण करे । इस तर्पण की विधि आगे बतायी जायेगी ।। 45-48 ।।

आनन्द-भैरवादि का तर्पण

श्रीपात्रात्परमं बिन्दुं गृहीत्वा शुद्धिसंयुतम् ।
आनन्दभैरवं देवं भैरवीं च प्रतर्पयेत् ।। 49 ।।
गुरुपात्रेऽमृतेनैव तर्पयेद्गुरुसन्ततिम् ।
सहस्रारे निजगुरुं सपत्नीकं प्रतर्प्य च ।
वाग्भवाद्यं स्वस्वनाम्ना तद्वद्गुरुचतुष्टयम् ।। 50 ।।
ततः स्वहृदयाम्भोजे भोगपात्रामृतेन च ।
आद्यां कालीं तर्पयामि निजबीजपुरःसरम् ।। 51 ।।
स्वाहान्तेन त्रिधा मन्त्री तर्पयेदिष्टदेवताम् ।
शक्तिपात्रामृतैस्तद्वदङ्गावरणतर्पणम् ।। 52 ।।
योगिनीपात्रसंस्थेन सायुधां सपरीकराम् ।
सन्तर्प्य कालिकामाद्यां बटुकेभ्यो बलिं हरेत् ।। 53 ।।

श्रीपात्र से शुद्धिसहित अमृतबिन्दु लेकर आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी का तर्पण करे; जैसे—

ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवाय वषट् आनन्दभैरवं तर्पयामि नमः । सहक्षमलवरयीं आनन्दभैरव्यै वौषट् आनन्दभैरवीं तर्पयामि स्वाहा । ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल में पत्नी के साथ अपने गुरु, परम गुरु, परापर गुरु, परमेष्ठी गुरु का तर्पण उनके नाम के पहले 'ऐं' बीज जोड़कर करे; जैसे—

1. ऐं सपत्नीक अमुकानन्दनाथं श्रीगुरुं तर्पयामि नमः ।

2. ऐं सपत्नीक अमुकानन्दनाथं परमगुरुं तर्पयामि नमः ।

3. ऐं सपत्नीक अमुकानन्दनाथं परात्परगुरुं तर्पयामि नमः ।

4. ऐं सपत्नीक अमुकानन्दनाथं परमेष्ठिगुरुं तर्पयामि नमः ।

इसके बाद मन्त्रज्ञ साधक भोगपात्रस्थ अमृत से आद्या काली के मध्य 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा आद्याकालीं तर्पयामि स्वाहा' से आद्या काली का तर्पण तीन बार करे । शक्तिपात्र के अमृत से अंगदेवता और आवरणदेवता का तर्पण करे: जैसे—

अंगदेवातस्तर्पयामि स्वाहा ।

आवरणादेवतास्तर्पयामि स्वाहा ।

योगिनीपात्रस्थ अमृत से अस्त्र एवं परिकर के सहित आद्या काली का तर्पण करे; जैसे—

ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा । सायुधां सपरिकर आद्या कालीं तर्पयामि स्वाहा ।

इसके बाद बटुकादि पाँच देवताओं को बलि प्रदान करे ।। 49-53 ।।

वटुक-बलि

स्ववामभागे सामान्यं मण्डलं रचयेत्सुधीः ।
सम्पूज्य स्थापयेत्तत्र सामिषान्नं सुधान्वितम् ।। 54 ।।
वाङ्मायाकमलावं च बटुकाय नमः पदम् ।
सम्पूज्य पूर्वभागे च बटुकस्य बलिं हरेत् ।। 55 ।।

ज्ञानी साधक अपने बाँयें भाग में साधारण चतुर्भुज मण्डल बनाकर उस पर मद्य-मांसादिसहित अन्न स्थापित करे । तब 'एष सुधामिषान्वित बलिः ऐं ह्रीं श्रीं वं वटुकाय नमः' से बटुक की पूजा करके उनको मण्डल के पूरब में बलि प्रदान करे ।। 54-55 ।।

योगिनी-बलि

ततस्तु यां योगिनीभ्यः स्वाहा याम्यां हरेद्बलिम् ।। 56 ।।

'एष सुधामिषान्वितबलिः यां योगिनीभ्यः स्वाहा' मन्त्र से मण्डल के दाँयें भाग में योगिनियों को बलि प्रदान करे ।। 56 ।।

क्षेत्रपाल-बलि

षड्दीर्घयुक्तं संवर्त्तं क्षेत्रपालाय हन्मनुः ।
अनेन क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात्तु पश्चिमे ।। 57 ।।

छः दीर्घ स्वरयुत 'क्ष' अर्थात् क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः के बाद 'क्षेत्रपालाय नमः' से क्षेत्रपाल को मण्डल के पश्चिम भाग में बलि प्रदान करे । बलिमन्त्र है— 'एष सुधामिषान्वित अन्नबलिः क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपालाय नमः' ।। 57 ।।

गणेश-बलि

खान्तबीजं समुद्धृत्य षड्दीर्घस्वरसंयुतम् ।
ङेऽन्तं गणपतिं चोक्त्वा वह्निजायां ततो वदेत् ।। 58 ।।
उत्तरस्यां गणेशाय बलिमेतेन कल्पयेत् ।

'ख' वर्ण के बाद का वर्ण 'ग' में छः दीर्घ स्वरों को सानुस्वार मिलाने से गां गीं गूं गैं गौं गः बनता है । इसके बाद एकवचनान्त गणपति का चतुर्थी रूप गणपतये जोड़े । इसके बाद 'वह्निजाया स्वाहा' जोड़े । इससे गणेश को बलि प्रदान करे । बलि मन्त्र इस प्रकार का होता है—'एष सुधामिषान्नबलिः गां गीं गूं गैं गौं गः गणपतये स्वाहा' ।। 58-59½ ।।

सर्व-भूत-बलि

मध्ये तथा सर्वभूतबलिं दद्याद्यथाविधि ।। 59 ।।
ह्रीं श्रीं सर्वपदं चोक्त्वा विघ्नकृद्भ्यस्ततो वदेत् ।
सर्वभूतेभ्य इत्युक्त्वा हुं फट् स्वाहा मनुर्मतः ।। 60 ।।

मण्डल के मध्य में यथाविधान सर्वभूतों को बलि प्रदान करे । श्लोक 60 का उद्धार करने पर 'ह्रीं श्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हूं फट् स्वाहा' मन्त्र बनता है । बलिमन्त्र इस प्रकार का होता है—'एष सुधामिषान्वितान्नबलिः ह्रीं श्रीं सर्वविघ्न- कृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हूं फट् स्वाहा'।। 59-60।।

शिवा-बलि

ततः शिवायै विधिवद्बलिमेकं प्रकल्पयेत् ।
गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि ।। 61 ।।
शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ।
मूलमेष बलिः पश्चाच्छिवायै नम इत्यपि ।
चक्रानुष्ठानमेतत्तु तवाग्रे कथितं शिवे ।। 62 ।।

श्लोक 61 का उत्तरार्द्ध और श्लोक 62 की दो पंक्तियों का पाठ करके शिवा अर्थात् शृगाली को बलि प्रदान करे । बलिमन्त्र इस प्रकार का होता है—

गृह्ण देवि! महाभागे! शिवे कालाग्निरूपिणी शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा एष बलि शिवायै नमः ।

हे देवि! हे महाभागे! हे शिवे । हे कालाग्निरूपिणि! बलि ग्रहण करो. मेरे शुभ-अशुभ को स्पष्ट रूप से बतलाओ । अपनी बलि ग्रहण करो । यह बलि शिवा को देता हूँ । हे देवि! मैंने चक्रानुष्ठान का वर्णन किया ।। 61-62 ।।

सपुष्प ध्यान

चन्दनागुरुकस्तूरीवासितं सुमनोहरम् ।
पुष्पं गृहीत्वा पाणिभ्यां करकच्छपमुद्रया ।। 63 ।।
नीत्वा स्वहृदयाम्भोजे ध्यायेदाद्यां परात्पराम् ।। 64 ।।
सहस्रारे महापद्मे सुषुम्ना ब्रह्मवर्त्मना ।
नीत्वा सानन्दितां कृत्वा बृहन्निःश्वासवर्त्मना ।
दीपाद्दीपान्तरमिव तत्र पुष्पे नियोज्य च ।। 65 ।।
यन्त्रे निधापयेन्मन्त्री दृढभक्तिसमन्वितः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।। 66 ।।
देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ।। 67 ।।

चन्दन-अगर-कस्तूरी से सुगन्धित फूल कच्छपमुद्रायुक्त दोनों हाथ से लेकर अपने हृदयकमल में परात्परा काली को लाकर ध्यान करे । तब ब्रह्मपथ सुषुम्ना से भगवती को सहस्रार पद्म में ले जाकर निर्मल सुधा से आनन्दित करे । तब गहरे निःश्वासरूपी मार्ग से भगवती को अपने करस्थित पुष्प में संक्रमित करे । जिस प्रकार एक दीप से दूसरा दीप जलता है, उसी प्रकार भगवती का संक्रमण पुष्प में करे । उस संक्रमित पुष्प को यन्त्र में स्थापित करे । मन्त्रज्ञ साधक प्रबल भक्ति के साथ हाथ जोड़कर इष्टदेवता से प्रार्थना करे । श्लोक 67 प्रार्थनामन्त्र है । हे देवेशि! हे भक्तिसुलभे! हे परिवारसमन्विते! जब तक मैं तुम्हारी पूजा करूँ तब तक तुम सुस्थिर होकर यहाँ पर रहो ।। 63-67 ।।

भगवती का आवाहन

क्रीमाद्ये कालिके देवि परिवारादिभिः सह ।
इहागच्छ द्विधा प्रोक्त्वा इह तिष्ठ द्विधा पुनः ।। 68 ।।

इहशब्दात्सन्निधेहि इहसन्निपदात्ततः ।
रुध्यस्व पदमाभाष्य मम पूजां गृहाण च ॥ 69 ॥

देवी का आवाहन निम्न मन्त्रों से करे—

क्रीं आद्ये कालिके देवि! परिवारादिभिः सह इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुद्धस्व मम पूजां गृहाण ।। 68-69 ।।

प्राणप्रतिष्ठा

इत्थमावाहनं कृत्वा देव्याः प्राणान्प्रतिष्ठयेत् ॥ 70 ॥
आं ह्रीं क्रीं श्रीं वह्निजाया प्रतिष्ठामन्त्र ईरितः ।
अमुष्या देवतायाश्च प्राणा इह ततः परम् ।
प्राणा इति ततः पञ्च बीजानि तदनन्तरम् ॥ 71 ॥
अमुष्या जीव इह च स्थित इत्युच्चरेत्पुनः ।
पञ्चबीजान्यमुष्याश्च सर्वेन्द्रियाणि कीर्त्तयेत् ॥ 72 ॥
पुनस्तत्पञ्चबीजानि अमुष्या वचनं ततः ।
वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्पदतो वदेत् ॥ 73 ॥
प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु ठद्वयम् ॥ 74 ॥
इति त्रिधा यन्त्रमध्ये लेलिहानाख्यमुद्रया ।
संस्थाप्य विधिवत्प्राणान्कृताञ्जलिपुटो वदेत् ॥ 75 ॥
आद्य कालि स्वागतं ते सुस्वागतमिदं तव ।
आसनं चेदमत्र त्वयाऽऽस्यतां परमेश्वरि ॥ 76 ॥

इस प्रकार देवी का आवाहन करके यन्त्र में प्राणप्रतिष्ठा करे । प्राणप्रतिष्ठा-मन्त्र श्लोक 71-74 का उद्धार करने पर इस प्रकार बनता है—'आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा । आद्या काली देवतायाः प्राणा इह प्राणाः । आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा । आद्याकाली देवतायाः सर्वेन्द्रियाणि आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा । आद्या काली देवतायाः वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्प्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' ।

इस मन्त्र का अर्थ है कि आद्या काली के प्राण इस स्थान में प्राण, आद्या काली की जीवात्मा इस यन्त्र में रहे । आद्या काली की सभी इन्द्रियाँ,आद्या काली के वचन- मन-चक्षु-नासा-कर्ण-त्वक् और प्राण इस यन्त्र में आकर दीर्घ काल तक सुख से रहें । इस मन्त्र का पाठ तीन बार करके लेलिहान मुद्रा से यन्त्र के मध्य में देवी की प्राणप्रतिष्ठा करे । हाथ जोड़कर श्लोक 76 को उच्चारण करके उनका स्वागत करे । जैसे—हे आद्ये कालिके! तुम्हारा स्वागत

हैं । यह तुम्हारा सुस्वागत है । यह तुम्हारा आसन है । हे परमेश्वरि! तुम यहाँ विराजो ।। 70-76 ।।

सकलीकरण

ततो विशेषार्घ्यजलैस्त्रिधा मूलं समुच्चरन् ।
प्रोक्षयेद्देवशुद्ध्यर्थं षडङ्गैः सकलीकृतिः ।
देवताऽङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः ।
ततः सम्पूजयेद्देवीं षोडशैरुपचारकैः ।। 77 ।।

तीन बार मूल मन्त्र 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा' का उच्चारण करके विशेषार्घ्य जल से देवी को प्रोक्षित करे । तब एक फूल लेकर देवता के षडंगों की भावना करे, जैसे—क्रां हृदयाय नमः । क्रीं शिरसे स्वाहा । क्रूं शिखायै वषट् । क्रैं कवचाय हुम् । क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट । क्रः अस्त्राय फट् । इसके बाद उस फूल को देवी को समर्पित कर देवी का षोडशापचार पूंजन करे ।। 77 ।।

षोडश उपचार

पाद्यार्घ्याचमनीयं च स्नानं वसनभूषणे ।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्याचमने तथा ।। 78 ।।
अमृतं चैव ताम्बूलं तर्पणं च नतिक्रिया ।
प्रयोजयेदर्च्चनायामुपचारांश्च षोडश ।। 79 ।।

इन श्लोकों के अनुसार सोलह उपचार इस प्रकार के हैं—1. पाद्य, 2. अर्घ्य, 3. आचमनीय, 4. स्नान, 5. वस्त्र, 6. भूषण, 7. गन्ध, 8. पुष्प, 9. धूप, 10. दीप, 11. नैवद्य, 12. पुनराचमनीय, 13. अमृत, 14. ताम्बूल, 15. तर्पण, 16. नमस्कार ।। 78-79।।

उपचारदान और मन्त्र से पूजन

आद्याबीजमिदं पाद्यं देवतायै नमःपदम् ।
पाद्यं चरणयोर्दद्याच्छिरस्यर्घ्यं निवेदयेत् ।
स्वाहापदेन मतिमान्स्वधेत्याचमनीयकम् ।। 80 ।।
मुखे नियोजयेन्मन्त्री मधुपर्क्कं मुखाम्बुजे ।
वं स्वधेति समुच्चार्य पुनराचमनीयकम् ।। 81 ।।
स्नानीयं सर्वगात्रेषु वसनं भूषणानि च ।
निवेदयामि मनुना दद्यादेतानि देशिकः ।। 82 ।।

मध्यमानामिकाभ्यां च गन्धं दद्याद्धृदम्बुजे ।
नमोऽन्तेन च मन्त्रेण वौषडन्तेन पुष्पकम् ॥ 83 ॥
धूपदीपौ च पुरतः संस्थाप्य प्रोक्षणादिभिः ।
निवेदयामि मन्त्रेण उत्सृज्य तदनन्तरम् ॥ 84 ॥
जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति मन्त्रपूर्वकम् ।
सम्पूज्य घण्टां वामेन वादयन्दक्षिणेन तु ॥ 85 ॥
धूपं गृहीत्वा मतिमान्नासिकाधो नियोजयेत् ।
दीपं तु दृष्टिपर्यन्तं दशधा भ्रामयेत्पुरः ॥ 86 ॥
ततः पात्रं च शुद्धिं च समादाय करद्वये ।
मूलं समुच्चरन्मन्त्री यन्त्रमध्ये निवेदयेत् ॥ 87 ॥
परमं वारुणीकल्पं कोटिकल्पान्तकारिणि ।
गृहाण शुद्धिसहितं देहि मे मोक्षमव्ययम् ॥ 88 ॥
ततः सामान्यविधिना पुरतो मण्डलं लिखेत् ।
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं नैवेद्यपरिपूरितम् ॥ 89 ॥
प्रोक्षणं चावगुण्ठं च रक्षणं चामृतीकृतम् ।
मूलेन सप्तधामन्त्र्य अर्घ्याद्भिर्विनिवेदयेत् ॥ 90 ॥
मूलमेतत्तु सिद्धान्नं सर्वोपकरणान्वितम् ।
निवेदयामीष्टदेव्यै जुषाणेदं हविः शिवे ॥ 91 ॥
ततः प्राणादिमुद्राभिः पञ्चभिः प्राशयेद्धविः ॥ 92 ॥
वामनैवेद्यमुद्रां च विकचोत्पलसन्निभाम् ।
दर्शयेन्मूलमन्त्रेण पानार्थं तीर्थपूरितम् ॥ 93 ॥
कलशं विनिवेद्याथ पुनराचमनीयकम् ।
ततः श्रीपात्रसंस्थेनामृतेन तर्पयेत्त्रिधा ॥ 94 ॥
उत्तमाङ्गहृदाधारपादसर्वाङ्गकेषु च ।
पञ्च पुष्पाञ्जलीन्दत्त्वा मूलमन्त्रेण देशिकः ॥ 95 ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।
तवावरणदेवांश्च पूजयामि नमो वदेत् ॥ 96 ॥

1. पाद्य—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं पाद्यं आद्यायै काल्यै नमः ।

2. अर्घ्य—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं अर्घ्यं आद्यायै काल्यै स्वाहा ।

3. आचमनीय—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं आचमनीयं आद्यायै काल्यै स्वधा ।

मधुपर्क—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं मधुपर्कमाद्यायै काल्यै स्वधा ।

4. स्नानीय—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं स्नानीयं आद्यायै काल्यै निवेदयामि ।

5. वस्त्र—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं वस्त्रं आद्यायै काल्यै निवदेयामि ।

6. भूषण—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं भूषणं आद्यायै काल्यै निवेदयामि।

7. गन्ध—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं गन्धं आद्यायै काल्यै निवदेयामि ।

8. पुष्प—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं पुष्पं आद्यायै काल्यै निवेदयामि वौषट् ।

9. धूप—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं धूपं आद्यायै काल्यै निवेदयामि ।

10. दीप—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं दीपं आद्यायै काल्यै निवेदयामि ।

11. नैवेद्य—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं नैवेद्यं आद्यायै काल्यै निवेदयामि ।

12. पुनराचमनीय—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं पुनराचमनीय आद्यायै काल्यै निवेदयामि ।

13. अमृत—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं अमृतं आद्यायै काल्यै निवेदयामि ।

14. ताम्बूल—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं ताम्बूलं आद्यायै काल्यै निवेदयामि ।

15. तर्पण—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं तर्पणं आद्यायै काल्यै निवेदयामि ।

16. नमस्कार—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं नमस्कारं आद्यायै काल्यै निवेदयामि ।

क्रमांक 7 में वर्णित गन्ध को मध्यमा-अनामिका से देवी के हृदयकमल में लगावे । धूप-दीप को सामने स्थापित करके प्रोक्षणादि से उन्हें संशोधित करके देवी को प्रदान करे । जयध्वनि मन्त्र 'मातः स्वाहा' से घण्टी की पूजा करे । तब बाँयें हाथ से घण्टी बजाते हुए दाँयें हाथ से धूप लेकर देवी की नासिका के निकट रखे । दीपक को देवी के सम्मुख पैर से नेत्रों तक दस बार घुमावे । पानपात्र एवं मांसादि 'शुद्धि' दोनों हाथों में लेकर मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए यन्त्रमध्य में निवेदित करे । श्लोक 88 से प्रार्थना करे । हे कोटि कल्पान्त करने वाली! इस श्रेष्ठ वारुणी को शुद्धि के साथ ग्रहण करो

और मुझे अक्षय मुक्ति प्रदान करो । इसके बाद सामान्य विधि से अपने सामने मण्डल बनाकर उस पर नैवेद्यपूर्ण पात्र को स्थापित करे । तब 'फट्' से नैवेद्य का प्रोक्षण, 'हुं' से अवगुण्ठन, 'फट्' से रक्षाकरण, 'वं' से अमृतीकरण करके मूलमन्त्र से उसे सात बार अभिमन्त्रित करके अर्घ्य जल से निवेदित करे । श्लोक 91 का पाठ करे । सभी सामग्रियों से युक्त पक्वान्न को इष्टदेवता के लिये निवेदन करता हूँ । हे शिवे! इस भोज्य पदार्थ को ग्रहण करो । इसके बाद प्राणादि पञ्च मुद्राएँ दिखाकर देवी को भोज्य पदार्थ खिलावे । तब नैवेद्य मुद्रा दिखावे । मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए सुरापूर्ण कलश और पुनराचमनीय देकर श्रीपात्र के अमृत से तीन बार तर्पण करे । मूलमन्त्र से साधक देवी के शिर, हृदय, मूलाधार, दोनों चरणों और सर्वांग में पाँच पुष्पाञ्जलियाँ अर्पित करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करे । तब 'आवरणदेवान् पूजयामि नमः' कहे । तुम्हारे आवरण देवताओं की पूजा करता हूँ ।। 80-96।।

षडङ्ग-पूजन

प्रथम आवरण

अग्निर्नैर्ऋतिवाय्वीशपुरतः पृष्ठतः क्रमात् ।
षडङ्गानि च सम्पूज्य गुरुपङ्क्तीः सपर्च्चयेत् ।। 97 ।।

यन्त्र के अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान कोणों में सामने, ऊपर और नीचे के कोणों में षडङ्ग पूजन करे—

1. ह्रां हृदयाय नमः हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि ।
2. ह्रीं शिरसे स्वाहा शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि ।
3. ह्रूं शिखायै वषट् शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि ।
4. ह्रैं कवचाय हुं कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि ।
5. ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि ।
6. ह्रः अस्त्राय फट् अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ।।

विशेषार्घ्य अमृत से पूजा समर्पित करे ।। 97 ।।

द्वितीय आवरण : गुरुपूजन

गुरुं च परमादिं च परात्परगुरुं तथा ।
परमेष्ठिगुरुं चैव यजेत्कुलगुरूनिमान् ।। 98 ।।
गुरुपात्रामृतेनैव त्रिस्त्रिस्तर्पणमाचरेत् ।

त्रिकोण के अन्दर बिन्दु के वायव्य कोण से ईशान कोण तक गुरुओं का पूजन करे । गुरु, परम गुरु, परापर गुरु, परमेष्ठि गुरु ही पूज्य हैं । गुरुपात्र के अमृत से तीन-तीन बार इनका तर्पण करे । जैसे—

ॐ गुरुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (तीन बार तर्पण) ।

ॐ परमगुरुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (तर्पण तीन बार) ।

ॐ परापरगुरुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (तर्पण तीन बार) ।

ॐ परमेष्ठिगुरुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (तर्पण तीन बार) ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम् ।। 98 ।।

तृतीय आवरण

ततोऽष्टदलमध्ये तु पूजयेदष्टनायिकाः ।। 99 ।।
मङ्गला विजया भद्रा जयन्ती चापराजिता ।
नन्दिनी नारसिंही च कौमारीत्यष्टमातरः ।। 100 ।।

आठो दलों के मध्य में अष्ट नायिकाओं की पूजा करे; जैसे—

1. ॐ मंगलायै नमः मंगलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
2. ॐ विजयायै नमः विजपाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
3. ॐ भद्रायै नमः भद्राश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
4. ॐ जयन्त्यै नमः जयन्तीश्रीपादुकां पूजयाभि तर्पयामि नमः ।
5. ॐ अपराजितायै नमः अपराजिताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
6. ॐ नन्दिन्यै नमः नन्दिनीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
7. ॐ नारसिंह्यै नमः नारसिंहीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
8. ॐ कौमार्यै नमः कौमारीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम् ।। 99-100 ।।

चतुर्थ आवरण

दलाग्रेषु यजेदष्टभैरवान्साधकोत्तमः ॥ 101 ॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः ।
कपाली भीषणश्चैव संहारोऽष्टौ च भैरवाः ॥ 102 ॥

साधकश्रेष्ठ दलों के अग्रभाग में अष्ट भैरवों की पूजा करे । जैसे—

1. ॐ असिताङ्गभैरवाय नमः असिताङ्गभैरवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

2. ॐ रुरुभैरवाय नमः रुरुभैरवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

3. ॐ चण्डभैरवाय नमः चण्डभैरवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

4. ॐ क्रोधोन्मत्त भैरवाय नमः क्रोधोन्मत्तभैरवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

5. ॐ भयङ्करभैरवाय नमः भयङ्करभैरवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

6. ॐ कपालीभैरवाय नमः कपालीभैरवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

7. ॐ भीषणभैरवाय नमः भीषणभैरवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

8. ॐ संहारभैरवायः नमः संहारभैरवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम् ॥ 101-102 ॥

पञ्चम एवं षष्ठ आवरण

इन्द्रादिदशदिक्पालान्भूपुरान्तः प्रपूजयेत् ।
तेषामस्त्राणि तद्बाह्ये पूजयेत्तर्पयेत्ततः ॥ 103 ॥

भूपुर में दिक्पालों का पूजन करे; जैसे—

1. ॐ इन्द्राय नमः इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

2. ॐ अग्नये नमः अग्निश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

3. ॐ यमाय नमः यमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

4. ॐ नैर्ऋतये नमः निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

5. ॐ वरुणाय नमः वरुणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

6. ॐ वायवे नमः वायुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

7. ॐ कुवेराय नमः कुवेरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

8. ॐ ईशानाय नमः ईशानश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

9. ॐ ब्रह्मणे नमः ब्रह्माश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (ईशान-पूर्वमध्य) ।

10. ॐ अनन्ताय नमः अनन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (नैर्ऋत्य-पश्चिम) ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या सर्मपये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम् ।।

भूपुर में लोकपालों के सामने अस्त्रों का पूजन करे—

1. वं वज्राय नमः वज्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
2. शं शक्तये नमः शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
3. दं दण्डाय नमः दण्डश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
4. खं खड्गाय नमः खड्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
5. पां पाशाय नमः पाशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
6. गं गदाय नमः गदाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
8. त्रिं त्रिशूलाय नमः त्रिशूलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
9. पं पद्माय नमः पद्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
10. चं चक्राय नमः चक्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम् ।। 103 ।।

पशुबलि

सर्वोपचारैः सम्पूज्य बलिं दद्यात्समाहितः ।। 104 ।।
मृगश्छागश्च मेषश्च लुलायः सूकरस्तथा ।
शल्लकी शशको गोधा कूर्मः खड्गो दश स्मृताः ।। 105 ।।
अन्यान्यपि पशून्दद्यात्साधकेच्छानुसारतः ।। 106 ।।
सुलक्षणं पशुं देव्या अग्रे संस्थाप्य मन्त्रवित् ।
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य धेनुमुद्रामृतीकृतम् ।। 107 ।।
कृत्वा छागाय पशवे नम इत्यमुना सुधीः ।

सम्पूज्य गन्धसिन्दूरपुष्पनैवेद्यपायसा ।
गायत्रीं दक्षिणे कर्णे जपेत्पाशविमोचनीम् ।। 108 ।।
पशुपाशायशब्दान्ते विद्महेपदमुच्चरेत् ।
विश्वकर्मणे च पदाद्धीमहीति पदं वदेत् ।। 109 ।।
ततश्चोदीरयेन्मन्त्री तन्नो जीवः प्रचोदयात् ।
एषा तु पशुगायत्री पशुपाशविमोचिनी ।। 110 ।।

इस प्रकार देवी की पूजा के पश्चात् बलि प्रदान करे । बलि के लिये प्रशस्त पशु दश माने गये हैं; जैसे—1. मृग, 2. छाग, 3. मेष, 4. महिष, 5. शूकर, 6. शल्लकी, साहिल, 7. शशक, 8. गोधा, 9. कूर्म, 10. गण्डार । मन्त्रज्ञ साधक नीरोग सुलक्षण पशु को देवी के सामने खड़ा करके अर्घ्यजल से उसका प्रोक्षण और धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे । 'छागाय पशवे नमः' मन्त्र से यथासम्भव गन्ध-सिन्दूर-पुष्प-नैवेद्य और जल से पूजा करे । पशु के दाँयें कान में पशुपाशविमोचिनी पशुगायत्री को सुनावे । श्लोक 109 और 110 का उद्धार करने पर पशुगायत्री मन्त्र इस प्रकार का बनता है— 'पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात्' ।। 104-110 ।।

खड्ग-पूजन

ततः खड्गं समादाय कूर्च्चबीजेनपूजयेत् ।
तदग्रमध्यमूलेषु क्रमतः पूजयेदिमान् ।। 111 ।।
वागीश्वरीं च ब्रह्माणं लक्ष्मीनारायणौ ततः ।
उमामहेश्वरौ मूले पूजयेत्साधकोत्तमः ।। 112 ।।
अनन्तरं ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुताय च ।
खड्गाय नम इत्यन्तमनुना खड्गपूजनम् ।। 113 ।।
महावाक्येन चोत्सृज्य कृताञ्जलिपुटो वदेत् ।
यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम् ।। 114 ।।

श्रेष्ठ साधक कूर्चबीज 'हूं' से क्रमशः खड्ग के अग्र मध्य और मूल में वागीश्वरी-ब्रह्मा, लक्ष्मी-नारायण और उमा-महेश्वर की पूजा करे । तब निम्न मन्त्र से खड्ग की पूजा करे—ब्रह्मविष्णुशिवशक्तिप्रतापखड्गाय नमः ।

इसके बाद महावाक्य द्वारा पशु का उत्सर्ग करे—

यथोक्तन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम् ।। 111-114 ।।

इत्थं निवेद्य च पशुं भूमिसंस्थं तु कारयेत् ।। 115 ।।
देवीभावपरो भूत्वा हन्यात्तीव्रप्रहारतः ।
स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा भ्रात्रा वा सुहृदैव वा ।
सपिण्डेनाथवा छेद्यो नारिपक्षं नियोजयेत् ।। 116 ।।

इस प्रकार विधिपूर्वक निवेदन करके पशु को भूमि पर खड़ा करे । देवी-भक्ति-परायण होकर तीक्ष्ण प्रहार से पशु के शिर का छेदन करे । पशुछेदन स्वयं, भ्राता- भतीजा, सुहृद् या सपिण्ड के द्वारा कराना चाहिये । शत्रुपक्ष को इस कार्य में कभी न लगाए ।। 115-116 ।।

शीर्ष बलि-प्रदान

ततः कवोष्णं रुधिरं बटुकेभ्यो बलिं हरेत् ।
सप्रदीपशीर्षबलिर्नमो देव्यै निवेदयेत् ।। 117 ।।
एवं बलिविधिः प्रोक्तः कौलिकानां कुलार्च्चने ।
अन्यथा देवताप्रीतिर्जायते न कदाचन ।। 118 ।।

'एष कवोष्णरुधिरबलिः ॐ बटुकेभ्यो नमः' का उच्चारण करते हुये कुछ उष्ण रुधिर की बलि वटुक को प्रदान करे । तब कटे हुये शिर को थाल में रखकर उस पर दीपक जलाकर 'एष सम्प्रदीपशीर्षबलिः ॐ ह्रीं देव्यै नमः' से देवी को शिरबलि प्रदान करे । कौलिकों के कुलार्चन में इसी प्रकार की बलि का विधान है । विना बलिदान के देवता की प्रीति कदापि नहीं प्राप्त होती है ।। 117-118 ।।

हवन

ततो होमं प्रकुर्वीत तद्विधानं शृणु प्रिये ।। 119 ।।
स्वदक्षिणे वालुकाभिर्मण्डलं चतुरस्रकम् ।
चतुर्हस्तपरिमितं कृत्वा मूलेन वीक्षणम् ।
अस्त्रेण ताडयित्वा च तेनैव प्रोक्षणं चरेत् ।। 120 ।।
कूर्चबीजेनावगुण्ठ्य देवतानामपूर्वकम् ।
स्थण्डिलाय नम इति यजेत्साधकसत्तमः ।। 121 ।।
प्रागग्रा उदगग्राश्च रेखाः प्रादेशसम्मिताः ।
तिस्रस्तिस्रो विधातव्यास्तत्र सम्पूजयेदिमान् ।। 122 ।।
प्रागग्रासु च रेखासु मुकुन्देशपुरन्दरान् ।
ब्रह्मवैवस्वतेन्दूंश्च उत्तराग्रासु पूजयेत् ।। 123 ।।

ततः स्थण्डिलमध्ये तु हंसौर्गर्भं त्रिकोणकम् ।
षट्कोणं तद्बहिर्वृत्तं ततोऽष्टदलपङ्कजम् ।
भूपुरं तद्बहिर्विद्वान्विलिखेद्यन्त्रमुत्तमम् ॥ 124 ॥
मूलेन पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य प्रणवेन तु ।
होमद्रव्याणि सम्प्रोक्ष्य कर्णिकायां यजेत्सुधीः ।
मायामाधारशक्त्यादीन्प्रत्येकं प्रपूजयेत् ॥ 125 ॥
अग्न्यादिकोणे धर्मं च ज्ञानं वैराग्यमेव च ।
ऐश्वर्य्यं पूजयित्वा तु पूर्वादिषु दिशां क्रमात् ॥ 126 ॥
अधर्ममज्ञानमिति अवैराग्यमनन्तरम् ।
अनैश्वर्य्यं यजेन्मन्त्री मध्येऽनन्तं च पद्मकम् ॥ 127 ॥
कलासहितसूर्यस्य तथा सोमस्य मण्डलम् ।
प्रागादिकेसरेष्वेषु मध्ये चैताः प्रपूजयेत् ॥ 128 ॥
पीता श्वेतारुणा कृष्णा धूम्रा तीव्रा तथैव च ।
स्फुलिङ्गिनी च रुचिरा ज्वलिनीति तथा क्रमात् ॥ 129 ॥

हे प्रिय! इसके बाद हवन करे । उसकी विधा का वर्णन करता हूँ । श्रेष्ठ साधक बालू से एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा चौकोर स्थण्डिल बनाकर मूल-मन्त्र से उसका वीक्षण करे अर्थात् देखे । अस्त्रमन्त्र 'फट्' से ताड़न करे । 'फट्' से ही प्रोक्षण करे । कूर्चबीज 'हूं' से अवगुण्ठन करे । देवता का नाम बोलते हुए 'स्थण्डिलाय नमः' से पूजा करे । जैसे आद्या काली के हवन के लिये स्थण्डिल-पूजन का मन्त्र होगा—'आद्या काल्यै स्थण्डिलाय नमः' । तब स्थण्डिल में बीत्ता बराबर तीन पूर्वाग्र और तीन उत्तराग्र रेखाएँ खींचे । उन पर निम्न देवताओं का पूजन करे ।

पूर्वाग्र तीन रेखाओं में मुकुन्द, ईश और पुरन्दर का पूजन इस प्रकार करे—ॐ मुकन्दाय नमः । ॐ ईशाय नमः । ॐ पुरन्दराय नमः ।

उत्तराग्र तीन रेखाओं में ब्रह्मा, वैवस्वत और चन्द्र का पूजन इस प्रकार करे—ॐ ब्रह्मणे नमः । ॐ वैवस्वताय नमः । ॐ चन्द्राय नमः । तब साधक स्थण्डिल में त्रिकोण बनाए । उसके बीच में 'ह्सौः' लिखे । त्रिकोणमण्डल के बाहर षट्कोण बनाए। उसके बाहर वृत्त बनाए । उसके बाहर अष्टदल बनाए । उसके बाहर भूपुर बनाए । इस प्रकार उत्तम यन्त्र की रचना करे । यन्त्र की आकृति निम्नांकित है—

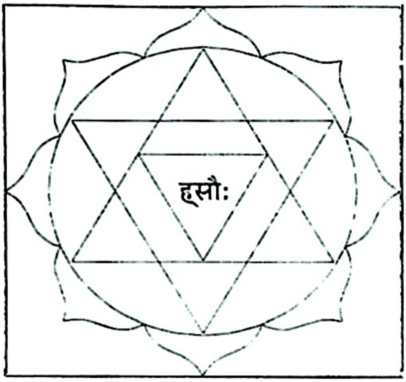

मूलमन्त्र 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा' से यन्त्र पर पुष्पाञ्जलि देवे । 'ॐ यन्त्राय नमः' से यन्त्र की पूजा करे । गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, प्रसाद चढ़ावे । प्रणव 'ॐ' से हवनसामग्री का प्रोक्षण करे । अष्टपद्म की कर्णिका में 'ह्रीं आधारशक्तिभ्यो नमः' से एक ही बार में गन्धाक्षत-पुष्प से पूजन करे । अथवा समय हो तो अलग-अलग पूजन करे। यन्त्र के अग्निकोण से प्रारम्भ करके सभी कोणों तथा चारो दिशाओं में इस प्रकार पूजन करे —

1. अग्निकोण में—ॐ धर्माय नमः।5. पूर्व में—ॐ अधर्माय नमः ।
2. नैर्ऋत्य कोण— ॐ ज्ञानाय नम ।6. दक्षिण में—ॐ अज्ञानाय नमः।
3. वायव्य में —वैराग्याय नमः । 7. पश्चिम में ॐ अवैराग्याय नमः ।
4. ईशान में—ॐ ऐश्वर्याय नमः । 8. उत्तर में—ॐ अनैश्वर्याय नमः ।

यन्त्र के मध्य में साधक अनन्त, पद्म, सूर्यकला, सोमकलाओं का पूजन करे; जैसे—

1. ॐ अनन्ताय नमः । 2. ॐपद्माय नमः । 3. ॐ सूर्यकलायै नमः । 4. ॐ सोमकलायै नमः । गन्धाक्षत-पुष्प चढावे ।

यन्त्र के केशरों में पूर्वादि क्रम से अग्निजिह्वाओं का पूजन इस प्रकार करे—

1. ॐ पीता अग्निजिह्वायै नमः । 6. ॐ तीव्रा अग्निजिह्वायै नमः ।
2. ॐ श्वेता अग्निजिह्वायै नमः । 7. ॐ स्फुलिंगिनी अग्निजिह्वायै नमः ।
3. ॐ अरुणा अग्निजिह्वायै नमः। 8. ॐ रुचिरा अग्निजिह्वायै नमः ।
4. ॐ कृष्णा अग्निजिह्वायै नमः । 9. ॐ ज्वालिनी अग्निजिह्वायै नमः ।
5. ॐ धूम्रा अग्निजिह्वायै नमः । ।। 119-129।।

प्रणवादिनमोऽन्तेन सर्वत्र पूजनं चरेत् ।
रं वह्न्यासनायेति नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् ।। 130 ।।
वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरलोचनाम् ।
वागीश्वरेण संयुक्तां ध्यात्वा मन्त्री तदासने ।। 131 ।।
मायया तौ प्रपूज्याथ विधिवद्वह्निमानयेत् ।
मूलेन वीक्षणं कृत्वा फटावाहनमाचरेत् ।। 132 ।।
प्रणवं च ततो वह्नेर्योगपीठाय हृन्मनुः ।
यन्त्रे पीठं पूजयित्वा दिक्षु चैताः प्रपूजयेत् ।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री अम्बिकेति यथाक्रमात् ।। 133 ।।
ततोऽमुक्या देवतायाः स्थण्डिलाय नमः पदम् ।
इति स्थण्डिलमापूज्य तन्मध्ये मूलरूपिणीम् ।। 134 ।।
ध्यात्वा वागीश्वरीं देवीं वह्निबीजपुरःसरम् ।
वह्निमुद्धृत्य मूलान्ते कूर्च्चमन्त्रं समुच्चरन् ।। 135 ।।
क्रव्यादेभ्यो वह्निजायां क्रव्यादांशं परित्यजेत् ।
अस्त्रेण वह्निं संवीक्ष्य कूर्च्चेनैवावगुण्ठयेत् ।। 136 ।।
धेन्वा चैवामृतीकृत्य हस्ताभ्यामग्निमुद्धरेत् ।
प्रादक्षिण्यक्रमेणाग्निं भ्रामयन्स्थण्डिलोपरि ।। 137 ।।
त्रिधा जानुस्पृष्टभूमिः शिवबीजं विचिन्तयन् ।
आत्मनोऽभिमुखीकृत्य योनियन्त्रे नियोजयेत् ।। 138 ।।
ततो मायां समुच्चार्य वह्निमूर्तिं च ङेयुताम् ।
नमोऽन्तेन प्रपूज्याथ रंवह्निपरतः सुधीः ।
चैतन्याय नमो वह्नेश्चैतन्यं परिपूजयेत् ।। 139 ।।
नममा वह्निमूर्तिं च चैतन्यं परिकल्प्य च ।
प्रज्ज्वालयेत्ततो वह्निं मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।। 140 ।।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य चित्पिङ्गलपदं तथा ।
हनद्वयं दह दह पचपचेति ततो वदेत् ।। 141 ।।
सर्वज्ञाज्ञापयस्वाहावह्निप्रज्ज्वालने मनुः ।
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा प्रकुर्यादग्निवन्दनम् ।। 142 ।।
अग्निं प्रज्ज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम् ।। 143 ।।

'इं वह्नेरासनाय नमः' से वह्नि के आसन की पूजा करे । तब ऋतुस्नाता

नील नलिनीलोचन वागीश्वर के सहित वागीश्वरी देवी का ध्यान करे । उक्त वह्न्यासन में मायाबीज 'ह्रीं' से उन दोनों की पूजा करे । तब विधिवत् अग्नि को लाकर मूल मन्त्र से उसका वीक्षण करे और 'फट्' से आवाहन करे । 'वह्नेर्योगपीठाय नमः' से वह्नि- पीठ की पूजा करे । पीठ पर पूर्वादि क्रम से चारो दिशाओं में इस प्रकार पूजा करे—

1. ॐ वामायै नमः । 2. ॐ ज्येष्ठायै नमः । 3. ॐ रौद्र्यै नमः । 4. ॐ अम्बिकायै नमः ।

तब 'काली देवतायाः स्थण्डिलाय नमः' से स्थण्डिल की पूजा करे । उसके मध्य में मूलरूपिणी वागीश्वरी देवी का ध्यान करके वह्निबीज 'रं' का उच्चारण कर अग्नि को उठाकर 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा' से राक्षसगण को देय अंश दक्षिण दिशा में डाल दे ।

अस्त्रबीज 'फट्' से अग्नि का वीक्षण करे । कूर्चबीज 'हूँ' से अवगुण्ठन करे अर्थात् तर्जनी घुमाकर वह्नि का वेष्टन करे । धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे । अग्निपात्र को उठाकर प्रदक्षिणक्रम से स्थण्डिल पर तीन बार घुमाये । अग्नि को शम्भुवीर्य मानते हुए, घुटनों से भूमि को स्पर्श करते हुए निजाभिमुख करके योनि पर स्थापित करे ।

इसके बाद 'ह्रीं वह्निमूर्तये नमः' से वह्निमूर्ति की पूजा करे । 'रं वह्निचैतन्याय नमः' से वह्निचैतन्य की पूजा करे । 'नमः' से वह्निमूर्त्ति और वह्निचैतन्य की भावना करते हुए निम्न मन्त्र से अग्नि को प्रज्ज्वलित करे । श्लोक 141-142 का उद्धार करने पर यह मन्त्र बनता है—

'ॐ चित्पिंगल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' ।

तब हाथ जोड़कर अग्नि की वन्दना करे । वन्दना के लिये श्लोक 143 का पाठ करे । भाव है—प्रज्वलित, स्वर्णतुल्य, निर्मल, प्रदीप्त, सर्वतोमुख, जातवेद हुताशन अग्नि की मैं वन्दना करता हूँ ।। 130-143 ।।

इत्युपस्थाय दहनं छादयेत्स्थण्डिलं कुशैः ।
स्वेष्टनाम्ना वह्निनाम कृत्वाभ्यर्चनमाचरेत् ।। 144 ।।
तारो वैश्वानरपदाज्जातवेदपदं वदेत् ।
इहावहावहेत्युक्त्वा लोहिताक्षपदान्तरम् ।। 145 ।।

सर्वकर्माणि पदतः साधयान्तेऽग्निवल्लभा ।
इत्यभ्यर्च्य हिरण्यादिसप्त जिह्वाः प्रपूजयेत् ।। 146 ।।
सहस्रार्चिः पदं ङेऽन्तं हृदयाय नमो वदेत् ।
षडङ्गं पूजयेद्वह्नेस्ततो मूर्त्तीर्यजेत्सुधीः ।। 147 ।।
जातवेदप्रभृतयो मूर्त्तयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।। 148 ।।
ततो यजेदष्टशक्तीर्ब्राह्म्याद्यास्तदनन्तरम् ।
पद्माद्यष्टनिधीनिष्ट्वा यजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् ।। 149 ।।

अग्नि की वन्दना करके कुश से स्थण्डिल को आच्छादित करे । अपने इष्ट-देवता का नाम लेकर वह्निनाम का उच्चारण करे । यहाँ पर अग्नि का नाम 'कालिकाग्नि' होगा । इसके बाद निम्न मन्त्र से अभ्यर्चना करे । यह मन्त्र श्लोक 145 और 146 का उद्धार करने पर बनता है—

ॐ वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा । तब हिरण्यादि सात जिह्वाओं का पूजन करे । पूजन मन्त्र है—ॐ वह्निर्हिरण्यादि सप्त जिह्वाभ्यो नमः । अथवा सातो जिह्वाओं का पूजन अलग-अलग करे; जैसे—

1. ॐ काली अग्निजिह्वायै नमः ।
2. ॐ कराली अग्निजिह्वायै नमः ।
3. ॐ मनोजवा अग्निजिह्वायै नमः ।
4. ॐ सुलोहिता अग्निजिह्वायै नमः ।
5. ॐ सुधूम्रवर्णा अग्निजिह्वायै नमः ।
6. ॐ स्फुलिंगिनी अग्निजिह्वायै नमः ।
7. ॐ विश्वरूपिणी अग्निजिह्वायै नमः ।

षट्कोण में अग्नि का षडंग पूजन करे; जैसे—

1. ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः ।
2. ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा ।
3. ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वौषट् ।
4. ॐ धूम्रव्यापिने कवचाय हुम्।
5. ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट् ।
6. ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट् ।

अथवा 'ॐ वह्ने षडङ्गेभ्यो नमः' से एक ही बार में पूजन कर ले ।

इसके बाद जातवेद आदि वह्नि की अष्ट मूर्तियों की पूजा करे । यह पूजा एक ही बार में 'ॐ वह्निमूर्तिभ्यो नमः' से करे या अलग-अलग आठ बार में करे; जैसे—

1. ॐ जातवेदसे नमः । 2. ॐ सप्तजिह्वाय नमः । 3. ॐ हव्यवाहनाय नमः । 4. ॐ अश्वोदरजाय नमः । 5. ॐ वैश्वानराय नमः । 6. ॐ कौमारतेजसे नमः । 7. ॐ विश्वमुखाय नमः । 8. ॐ देवमुखाय नमः ।

इसके बाद ब्राह्मी आदि अष्टशक्तियों का पूजन एक बार में 'ॐ ब्राह्मी आदि अष्टशक्तिभ्यो नमः' से करे अथवा उनका पूजन अलग-अलग करे; जैसे—

1. ॐ ब्राह्मै नमः । 2. ॐ माहेश्वर्यै नमः । 3. ॐ कौमार्यै नमः । 4. ॐ वैष्णव्यै नमः । 5. ॐ वाराह्यै नमः । 6. ॐ ऐन्द्राण्यै नमः । 7. ॐ चामुण्डायै नमः । 8. ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।

इसके बाद आठ निधियों का पूजन करे । पूजन एक ही बार में 'ॐ अष्टनिधिभ्यो नमः' से करे अथवा अलग-अलग निम्न प्रकार से करे; जैसे—

1. ॐ महापद्माय नमः । 2. ॐ पद्माय नमः । 3. ॐ शङ्खाय नमः । 4. ॐ मकराय नमः । 5. ॐ कूर्माय नमः । 6. ॐ मुकन्दाय नमः । 7. ॐ कुन्दाय नमः । 8. ॐ नीलाय नमः ।

तब इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन करे । पूजन एक ही बार में 'ॐ इन्द्रादि दशदिक्पालेभ्यो नमः' से करे अथवा अलग-अलग करे; जैसे—

1. ॐ इन्द्राय नमः । 2. ॐ अग्नये नमः । 3. ॐ यमाय नमः । 4. ॐ नैर्ऋतये नमः । 5. ॐ वरुणाय नमः । 6. ॐ वायवे नमः । 7. ॐ कुवेराय नमः । 8. ॐ ईशानाय नमः । 9. ॐ ब्रह्मणे नमः । 10. ॐ अनन्ताय नमः ।

तब वज्रादि दश आयुधों का पूजन एक ही बार में 'ॐ वज्रादि आयुधाय नमः' से करे अथवा अलग-अलग करे; जैसे—

1. ॐ वज्राय नमः । 2. ॐ शक्तये नमः । 3. ॐ दण्डाय नमः । 4. ॐ खड्गाय नमः । 5. ॐ पाशाय नमः । 6. ॐ अंकुशाय नमः । 7. ॐ गदाय नमः । 8. ॐ त्रिशूलाय नमः । 9. ॐ पद्माय नमः । 10. ॐ चक्राय नमः ।। 144-149 ।।

वज्राद्यस्त्राणि सम्पूज्य प्रादेशपरिमाणकम् ।
कुशपत्रद्वयं नीत्वा घृतमध्ये निधापयेत् ।। 150 ।।
वामे ध्यायेदिडां नाडीं दक्षिणे पिङ्गलां तथा ।
मध्ये सुषुम्नां सञ्चिन्त्य दक्षभागात्समाहितः ।। 151 ।।
आज्यं गृहीत्वा मतिमान्दक्षनेत्रे हुताशितुः ।
मन्त्रेणानेन जुहुयात्प्रणवान्तेऽग्नये पदम् ।। 152 ।।
स्वाहान्तो मनुराख्यातो वामभागाद्धविर्हरेत् ।
वामनेत्रे हुनेद्वह्नेरों सोमाय द्विठो मनुः ।। 153 ।।
मध्यादाज्यं समानीय ललाटे हवनं चरेत् ।
अग्नीषोमौ सप्रणवौ तुर्यद्विवचनान्वितौ ।। 154 ।।
स्वाहान्तोऽयं मनुः प्रोक्तः पुनर्दक्षिणतो हविः ।
गृहीत्वा नमसा मन्त्री प्रणवं पूर्वमुद्धरेत् ।। 155 ।।
अग्नये च स्विष्टकृते वह्निकान्तां ततो वदेत् ।
अनेन वह्निवदने जुहुयात्साधकोत्तमः ।
भूर्भुवः स्वर्द्विठान्तेन व्याहृत्या होममाचरेत् ।। 156 ।।
तारो वैश्वानरपदाज्जातवेद इहावह ।
वहलोहिपदान्ते च ताक्षसर्वपदं वदेत् ।
कर्माणि साधय स्वाहा त्रिधानेनाहुतीर्हरेत् ।। 157 ।।

वज्र आदि अस्त्रों का पूजन करने के उपरान्त बीत्ता भर लम्बा दो कुशपत्र लेकर घृतपूर्ण पात्र में एक वाम भाग में और दूसरा दक्षिण भाग में स्थापित करे । घृत में बाँईं ओर इड़ा, दाँयीं ओर पिंगला और मध्य में सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान करके एकाग्रचित्त से दाँईं ओर से घी लेकर 'ॐ अग्नये स्वाहा' से अग्नि के दक्षिण नेत्र में आहुति देवे । बाँईं ओर से घी लेकर अग्नि के बाँयें नेत्र में 'ॐ सोमाय स्वाहा' से आहुति दे । मध्य भाग से घी लेकर अग्नि के ललाट में 'ॐ अग्निसोमाभ्यां स्वाहा' से आहुति डाले । 'नमः' से दाँयें भाग से घी लेकर 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' से मुख में आहुति समर्पित करे । तत्पश्चात् तीनों व्याहृतियों से हवन करे—ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा । इसके बाद निम्न मन्त्र से तीन आहुतियाँ प्रदान करे—

ॐ वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा ।

ततोऽग्नौ स्वेष्टमावाह्य पीठाद्यैः सहपूजनम् ।
कृत्वा स्वाहान्तमनुना मूलेन पञ्चविंशतीः ।। 158 ।।

हुत्वा वह्न्यात्मनोर्देव्या ऐक्यं सम्भावयन्धिया ।
एकादशाहुतीर्हुत्वा मूलेनैवाऽङ्गदेवता: ।। 159 ।।
हुत्वा स्वकाममुद्दीश्य तिलाज्यमधुमिश्रितै: ।। 160 ।।
पुष्पैर्बिल्वदलैर्वापि यथाविहितवस्तुभि: ।
यथाशक्त्याहुतिं दद्यान्नाष्टन्यूनां प्रकल्पयेत् ।। 161 ।।

अग्नि में अपने इष्टदेवता का आवाहन कर पीठादि-सहित उनकी पूजा करके मूलमन्त्र में स्वाहा जोड़कर 25 आहुतियाँ प्रदान करे । यहाँ पर मन्त्र होगा—'ह्लीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा' । अग्नि, देवी और अपनी आत्मा को एक ही मान कर मूल मन्त्र से 11 आहुतियाँ अंगदेवता के उद्देश्य से प्रदान करे । तब अपनी कामना-सिद्धि के लिये तिल, घी, मधु, पुष्प, बेलपत्र और अन्य विहित सामग्रियों से यथाशक्ति हवन करे । आठ आहुतियों से कम न प्रदान करे ।। 158-161 ।।

तत: पूर्णाहुतिं दद्यात्फलपत्रसमन्विताम् ।
स्वाहान्तमूलमन्त्रेण तत: संहारमुद्रया ।
तस्माद्देवीं समानीय स्थापयेद्धृदयाम्बुजे ।। 162 ।।
क्षमस्वेति च मन्त्रेण विसृजेत्तं हुताशनम् ।
कृतदक्षिणको मन्त्री अच्छिद्रमवधारयत् ।। 163 ।।
हुतशेषं भ्रुवोर्मध्ये धारयेत्साधकोत्तम: ।। 164 ।।
एष होमविधि: प्रोक्त: सर्वत्रागमकर्मणि ।
होमकर्म समाप्यैवं साधको जपमाचरेत् ।। 165 ।।

अन्त में मूलमन्त्र में स्वाहा जोड़कर पान के पत्ते पर फल रखकर पूर्णाहुति प्रदान करे । तब संहारमुद्रा से देवी को अग्नि से बाहर लाकर अपने हृदयकमल में स्थापित करे । तब 'अग्ने क्षमस्व' कहकर अग्नि का विसर्जन करे । तब दक्षिणा देकर अच्छिद्राव धारण करे । इसके बाद हवन से शेष द्रव्य घृतमिश्रित भस्म दोनों भौहों के बीच में धारण करे । सभी आगमों में हवनविधि यही है । हवन के बाद साधक जप करे ।। 162-165 ।।

जपानुष्ठान

विधानं शृणु देवेशि येन विद्या प्रसीदति ।
देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयेद्धिया ।। 166 ।।
मन्त्राणां देवता प्रोक्ता देवता गुरुरूपिणी ।
अभेदेन यजेद्यस्तु तस्य सिद्धिरनुत्तमा ।। 167 ।।

गुरुं शिरसि सञ्चिन्त्य देवतां हृदयाम्बुजे ।
रसनायां मूलविद्यां तेजोरूपां विचिन्त्य च ।
त्रयाणां तेजसात्मानमेकीभूतं विचिन्तयेत् ॥ 168 ॥
तारेण सम्पुटीकृत्य मूलमन्त्रं च सप्तधा ।
जप्त्वा तु साधकः पश्चान्मातृकापुटितं स्मरेत् ॥ 169 ॥
मायाबीजं स्वशिरसि दशधा प्रजपेत्सुधीः ।
वदने प्रणवं तद्वत्पुनर्मायां हृदम्बुजे ।
प्रजप्य सप्तधा मन्त्री प्राणायामं समाचरेत् ॥ 170 ॥
ततो मालां समादाय प्रवालादिसमुद्भवाम् ।
माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥ 171 ॥
इति सम्पूज्य मालान्तां श्रीपात्रस्थामृतेन च ।
त्रिधा मूलेन सन्तर्प्य स्थिरचितो जपंश्चरेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वाप्यथवाष्टोत्तरं शतम् ॥ 172 ॥
प्राणायामं ततः कृत्वा श्रीपात्रजलपुष्पकैः ।
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ॥ 173 ॥
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ।
इति मन्त्रेण मतिमान्देव्या वामकराम्बुजे ॥ 174 ॥
तेजोरूपं जपफलं समर्प्य प्रणमेद्भुवि ।
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तोत्रं च कवचं पठेत् ॥ 175 ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विशेषार्घ्येण साधकः ।
विलोमार्घ्यप्रदानेन कुर्यादात्मसमर्पणम् ॥ 176 ॥

हे देवेशि! जिससे विद्या प्रसन्न होती है, मैं उसी जपानुष्ठान के विधान का वर्णन करता हूँ । मन ही मन देवता, गुरु और मन्त्र को एक होने का चिन्तन करे । मन्त्र- वर्ण को देवता कहा गया है और देवता गुरुरूपा हैं ! जो इन तीनों को एक मानकर पूजा करता है, उसे उत्तम सिद्धि मिलती है । मस्तक में गुरु का ध्यान करके हृदय-कमल में देवता का और जीभ में तेजोरूपा मूल मन्त्रात्मिका विद्या का ध्यान करके गुरु, देवता और मूलमन्त्र तीनों के तेज से एकीभूत आत्मा का ध्यान करे ।

प्रणव 'ॐ' से सम्पुटित मूलमन्त्र का जप सात बार करे । यहाँ पर 'ॐ ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा ॐ' आद्या काली का प्रणव-सम्पुटित मन्त्र होगा ।

तब मातृका-पुटित मूल मन्त्र का जप सात बार करे । इसकी विधि पञ्चम उल्लास के श्लोक 154-156 की व्याख्या में बतायी गयी है । ज्ञानी साधक अपने शिरोदेश में 'ह्रीं' का जप दश बार करे । अपने मुख में 'ॐ' का जप दश बार करे । पुनः हृदय में सात बार मायाबीज 'ह्रीं' का जप करके प्राणायाम करे । तब मूंगा आदि की माला लेकर निम्न मन्त्र से उसकी पूजा करे—

माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान् मे सिद्धिदा भव ।।

हे माले! हे माले! हे महामाले! हे सर्वशक्तिस्वरूपिणि! धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष—ये चारों वर्ग तुममें विन्यस्त हैं । अतः तुम सिद्धि प्रदान करो । इस मन्त्र से माला का पूजन करके मूलमन्त्र का पाठ कर श्रीपात्र के अमृत से माला का तर्पण तीन बार करे । स्थिर चित्त होकर एक हजार आठ या एक सौ आठ जप मूल मन्त्र का करे । तब प्राणायाम कर श्रीपात्र के जल और फूल से देवी के वाम कर कमल में तेजोरूप जप का फल निम्न मन्त्र से समर्पित करे—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्रीत्वं गृहाणास्मद् कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवी त्वत् प्रसादान्महेश्वरि ।।

हे देवि! हे महेश्वरि! तुम गुप्त से गुप्त तत्त्व का गोपन करने वाली हो । तुम मेरे जप को ग्रहण करो । तुम्हारी कृपा से मुझे सिद्धि प्राप्त हो । इस प्रकार जप का समर्पण करके पृथ्वी पर माथा टिका कर प्रणाम करे । तब हाथ जोड़कर स्तोत्र और कवच का पाठ करे. तब प्रदक्षिणा करके मन्त्र का उच्चारण विलोम रूप से करते हुए संस्थापित विशेषार्घ्य से विलोम अर्घ्य प्रदान करे । आत्मसमर्पण मन्त्र आगे कहा गया है ।। 166-176 ।।

आत्म-समर्पण

इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः ।
जाग्रत्स्वप्नसषुप्त्यन्ते अवस्थासु प्रकीर्त्तयेत् ।। 177 ।।
मनसान्ते वदेद्वाचा कर्मणा तदनन्तरम् ।
हस्ताभ्यां पदतः पद्भ्यामुदरेण ततः परम् ।। 178 ।।
शिस्नाथ यत्कृतं चोक्त्वा यत्स्मृतं पदतो वदेत् ।
यदुक्तं तत्सर्वमिति ब्रह्मार्पणमुदीरयेत् ।
भवत्वन्तेमां मदीयं सकलं तदनन्तरम् ।। 179 ।।

आद्याकालीपदाम्भोजे अर्पयामि पदं वदेत् ।
प्रणवं तत्सदित्युक्त्वा कुर्यादात्मसमर्पणम् ।। 180 ।।
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा प्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।
मायाबीजं समुच्चार्य्य श्रीआद्ये कालिके वदेत् ।। 181 ।।
पूजितासि यथाशक्ति क्षमस्वेति विसृज्य च ।
संहारमुद्रया पुष्पमाघ्राय स्थापयेद्धृदि ।। 182 ।।
ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा त्रिकोणं सुपरिष्कृतम् ।
तत्र सम्पूजयेद्देवीं निर्म्माल्यपुष्पवासिनीम् ।
ह्रींनिर्म्माल्यपदं चोक्त्वा वासिन्यै नम इत्यपि ।। 183 ।।
ब्रह्मविष्णुशिवादिभ्यः सर्वदेवेभ्य एव च ।
नैवेद्यं वितरेत्पश्चाद्गृह्णीयाच्छक्तिसाधकः ।। 184 ।।
स्वीयशक्तिं वामभागे संस्थाप्य पृथगासने ।
एकासनोपविष्टो वा पात्रं कुर्यान्मनोरमम् ।। 185 ।।

आत्मसमर्पण-मन्त्र श्लोक 177-180 के उद्धार करने पर इस प्रकार का वनता हैं—

इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तावस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यां उदरेण शिश्नया यत् कृतं यत् स्मृतं यदुक्तं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु । मां मदीयं सकलं आद्याकाली-पदाम्भोजे अर्पयामि । ॐ तत्सत् ।

इसके पूर्व प्राण-बुद्धि-देह-धर्म के अधिकार में जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में मन, वाक्य, कर्म, पैरों, हाथों, उदर और उपस्थ के द्वारा यथासम्भव जो कुछ किया गया, स्मरण हुआ और कहा गया; वह सब कुछ ब्रह्म को अर्पित हो । मैं और वे सभी वस्तुयें, जिन्हें अपना कह कर अभिमान होता है, उन्हें आद्याकाली के श्रीचरणों में अर्पित करता हूँ । इसके बाद हाथ जोड़कर इष्टदेवता से प्रार्थना करे—श्री आद्ये कालिके यथाशक्त्या पूजितासि क्षमस्व ।

इस प्रकार विसर्जन करे । संहारमुद्रा से हाथ में फूल लेकर सूँघे । इष्ट देवता को अपने हृदय मे स्थापित करे । इसके बाद ईशान कोण में एक सुन्दर त्रिकोण बनाकर उस पर निर्माल्यवासिनी देवी का पूजन करे—'ह्रीं निर्माल्यवासिन्यै नमः' । इसके बाद साधक ब्रह्मा-विष्णु-महेश सभी देवों को नैवेद्य समर्पित करके स्वयं ग्रहण करे ।। 177-185 ।।

चक्रानुष्ठान

पानपात्रं प्रकुर्वीत न पञ्चतोलकाधिकम् ।
तोलकत्रितयान्न्यूनं स्वर्णं राजतमेव च ।। 186 ।।

अपनी बाँईं ओर दूसरे आसन पर अपनी शक्ति को बैठाकर अथवा उसके साथ एक ही आसन पर बैठकर पानादि के मनोरम पात्रों को स्थापित करे ।। 186 ।।

पात्र-लक्षण

अथवा काचजनितं नारिकेलोद्भवं च वा ।
आधारोपरि संस्थाप्य शुद्धिपात्रस्य दक्षिणे ।। 187 ।।
महाप्रसादमानीय पात्रेषु परिवेषयेत् ।
स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा ज्येष्ठानुक्रमतः सुधीः ।। 188 ।।
पानपात्रे सुधा देया शौद्धये शुद्ध्यादिकानि च ।
ततः सामयिकैः सार्द्धं पानभाजनमाचरेत् ।। 189 ।।
आदावास्तरणार्थाय गृह्णीयाच्छुद्धिमुत्तमाम् ।
ततोऽतिहृष्टमनसा समस्तः कुलसाधकः ।। 190 ।।
स्वस्वपात्रं समादाय परमामृतपूरितम् ।
मूलाधारादिजिह्वान्तां चिद्रूपां कुलकुण्डलीम् ।। 191 ।।
विभाव्य तन्मुखाम्भोजे मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
परस्पराज्ञामादाय जुहुयात्कुण्डलीमुखे ।। 192 ।।
अलिपानं कुलस्त्रीणां गन्धस्वीकारलक्षणम् ।
साधकानां गृहस्थानां पञ्चपात्रं प्रकीर्तितम् ।। 193 ।।

पात्र का तौल पाँच तोले से अधिक और तीन तोले से कम न हो अर्थात् 60 ग्राम से अधिक न हो और न 36 ग्राम से कम न हो । सोना, चाँदी, काँच या नारियल का पात्र बनवाए । शुद्धिपात्र के दाँईं ओर आधार के ऊपर उसे स्थापित करे । पान-पात्र में सुधा, मद्य और शुद्धिपात्र में मांस-मत्स्यादि शुद्धि रक्खे । तब देवी-पूजा में सम्मिलित सभी लोगों के साथ पान करे और भोजन करे । पहले आस्तरण के लिये उत्तम शुद्धि ग्रहण करे । तब सभी कुलसाधक अत्यन्त आदरपूर्वक आनन्दित चित्त से उत्कृष्ट मद्यपूर्ण अपने-अपने पात्र को हाथ में ग्रहण करें । मूलाधार से जीभ तक व्याप्त चैतन्यरूपा कुलकुण्डलिनी का ध्यान करके उसके मुखकमल में मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए एक-दूसरे की अनुमति लेकर परामृत की आहुति से हवन करें ।। 187-193 ।।

मद्यपान की सीमा और विसर्जन

अतिपानात्कुलीनानां सिद्धिहानिः प्रजायते ।। 194 ।।
यावन्न चालयेद्दृष्टिं यावन्न चालयेन्मनः ।
तावत्पानं प्रकुर्वीत पशुपानमतः परम् ।। 195 ।।
पाने भ्रान्तिर्भवेद्यस्य घृणी च शक्तिसाधके ।
स पापिष्ठः कथं ब्रूयादाद्यां कालीं भजाम्यहम् ।। 196 ।।
यथा ब्रह्मार्पितेऽन्नादौ स्पृष्टिदोषो न विद्यते ।
तथा तव प्रसादेऽपि जातिभेदं विवर्जयेत् ।। 197 ।।
एवमेव विधानेन कुर्यात्पानं च भोजनम् ।
हस्तप्रक्षालनं नास्ति तव नैवेद्यसेवने ।
लेपावनोदनं कुर्याद्वस्त्रेण पायसापि वा ।। 198 ।।
ततो निर्माल्यकुसुमं विधृत्य शिरसा सुधीः ।
यन्त्रलेपं कूर्च्चदेशे विहरेद्देववद्भुवि ।। 199 ।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे श्रीपात्रस्थापनहोमचक्रा-
नुष्ठानकथनं नाम षष्ठोल्लासः

❖

कुलस्त्रियों के लिय मद्य के गन्ध का ग्रहण करना ही अलिपान है । गृहस्थ साधकों के लिये पाँच पात्र तक मद्यपान करना 'अलिपान' कहा गया है । इससे अधिक मद्यपान कुलसाधकों को सिद्धि के हानिकारक होता है । जब तक दृष्टि में चञ्चलता न हो, तभी तक पान करना चाहिये । इससे अधिक पान पशुपान के समान होता है । पान करने से जिस साधक के चित्त में व्याकुलता हो और जो शक्ति साधक से घृणा करे, वह किस प्रकार यह कह सकता है कि मैं आद्या काली का भजन करता हूँ । जैसे ब्रह्म को समर्पित अन्नादि के छूने में दोष नहीं है अर्थात् जातिभेद वर्जित है, वैसे ही तुम्हारे प्रसाद के बारे में भी जातिभेद का विचार न करे । इसी प्रकार विधि-विधान से पान-भोजन करे । तुम्हारे नैवेद्य के सेवन में हाथ धोने की विधि नहीं है । वस्त्र या जल से हस्तलेप दूर करे । इसके बाद बुद्धिमान साधक निर्माल्य पुष्प को मस्तक पर धारण करे । लेप द्रव्य को भ्रूमध्य में धारण करे । देव के समान होकर भूतल पर विचरण करे ।। 194-199 ।।

श्रीपात्रस्थापनहोमचक्रानुष्ठानकथन नामक षष्ठोल्लास सम्पूर्ण

❖

सप्तम उल्लास

स्तोत्र कवच और कुलतत्त्व के लक्षणों का वर्णन

कालिकाशतनाम स्तोत्र

श्रुत्वाद्याकालिकादेव्या मन्त्रोद्धारं महाफलम् ।
सौभाग्यमोक्षजननं ब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ।। 1 ।।
प्रात:कृत्यं तथा स्नानं सन्ध्यां संविद्विशोधनम् ।
न्यासपूजाविधानं च बाह्याभ्यन्तरभेदत: ।। 2 ।।
बलिप्रदानं होमं च चक्रानुष्ठानमेव च ।
महाप्रसादस्वीकारं पार्वती हृष्टमानसा ।
विनयावनता देवि प्रोवाच शङ्करं प्रति ।। 3 ।।
सदाशिव जगन्नाथ जगतां हितकारक ।
कृपया कथितं देव पराप्रकृतिसाधनम् ।। 4 ।।
सर्वप्राणिहितकरं भोगमोक्षैककारणम् ।
विशेषत: कलियुगे जीवानामाशु सिद्धिदम् ।। 5 ।।
तव वागमृताम्भोधौ निमज्जन्मम मानसम् ।
नोत्थातुमीहते स्वैरं भूय: प्रार्थयतेऽचिरात् ।। 6 ।।
पूजाविधौ महादेव्या: सूचितं न प्रकाशितम् ।
स्तोत्रं च कवचं देव तदिदानीं प्रकाशय ।। 7 ।।
शृणु देवि जगद्वन्द्ये स्तोत्रमेतदनुत्तमम् ।
पठनाच्छ्रवणाद्यस्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।। 8 ।।
असौभाग्यप्रशमनं सुखसम्पद्विवर्द्धनम् ।
अकालमृत्युहरणं सर्वापद्विनिवारणम् ।। 9 ।।
श्रीमदाद्याकालिकाया: सुखसान्निध्यकारणम् ।
स्तवस्यास्य प्रसादेन त्रिपुरारिरहं शिवे ।। 10 ।।
स्तोत्रस्यास्य ऋषिर्देवि! सदाशिव उदाहृत: ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवताद्या कालिका परिकीर्तिता ।। 11 ।।

महाफलदायक, सौभाग्य और मोक्षप्रद, ब्रह्मज्ञान-लाभ का अद्वितीय साधन आद्या काली का मन्त्रोद्धार, प्रात:कृत्य, स्नान, सन्ध्या, संविदा-शोधन,

बाह्य और मानसभेद से न्यास और पूजन, विधान, बलिदान, हवन, भैरवी और तत्त्वचक्रानुष्ठान तथा महाप्रसाद-ग्रहण को सुनकर प्रसन्न मन पार्वती देवी ने विनय से झुककर शंकर से कहा कि हे सदाशिव! हे जगन्नाथ! हे जगत् के हितकर्त्ता! हे देव! तुमने कृपा करके मुझसे प्राणियों के लिये हितकर भोग और मोक्ष का अद्वितीय साधन के साथ-साथ कलियुग में जीवों के लिये शीघ्र सिद्धिप्रद परमा प्रकृति का साधन विशेष रूप से बतलाया है । तुम्हारे वचनरूपी सुधासागर में क्रमशः निमग्नप्राय मेरा मन कुछ-कुछ ऊपर उठने के लिये चेष्टा नहीं करता; अपितु पुनः उसे प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करता है । महादेवी की पूजा-विधि में आपने स्तोत्र और कवचपाठ की आवश्यकता को सूचित किया; किन्तु उन्हें प्रकाशित नहीं किया । हे देव! इस समय उन्हें प्रकट करने की कृपा करें ।

श्री सदाशिव ने कहा कि हे जगवन्द्ये! हे देवि! यह सर्वोत्तम स्तोत्र बतलाता हूँ, सुनो । इसका पाठ या श्रवण करने के साधक सभी सिद्धियों का स्वामी होता है । इससे असौभाग्य का नाश और सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होती है । यह अकालमृत्यु को दूर करता है । आपत्तियों का निवारण करता है । हे शिवे! इस स्तोत्र से आद्या काली देवी का सुखद सान्निध्य प्राप्त होता है । इसी स्तोत्रपाठ से मैं त्रिपुरारी कहलाता हूँ । हे देवि! इस स्तोत्र के ऋषि सदाशिव! छन्द अनुष्टुप्, देवता आद्या कालिका और विनियोग धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—चतुर्वर्ग की प्राप्ति कहा गया है ।। 1-11 ।।

शतनामस्तोत्र

ह्रीं काली श्रीं कराली च क्रीं कल्याणी कलावती ।
कमला कलिदर्पघ्नी कपर्दीशकृपान्विता ।। 12 ।।
कालिका कालमाता च कालानलसमद्युतिः ।
कपर्दिनी करालास्या करुणामृतसागरा ।। 13 ।।
कृपामयी कृपाधारा कृपापारा कृपागमा ।
कृशानुःकपिला कृष्णा कृष्णानन्दविवर्द्धिनी ।। 14 ।।
कालरात्रिः कामरूपा कामपाशविमोचिनी ।
कादम्बिनी कलाधारा कलिकल्मषनाशिनी ।। 15 ।।
कुमारीपूजनप्रीता कुमारीपूजकालया ।
कुमारीभोजनानन्दा कुमारीरूपधारिणी ।। 16 ।।

कदम्बवनसञ्चारा कदम्बवनवासिनी ।
कदम्बपुष्पसन्तोषा कदम्बपुष्पमालिनी ॥ 17 ॥
किशोरी कलकण्ठा च कलनादनिनादिनी ।
कादम्बरीपानरता तथा कादम्बरीप्रिया ॥ 18 ॥
कपालपात्रनिरता कङ्कालमाल्यधारिणी ।
कमलासनसन्तुष्टा कमलासनवासिनी ॥ 19 ॥
कमलालयमध्यस्था कमलामोदमोदिनी ।
कलहंसगतिः क्लैब्यनाशिनी कामरूपिणी ॥ 20 ॥
कामरूपकृतावासा कामपीठविलासिनी ।
कमनीया कल्पलता कमनीयविभूषणा ॥ 21 ॥
कमनीयगुणाराध्या कोमलाङ्गी कृशोदरी ।
कारणामृतसन्तोषा कारणानन्दसिद्धिदा ॥ 22 ॥
कारणानन्दजापेष्टा कारणार्च्चनहर्षिता ।
कारणार्णवसम्मग्ना कारणव्रतपालिनी ॥ 23 ॥
कस्तूरीसौरभामोदा कस्तूरीतिलकोज्ज्वला ।
कस्तूरीपूजनरता कस्तूरीपूजकप्रिया ॥ 24 ॥
कस्तूरीदाहजननी कस्तूरीमृगतोषिणी ।
कस्तूरीभोजनप्रीता कर्पूरचन्दनोक्षिता ॥ 25 ॥
कर्पूरकारणाह्लादा कर्पूरामृतपायिनी ।
कर्पूरसागरस्नाता कर्पूरसागरालया ॥ 26॥
कूर्च्चबीजजपप्रीता कूर्च्चजापपरायणा ।
कुलीना कौलिकाराध्या कौलिकप्रियकारिणी ॥ 27 ॥
कुलाचारा कौतुकिनी कुलमार्गप्रदर्शिनी ।
काशीश्वरी कष्टहर्त्री काशीशवरदायिनी ॥ 28 ॥
काशीश्वरकृतामोदा काशीश्वरमनोरमा ॥ 29 ॥
कलमञ्जीरचरणा क्वणत्काञ्चीविभूषणा ।
काञ्चनाद्रिकृतागारा काञ्चनाचलकौमुदी ॥ 30 ॥
कामबीजजपानन्दा कामबीजस्वरूपिणी ।
कुमतिघ्नी कुलीनार्तिनाशिनी कुलकामिनी ॥ 31 ॥
क्रींह्रींश्रींमन्त्रवर्णेन कालकण्टकघातिनी ।
इत्याद्याकालिकादेव्याः शतनामप्रकीर्तितम् ॥ 32 ॥

1. ह्रींरूपा काली । 2. श्रींरूपा कराली । 3. क्रींरूपा कल्याणी । 4.

कलावती । 5. कमला । 6. कलिदर्पनाशिनी । 7. महादेव के ऊपर कृपावती । 8. कालिका । 9. कालमाता । 10. कालानलसदृशद्युति । 11. कपर्दिनी । 12. करालवदना । 13. करुणासुधासिन्धु । 14. कृपामयी । 15. कृपाधारा । 16. कृपापारा । 17. कृपागमा । 18. कृशानु । 19. कपिला । 20. कृष्णा । 21. कृष्णानन्दविवर्द्धिनी । 22. कालरात्रि । 23. कामरूपा । 24. कामपाशमोचनी । 25. कादम्बिनी । 26. कलाधारा । 27. कलिपापहारिणी । 28. कुमारीपूजनप्रीता । 29. कुमारीपूजकालया । 30. कुमारीभोजनानन्दा । 31. कुमारीरूपधारिणी । 32. कदम्बवनसञ्चारा । 33. कदम्बवनवासिनी । 34. कदम्बपुष्पसन्तोषा । 35. कदम्बपुष्पमालिनी । 36. किशोरी । 37. कलकण्ठा । 38. कलनादनिनादिनी । 39. कादम्बरीपानरता । 40. कादम्बरीप्रिया । 41. कपालपात्रनिरता । 42. कंकालमाल्यधारिणी । 43. कमलासनसन्तुष्टा । 44. कमलासनवासिनी । 45. कमलालयमध्यस्था । 46. कमलामोदमोहिनी । 47. कलहंसगामिनी । 48. क्लैब्यनाशिनी । 49. कामरूपिणी । 50. कामरूपकृतावासा । 51. कामपीठविलासिनी । 52. कमनीया । 53. कल्पलता । 54. कमनीयविभूषणा । 55. कमनीयगुणाराध्या । 56. कोमलांगी । 57. कृशोदरी । 58. करुणामृतसन्तोषा । 59 कारणानन्दसिद्धिदा । 60. कारणानन्दजापेष्टा । 61. कारणार्चनहर्षिता । 62. कारणार्ण-वसंमग्ना । 63. कारणव्रतपालिनी । 64. कस्तूरीसौरभामोदा 65. कस्तूरीतिलकोज्ज्वला । 66. कस्तूरीपूजनरता । 67. कस्तूरीपूजकप्रिया । 68. कस्तूरीदाहजननी । 69. कस्तूरीमृगतोषिनी । 70. कस्तूरीभोजनप्रीता । 71. कर्पूरामोदमोदिता । 72. कर्पूरमालाभरणा । 73. कर्पूरचन्दनोक्षिता । 74. कर्पूरकारणाह्लादा । 75. कर्पूरामृतपायिनी । 76. कर्पूरसागरस्नाता । 77. कर्पूरसागरालया । 78. कूर्चबीजजपप्रीता । 79. कूर्चजपपरायणा । 80. कुलीना । 81. कौलिकाराध्या । 82. कौलिकप्रियकारिणी । 83. कुलाचारा । 84. कौतुकिनी । 85. कुलमार्ग-प्रदर्शिनी । 86. काशीश्वरी । 87. कष्टहर्त्री । 88. काशीशवरदायिनी । 89. काशीश्वरकृतामोदा । 90. काशीश्वरमनोरमा । 91. कलमञ्जीरचरणा । 92. क्वणनकाञ्चीविभूषणा । 93. काञ्चनाद्रिकृतागरा । 94. काञ्चनाचलकौमुदी । 95. कामबीजजपानन्दा । 96. कामबीजस्वरूपिणी । 97. कुमतिघ्नी । 98. कुलीनार्त्तिनाशिनी । 99. कुलकामिनी । 100. **क्रीं ह्रीं श्रीं मन्त्रवर्णों से काल-कण्टकघातिनी । इस प्रकार से आद्याकालिका देवी का शतनाम कहा गया है ।। 12-32।।**

फलश्रुति

ककारकूटघटितं कालीरूपस्वरूपकम् ॥ 33 ॥
पूजाकाले पठेद्यस्तु कालिकाकृतमानसः ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशु तस्य काली प्रसीदति ॥ 34 ॥
बुद्धिं विद्यां च लभते गुरोरादेशमात्रतः ।
धनवान्कीर्तिमान्भूयाद्दानशीलो दयान्वितः ॥ 35 ॥
पुत्रपौत्रसुखैश्वर्य्यैर्मोदते साधको भुवि ॥ 36 ॥
भौमामावास्यानिशाभागे पञ्चकसमन्वितः ।
पूजयित्वा महाकालीमाद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ 37 ॥
पठेद्वै शतनामानि साक्षात्कालीमयो भवेत् ।
नासाध्यं विद्यते तस्य त्रिषु लोकेषु किञ्चन ॥ 38 ॥
विद्यायां वाक्पतिः साक्षाद्धने धनपतिर्भवेत् ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये बले च पवनोपमः ॥ 39 ॥
तिग्मांशुरिव दुष्प्रेक्ष्यः शशिवच्छुभदर्शनः ।
रूपे मूर्त्तिधरः कामो योषितां हृदयङ्गमः ॥ 40 ॥
सर्वत्र जयमाप्नोति स्तवस्यास्य प्रसादतः ।
यं यं कामं पुरस्कृत्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥ 41 ॥
तं तं काममवाप्नोति श्रीमदाद्याप्रसादतः ।
रणे राजकुले द्यूते विवादे प्राणसङ्कटे ॥ 42 ॥
दस्युग्रस्ते ग्रामदाहे सिंहव्याघ्रावृते तथा ॥ 43 ॥
अरण्ये प्रान्तरे दुर्गे ग्रहराजभयेऽपि वा ।
ज्वरदाहे चिरव्याधौ महारोगादिसङ्कुले ॥ 44 ॥
बालग्रहादिरोगे च तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
दुस्तरे सलिले वापि पोते वातविपद्गते ॥ 45 ॥
विचिन्त्य परमां मायामाद्यां कालीं परात्पराम् ।
यः पठेच्छतनामानि दृढभक्तिसमन्वितः ॥ 46 ॥
सर्वापद्भ्यो विमुच्येत देवि सत्यं न संशयः ।
न पापेभ्यो भयं तस्य न रोगेभ्यो भयं क्वचित् ॥ 47 ॥
सर्वत्र विजयस्तस्य न कुत्रापि पराभवः ।
तस्य दर्शनमात्रेण पलायन्ते विपद्गणाः ॥ 48 ॥
स वक्ता सर्वशास्त्राणां स भोक्ता सर्वसम्पदाम् ।
स कर्त्ता जातिधर्माणां ज्ञातीनां प्रभुरेव सः ॥ 49 ॥

वाणी तस्य वसेद्वक्त्रे कमला निश्चला गृहे ।
तन्नाम्ना मानवाः सर्वे प्रणमन्ति ससम्भ्रमाः ।। 50 ।।
दृष्ट्या तस्य तृणायन्ते ह्यणिमाद्यष्टसिद्धयः ।
आद्याकालीस्वरूपाख्यं शतनाम प्रकीर्तितम् ।। 51 ।।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या पुरश्चर्यास्य गीयते ।
पुरस्क्रियान्वितं स्तोत्रं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।। 52 ।।
शतनामस्तुतिमिमामाद्याकालीस्वरूपिणीम् ।
पठेद्वा पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेदपि ।। 53 ।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।। 54 ।।

हे देवि! ककार से प्रारम्भ होने वाले नामों से निर्मित यह स्तोत्र कालीस्वरूपा है । जो साधक कालिका में मन लगा कर पूजाकाल में इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे शीघ्र ही मन्त्रसिद्धि मिलती है । काली उस पर प्रसन्न होती है । गुरु के उपदेश- मात्र से ही उसे विद्या और बुद्धि का लाभ होता है । उसे साधनात्मक परिश्रम नहीं करना पड़ता । वह धनवान, यशस्वी, दाता और दयालु हो जाता है । वह साधक संसार में पुत्र-पौत्र-सुख-ऐश्वर्य से आनन्दित रहता है ।

मंगलवारी अमावस्या के निशाकाल में मद्य आदि पञ्चतत्त्वों के सहित त्रिभुवनेश्वरी आद्या काली की पूजा करके शतनामस्तोत्र का पाठ करने से साधक साक्षात् काली-स्वरूप हो जाता है । तीनों लोकों में उसे कुछ भी असाध्य नहीं रहता । विद्या में साक्षात् बृहस्पति, धन में कुबेर, गम्भीरता में समुद्र और बल में पवन के समान होता है । सूर्य के समान दुर्दर्श और चन्द्रमा के समान सौम्य दर्शन होता है । इस प्रकार मूर्त कामदेव के समान मनोरम होकर रमणियों के हृदय में वह शोभित होता है । इस स्तोत्रपाठ के फलस्वरूप सर्वत्र विजयी होता है । जो-जो कामना करते हुये इस स्तोत्र का पाठ करेगा, श्री आद्याकाली की कृपा से उसे वे सभी अभीष्ट फल प्राप्त होंगे । युद्ध में, राज्यसभा में, जूआ में, विवाद-मुकदमा में, प्राणसंकट के समय, गाँव में आग लगने पर, दस्युपूर्ण स्थान में, सिंह-व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं से पूर्ण स्थान में, दुर्ग में, ग्रह का भय होने पर, राजभय होने पर, ज्वरदाह में, पुरानी व्याधि में, महारोग के आक्रमण में, बालग्रहादि के योग में, दुःस्वप्न देखने पर, दुस्तर समुद्र में, विपत्तिरूप तूफान में, जहाजग्रस्त होने पर विपत्ति में जो परात्परा, परमा माया

आद्या काली का ध्यान कर दृढ़ भक्ति के साथ इस शतनाम स्तोत्र का पाठ करेगा । वह सचमुच ही सभी विपत्तियों को छुटकारा पा जायगा । हे देवि! इसमें सन्देह नहीं है । उसे किसी स्थान में पाप का भय या रोग का भय नहीं होगा । उसके दर्शनमात्र से विपत्तियाँ दूर हो जायेंगी । वह साधक सभी शास्त्रों का वक्ता होगा । सभी सम्पत्तियों का भोग उसे प्राप्त होगा । वह जाति और धर्म का कर्त्ता होगा । जातियों का स्वामी होगा । उसके मुख में सरस्वती का वास होगा । उसके घर में स्थिर लक्ष्मी का वास होगा, सभी मनुष्य उसके नाम को सुनकर ही सादर उसे प्रणाम करेंगे । उसके दर्शन से ही अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ या उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण विषय सुलभ होंगे । आद्या कालीस्वरूपा इस शतनाम स्तोत्र का वर्णन किया गया ।

इस स्तोत्र का पुरश्चरण 108 पाठ से होता है । पुरश्चरण करने पर यह स्तोत्र सभी अभीष्टों को प्रदान करता है । जो मनुष्य इस आद्या कालीस्वरूपा स्तोत्र का पाठ करता है या इसका पाठ करवाता है, इसे सुनता है या सुनवाता है वह सभी पापों से रहित होकर ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त करता है । श्री सदाशिव ने कहा कि हे देवि! इस प्रकार परब्रह्मस्वरूप प्रकृति का महत् स्तोत्र तुम्हें सुनाया गया ।। 33-54 ।।

कालिका त्रैलोक्यविजय कवच

कथितं परमं ब्रह्मप्रकृतेः स्तवनं महत् ।
आद्यायाः श्रीकालिकायाः कवचं शृणु साम्प्रतम् ।। 55 ।।
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता च आद्याकाली प्रकीर्त्तिता ।। 56 ।।
मायाबीजं बीजमिति रमा शक्तिरुदाहृता ।
क्रीं कीलकं काम्यसिद्धौ विनियोगः प्रकीर्तितः ।। 57 ।।
ह्रीमाद्या मे शिरः पातु श्रीं काली वदनं मम ।
हृदयं क्रीं परा शक्तिः पायात्कण्ठं परात्परा ।। 58 ।।
नेत्रे पातु जगद्धात्री कर्णौ रक्षतु शङ्करी ।
घ्राणं पातु महामाया रसनां सर्वमङ्गला ।। 59 ।।
दन्तान्रक्षतु कौमारी कपोलौ कमलालया ।
ओष्ठाधरौ क्षमा रक्षेच्चिबुकं चारुहासिनी ।। 60 ।।
ग्रीवां पायात्कुलेशानी ककुत्पातु कृपामयी ।

द्वौ बाहू बाहुदा रक्षेत्करौ कैवल्यदायिनी ॥ 61 ॥
स्कन्धौ कपर्द्दिनी पातु पृष्ठं त्रैलोक्यतारिणी ।
पार्श्वे पायादपर्णा मे कटिं मे कमठासना ॥ 62 ॥
नाभौ पातु विशालाक्षी प्रजास्थानं प्रभावती ।
ऊरू रक्षतु कल्याणी पादौ मे पातु पार्वती ॥ 63 ॥
जयदुर्गावतु प्राणान्सर्वाङ्गं सर्वसिद्धिदा ।
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन च ॥ 64 ॥
तत्सर्वं मे सदा रक्षेदाद्या काली सनातनी ।
इति ते कथितं दिव्यं त्रैलोक्यविजयाभिधम् ॥ 65 ॥
कवचं कालिकादेव्या आद्यायाः परमाद्भुतम् ।
पूजाकाले पठेद्यस्तु आद्याधिकृतमानसः ॥ 66 ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति तस्याद्याशु प्रसीदति ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशु किङ्कराः क्षुद्रसिद्धयः ॥ 67 ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी प्राप्नुयाद्धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां कामी कामानवाप्नुयात् ॥ 68 ॥
सहस्रावृत्तपाठेन वर्मणोऽस्य पुरस्क्रिया ।
पुरश्चरणसम्पन्नं यथोक्तफलदं भवेत् ॥ 69 ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमै रक्तचन्दनैः ।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥ 70 ॥
शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा साधकः कटौ ।
तस्याद्या कालिका वश्या वाञ्छितार्थं प्रयच्छति ॥ 71 ॥
न कुत्रापि भयं तस्य सर्वत्र विजयी कविः ।
अरोगी चिरजीवी स्याद्बलवान्धारणक्षमः ॥ 72 ॥
सर्वविद्यासु निपुणः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
वशे तस्य महीपाला भोगमोक्षौ करस्थितौ ॥ 73 ॥
कलिकल्मषयुक्तानां निःश्रेयसकरं परम् ॥ 74 ॥

श्री सदाशिव ने कहा कि हे देवि! अब आद्या श्रीकालिका के कवच का वर्णन सुनो । इस त्रैलोक्यविजय कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता आद्याकाली, बीज 'ह्रीं', शक्ति 'श्रीं', कीलक 'क्रीं' और काव्यसिद्धि के लिये इसका विनियोग होता है ।

ह्रीं-रूपा आद्या काली मेरे मस्तक की और श्रीं-रूपा काली मेरे मुख की रक्षा करें । 'क्रीं' रूपा परा शक्ति मेरे हृदय की और परात्परा मेरे कण्ठ की रक्षा

करें । जगद्धात्री मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा करें । शंकरी दोनों कानों की रक्षा करें । महामाया मेरी नासिका की और सर्वमंगला जीभ की रक्षा करें । कौमारी मेरी दन्तपंक्तियों की और कुलेशानी गर्दन की रक्षा करें । कृपामयी मेरे कन्धों की रक्षा करें । बाहुदा दोनों भुजाओं की रक्षा करें और कैवल्यदायिनी दोनों हाथों की एवं कर्पिदनी दोनों कन्धों की तथा त्रैलोक्यतारिणी मेरी पीठ की रक्षा करें । अपर्णा मेरे दोनों पार्श्वों की और कमठासना मेरे कटिदेश की रक्षा करें । विशालाक्षी मेरे नाभि-देश की और प्रभावती प्रजननांग की रक्षा करें । कल्याणी दोनों ऊरुओं की और पार्वती मेरे दोनों पैरों की रक्षा करें । जय दुर्गा पञ्चप्राणों की और सर्वसिद्धिदा मेरे सर्वांग की रक्षा करें । जो स्थान कवच में उल्लिखित नहीं हैं और रक्षाहीन हैं, उन स्थानों अर्थात् अंग-प्रत्यंगों की रक्षा सनातनी आद्या काली करें ।

हे देवि! तुमने आद्याकाली का त्रैलोक्यविजय नामक दिव्य कवच को सुना । जो साधक पूजा के समय आद्यामय चित्त से इस अद्भुत कवच का पाठ करता है, वह सभी अभीप्सित प्राप्त करता है । आद्याकाली उस पर बहुत प्रसन्न होती है । मन्त्र की सिद्धि उसे शीघ्र होती है । अणिमादि सिद्धियाँ उसकी सेविका होती हैं । अपुत्री को पुत्र, निर्धन को धन, विद्यार्थी को विद्या और सकामी को काम्य फल की प्राप्ति होती है ।

इस कवच का पुरश्चरण एक हजार आठ पाठ से होता है । इस कवच के पूर्वोक्त फलों की प्राप्ति पुरश्चरण से ही होती है । अगर, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम या लाल चन्दन से भोजपत्र पर इस कवच को लिखकर उसकी गुटिका बनाकर सोने के ताबीज में भरकर अपनी शिखा, दक्षिण भुजा, कण्ठ या कमर में साधक धारण करे तो आद्या काली उसके वश में होकर वाञ्छित फल देती है । उसे कहीं भी भय नहीं होता है। वह सभी स्थानों में विजयी, कवि, निरोग, बलवान, सक्षम, चिरञ्जीवी, सर्वविद्या में निपुण एवं सर्व शास्त्रार्थतत्त्व का मर्मज्ञ हो जाता है । राजा उसके वश में रहते हैं तथा भोग-मोक्ष उसके हाथ में रहते हैं । यह कवच कलिकाल में पापी मनुष्यों के लिए मोक्षदायक और अति श्रेष्ठ है ।। 55-74 ।।

पुरश्चरण-विधि

कथितं कृपया नाथ स्तोत्रं कवचमेव च ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि पुरश्चर्याविधिं विभो ।। 75 ।।

योे विधिर्ब्रह्ममन्त्राणां पुरश्चरणकर्मणि ।
स एवाद्यकालिकाया मन्त्राणां विधिरिष्यते ॥ 76 ॥
अशक्ते साधके देवि जपपूजाहुतादिषु ।
पूजां संक्षेपतः कुर्यात्पुरश्चरणमेव च ॥ 77 ॥
यतो हि निरनुष्ठानात्स्वल्पानुष्ठानमुत्तमम् ।
संक्षेपपूजनं भद्रे तत्रादौ शृणु कथ्यते ॥ 78 ॥
आचम्य मूलमन्त्रेण ऋषिन्यासं समाचरेत् ।
करशुद्धिं ततः कुर्यान्न्यासं च करदेहयोः ॥ 79 ॥
सर्वाङ्गव्यापकं कृत्वा प्राणायामं चरेत्सुधीः ।
ध्यानं पूजा जपं चेति संक्षेपः पूजने विधिः ॥ 80 ॥
पुरस्क्रियायां मन्त्राणां यत्र यो विहितो जपः ।
तस्माच्चतुर्गुणजपात्पुरश्चर्या विधीयते ॥ 81 ॥
अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य कौजे वा शनिवासरे ।
पञ्चतत्त्वं समानीय पूजयित्वा जगन्मयीम् ॥ 82 ॥
महानिशायामयुतं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
भोजयित्वा ब्रह्मनिष्ठान्पुरश्चरणकृद्भवेत् ॥ 83 ॥
कुजवासरमारभ्य यावन्मङ्गलवासरम् ।
प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रपरिसंख्यया ॥ 84 ॥
वसुसंख्याजपेनैव भवेन्मन्त्रपुरस्क्रिया ॥ 85 ॥
श्रीआद्यकालिकामन्त्राः सिद्धमन्त्राः सुसिद्धिदाः ।
सदा सर्वयुगे देवि कलिकाले विशेषतः ॥ 86 ॥
कालीरूपाणि बहुधा कलौ जाग्रति पार्वती ।
प्रबले कलिकाले तु रूपमेतज्जगद्धितम् ॥ 87 ॥
नात्र सिद्ध्याद्यपेक्षास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ।
नियमानियमौ नापि जपन्त्राद्यां प्रसादयेत् ॥ 88 ॥
ब्रह्मज्ञानमवाप्नोति श्रीमदाद्याप्रसादतः ।
ब्रह्मज्ञानयुतो मर्त्यो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ 89 ॥
न च प्रयासबाहुल्यं कायक्लेशोऽपि न प्रिये ।
आद्यकालीसाधकानां साधनं सुखसाधनम् ॥ 90 ॥
चित्तसंशुद्धिरेवात्र मन्त्रिणां फलदायिनी ॥ 91 ॥
यावन्न चित्तकलिलं हातुमुत्सहते व्रती ।

तावत्कर्म प्रकुर्वीत कुलभक्तिसमन्वितः ।। 92 ।।
यथावद्विहितं कर्म चित्तशुद्धेर्हि कारणम् ।
आदौ मन्त्रं गुरोर्वक्त्राद्गृह्णीयाद्ब्रह्ममन्त्रवत् ।। 93 ।।
प्रातःकृत्यादिनियमान्कृत्वा कुर्यात्पुरस्क्रियाम् ।
चित्ते शुद्धे महेशानि ब्रह्मज्ञानं प्रजायते ।
ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने कृत्याकृत्यं न विद्यते ।। 94 ।।

श्री देवी ने कहा कि हे नाथ! तुमने कृपा करके स्तोत्र और कवच को बताया । अब पुरश्चरण की विधि को जानने की इच्छा है । श्री सदाशिव ने कहा कि ब्रह्ममन्त्र के पुरश्चरण की जो विधि है, वही आद्या काली के मन्त्र की भी है । हे देवि! साधक जप-पूजा-हवनादि करने में यदि सक्षम न हो तो संक्षेप से पूजन और पुरश्चरण करे; क्योंकि न करने से कुछ करना अच्छा है । हे भद्रे! ऐसे लोगों के लिये पहले संक्षिप्त पूजन-विधान बतलाता हूँ; सुनो ।

मूलमन्त्र से आचमन करके ऋष्यादि न्यास करे । तब करशुद्धि, करन्यास और अंगन्यास करे । तब सर्वाङ्गों में व्यापक न्यास करके प्राणायाम, ध्यान, जप, पूजा करे । यही संक्षिप्त पूजा की विधि है । पुरश्चरण के लिये जिस मन्त्र की जितनी जप-संख्या निश्चित हो, उसका चौगुना जप करने से पुरश्चरण हो जाता हैं । हवन-तर्पण आवश्यक नहीं हैं ।

दूसरे प्रकार की पुरश्चरण विधि यह है कि मंगल या शनिवार को कृष्ण चतुर्दशी होने पर, उस दिन रात में पञ्चतत्त्वों को लाकर जगन्माता की पूजा करे । महानिशा में एकाग्र मन से दस हजार मन्त्रजप करे । तब ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर पुरश्चरण पूरा करे । अथवा एक मंगलवार से आरम्भ करके अगले मंगलवार तक प्रतिदिन एक हजार मन्त्रजप करने से आठ हजार मन्त्रजप होता है और इसी से पुरश्चरण हो जाता है ।

हे देवि! आद्या कालिका के सभी मन्त्र सिद्ध मन्त्र होते हैं । सभी समय में, सब युगों में समृद्धिप्रदायक हैं । विशेषतः कलिकाल में ऐसा प्रभाव है । हे पार्वति! कलि-काल में बहुत प्रकार के कालीरूप जाग्रत हैं । प्रबल कलिकाल में यही रूप संसार के लिये हितकारी हैं । इस मन्त्र में सिद्धादि चक्रगणना अपेक्षित नहीं है । अरि-मित्रादि दोष नहीं हैं । इस मन्त्र में विशेष नियमानियम नहीं हैं। इस मन्त्र को जप कर आद्या काली को प्रसन्न करे । इस मन्त्र के जप

से आद्या काली की कृपा से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है । ब्रह्मज्ञानी मनुष्य जीवन्मुक्त होता है; इसमें सन्देह नहीं है । हे प्रिये! इस मन्त्र की साधना में विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता । शरीर को कष्ट नहीं होता । आद्या काली के साधकों के लिये साधना सुखसाध्य है । इसके लिये चित्त की शुद्धि ही साधकों को फलप्रद होती है । साधक के चित्त की मलिनता जब तक दूर नहीं होती, तब तक वह कुलभक्तियुक्त होकर कर्म करे; विधिवत् कर्मानुष्ठान से ही चित्त की शुद्धि होती है । ब्रह्ममन्त्र के समान इस मन्त्र की दीक्षा गुरु से प्राप्त करे । प्रातःकृत्यादि नियमानुष्ठान के साथ पुरश्चरण करे । हे महेशानि! चित्तशुद्धि के बाद ही ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है और ब्रह्मज्ञान के होने पर अन्य कृत्याकृत्य शेष नहीं रहते ।। 75-94 ।।

कुल और कुलाचार के लक्षण

कुलं किं परमेशान कुलाचारश्च किं विभो ।
लक्षणं पञ्चतत्त्वस्य श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।। 95 ।।
सम्यक्पृष्टं कुलेशानि साधकानां हितैषिणी ।
कथयामि तव प्रीत्यै यथावदवधारय ।। 96 ।।
जीवः प्रकृतितत्त्वं च दिक्कालाकाशमेव च ।
क्षित्यप्तेजोवायवश्च कुलमित्यभिधीयते ।। 97 ।।
ब्रह्मबुद्ध्या निर्विकल्पमेतेष्वावरणं च यत् ।
कुलाचारः स एवाद्ये धर्मकामार्थमोक्षदः ।। 98 ।।
बहुजन्मार्जितैः पुण्यैस्तपोदानदृढव्रतैः ।
क्षीणाघानां साधकानां कुलाचारे मतिर्भवेत् ।। 99 ।।
कुलाचारगता बुद्धिर्भवेदाशु सुनिर्मला ।
तदाद्याचरणाम्भोजे मतिस्तेषां प्रजायते ।। 100 ।।
सद्गुरोः सेवया प्राप्य विद्यामेनां परात्पराम् ।
कुलाचाररता भूत्वा पञ्चतत्त्वैः कुलेश्वरीम् ।। 101 ।।
यजन्तः कालिकामाद्यां कुलज्ञाः साधकोत्तमा ।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्व्रजन्त्यन्ते निरामयम् ।। 102 ।।
महौषधं यज्जीवानां दुःखविस्मारकं महत् ।
आनन्दजनकं यच्च तदाद्यातत्त्वलक्षणम् ।। 103 ।।
असंस्कृतं च यत्तत्त्वं मोहदं भ्रमकारणम् ।
विवादरोगजननं त्याज्यं कौलैः सदा प्रिये ।। 104 ।।

ग्राम्यवायव्यवन्यानामुद्भूतं पुष्टिवर्द्धनम् ।
बुद्धितेजोबलकरं द्वितीयं तत्त्वलक्षणम् ।। 105 ।।
जलोद्भवं यत्कल्याणि कमनीयं सुखप्रदम् ।
प्रजावृद्धिकरं चापि तृतीयं तत्त्वलक्षणम् ।। 106 ।।
सुलभं भूमिजातं च जीवानां जीवनं च यत् ।
आयुर्मूलं त्रिजगतां चतुर्थं तत्त्वलक्षणम् ।। 107 ।।
महानन्दकरं देवि प्राणिनां सृष्टिकारणम् ।
अनाद्यन्तं जगन्मूलं शेषतत्त्वस्य लक्षणम् ।। 108 ।।
आद्यतत्त्वं विद्धि तेजो द्वितीयं पवनं प्रिये ।
अपस्तृतीयं जानीहि चतुर्थं पृथिवीं शिवे ।। 109 ।।
पञ्चमं जगदाधारं वियद्विद्धि वरानने ।। 110 ।।
इत्थं ज्ञात्वा कुलेशानि कुलं तत्त्वानि पञ्च च ।
आचारं कुलधर्मस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।। 111 ।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-
सदाशिवसंवादे स्तोत्रकवचकुलतत्त्वलक्षण-
कथनं नाम सप्तमोल्लासः

❖

श्री पार्वती ने कहा कि हे परमेशान! हे विभो! कुल क्या है? कुलाचार क्या हैं? यह सब और पञ्चतत्त्व के लक्षण यथार्थरूप से बताने की कृपा करें । श्री सदाशिव ने कहा कि हे कुलेशानि! तुम साधकों की हितैषिणी हो । तुमने उत्तम प्रश्न किया है । तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं इनका वर्णन यथार्थरूप से करता हूँ ।

जीव, प्रकृति तत्त्व, दिशायें, आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु को 'कुल' कहा जाता है । हे आद्ये! इन सबों में ब्रह्मबुद्धि से जो विकल्परहित आचरण होता है, उसे ही 'कुलाचार' कहते हैं । यही कुलाचार धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—चतुर्वर्ग-प्रदायक है । तपस्या, दान और कठोर ब्रह्मचर्यादि से बहुजन्मार्जित पुण्य के फल-स्वरूप निष्पाप हुए साधकों की ही प्रवृत्ति कुलाचार में होती है । कुलाचार में संलग्न बुद्धि शीघ्र ही निर्मल हो जाती है । बुद्धि के निर्मल होने पर उनकी मति आद्या-काली के चरणकमलों में लग जाती है । सद्गुरु की सेवा से इस परात्परा मन्त्ररूपा विद्या को प्राप्त करके कुलाचार में तत्पर होकर

पञ्चतत्त्वों द्वारा कुलेश्वरी आद्या काली का पूजा- परायण साधक ही कुलज्ञ और साधकोत्तम होता है । ऐसे साधक इस लोक में सभी सुभोग्य पदार्थों का भोग करके अन्त में मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

आद्य तत्त्व सभी जीवों के लिये महौषध है, बड़े दुःखों को भुलाने वाला और आनन्ददायक है । यह तत्त्व शोधित नहीं होने पर केवल मोहदायक, भ्रमोत्पादक और विषाद तथा रोग का कारण है । हे प्रिये! कौलिकों को इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये । ग्राम्य छागादि, वायव्य हारीतादि, वन्य मृगादि के शरीर से उत्पन्न जो तत्त्व पुष्टिवर्द्धक और बुद्धि, तेज एवं बलदायक हैं, ये ही द्वितीय तत्त्व के लक्षण हैं । हे कल्याणि! जो जल से उत्पन्न, अति लुभावन, सुखद और प्रजावृद्धिकारक तत्त्व है, वही तृतीय तत्त्व मत्स्य का लक्षण है । चतुर्थ तत्त्व 'मुद्रा' का लक्षण है कि वह सुलभ, भूमि से उत्पन्न, जीवों का जीवनस्वरूप और त्रिभुवन के परमायु का निदान है । पञ्चम तत्त्व (मैथुन) का लक्षण है कि वह बहुत आनन्ददायक, प्राणियों की सृष्टि का कारण और आदि-अन्तरहित जगत् का मूल कारण है ।

हे प्रिये! आद्य तत्त्व मद्य को तेज, द्वितीय तत्त्व मांस को पवन, तृतीय तत्त्व मस्त्य को जल, चतुर्थ तत्त्व मुद्रा को पृथ्वी और पञ्चम तत्त्व मैथुन को जगदाधार नभोमण्डल माना जाता है । कुलेशानि! इसी प्रकार कुल, पञ्चतत्त्व और कुलधर्म के आचार को जानकर उसके अनुसार कर्म करके साधक जीवन्मुक्त हो जाता है ।। 95-111।।

स्तोत्रकवचकुलतत्त्वलक्षणकथन नामक सप्तमोल्लास सम्पूर्ण

अष्टम उल्लास

वर्णाश्रम-आचार-धर्मवर्णन

वर्णाश्रम

श्रुत्वा धर्मान्बहुविधान्भवानी भवमोचिनी ।
हिताय जगतां माता भूयः शङ्करमब्रवीत् ॥ 1 ॥
श्रुतं बहुविधं धर्ममिहामुत्र सुखप्रदम् ।
धर्मार्थकामदं विघ्नहरं निर्वाणकारणम् ॥ 2 ॥
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि सर्वान् वर्णाश्रमान्विभो ।
तत्र ये विहिताचाराः कृपया वद तानपि ॥ 3 ॥
चत्वारः कथिता वर्णा आश्रमा अपि सुव्रते ।
आचाराश्चापि वर्णानामाश्रमाणां पृथक्पृथक् ॥ 4 ॥
कृतादौ कलिकाले तु वर्णाः पञ्च प्रकीर्तिताः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः सामान्य एव च ॥ 5 ॥
एतेषां सर्ववर्णानामाश्रमौ द्वौ महेश्वरि ।
तेषामाचारधर्मांश्च शृणुष्वाद्ये वदामि ते ॥ 6 ॥
पुरैव कथितं तावत्कलिसम्भवचेष्टितम् ।
तपःस्वाध्यायहीनानां नृणामल्पायुषामपि ।
क्लेशप्रयासाशक्तानां कुतो देहपरिश्रमः ॥ 7 ॥
ब्रह्मचर्याश्रमो नास्ति वानप्रस्थोऽपि न प्रिये ।
गार्हस्थ्यो भैक्षुकश्चैव आश्रमौ द्वौ कलौ युगे ॥ 8 ॥
गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा आगमोक्ताः कलौ शिवे ।
नान्यमार्गैः क्रियासिद्धिः कदापि गृहमेधिनाम् ॥ 9 ॥
भैक्षुकेऽप्याश्रमे देवि वेदोक्तं दण्डधारणम् ।
कलौ नास्त्येव तत्त्वज्ञे यतस्तच्छ्रौतसंस्कृतिः ॥ 10 ॥
शैवसंस्कारविधिनाऽवधूताश्रमधारणम् ।
तदेव कथितं भद्रे संन्यासग्रहणं कलौ ॥ 11 ॥
विप्राणामितरेषां च वर्णानां प्रबले कलौ ।
उभयत्राश्रमे देवि सर्वेषामधिकारिता ॥ 12 ॥

सर्वेषामेव संस्काराः कर्माणि शैववर्त्मना ।
विप्राणामितरेषां च कर्मलिङ्गं पृथक्पृथक् ।। 13 ।।
जातमात्रो गृहस्थः स्यात्संस्कारादाश्रमी भवेत् ।
गार्हस्थ्यं प्रथमं कुर्याद्यथाविधि महेश्वरि ।। 14 ।।
तत्त्वज्ञाने समुत्पन्ने वैराग्यं जायते यदा ।
तदा सर्वं परित्यज्य संन्यासाश्रममाचरेत् ।। 15 ।।

भवपाश-विमोचिनी भवानी माता ने संसार के हितार्थ शंकर से फिर कहा कि हे शिवशंकर! मैं इस लोक और परलोक में भी सुखदायक धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायक, विघ्ननाशक धर्म को सुनना चाहती हूँ । हे विभो! अब वर्ण और आश्रम तथा वर्णों और आश्रमों के लिये विहित आचार को सुनना चाहती हूँ । कृपया वह सब बताइये ।

श्री सदाशिव ने कहा कि हे सुव्रते! सत्यादि चार युगों में चार वर्ण और चार आश्रम का वर्णन है । वर्णों तथा आश्रमों के आचार भिन्न-भिन्न कहे गये हैं; किन्तु कलियुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सामान्य—इन पाँच वर्णों का होना बतलाया गया है । इन सभी वर्णों के लिये दो ही प्रकार के आश्रम हैं । हे आद्ये! हे महेश्वरि! मैं तुमसे उन सभी वर्णों और आश्रमों के आचार तथा धर्म का वर्णन करता हूँ ।

कलिकाल में उत्पन्न मनुष्यों के बारे में पहले ही कह चुका हूँ । तपस्या और वेदपाठविहीन, अल्पायु, क्लेश सहने में असमर्थ और प्रयास में अशक्त मनुष्यों के लिये परिश्रम असम्भव है । हे प्रिये! कलियुग में ब्रह्मचर्याश्रम नहीं है और वानप्रस्थाश्रम भी नहीं है । गार्हस्थ्य और भैक्षुक—यही दो आश्रम हैं । हे शिवे! कलिकाल में गृहस्थों के सभी कार्य आगमतन्त्रोक्त मत से करने का विधान है । दूसरे किसी मतमार्ग से गृहस्थों की क्रियासिद्धि नहीं होगी । हे देवि! हे तत्त्वज्ञे! कलियुग में भैक्षुकाश्रम में भी दण्ड-धारण नहीं है; क्योंकि वह वैदिक संस्कार है । हे भद्रे! कलिकाल में शैव- संस्कारविधि से अवधूताश्रम धारण ही संन्यास-ग्रहण कथित है । हे देवि! कलियुग के प्रबल होने पर ब्राह्मण एवं अन्य सभी वर्णों को इन्हीं दो आश्रमों का अधिकार होगा एवं शैवविधि से ही सभी संस्कार और क्रियाकलाप होंगे ।

ब्राह्मण और दूसरे वर्णों की कर्मप्रणाली में भिन्नता होगी । हे महेश्वरि !

मनुष्य जन्म से ही गृहस्थ होता है एवं संस्कार के बल से आश्रमी होता है । पहले यथाविधि गृहस्थाश्रम में रहे । तत्त्वज्ञान होने पर जब वैराग्य हो तब सब-कुछ त्याग का संन्यास आश्रम ग्रहण करे ।। 1-15 ।।

आश्रमभेद

विद्यामुपार्ज्जयेद्बाल्ये धनं दारांश्च यौवने ।
प्रौढे धर्म्याणि कर्माणि चतुर्थे प्रव्रजेत्सुधी: ।। 16 ।।
मातरं पितरं वृद्धं भार्यां चैव पतिव्रताम् ।
शिशुं च तनयं हित्वा नावधूताश्रमं व्रजेत् ।। 17 ।।
मातृ: पितृञ्छिशून्दारान्स्वजनान्बान्धवानपि ।
य: प्रव्रजति हित्वैतान्स महापातकी भवेत् ।। 18 ।।
मातृहा पितृहा स स्यात्स्त्रीवधी ब्रह्मघातक: ।
असन्तर्प्य स्वपित्रादीन्यो गच्छेद्भिक्षुकाश्रमे ।। 19 ।।
ब्राह्मणा विप्रभिन्नाश्च स्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रियाम् ।
शैवेन वर्त्मना कुर्यादेष धर्म: कलौ युगे ।। 20 ।।

बाल्यकाल में विद्योपार्जन, यौवनावस्था में धनोपार्जन एवं विवाह तथा प्रौढ़ावस्था में धार्मिक कार्य करे । क्षणभंगुर संसार के वास्तविक मर्म का ज्ञान होने पर चौथी अवस्था वृद्धावस्था में संन्यास ग्रहण करे । वृद्ध माता-पिता, पतिव्रता स्त्री या शिशु सन्तान का त्याग कर अवधूताश्रम प्राप्त नहीं होता । जो मनुष्य माता-पिता, शिशु पुत्र, पत्नी, स्वजन, जातिवर्ग और बन्धु-बान्धव इत्यादि का त्याग करके प्रव्रज्या ग्रहण करता है, वह महापातकी होता है । जो मनुष्य अपने पित्रादि को तृप्त न करके भिक्षुकाश्रम में जाता है, वह मातृहन्ता-पितृहन्ता, स्त्रीघाती एवं ब्रह्मघातक होता है । अर्थात् इन सभी कार्यों से जैसा पाप होता है, वैसे ही पाप से वह कलुषित होता है । ब्राह्मण और अन्य वर्ण के मनुष्य शैवमार्ग के अनुसार ही अपने विहित संस्कार का अनुष्ठान करें । यही कलियुग का धर्म है ।। 16-20 ।।

गृहस्थाश्रम और कर्त्तव्य

को वा धर्मो गृहस्थस्य भिक्षुकस्य च किं विभो ।
विप्रस्य विप्रभिन्नानां संस्कारादीनि मे वद ।। 21 ।।
गार्हस्थ्यं प्रथमं धर्मं सर्वेषां मनुजन्मनाम् ।
तदेव कथयाम्यादौ शृणु कौलिनि तत्त्वत: ।। 22 ।।

ब्रह्मनिष्ठो गृहस्थः स्याद्ब्रह्मज्ञानपरायणः ।
यद्यत्कर्म प्रकुर्वीत तद्ब्रह्मणि समर्पयेत् ॥ 23 ॥
न मिथ्याभाषणं कुर्यान्न च शाठ्यं समाचरेत् ।
देवतातिथिपूजासु गृहस्थो निरतो भवेत् ॥ 24 ॥
मातरं पितरं चैव साक्षात्प्रत्यक्षदेवताम् ।
मत्वा गृही निषेवेत सदा सर्वप्रयत्नतः ॥ 25 ॥
तुष्टायां मातरि शिवे तुष्टे पितरि पार्वति ।
तव प्रीतिर्भवेद्देवि परब्रह्म प्रसीदति ॥ 26 ॥
त्वमाद्ये जगतां माता पिता ब्रह्म परात्परम् ।
युवयोः प्रीणनं यस्मात्तस्मात्किं गृहिणां तपः ॥ 27 ॥
आसनं शयनं वस्त्रं पानं भोजनमेव च ।
तत्तत्समयमाज्ञाय मात्रे पित्रे नियोजयेत् ॥ 28 ॥
श्रावयेन्मृदुलां वाणीं सर्वदा प्रियमाचरेत् ।
पित्रोराज्ञानुसारी स्यात्सत्पुत्रः कुलपावनः ॥ 29 ॥
औद्धत्यं परिहासं च तर्ज्जनं परिभाषणम् ।
पित्रोरग्रे न कुर्वीत यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥ 30 ॥
मातरं पितरं वीक्ष्य नत्वोत्तिष्ठेत्ससम्भ्रमः ।
विनाज्ञया नोपविशेत्संस्थितः पितृशासने ॥ 31 ॥
विद्याधनमदोन्मत्तो यः कुर्यात्पितृहेलनम् ।
स याति नरकं घोरं सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ 32 ॥
मातरं पितरं पुत्रं दारानतिथिसोदरान् ।
हित्वा गृही न भुञ्जीयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ 33 ॥
वञ्चयित्वा गुरुन्बन्धून्यो भुङ्क्ते स्वोदरम्भरः ।
इहैव लोके गर्ह्योऽसौ परत्र नारकी भवेत् ॥ 34 ॥
गृहस्थो गोपयेद्दारान्विद्यामभ्यासयेत्सुतान् ।
पोषयेत्स्वजनान्बन्धूनेष धर्मः सनातनः ॥ 35 ॥

श्रीदेवी ने कहा कि हे विभो! गृहस्थ धर्म क्या है ? अथवा भिक्षुक का धर्म क्या है ? ये सब और विप्र तथा विप्रतेर अन्य सबों के संस्कारादि मुझे बताइये ।

श्रीसदाशिव ने कहा कि हे कौलिनि! गार्हस्थ्य धर्म ही सभी मनुष्यों का आदि एवं धर्मजनक है । अतः यथार्थ रूप से पहले उसी का वर्णन करता हूँ; सुनो । गृहस्थ ब्रह्मनिष्ठ और ब्रह्मज्ञानपरायण रहे । जो भी कर्म करे, उन्हें ब्रह्म को समर्पित करे । गृहस्थ झूठ न बोले, शठता न करे । देवता-अतिथि के

पूजन में तत्पर रहे । माता-पिता को प्रत्यक्ष देवता मानकर सदैव सभी प्रकार से यत्नपूर्वक उनकी सेवा करे । हे शिवे! हे पार्वति! माता-पिता के प्रसन्न होने पर परब्रह्म प्रसन्न होते हैं । हे आद्ये! तुम ही जगत् की जननी हो और परब्रह्म ही जगत् के जनक हैं । अतः जिन कार्यों से गृहस्थ तुम्हारी प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं, उनके सिवा और दूसरी कौन तपस्या शेष रहती है? यथावसर यथावश्यक माता-पिता को आसन-शय्या-वस्त्र-पेय और भोज्य-पदार्थ प्रदान करे । कुलपावन सत्पुत्र उनसे मधुर-मृदुल वचन से बातचीत करे । सदा उनको प्रिय लगने वाले कार्य करे । माता-पिता का आज्ञाकारी रहे । अपने कल्याण की कामना से कदापि जनक-जननी के पास उद्धत परिहास, तर्जन या अप्रिय वचन व्यवहार में न लाये । पिता का शासन मानने वाला पुत्र माता-पिता को देखते ही उन्हें प्रणाम करके उठ खड़ा होवे । उनकी आज्ञा के विना न बैठे । जो मनुष्य विद्या और धन से गर्वान्वित होकर माता-पिता की अवज्ञा करता है, वह इस लोक में सभी धर्मों का अनधिकारी होकर अन्त में घोर नरक में जाता है । कण्ठगत प्राण होने पर भी गृहस्थ माता-पिता-पुत्र-भार्या-अतिथि और सहोदर भ्राता का त्याग करके भोजन न करे । जो मनुष्य माता-पिता, सभी बन्धुओं को वञ्चित करके भोजन करता है, वह अपना ही पेट भरने वाला इस लोक में निन्दित होता है और परलोक में नरकगामी होता है । गृहस्थ पत्नी की रक्षा करे, पुत्रों को पढावे-लिखावे एवं स्वजन और बन्धुओं का पोषण करे । यही सनातन धर्म है ।। 21-35।।

जनन्या वर्द्धितो देहो जनकेन प्रयोजितः ।
स्वजनैः शिक्षितः प्रीत्या सोऽधमस्तान्परित्यजेत् ।। 36 ।।
एषामर्थे महेशानि कृत्वा कष्टशतान्यपि ।
प्रीणयेत्सततं शक्त्या धर्मो ह्येष सनातनः ।। 37 ।।
स धन्यः पुरुषो लोके स कृती परमार्थवित् ।
ब्रह्मनिष्ठः सत्यसन्धो यो भवेद्भुवि मानवः ।। 38 ।।
न भार्यां ताडयेत्क्वापि मातृवत्पालयेत्सदा ।
न त्यजेद्घोरकष्टेऽपि यदि साध्वी पतिव्रता ।। 39 ।।
स्थितेषु स्वीयदारेषु स्त्रियमन्यां न संस्पृशेत् ।
दुष्टेन चेतसा विद्वानन्यथा नारकी भवेत् ।। 40 ।।
विरले शयनं वासं त्यजेत्प्राज्ञः परस्त्रिया ।
अयुक्तभाषणं चैव स्त्रियं शौर्य्यं न दर्शयेत् ।। 41 ।।

धनेन वाससा प्रेम्णा श्रद्धया मृदुभाषणैः ।
सततं तोषयेद्दारान्नाप्रियं क्वचिदाचरेत् ।। 42 ।।
उत्सवे लोकयात्रां तीर्थेष्वन्यनिकेतने ।
न पत्नीं प्रेषयेत्प्राज्ञः पुत्रामात्यविवर्जिताम् ।। 43 ।।
यस्मिन्नरे महेशानि तुष्टा भार्या पतिव्रता ।
सर्वो धर्मः कृतस्तेन भवति प्रिय एव सः ।। 44 ।।

जननी से देह की वृद्धि होती है । जनक से देह प्रायोजित होता है । अपने और स्वजनों से सप्रेम शिक्षा प्राप्त होती हैं । जो इनका त्याग करता है, वह अधम है । हे महेशानि! इन सबके लिये शतशः कष्ट उठाकर भी यथासम्भव इनको प्रसन्न रक्खे; यही सनातन धर्म है । संसार में जो मनुष्य ब्रह्मनिष्ठ और सत्यप्रतिज्ञ हैं, वही महापुरुष धन्य है । वही परमार्थ का ज्ञाता है ।

भार्या की ताड़ना कभी न करे । ससम्मान उसका पालन करे । यदि वह साध्वी और पतिव्रता है तो घोर कष्ट में पड़ने पर भी उसका त्याग न करे । सुविज्ञ मनुष्य अपनी पत्नी के रहने पर तो दुष्ट भाव से परस्त्री का स्पर्श भी न करे; अन्यथा नरकगामी होना पड़ता है । बुद्धिमान मनुष्य परस्त्री के साथ एकान्त में सोने, रहने और अनुपयुक्त वार्तालाप का त्याग करे । स्त्रियों को वीरता न दिखावे । धन, वस्त्र, प्रेम, श्रद्धा, मधुर वचनों से भार्या को निरन्तर सन्तुष्ट रक्खे । कभी उससे अप्रिय वार्ता न करे और न अप्रिय आचरण करे । सांसारिक तत्त्व का ज्ञाता, उत्सव, लोक-यात्रा, तीर्थ और अन्य व्यक्ति के घर में पुत्र अथवा सहयोगी के साथ के विना उसे कभी न भेजे । हे महेशानि! पतिव्रता भार्या जिससे सन्तुष्ट रहती है, उसके सभी धर्म पूर्ण होते हैं । ऐसा मनुष्य सभी धर्मानुष्ठानों से प्राप्य फलों को प्राप्त करता है और तुम्हारा प्रिय होता है ।। 36-44 ।।

चतुर्वर्षावधिसुतान् लालयेत्पालयेत्पिता ।
ततः षोडशपर्यन्तं गुणान्विद्यां च शिक्षयेत् ।। 45 ।।
विंशत्यब्दाधिकान्पुत्रान्प्रेरयेद्गृहकर्मसु ।
ततस्तांस्तुल्यभावेत मत्वा स्नेहं प्रदर्शयेत् ।। 46 ।।
कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीयातियत्नतः ।
देया वराय विदुषे धनरत्नसमन्विता ।। 47 ।।

एवं मेण भ्रातृंश्च स्वसृभ्रातृसुतानपि ।
ज्ञातीन्मित्राणि भृत्यांश्च पालयेत्तोषयेद्गृही ।। 48 ।।
ततः स्वधर्मनिरतानेकग्रामनिवासिनः ।
अभ्यागतानुदासीनान्गृहस्थः परिपालयेत् ।। 49 ।।
यद्येवं नाचरेद्देवि गृहस्थो विभवे सति ।
पशुरेव स विज्ञेयः स पापी लोकगर्हितः ।। 50 ।।
निद्रालस्यं देहयत्नं केशविन्यासमेव च ।
आसक्तिमशने वस्त्रे नातिरिक्तं समाचरेत् ।। 51 ।।
युक्ताहारो युक्तनिद्रो मितवाङ्मितमैथुनः ।
स्वच्छो नम्रः शुचिर्दक्षो युक्तः स्यात्सर्वकर्मसु ।। 52 ।।
शूरः शत्रौ विनीतः स्याद्बान्धवे गुरुसन्निधौ ।
जुगुप्सितान्न मन्येत नावमन्येत मानिनः ।। 53 ।।

पिता-पुत्र का पालन चार वर्ष तक करे । सोलह वर्ष तक उसे विद्या और सभी गुणों की शिक्षा देवे । पालन और शिक्षा में बीस वर्ष व्यतीत होने पर बीस वर्ष से अधिक आयु वाले पुत्रादि को गृहकार्य में लगावे । गृहकार्य के योग्य होने पर उसे आत्मतुल्य समझ कर उस पर स्नेह प्रकट करे । कन्या का भी इसी प्रकार पालन करे और यत्नपूर्वक उसे शिक्षा दे । कन्या को धन-रत्न से समन्वित करके ज्ञानवान वर से विवाह करे । इसी प्रकार गृही भाई, बहन, भाञ्जे, भतीजे, ज्ञाति, मित्र और सेवकों का पालन करके उन्हें सन्तुष्ट करे । भाई आदि के पालन में समर्थ होने पर गृहस्थ स्वधर्म में तत्पर अपने ग्रामवासियों, अभ्यागतों और उदासीन लोगों का भी पालन करे ।

हे देवि! ऐश्वर्य होने पर गृहस्थ यदि इस प्रकार का आचरण नहीं करता तो उसे पशु ही माना जाता है । वह पापी लोक-समाज में निन्दा का पात्र होता है । निद्रा, आलस्य, देह के प्रति यत्न, केश-विन्यास, भोजन और वस्त्र में आवश्यकता से अधिक आसक्त न हो । गृहस्थ परिमित भोजन करने वाला, परिमित निद्रा, निर्मल प्रकृति, मितभाषी, परिमित मैथुन, नम्र, पवित्र, निरालस्य और सभी कर्मों में तत्पर रहे । शत्रु के सामने शूर और बान्धव एवं गुरु के निकट विंनम्र रहे । निन्दित व्यक्ति का आदर न करे एवं सम्मानित लोगों का अनादर न करे ।। 45-53 ।।

सौहार्दं व्यवहारांश्च प्रवृत्तिं प्रकृतिं नृणाम् ।
सहवासेन तर्कैश्च विदित्वा विश्वसेत्ततः ।। 54 ।।

त्रसेदृद्वेष्टुरपि क्षुद्रात्समयं वीक्ष्य बुद्धिमान् ।
प्रदर्शयेदात्मभावान्नैव धर्मं विलङ्घयेत् ।। 55 ।।
स्वीयं यशः पौरुषं च गुप्तये कथितं च यत् ।
कृतं यदुपकाराय धर्मज्ञो न प्रकाशयेत् ।। 56 ।।
जुगुप्सितप्रवृत्तौ च निश्चितेऽपि पराजये ।
गुरुणा लघुना चापि यशस्वी न विवादयेत् ।। 57 ।।
विद्याधनयशोधर्मान्यतमान उपार्जयेत् ।
व्यसनं चासतां सङ्गं मिथ्याद्रोहं परित्यजेत् ।। 58 ।।
अवस्थानुगताश्चेष्टाः समयानुगताः क्रियाः ।
तस्मादवस्थां समयं वीक्ष्य कर्म समाचरेत् ।। 59 ।।
योगक्षेमरतो दक्षो धार्मिकः प्रियबान्धवः ।
मितवाङ्मितहासः स्यान्मान्या ये तु विशेषतः ।। 60 ।।
जितेन्द्रियः प्रसन्नात्मा सुचिन्त्यः स्याद्दृढव्रतः ।
अप्रमत्तो दीर्घदर्शी मात्रास्पर्शान्विचारयेत् ।। 61 ।।
सत्यं मृदु प्रियं धीरो वाक्यं हितकरं वदेत् ।
आत्मोत्कर्षं तथा निन्दां परेषां परिवर्जयेत् ।। 62 ।।

सहवास और विचार से व्यक्ति का स्वभाव, सौहार्द्र, व्यवहार, प्रवृत्ति और प्रकृति जानकर उस पर विश्वास करे । शत्रु के कमजोर होने पर भी उससे शंकित रहे । अवसर देखकर अपना भाव प्रकट करे । धर्म का उल्लंघन न करे । धर्मात्मा अपना यश, पौरुष और जिसे प्रकट करने से दूसरे विरोध करें तथा जो परोपकार के लिए किया गया हो, उसे प्रकट न करे । यशस्वी मनुष्य जीत निश्चित होने पर भी कभी लोक-निन्दनीय कार्य में प्रवृत्त न हो । गुरु और साधु से विवाद न करे । मानपूर्वक विद्या, धन, यश और धर्म का अर्जन करे । असत्य भाषण, व्यसन, द्यूतक्रीड़ा आदि कुसंग, मिथ्यालोप और परद्रोह का त्याग करे । चेष्टा अवस्था के अनुसार और क्रिया समयानुसार होती है । अतः अवस्था और समय का विचार करके कर्म करे । गृहस्थ अलब्ध वस्तु के अर्जन और लब्ध वस्तु के रक्षण में लगा रहे । दक्ष धर्मात्मा स्वभाव से ही मितभाषी और मितहास्य होता है । विशेषतः मान्य व्यक्ति के सामने उसका आचरण ऐसा ही होता है । जितेन्द्रिय, निर्मल स्वभाव, सुचिन्त्य, दृढ़व्रती, प्रमादरहित, दूरदर्शी होकर विषयोपभोग का, कर्त्तव्याकर्तव्य का विचार करे । धैर्यवान

मनुष्य सत्य, कोमल, सन्तोषजनक, शुभकारक वाक्य का प्रयोग करे । आत्मगौरव को प्रकाशित न करे । परनिन्दा न करे ।। 54-62 ।।

जलाशयाश्च वृक्षाश्च विश्रामगृहमध्वनि ।
सेतुः प्रतिष्ठितो येन तेन लोकत्रयं जितम् ।। 63 ।।
सन्तुष्टौ पितरौ यस्मिन्ननुरक्ताः सुहृद्गणाः ।
गायन्ति यद्यशो लोकास्तेन लोकत्रयं जितम् ।। 64 ।।
सत्यमेव व्रतं यस्य दया दीनेषु सर्वथा ।
कामक्रोधौ वशे यस्य तेन लोकत्रयं जितम् ।। 65 ।।
विरक्तः परदारेषु निःस्पृहः परवस्तुषु ।
दम्भमात्सर्यहीनो यस्तेन लोकत्रयं जितम् ।। 66 ।।
न बिभेति रणाद्यो वै संग्रामेऽप्यपराङ्मुखः ।
धर्मयुद्धे मृतो वापि तेन लोकत्रयं जितम् ।। 67 ।।
असंशयात्मा सुश्रद्धः शाम्भवाचारतत्परः ।
मच्छासने हितो यश्च तेन लोकत्रयं जितम् ।। 68 ।।
ज्ञानिना लोकयात्रायै सर्वत्र समदृष्टिना ।
क्रियन्ते येन कर्माणि तेन लोकत्रयं जितम् ।। 69 ।।

जो मनुष्य मार्ग में जलाशय, विश्रामगृह और सेतु का निर्माण करते-कराते हैं, वे सर्वोत्तम पद प्राप्त करते हैं । जिससे माँ-बाप सन्तुष्ट हों, मित्र जिसे प्यार करते हों, लोग जिसका यशोगान करते हों, वही त्रिलोकों को जीतता है । सत्य ही जिसका व्रत हो, जो गरीबों पर दयालु हो, काम और क्रोध जिसके वश में हों, वही त्रैलोक्य-विजेता होता है । जो परस्त्री से विरक्त है, दूसरों की वस्तुओं की जिसे चाह न हो, जो दम्भ अैर मात्सर्य से रहित हो, वही त्रैलोक्यविजेता है । जो क्षत्रिय युद्ध में नहीं डरता और पीछे नहीं हटता और जो धर्मयुद्ध में मरता है, वही त्रैलोक्यविजेता होता है । जिसके मन में सन्देह नहीं है, जो विश्वासयुक्त है, पाशुपत आचार में तत्पर है और जो मेरी आज्ञा का पालक है, वही त्रैलोक्यजयी है । जो ज्ञानी शत्रु और मित्र से समदर्शिता रखकर केवल लोकयात्रा-निर्वाह के लिये विहित कर्मों का अनुष्ठान करता है, वही संसार को जीतने वाला है ।। 63-69 ।।

शौचं तु द्विविधं देवि बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
ब्रह्मण्यात्मार्पणः यत्तच्छौचमान्तरिकं स्मृतम् ।। 70 ।।

अद्भिर्वा भस्मना वापि मलानामपकर्षणम् ।
देहशुद्धिर्भवेद्येन बहिः शौचं तदुच्यते ।। 71 ।।
गङ्गा नद्यो ह्रदा वाप्यस्तथा कूपाश्च क्षुल्लकाः ।
सर्वं पवित्रजननं स्वर्णदीक्रमतः प्रिये ।। 72 ।।
भस्मात्र याज्ञिकं श्रेष्ठं मृत्स्ना तु मलवर्जिता ।
वासोऽजिनतृणादीनि मृद्वज्जानीहि सुव्रते ।। 73 ।।
किमत्र बहुनोक्तेन शौचाशौचविधौ शिवे ।
मनःपूतं भवेद्येन गृहस्थस्तत्तदाचरेत् ।। 74 ।।
निद्रान्ते मैथुनस्यान्ते त्यागान्ते मलमूत्रयोः ।
भोजनान्ते मले स्पृष्टे बहिःशौचं विधीयते ।। 75 ।।

हे देवि! शौच दो प्रकार के हैं । एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर । परमात्मा में मन की एकाग्रता को ही आन्तरिक शौच कहते हैं । जल या भस्म से मैल को दूर करने से जो देह की शुद्धि होती है, उसे बाह्य शौच कहते हैं । हे प्रिये! छोटे जलाशय, कूप, वापी, ह्रद, नदी, गंगा, मन्दाकिनी सब यथाक्रम अधिक पवित्रतादायक हैं । अर्थात् इन सब तीर्थों में स्नान करने से देह की शुद्धि होती है । हे सुव्रते! बाह्य शौच के लिये यज्ञ का भस्म ही श्रेष्ठ होता है । निर्मल मिट्टी से भी इस प्रकार के स्नान से शुद्धि होती है । वस्त्र, मृगचर्म, तृण आदि भी मिट्टी के समान शुद्धिदायक हैं । हे शिवे! इस शौच और अशौच के बारे में अधिक कहना आवश्यक नहीं है । जिससे मन पवित्र हो, वही आचरण गृहस्थ करे । निद्रा के बाद, मैथुन के बाद, मल-मूत्र-त्याग के बाद, भोजन के बाद और मलस्पर्श होने पर उक्त प्रकार का बाह्य शौच करे ।।। 70-75 ।।

सन्ध्या त्रैकालिकी कार्या वैदिकी तान्त्रिकी क्रमात् ।
उपासनाया भेदेन पूजां कुर्याद्यथाविधि ।। 76 ।।
ब्रह्ममन्त्रोपासकानां गायत्रीं जपतां प्रिये ।
ज्ञानाद्ब्रह्मेति तद्वाच्य सन्ध्या भवति वैदिकी ।। 77 ।।
अन्येषां वैदिकी सन्ध्या सूर्योपस्थानपूर्वकम् ।
अर्घ्यदानं दिनेशाय गायत्रीजपनं तथा ।। 78 ।।
अष्टोत्तरं सहस्रं वा शतं वा दशधापि वा ।
जपानां नियमो भद्रे सर्वत्राह्निककर्मणि ।। 79 ।।
शूद्रसामान्यजातीनामधिकारोऽस्ति केवलम् ।
आगमोक्तविधौ देवि सर्वसिद्धिस्ततो भवेत् ।। 80 ।।

प्रातः सूर्योदयः कालो मध्याह्नस्तदनन्तरम् ।
सायं सूर्यास्तसमयस्त्रिकालानामयं क्रमः ।। 81 ।।

त्रिकाल—प्रातः, मध्याह्न और अपराह्न में वैदिकी और तान्त्रिकी सन्ध्या करे । उपासनाभेद से यथाशास्त्रोक्त विधि से पूजन करे । हे प्रिये! ब्रह्म-मन्त्रोपासक गायत्री-जपकाल में गायत्री के प्रतिपाद्य ब्रह्म का ही स्मरण करे । ऐसा करने पर वैदिक सन्ध्या होगी । जो ब्रह्मोपासक नहीं हैं, उनकी वैदिक सन्ध्या सूर्यार्घ्य दान और गायत्री जप से होगी । हे भद्रे! सभी दिवसीय कार्यों में 1008 या 108 या 10 गायत्री-जप का नियम है । हे देवि! शूद्र और साधारण जाति को केवल आगमोक्त विधि का ही अधिकार है । उसी से उनको सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होंगी । प्रातः सूर्योदय के समय प्रातःसन्ध्या करे । मध्याह्न काल में मध्याह्न सन्ध्या और सूर्यास्त के समय सायं सन्ध्या करे । त्रिकाल सन्ध्यावन्दन का निर्दिष्ट समय यही है ।। 76-81 ।।

विप्रादिसर्ववर्णानां विहिता तान्त्रिकी क्रिया ।
त्वयैव कथिता नाथ सम्प्राप्ते प्रबले कलौ ।। 82 ।।
तदिदानीं कथं देव विप्रान्वैदिककर्मणि ।
नियोजयसि तत्सर्वं विशेषाद्वक्तुमर्हसि ।। 83 ।।
सत्यं ब्रवीषि तत्त्वज्ञे सर्वेषां तान्त्रिकी क्रिया ।
लोकानां भोगमोक्षाय सर्वकर्मसु सिद्धिदा ।। 84 ।।
इयं तु ब्रह्मसावित्री यथा भवति वैदिकी ।
तथैव तान्त्रिकी ज्ञेया प्रशस्तोभयकर्मणि ।। 85 ।।
अतोऽत्र कथितं देवि द्विजानां प्रबले कलौ ।
गायत्र्यामधिकारोऽस्ति नान्यमन्त्रेषु कर्हिचित् ।। 86 ।।
ताराद्या कमलाद्या च वाग्भवाद्या यथाक्रमात् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां सावित्री कथिता कलौ ।। 87 ।।
द्विजातीनां प्रभेदार्थं शूद्रेभ्यः परमेश्वरि ।
सन्ध्येयं वैदिकी प्रोक्ता प्रागेवाह्निककर्मणाम् ।। 88 ।।
अन्यथा शाम्भवैर्मार्गैः केवलैः सिद्धिभाग्भवेत् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतन्न संशयः ।। 89 ।।
कालात्ययेऽपि सन्ध्येयं कर्त्तव्या देववन्दिते ।
ओंतत्सद्ब्रह्म चोच्चार्य मोक्षेच्छुभिरनातुरैः ।। 90 ।।
आसनं वसनं पात्रं शय्यां पानं निकेतनम् ।

गृह्यकं वस्तुजातं च स्वच्छात्स्वच्छं प्रशस्यते ।। 91 ।।
समाप्याह्निककर्माणि स्वाध्यायं गृहकर्म वा ।
गृहस्थो नियतं कुर्यान्नैव तिष्ठेन्निरुद्यमः ।। 92 ।।
पुण्यतीर्थे पुण्यतिथौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
जपं दानं प्रकुर्वाणः श्रेयसां निलयो भवेत् ।। 93 ।।
कलावन्नगतप्राणा नोपवासः प्रशस्यते ।
उपवासप्रतिनिधावेकं दानं विधीयते ।। 94 ।।
कलौ दानं महेशानि सर्वसिद्धिकरं भवेत् ।
तत्पात्रं केवलं ज्ञेयो दरिद्रः सत्क्रियान्वितः ।। 95 ।।
मासवत्सरपक्षाणामारम्भदिनमम्बिके ।
चतुर्दश्यष्टमी शुक्ला तथैवैकादशी कुहूः ।। 96 ।।
निजजन्मदिनं चैव पित्रोर्मरणवासरः ।
वेधोत्सवदिनं चैव पुण्यकालः प्रकीर्त्तितः ।। 97 ।।
गङ्गानदी महानद्यो गुरोः सदनमेव च ।
प्रसिद्धदेवता क्षेत्रं पुण्यतीर्थं प्रकीर्त्तितम् ।। 98 ।।
त्यक्त्वा स्वाध्ययनं पित्रोः शुश्रूषां दाररक्षणम् ।
नरकाय भवेत्तीर्थं तीर्थाय व्रजतां नृणाम् ।। 99 ।।

श्रीदेवी ने कहा कि हे नाथ! तुमने स्वयं कहा है कि कलि के प्रबल होने पर ब्राह्मण आदि सभी वर्णों के लिए केवल तान्त्रिक क्रिया ही उत्तम है । हे देवदेव! इस समय तुम ब्राह्मणों को किसलिये वैदिक क्रिया में नियोजित करते हो? यह सब विशेष रूप से बतलाने की कृपा करो ।

श्री सदाशिव ने कहा कि हे तत्त्वज्ञे! तुम्हारा कथन यथार्थ है । कलियुग 4में सभी वर्णों के लिये केवल तान्त्रिकी क्रिया ही भोग और मोक्ष का कारण है । सभी कार्य इससे सिद्ध होते हैं । यह ब्रह्मसावित्री जैसे वैदिकी है, वैसे ही तान्त्रिकी भी है; अतः दोनों ही कर्म प्रशस्त हैं । हे देवि! इसीलिये मैंने यहाँ कहा है कि कलि के प्रबल होने पर ब्राह्मणों का गायत्री में ही अधिकार होगा, दूसरे वैदिक मन्त्र में नहीं । कलिकाल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की गायत्री क्रमशः 'ॐ श्रीं ऐं' पूर्विका होगी । अर्थात् ब्राह्मण गायत्री के पहले 'ॐ', क्षत्रिय गायत्री के पहले 'श्रीं' और शूद्र गायत्री के पहले 'ऐं' लगावे । हे परमेश्वरि! शूद्रों से द्विजों को अलग करने के लिये द्विजों के दैनिक कर्म में पूर्वकाल में वैदिक सन्ध्या की विधि का वर्णन है । वैदिक सन्ध्या नहीं करने

से भी केवल शैव पद्धति से सिद्धि मिलेगी । यह सत्य, सत्य और विशेष सत्य है; इसमें सन्देह नहीं । हे देववन्दिते! अनातुर मुमुक्षु सन्ध्या का समय बीत जाने पर भी 'ॐ तत्सत् ब्रह्म' का उच्चारण करके इस सन्ध्या को करे । आतुर के लिये विशेष नियम रखने के प्रयोजन से अनातुर पर विशेष बल दिया गया है । आसन, वस्त्र, पात्र, शय्या, यान, गृहसामग्री आदि परिष्कृत होते हुए भी और परिष्कृत हों तो अधिक श्रेष्ठ है । गृहस्थ दैनिक कार्य समाप्त करके स्वाध्याय या गृहकार्य करे । विना उद्यम खाली न बैठा रहे । पुण्यतीर्थ में, पुण्यतिथि में, चन्द्र और सूर्यग्रहणकाल में जप और दान करने से सर्वमंगल होता है । कलियुग में मनुष्यों के प्राण अन्न में रहते हैं; अतः उपवास करना ठीक नहीं है । कलियुग में उपवास के बदले केवल दान ही श्रेष्ठ है । हे महेशानि! कलियुग में दान सभी सिद्धियों का प्रदाता है । सत् क्रिया करने वाले दरिद्र व्यक्ति ही दान के पात्र हैं । हे अम्बिके! मास, वर्ष और पक्ष के प्रारम्भिक दिवस में, चतुर्दशी, अष्टमी, शुक्ल पक्ष की एकादशी, अमावस्या, अपना जन्मदिन, पिता-माता की मृत्यु की तिथि और निर्दिष्ट उत्सव के दिन को पुण्यकाल कहा गया है । गंगा नदी, महानदी, गुरु-गृह और प्रसिद्ध देवताक्षेत्र को पुण्य तीर्थ कहा जाता है । अध्ययन, माता-पिता की सेवा, पत्नी की रक्षा को छोड़कर तीर्थ करने से मनुष्य नरकगामी होते हैं ।। 82-99 ।।

नारी-कर्त्तव्य

न तीर्थसेवा नारीणां नोपवासादिकाः क्रियाः ।
नैव व्रतानां नियमो भर्त्तुः शुश्रूषणं विना ।। 100 ।।
भर्त्तैव योषितां तीर्थं तपो दानं व्रतं गुरुः ।
तस्मात्सर्वात्मना नारी पतिसेवां समाचरेत् ।। 101 ।।
पत्युः प्रियं सदा कुर्याद्वचसा परिचर्यया ।
तदाज्ञानुचरी भूत्वा तोषयेत्पतिबान्धवान् ।। 102 ।।
नेक्षेत्पतिं क्रूरदृष्ट्या श्रावयेन्नैव दुर्वचः ।
नाप्रियं मनसा वापि चरेद्भर्त्तुः पतिव्रता ।। 103 ।।
कायेन मनसा वाचा सर्वदा प्रियकर्मभिः ।
या प्रीणयति भर्त्तारं सैव ब्रह्मपदं लभेत् ।। 104 ।।
नान्यवक्त्रं निरीक्षेत नान्यैः सम्भाषणं चरेत् ।
न चाङ्गं दर्शयेदन्यान्भर्त्तुराज्ञानुसारिणी ।। 105 ।।

तिष्ठेत्पित्रोर्वशे बाल्ये भर्त्तुः सम्प्राप्तयौवने ।
वार्द्धक्ये पतिबन्धूनां न स्वतन्त्रा भवेत्क्वचित् ।। 106 ।।
अज्ञातपतिमर्यादामज्ञातपतिसेवनाम् ।
नोद्वाहयेत्पिता बालामज्ञातधर्मशासनाम् ।। 107 ।।
नरमांसं न भुञ्जीयान्नराकृतिपशूंस्तथा ।
बहूपकारकान्गाश्च मांसादान्नसवर्जितान् ।। 108 ।।
फलानि ग्राम्यवन्यानि मूलानि विविधानि च ।
भूमिजातानि सर्वाणि भोज्यानि स्वेच्छया शिवे ।। 109 ।।

स्त्रियों के लिये पति की सेवा से बढ़कर कोई सेवा नहीं है । उनके लिये न तो तीर्थ-सेवन और न ही उपवासादि क्रिया की आवश्यकता है । तीर्थ, उपवास, व्रत से मिलने वाले फल उन्हें केवल पतिसेवा से मिलते हैं । इसलिए कोई कर्म उनके लिये निर्दिष्ट नहीं है । स्त्रियों के लिये पति ही तीर्थ, तप, व्रत, दान और गुरु हैं। अतः स्त्री पूरे अन्तःकरण से पति की सेवा करे । वचन से, सेवा से सदा पति के पसन्द का काम करे । सदा पति की आज्ञा के अनुसार चलती हुई पति के बान्धवों को सन्तुष्ट रक्खे । पतिव्रता स्त्री पति को कठोर दृष्टि से न देखे, दुर्वचन न बोले, पति के अप्रियकर कार्य न करे । जो स्त्री तन-मन-वचन से सदैव पति के प्रीतिप्रद कार्य करके उसे सन्तुष्ट करती है, उसे ब्रह्मपद प्राप्त होता है । पति की आज्ञाकारिणी स्त्री दूसरे पुरुष का मुख न देखे । दूसरे पुरुष के साथ बात न करे । स्त्री बचपन में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और बुढ़ापे में पति के बान्धवों के अधीन रहती है । किसी भी अवस्था में वह स्वाधीन नहीं रहती । पिता और पति की मर्यादा, पतिसेवा तथा धर्मशासन को न जानने वाली कन्या का विवाह न करे । नरमांस, नराकृति पशु का मांस, उपकारी गाय, रसहीन मांसभोजी जन्तु का मांस न खाए । हे शिवे! भूमि से उत्पन्न, ग्राम्य एवं जंगली विविध प्रकार का फल-मूल स्वेच्छा-पूर्वक खाया जा सकता है ।। 100-109 ।।

ब्राह्मण-वृत्ति

अध्यापनं याजनं च विप्राणां व्रतमुत्तमम् ।
अशक्तौ क्षत्रियविशां वृत्तैर्निर्वाहमाचरेत् ।। 110 ।।

ब्राह्मण के लिये अध्यापन और याजन दो वृत्तियाँ उत्तम हैं । इनमें अशक्त हो तो क्षत्रियवृत्ति और वह भी न बने तो वैश्यवृत्ति से निर्वाह करे ।। 110 ।।

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सामान्य की वृत्ति

राजन्यानां च सद्वृत्तं संग्रामो भूमिशासनम् ।
अत्राशक्तौ वणिग्वृत्तं शूद्रवृत्तमथाश्रयेत् ।। 111 ।।
वाणिज्याशक्तवैश्यानां शूद्रवृत्तमदूषणम् ।
शूद्राणां परमेशानि सेवावृत्तिर्विधीयते ।। 112 ।।
सामान्यानां तु वर्णानां विप्रवृत्त्यन्यवृत्तिषु ।
अधिकारोऽस्ति देवेशि देहयात्राप्रसिद्धये ।। 113 ।।

क्षत्रिय के लिये युद्ध और प्रजापालन ही दो सद्वृत्तियाँ हैं । यदि इन्हें नहीं कर सके तो वैश्यवृत्ति और उसमें भी असमर्थ हो तो शूद्रवृत्ति का सहारा लेवे । हे परमेशानि वाणिज्य में असमर्थ वैश्यों के लिये शूद्रवृत्ति का सहारा लेना चाहिये । शूद्रों के लिये सेवावृत्ति विहित है । हे देवेशि! सामान्य वर्ण अर्थात् पञ्चम वर्ण को ब्राह्मण वृत्ति को छोड़कर अन्य सभी वृत्तियों को अपनाने का अधिकार है ।। 111-113 ।।

ब्राह्मण-क्षत्रियों के कर्तव्य

अद्वेष्टा निर्ममः शान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
निर्मत्सरो निष्कपटः स्ववृत्तौ ब्राह्मणोभवेत् ।। 114 ।।
अध्यापयेत्पुत्रबुद्ध्या शिष्यान्सन्मार्गवर्तिनः ।
सर्वलोकाहितैषी स्यात्पक्षपातविनिर्मुखः ।। 115 ।।
मिथ्यालापमसूयां च व्यसनाप्रियभाषणम् ।
नीचैः प्रसक्तिं दम्भं च सर्वथा ब्राह्मणस्त्यजेत् ।। 116 ।।
युयुत्सा गर्हिता सन्धौ सन्मानैः सन्धिरुत्तमा ।
मृत्युर्जयो वा युद्धेषु राजन्यानां वरानने ।। 117 ।।
अलोभी स्यात्प्रजावित्ते गृह्णीयात्सम्मितं करम् ।
रक्षन्नङ्गीकृतं, धर्मं पुत्रवत्पालयेत्प्रजाः ।। 118 ।।
न्यायं युद्धं तथा सन्धिं कर्माण्यन्यानि यानि च ।
मन्त्रिभिः सह कुर्वीत विचार्य सर्वथा नृपः ।। 119 ।।
धर्मयुद्धेन योद्धव्यं न्यायदण्डपुरस्क्रियाः ।
करणीया यथाशास्त्रं सन्धिं कुर्याद्यथाबलम् ।। 120 ।।
उपायैः साधयेत्कार्यं युद्धं सन्धिं च शत्रुभिः ।
उपायानुगताः सर्वा जयक्षेमविभूतयः ।। 121 ।।
स्यान्नीचसङ्गाद्विरतः सदा विद्वज्जनप्रियः ।

धीरो विपत्तौ दक्षश्च शीलवान्सम्मितव्ययी ॥ 122 ॥
निपुणो दुर्गसंस्कारे शस्त्रशिक्षाविचक्षणः ।
स्वसैन्यभावान्वेषी स्याच्छिक्षयेद्रणकौशलम् ॥ 123 ॥
न हन्यान्मूर्च्छितान्युद्धे त्यक्तशस्त्रान्पराङ्मुखान् ।
बलानीतान्रिपून्देवि रिपुदारशिशूनपि ॥ 124 ॥
जयलब्धानि वस्तूनि सन्धिप्राप्तानि यानि च ।
वितरेत्तानि सैन्येभ्यो यथायोग्यविभागतः ॥ 125 ॥
शौर्यं वृत्तं च योद्धृणां ज्ञेयं राज्ञा पृथक्कृतम् ।
बहुसैन्याधिपं नैकं कुर्यादात्महिते रतः ॥ 126 ॥
नैकस्मिन्विश्वसेद्राजा नैकं न्याये नियोजयेत् ।
साम्यं क्रीडोपहासं च नीचैः सह विवर्ज्जयेत् ॥ 127 ॥
बहुश्रुतः स्वल्पभाषी जिज्ञासुर्ज्ञानवानपि ।
बहुमानोऽपि निर्दम्भो धीरो दण्डप्रसादयोः ॥ 128 ॥
स्वयं वा चरदृष्ट्या वा प्रजाभावान्विलोकयेत् ।
एवं स्वजनभृत्यानां भावान्पश्येन्नराधिपः ॥ 129 ॥
क्रोधाद्दम्भात्प्रमादाद्वा सम्मानं शासनं तथा ।
सहसा नैव कर्त्तव्यं स्वामिना तत्त्वदर्शिना ॥ 130 ॥
सैन्यसेनाधिपामात्यवनितापत्यसेवकाः ।
पालनीयाः सदोषाश्चेद्दण्ड्या राज्ञा यथाविधि ॥ 131 ॥
उन्मत्तानसमर्थांश्च बालांश्च मृतबान्धवान् ।
ज्वराभिभूतान्वृद्धांश्च रक्षयेत्पितृवन्नृपः ॥ 132 ॥

अपनी वृत्ति में स्थित ब्राह्मण द्वेषविहीन, ममतारहित, शान्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, मात्सर्यरहित और निष्कपट होता है । सत्पथगामी शिष्यों को पुत्रवत् पढ़ाता है । वह सबों का हितैषी और निष्पक्ष होता है । ब्राह्मण असत्यभाषण, असूया, व्यसन, मृगया, जूआ, अप्रिय वचन, नीचों का संग और दम्भ कभी न करे । हे वरानने! सन्धि होने पर क्षत्रियों की युद्ध करने की इच्छा निन्दनीय है । सन्धि को सम्मानपूर्वक स्थिर रक्खे । युद्ध में जय या मृत्यु दोनों को उत्तम समझे । राजा प्रजा के धन का लोभ न करके नियम से ही ग्रहण करे । स्वीकृत धर्म की रक्षा करते हुए प्रजा का पुत्रवत् पालन करे । न्याययुद्ध, सन्धि एवं अन्यान्य सभी राजकीय कार्यों में राजा मन्त्रियों के साथ विचार करे । धर्मसम्मत युद्ध करे । न्यायतः दण्ड और पुरस्कार देवे । बल के अनुसार यथाशास्त्र सन्धि

करे । यत्नपूर्वक कार्य सम्पन्न करे । शत्रुओं को युद्ध और सन्धि आदि उपायों से नियन्त्रित रक्खे; क्योंकि उपाय से सभी प्रकार के जय, मंगल और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं । नीचों का संग न करे । सदा पण्डितों का प्रिय रहे । कार्य-कुशल, सुशील, मितव्ययी और विपत्ति के समय धैर्यधारी रहे । दुर्गसंस्कार में निपुण, शस्त्रशिक्षा में दक्ष और अपने सैनिकों के भाव का ज्ञाता हो । उन्हें रणकौशल की शिक्षा दे । हे देवि! युद्ध में मूर्च्छित, शस्त्रहीन, भागने में तत्पर या बलपूर्वक लाये गये शत्रु को और शत्रु के स्त्री-सन्तान-शिशु को मारे नहीं । जो सारी वस्तुएँ विजय में या सन्धि से प्राप्त हों, उन्हें सैनिकों में यथायोग्य बाँट दे । योद्धाओं की वीरता और चरित्र का ज्ञान राजा को अलग-अलग होना चाहिये । अपना हितेच्छु राजा एक व्यक्ति को बहुत सेना का अधिपति नहीं बनावे । राजा एक ही व्यक्ति पर पूरा विश्वास न करे । एक ही व्यक्ति को विचार करने में नियुक्त न करे । नीच लोगों के प्रति न समताभाव दिखावे, न उनके साथ क्रीड़ा या परिहास करे । अनेक शास्त्रों का ज्ञानी, मितभाषी, जिज्ञासु, स्वाभिमानी और दम्भरहित रहे । दण्ड देते समय या प्रसन्नता के समय आकार और मुद्रा में सम रहे । राजा स्वयं या गुप्तचरों के द्वारा प्रजा के भाव को जानता रहे । अपने स्वजनों और सेवकों के भाव को समझता रहे । तत्त्वदर्शी शासक क्रोध, दम्भ या प्रमाद के वश में होकर सहसा किसी का सम्मान या अपमान न करे । सेनाओं के सेनापति और मन्त्रियों की स्त्री-कन्या-पुत्र-भृत्य का पालन करे । यदि दोषी हो तो यथाविधि उन्हें दण्ड दे । उन्मत्त, असमर्थ, बालक, पीड़ित और वृद्ध यदि बान्धवरहित हो तो राजा पिता के समान उनकी रक्षा करे ।। 114- 132 ।।

वैश्य का कर्त्तव्य

वैश्यानां कृषिवाणिज्यं वृत्तं विद्धि सनातनम् ।
येनोपायेन लोकानां देहयात्रा प्रसिद्ध्यति ।। 133 ।।
अतः सर्वात्मना देवि वाणिज्यकृषिकर्मसु ।
प्रमादव्यसनालस्यं मिथ्याशाठ्यं विवर्ज्जयेत् ।। 134 ।।
निश्चित्य वस्तु तन्मूल्यमुभयोः सम्मतौ शिवे ।
परस्पराङ्गीकरणं क्रयसिद्धिस्ततो भवेत् ।। 135 ।।
मत्तविक्षिप्तबालानामरिग्रस्तनृणां प्रिये ।
रोगविभ्रान्तबुद्धीनामसिद्धौ दानविक्रयौ ।। 136 ।।

क्रयसिद्धिरदृष्टानां गुणश्रवणतो भवेत् ।
विपर्यये तद्गुणानामन्यथा भवति क्रयः ।।
कुञ्जरोष्ट्रतुरङ्गाणां गुप्तदोषप्रकाशनात् ।
वर्षातीतेऽपि तत्क्रेयमन्यथाकर्त्तुमर्हति ।। 138 ।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनं मानवं वपुः ।
अतः कुलेशि तत्क्रेयो न सिद्ध्येन्मम शासनात् ।। 139 ।।
यवगोधूमधान्यानां लाभो वर्षे गते प्रिये ।
युक्तश्चतुर्थो धातूनामष्टमः परिकीर्तितः ।। 140 ।।
ऋणकृषौ च वाणिज्ये तथा सर्वेषु कर्मसु ।
यद्यदङ्गीकृतं मर्त्यैस्तत्कार्यं शास्त्रसम्मतम् ।। 141 ।।

वैश्यों की सनातन वृत्ति कृषि और वाणिज्य होती है । इसी से सबों के शरीर की रक्षा होती है । हे देवि! इसीलिए वाणिज्य और कृषिकार्य में असावधानी, व्यसन, आलस्य, मिथ्या व्यवहार, शठता कभी किसी प्रकार न करे । हे शिवे! क्रेता-विक्रेता दोनों की सम्मति से वस्तु का मूल्य निश्चित कर परस्पर स्वीकृति से क्रय सिद्ध होता है । हे प्रिये! मत्त, विक्षिप्त, शोकार्त्त, विशेष उत्कण्ठित, बालक, शत्रुगृहीत और रोग से भ्रान्तबुद्धि से किया गया दान और विक्रय असिद्ध होता है । अदृष्ट वस्तु का गुण सुनकर ही क्रय सिद्ध होता है; किन्तु उसके गुण में विपरीतता होने पर विक्रय असिद्ध होता है । हाथी, ऊँट, घोड़ा आदि के गुण सुनकर क्रय-सिद्धि होती है; परन्तु यदि वर्णित गुण उनमें न हुआ तो वह क्रय असिद्ध होता है । हाथी, ऊँट, घोड़े आदि के गुप्त दोष प्रकट होने पर एक वर्ष बाद भी वह क्रय मान्य नहीं होता है । हे कुलेश्वरि! मानव देह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का साधनस्वरूप है । इसलिये हमारे शासन के कारण इस शरीर का क्रय मान्य नहीं है । हे प्रिये! जौ, गेहूँ और धान्य में वर्ष के अन्त में ऋण पर मूल का चतुर्थांश लाभ होता है । धातु लाभ द्रव्य में एक वर्ष में अष्टमांश लेना निर्दिष्ट है । ऋण, कृषिकार्य, वाणिज्य और अन्य सभी कार्यों में शास्त्रस्वीकृत नियमानुसार ही मनुष्य कार्य करे।। 133-141 ।।

शूद्र के कर्तव्य

दक्षः शुचिः सत्यभाषी जितनिद्रो जितेन्द्रियः ।
अप्रमत्तो निरालस्यः सेवावृत्तौ भवेन्नरः ।। 142 ।।
प्रभुर्विष्णुसमोऽमात्यैस्तज्जाया जननीसमा ।

मान्यास्तद्बान्धवा भृत्यैरिहामुत्र सुखेप्सुभिः।। 143 ।।
भर्त्तुर्मित्राणि मित्राणि जानीयात्तदरीनरीन् ।
सभीतिः सर्वदा तिष्ठेत्प्रभोराज्ञां प्रतीक्षयन् ।। 144 ।।
अपमानं गृहच्छिद्रं गुप्त्यर्थं कथितं च यत् ।
भर्त्तुर्ग्लानिकरं यच्च गोपयेदतियत्नतः ।। 145 ।।
अलोभः स्यात्स्वामिधनसे सदा स्वामिहिते रतः ।
तत्सन्निधावसद्भाषां क्रीडां हास्यं परित्यजेत् ।। 146 ।।
न पापमनसा पश्येदपि तद्गृहकिङ्किरीः ।
विविक्तशय्यां हास्यं च ताभिः सह विवर्जयेत् ।। 147 ।।
प्रभोः शय्यासनं यानं वसनं भाजनानि च ।
उपानद्भूषणं शस्त्रं नात्मार्थं विनियोजयेत् ।। 148 ।।
क्षमां कृतापराधश्चेत्प्रार्थयेदग्रतः प्रभोः ।
प्रागल्भ्यं प्रौढवादं च साम्याचारं विवर्जयेत् ।। 149 ।।

सेवावृत्ति में लगे मनुष्य कार्यकुशल, सत्यवक्ता, जितनिद्र, जितेन्द्रिय, सावधान और निरालस्य रहें । लोक और परलोक में सुखेच्छु सेवक स्वामी को विष्णु के समान, उनकी पत्नी को माता के समान और उनके बान्धवों को देवता के समान आदर-सम्मान देवे । स्वामी के मित्रों को अपना मित्र और उनके शत्रुओं को अपना शत्रु समझे । सर्वदा स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा में रत भयपूर्वक उपस्थित रहे । अपमान, घर के छिद्र, गोपनीय अन्य बातों और स्वामी को ग्लानि उपजाने वाली बातों की बहुत यत्नपूर्वक छिपाकर रक्खे । स्वामी के धन का लोभ न करे । सदैव स्वामी के हितचिन्तन में निरत रहे । उनके निकट असद् वचन, क्रीड़ा और हँसी का त्याग करे । स्वामी की दासियों आदि की ओर कुदृष्टि न करे । उनके साथ एकान्त में न सोये और न हँसी-खेल करे । स्वामी की शय्या, आसन, सवारी, वस्त्र, पानादि पात्र, पादुका, आभूषण, शस्त्र अपने उपयोग में न लावे । यदि सेवक से अपराध हो जाय तो वह उसके लिये स्वामी से क्षमा माँगे । स्वामी के सामने ढिठाई, लम्बी-चौड़ी बात आदि न करे ।। 142-149 ।।

भैरवीचक्र

सर्वे वर्णाःस्वस्ववर्णैर्ब्राह्मोद्वाहं तथाशनम् ।
कुर्वीरन्भैरवीचक्रात्तत्त्वचक्रादृते शिवे ।। 150 ।।

उभयत्र महेशानि शैवोद्वाहः प्रकीर्त्तितः ।
तथादने च पाने च वर्णभेदो न विद्यते ।। 151 ।।
किमिदं भैरवीचक्रं तत्त्वचक्रं च कीदृशम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कृपया वक्तुमर्हसि ।। 152 ।।
कुलपूजाविधौ देवि चक्रानुष्ठानमीरितम् ।
विशेषपूजासमये तत्कार्यं साधकोत्तमैः ।। 153 ।।
भैरवीचक्र विषये न तादृङ्नियमः प्रिये!
यथासमयमासाद्य कुर्याच्चक्रमिदं शुभम् ।। 154 ।।
विधानमस्य वक्ष्यामि साधकानां शुभावहम् ।
आराधिता येन देवी तूर्णं यच्छति वाञ्छितम् ।। 155 ।।

हे शिवे! भैरवीचक्र और तत्त्वचक्र के बाहर सभी वर्ण अपने-अपने वर्ण में ही ब्राह्मविवाह और भोजन करें । किन्तु हे महेशानि! भैरवीचक्र और तत्त्व-चक्र में शैव विवाह का ही प्रावधान है । इनमें भोजन और पान करते समय वर्ण का भेद-भाव नहीं किया जाता है । शैव विवाह में वर्ण-विचार नहीं है । शैव विवाह द्वारा विवाहिता स्त्री दोनों चक्रों के लिये प्रशस्त है । अन्य सभी कार्यों में ब्राह्म विवाह से विवाहिता स्त्री उत्तम है । इसी प्रकार चक्रों में भोजन के समय जातिभेद का विचार नहीं है; परन्तु इसके अतिरिक्त अवसरों पर जाति-विचार करना चाहिये । श्रीदेवी ने कहा कि यह भैरवी-चक्र क्या है? अथवा तत्त्व-चक्र किस प्रकार का होता है? इन सबों को सुनने की इच्छा है, कृपया बतलाइये ।

श्री सदाशिव ने कहा कि हे देवि! कुलपूजा की विधि से चक्र का अनुष्ठान होता है । श्रेष्ठ साधकों को विशेष पूजा के अवसरों पर उसे करना चाहिये । हे प्रिये! भैरवी चक्र के सम्बन्ध में समयादि का कोई नियम नहीं है । किसी भी समय इस भैरवी चक्र का अनुष्ठान किया जा सकता है । साधकों के लिये मंगलकारी भैरवी चक्र का विधान बतलाता हूँ । इससे भगवती की आराधना करने से मनुष्य को अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है ।।150-155।।

कुलाचार्यो रम्यभूमावास्तीर्यासनमुत्तमम् ।
कामाद्येनास्त्रबीजेन संशोध्योपविशेत्ततः ।। 156 ।।
सिन्दूरेण कुसीदेन केवलेन जलेन वा ।
त्रिकोणं चतुरस्रं च मण्डलं रचयेत्सुधीः ।। 157 ।।

विचित्रघटमानीय दध्यक्षतविमृक्षितम् ।
फलपल्लवसंयुक्तं सिन्दूरतिलकान्वितम् ।। 158 ।।
सुवासितजलैः पूर्णं मण्डले तत्र साधकः ।
प्रणवेन तु संस्थाप्य धूपदीपौ प्रदर्शयेत् ।। 159 ।।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाभ्यां चिन्तयेदिष्टदेवताम् ।
संक्षेपपूजाविधिना तत्र पूजां समाचरेत् ।। 160 ।।
विशेषमत्र वक्ष्यामि शृणुष्वामरवन्दिते ।
गुर्वादिनवमात्राणां नात्र स्थापनमिष्यते ।। 161 ।।
यथेष्टं तत्त्वमादाय संस्थाप्य पुरतो व्रती ।
प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रेण दिव्यदृष्ट्यावलोकयेत् ।। 162 ।।
अलियन्त्रे गन्धपुष्पं दत्त्वा तत्र विचिन्तयेत् ।
आनन्दभैरवीं देवीमानन्दभैरवन्तथा ।। 163 ।।
नवयौवनसम्पन्नां तरुणारुणविग्रहाम् ।
चारुहासामृताभासोल्लसद्वदनपङ्कजाम् ।। 164 ।।
नृत्यगीतकृतामोदां नानाभरणभूषिताम् ।
विचित्रवसनान्ध्यायेद्वराभयकराम्बुजाम् ।। 165 ।।
इत्यानन्दमयीं ध्यात्वा स्मरेदानन्दभैरवम् ।। 166 ।।
कर्पूरपूरधवलं कमलायताक्षं
दिव्याम्बराभरणभूषितदेहकान्तिम् ।
वामेन पाणिकमलेन क्षुधाक्षपात्र
दक्षेण शुद्धिगुटिकान्दधतं स्मरामि ।। 167 ।।

कुलाचार्य सुन्दर स्थान में उत्तम आसन बिछाकर 'क्लीं फट्' से उस आसन को शुद्ध करके उस पर बैठे । सिन्दूर, लाल चन्दन या केवल जल से त्रिकोण-चतुष्कोण मण्डल बनाए । एक सुन्दर घट लेकर उसे दही, अक्षत, फल, पल्लव, सिन्दूर, तिलक से युक्त करे । उसे जल से पूर्ण करे । प्रणव का उच्चारण करते हुए उसे उस मण्डल पर स्थापित करे । धूप-दीप दिखाये । गन्ध-पुष्प से पूजा करके इष्टदेवता का ध्यान करे । संक्षेप में उसमें पूजन करे । हे सुरवन्दिते! इसमें जो विशेष है, उसे कहता हूँ, सुनो ।

इसमें गुरु आदि नौ पात्र का स्थापन करना आवश्यक नहीं है । यथेच्छ तत्त्व अपने सामने रखकर उसे 'फट्' से प्रोक्षित करे । टकटकी लगाकर उसे देखे । तब मद्यपात्र में गन्ध-पुष्प देकर उसमें आनन्दभैरवी और आनन्दभैरव का

ध्यान करे । श्लोक 164 और 165 में आनन्दभैरवी के ध्यान का वर्णन है । आनन्दभैरवी का शरीर बाल सूर्य के समान दीप्ति वाला है । मनोरम हास्यामृत की कमनीय कान्ति से मुखकमल सुशोभित है । नृत्य-गीत से आनन्दित हैं । नाना अलंकारों से अलंकृत हैं । विलक्षण वस्त्रों के विभूषित हैं । हाथों में वर और अभय मुद्रा है ।

इस प्रकार आनन्दभैरवी का ध्यान करके आनन्दभैरव का ध्यान करे । श्लोक 167 में आनन्दभैरव का ध्यान है । उनका वर्ण कपूर के समान उज्ज्वल है । बड़े नेत्र कमल के समान हैं । दिव्य वस्त्रालंकारों से शरीर की कान्ति सुशोभित है । बाँयें हाथ में सुधापूर्ण पात्र और दाँयें हाथ में शुद्धि की गुटिका है ।। 156-167 ।।

ध्यात्वैवमुभयं तत्र सामरस्यं विचिन्तयन् ।
प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण देशिकः ।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाभ्यां शोधयेत्कारणं ततः ।। 168 ।।
पाशादित्रिकबीजेन स्वाहान्तेन कुलार्च्चकः ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या जपन्हेतुं विशोधयेत् ।। 169 ।।
गृहकाम्यैकचित्तानां गृहिणां प्रबले कलौ ।
आद्यतत्त्वप्रतिनिधौ विधेयं मधुरत्रयम् ।। 170 ।।
दुग्धं सिता माक्षिकं च विज्ञेयं मधुरत्रयम् ।
अलिरूपमिदं मत्वा देवतायै निवेदयेत् ।। 171 ।।
स्वभावात्कलिजन्मानः कामबिभ्रान्तचेतसः ।
तद्रूपेण न जानन्ति शक्तिं सामान्यबुद्धयः ।। 172 ।।
अतस्तेषां प्रतिनिधौ शेषतत्त्वस्य पार्वति ।
ध्यानं देव्याः पदाम्भोजे स्वेष्टमन्त्रजपस्तथा ।। 173 ।।
ततस्तु प्राप्त तत्त्वानि पललादीनि यानि च ।
प्रत्येकं शतधानेन मनुना चाभिमन्त्रयेत् ।। 174 ।।
सर्वं ब्रह्ममयं ध्यात्वा निमील्य नयनद्वयम् ।
निवेद्य पूर्ववत्काल्यै पानभोजनमाचरेत् ।। 175 ।।

दोनों के ध्यान के बाद साधक सुरापात्र में इन दोनों की समरसता का चिन्तन करते हुए 'ॐ आनन्दभैरव्यै नमः, ॐ आनन्दभैरवाय नमः' मन्त्र से गन्ध-पुष्प से पूजा करे । इसके बाद सुरा का शोधन करे ।

कुलपुजारी 'आं ह्रीं क्रीं स्वाहा' का जप 108 बार करके सुरा का शोधन करे । प्रबल कलिकाल में गृहस्थ केवल गृहकार्य की कामना से एकाग्रचित से पूजन करे । गृहस्थ के लिये सुरा के अनुकल्परूप में 'मधुरत्रय' का निर्देश है । दूध-चीनी और शहद को मधुरत्रय कहा जाता है । त्रिमधुर को ही मद्य मानकर देवता को निवेदित करे । कलियुग में सभी मनुष्य स्वभावतः काम द्वारा भ्रान्तचित्त सामान्य बुद्धि वाले होते हैं, जिससे वे नारी को शक्तिरूपा नहीं समझ पाते । हे पार्वति! इसी से उनके लिये मैथुन तत्त्व के अनुकल्परूप में देवी के चरणों का ध्यान और इष्ट मन्त्र के जप का निर्देश है । मांस आदि जो तत्त्व उपलब्ध हों, उनमें से प्रत्येक को 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा' मन्त्र के एक सौ जप से अभिमन्त्रित करे । तब उपलब्ध सभी वस्तुओं को ब्रह्ममय मानते हुए दोनों नेत्र बन्द कर भगवती काली को निवेदित करे । इसके बाद स्वयं पान करे और भोजन करे ।। 168-175 ।।

इदन्तु भैरवीचक्रं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
तवाग्रे कथितं भद्रे! सारात्सारं परात्परम् ।। 176 ।।
विवाहो भैरवीचक्रे तत्त्वचक्रेऽपि पार्वति ।
सर्वथा साधकेन्द्रेण कर्त्तव्यः शैववर्त्मना ।। 177 ।।
विना परिणयं वीरः शक्तिसेवां समाचरन् ।
परस्त्रीगामिनां पापं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।। 178 ।।
सम्प्राप्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजोत्तमाः ।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ।। 179 ।।
नात्र जातिविचारोऽस्ति नोच्छिष्टादिविवेचनम् ।
चक्रमध्यगता वीरा मम रूपा न चान्यथा ।। 180 ।।

हे भद्रे! यह भैरवीचक्र के सार का श्रेष्ठ सार है । सभी तन्त्रों में गुप्त है; किन्तु इसे तुमको बतलाया । हे पार्वति! भैरवीचक्र और तत्त्वचक्र में शैव पद्धति से विवाह करना श्रेष्ठ साधकों का कर्तव्य है । विना विवाह शक्तिसेवी वीर साधक परस्त्रीगमन के पाप को प्राप्त करते हैं । इसमें सन्देह नहीं । भैरवीचक्र के आरम्भ होने पर सभी जातियों के साधक द्विज हो जाते हैं । भैरवीचक्र की समाप्ति के पश्चात् सभी अलग-अलग अपने वर्ण के हो जाते हैं । इस भैरवी चक्र में जाति-विचार नहीं है, जूठे का भी विचार नहीं है । चक्र में विद्यमान वीर मेरे ही स्वरूप होते हैं; अन्य नहीं ।। 176-180 ।।

न देशकालनियमो न वा पात्रविचारणम् ।
येन केनाहृतं द्रव्यं चक्रेऽस्मिन्विनियोजयेत् ।। 181 ।।
दूरदेशात्समानीतं पक्वं वापक्वमेव वा ।
वीरेण पशुना वापि चक्रमध्यगतं शुचि ।। 182 ।।
चक्रारम्भे महेशानि! विघ्नाः सर्वभयाकुलाः ।
विभीतास्ते पलायन्ते वीराणां ब्रह्मतेजसा ।। 183 ।।
पिशाचा गुह्यका यक्षा वेतालाः क्रूरजातयः ।
श्रुत्वात्र भैरवीचक्रं दूरं गच्छन्ति साध्वसम् ।। 184 ।।
तत्र तीर्थानि सर्वाणि महातीर्थानि यानि च ।
सेन्द्रामरगणाः सर्वे तत्रागच्छन्ति सादरम् ।। 185 ।।
चक्रस्थानं महातीर्थं सर्वतीर्थाधिकं शिवे!।
त्रिदशा यत्र वाञ्छन्ति तव नैवेद्यमुत्तमम् ।। 186 ।।
म्लेच्छेन श्वपचेनापि किरातेनापि हूणुना ।
आमं पक्वं यदानीतं वीरहस्तार्पितं शुचि ।। 187 ।।
दृष्ट्वा तु भैरवीचक्रं मम रूपांश्च साधकान् ।
मुच्यन्ते पशुपाशेभ्यः कलिकल्मषदूषिताः ।। 188 ।।
प्रबले कलिकाले तु न कुर्याच्चक्रगोपनम् ।
सर्वत्र सर्वदा वीरः साधयेत्कुलसाधनम् ।। 189 ।।

इस भैरवीचक्र में देश-काल का नियम नहीं है । पात्र का विचार नहीं है । किसी भी व्यक्ति के द्वारा लाये गये द्रव्य का प्रयोग हो सकता है । वीराचारी या पश्वाचारी द्वारा दूर से लाया गया पका या विना पका द्रव्य चक्र में रखने से ही पवित्र हो जाता है । हे महेश्वरि! भैरवी चक्र के आरम्भ में वीरों के ब्रह्मतेज के प्रभाव से सभी विघ्न भयभीत होकर भाग जाते हैं । पिशाच, गुह्यक, यक्ष, वेताल और अन्य क्रूर प्राणी भैरवी चक्र का नाम सुनते ही भय से दूर चले जाते हैं । उस स्थान में सारे तीर्थ, महातीर्थ और देवेन्द्रसहित सभी देवता सादर आ जाते हैं । हे शिवे! चक्र का स्थान महातीर्थ है; अतः सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है । इसमें देवता भी तुम्हें उत्तम नैवेद्य देने की इच्छा करते हैं । म्लेच्छ, श्वपच. किरात या हूण आदि द्वारा लाये कच्चे या पके द्रव्य वीर के हाथ में देने से ही पवित्र हो जाते हैं । कलि के पाप से दूषित व्यक्ति भैरवीचक्र और मेरे स्वरूप-साधकों का दर्शन करने से ही पाप के पाश से छूट जाते हैं । प्रबल कलिकाल में चक्रानुष्ठान को गोपनीय रखने की आवश्यकता नहीं है । वीराचारी सभी स्थानों में सभी समयों में कुलसाधना करे।। 181-189 ।।

चक्रमध्ये वृथालापं चाञ्चलं बहुभाषणम् ।
निष्ठीवनमधोवायुं वर्णभेदं विवर्जयेत् ।। 190 ।।
क्रूरान्खलान्पशून्पापान्नास्तिकान्कुलदूषकान् ।
निन्दकान्कुलशास्त्राणां चक्राद्दूरतरं त्यजेत् ।। 191 ।।
स्नेहाद्भयादानुरक्त्या पशूंश्चक्रे प्रवेशयन् ।
कुलधर्मात्परिभ्रष्टो वीरोऽपि नरकं व्रजेत् ।। 192 ।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राः सामान्यजातयः ।
कुलधर्माश्रिता ये वै पूज्यास्ते देववत्सदा ।। 193 ।।
वर्णाभिमानाच्चक्रे तु वर्णभेदं करोति यः ।
स याति घोरनिरयमपि वेदान्तपारगः ।। 194 ।।
चक्रान्तर्गतकौलानां साधूनां शुद्धचेतसाम् ।
साक्षाच्छिवस्वरूपाणां पापाशङ्का भवेत्कुतः।। 195 ।।
यावद्वसन्ति चक्रेषु विप्राद्याः शैवमार्गिणः ।
तावत्तु शाम्भवाचारांश्चरेयुः शिवशासनात् ।। 196।।
चक्राद्विनिःसृताः सर्वे स्वस्ववर्णाश्रमोदितम् ।
लोकयात्राप्रसिद्ध्यर्थं कुर्युः कर्म पृथक्पृथक् ।। 197 ।।

चक्र में व्यर्थ बातचीत, चञ्चलता, वाचालता, छींकना, पादना और वर्णविचार न करे । क्रूर, दुष्ट, पश्वाचारी, पापी, नास्तिक, कुलदूषक और कुलशास्त्र के निन्दकों को चक्र से बाहर निकाल दे । स्नेह, भय या अनुराग के चलते पश्वाचारी आदि को चक्र में सम्मिलित करने से वीराचारी भी कुल-धर्म से भ्रष्ट होकर नरकगामी होता है । चक्र के अन्दर पवित्र मन वाले साधु और साक्षात् शिवस्वरूप कौलिकों के सम्बन्ध में पाप की शंका कैसे हो सकती है । शैवमार्गी विप्रादि जब तक चक्र में रहें तब तक शिवादेशानुसार शाम्भवाचार का पालन करें । चक्र से बाहर होने पर ये सभी लोकयात्रा के निर्वाह के लिये अपने-अपने वर्णाश्रम के निर्दिष्ट कर्मों का पालन करें ।। 190-197।।

पुरश्चर्याशतेनापि शवमुण्डचितासनात् ।
चक्र मध्ये सकृज्जप्त्वा तत्फलं लभते सुधीः ।। 198 ।।
भैरवीचक्र माहात्म्यं को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ।
सकृदेतत्प्रकुर्वाणः सर्वैः पापैः प्रमुच्यते ।। 199 ।।
षण्मासं भूमिपालः स्याद्वर्षं मृत्युञ्जयः स्वयम् ।
नित्यं समाचरन्मर्त्यो ब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ।। 200 ।।

बहुना किमिहोक्तेन सत्यं जानीहि कालिके।
इहामुत्र सुखावाप्त्यै कुलमार्गो हि नापरः ।। 201 ।।
कलेः प्राबल्यसमये सर्वधर्मविवर्जिते।
गोपनात्कुलधर्मस्य कौलोऽपि नारकी भवेत् ।। 202 ।।
कथितं भैरवीचक्रं भोगमोक्षैकसाधनम्।
तत्त्वचक्रं कुलेशानि साम्प्रतं वच्मि तच्छृणु ।। 203 ।।

शवासन, मुण्डासन और चितासन पर बैठकर सौ पुरश्चरण करने से जो फल मिलता है, वह ज्ञानी साधक चक्र में एक बार जप करने से ही पा जाता है । भैरवीचक्र का माहात्म्य कहने में कौन व्यक्ति समर्थ है? इसे एक ही बार करने से सारे पापों से छुटकारा मिल जाता है । छः मास तक करने से भूपति और एक वर्ष तक करने से साधक मृत्युञ्जय हो जाता है । नित्य करने से निर्वाण मोक्ष प्राप्त होता है । हे कालिके! इसके बारे में अधिक कहने का क्या प्रयोजन ? हे सुव्रते! सत्य जानो कि इस कुल-पद्धति के सिवा और कोई दूसरा उपाय ऐहिक और पारलौकिक सुख पाने का नहीं है । सर्व-धर्मशून्य कलि की प्रबलता के समय में कुलधर्म को छिपाने से कौल भी नरकगामी होता है । भोग और मोक्ष का एकमात्र साधन भैरवीचक्र का वर्णन मैंने किया । अब तत्त्वचक्र को बतलाता हूँ, उसे सुनो ।। 198-203।।

तत्त्वचक्र

तत्त्वचक्रं चक्रराजं दिव्यचक्रं तदुच्यते।
नात्राधिकारः सर्वेषां ब्रह्मज्ञान्साधकान्विना ।। 204 ।।
परब्रह्मोपासका ये ब्रह्मज्ञा ब्रह्मतत्पराः।
शुद्धान्तःकरणाः शान्ताः सर्वप्राणिहिते रताः ।। 205 ।।
निर्विकारा निर्विकल्पा दयाशीला दृढव्रताः।
सत्यसङ्कल्पका ब्राह्मयास्ता एवात्राधिकारिणः ।। 206 ।।
ब्रह्मभावेन तत्त्वज्ञे ये पश्यन्ति चराचरम्।
तेषां तत्त्वविदां पुंसां तत्त्वचक्रेऽधिकारिता ।। 207 ।।
सर्वब्रह्ममयो भावश्चक्रेऽस्मिंस्तत्त्वसंज्ञके ।
येषामुत्पद्यते देवि त एव तत्त्वचक्रिणः ।। 208 ।।
न घटस्थापनात्रास्ति न बाहुल्येन पूजनम्।
सर्वत्र ब्रह्मभावेन साधयेत्तत्त्वसाधनम् ।। 209 ।।

ब्रह्ममन्त्री ब्रह्मनिष्ठो भवेच्चक्रेश्वरः प्रिये ।
ब्रह्मज्ञैः साधकैः सार्द्धं तत्त्वचक्रं समारभेत् ।। 210 ।।

तत्त्वचक्र सब चक्रों का राजा है । इसे दिव्य चक्र कहा जाता है । ब्रह्मज्ञानी साधक के सिवा किसी दूसरे को इसे करने का अधिकार नहीं है । इस तत्त्वचक्र के करने का अधिकारी वही है, जो परब्रह्म का उपासक है । जो ब्रह्मज्ञ ब्रह्मतत्पर पवित्र अन्तःकरण वाला है । जो सभी प्राणियों के हितसाधन में लग्न रहते हैं । शान्त, निर्विकार, तन्त्र और गुरुवाणी का विश्वासी है, जो दयालु, दृढव्रती, सत्यसंकल्प और ब्राह्म हैं । हे तत्त्वज्ञे! जो इस चराचर पूर्ण जगत् को ब्रह्ममय मानते हैं, उन्हीं तत्त्वज्ञ पुरुषों को इस तत्त्वचक्र को करने का अधिकार है । हे देवि! जिन्हें इस प्रकार के भाव का ज्ञान है कि सब कुछ ब्रह्म ही है, वही तत्त्वचक्री हैं । अर्थात् उन्हें ही तत्त्वचक्रानुष्ठान करने का अधिकार है । इसमें घट का स्थापन नहीं होता । विस्तृत पूजा भी नहीं होती । सभी स्थानों में ब्रह्मभाव ही से तत्त्वसाधन होता है । हे प्रिये! ब्रह्ममन्त्रोपासक और ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति ही चक्रश्वेर बनता है । अतः ब्रह्मज्ञ साधकों के साथ तत्त्वचक्र का प्रारम्भ करना चाहिए ।। 204-210 ।।

रम्ये सुनिर्मले देशे साधकानां सुखावहे ।
विचित्रासनमानीय कल्पयेद्विमलासनम् ।। 211 ।।
तत्रोपविश्य चक्रेशः सहितो ब्रह्मसाधकैः ।
आसादयेत्तु तत्त्वानि स्थापयेदग्रतः शिवे ।। 212 ।।
तारादिप्राणबीजान्तं शतावृत्त्या जपन्मनुम् ।
सर्वतत्त्वेषु चक्रेश इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।। 213 ।।
ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।। 214 ।।
सप्तधा वा त्रिधा जप्त्वा तानि सर्वाणि शोधयेत् ।। 215।।
ततो ब्राह्मेण मनुना समर्प्य परमात्मने ।
ब्रह्मज्ञैः साधकैः सार्धं विदध्यात्पानभोजनम् ।। 216 ।।

रमणिक, निर्मल, सुखदायक प्रदेश में विचित्र आसन लाकर विमल आसन की कल्पना करे । हे शिवे! ऐसे स्थान में ब्रह्मसाधकों के साथ बैठकर चक्रेश्वर तत्त्वसमूह को एकत्र करे और अपने सामने स्थापित करे । सभी तत्त्वों पर चक्रेश्वर 'ॐ हंसः' मन्त्र का जप सौ बार करके निम्न मन्त्र का पाठ करे । श्लोक 214 मन्त्रस्वरूप है । अर्थात् जिसके द्वारा यज्ञ में घृतादि अर्पित किया

जाता है, उसे अर्पण कहते हैं । अर्थात् स्रुवा आदि ब्रह्म है । जिस पदार्थ का अर्पण किया जाता है अर्थात् घृत आदि भी ब्रह्म है । ब्रह्म अग्नि में स्वयं ब्रह्म के द्वारा आहुति दी जाती है अर्थात् अग्नि और हवनकर्त्ता भी ब्रह्म है । इस प्रकार ब्रह्मकर्म में जिसका चित्त एकाग्र होता है, वही ब्रह्म को प्राप्त करता है । इस 'ब्रह्मार्पणं......समाधिना' मन्त्र को सात या तीन बार जप कर सभी तत्त्वों का शोधन करे । तब ब्राह्म मन्त्र से सबको परमात्मा को समर्पण करके ब्रह्मज्ञ साधकों के सहित एक साथ पान और भोजन करे ।। 211-216 ।।

ब्रह्मचक्र में जातिभेद त्याज्य

ब्रह्मचक्रे महेशानि वर्णभेदं विवर्जयेत् ।
न देशकालनियमन पात्रनियमस्तथा ।। 217 ।।
ये कुर्वन्ति नरा मूढा दिव्यचक्रे प्रमादतः ।
कुलभेदं वर्णभेदं ते गच्छन्त्यधमां गतिम् ।। 218 ।।
अतः सर्वप्रयत्नेन ब्रह्मज्ञैः साधकोत्तमैः ।
तत्त्वचक्रमनुष्ठेयं धर्मकामार्थमुक्तये ।। 219 ।।
गृहस्थानामशेषेण धर्मानकथयत्प्रभो! ।
संन्यासविहितान्धर्मान्कृपया वक्तुमर्हसि ।। 220 ।।

हे महेश्वरि! इस तत्त्वचक्र में जात-पात का विचार न करे । इसमें देश-काल या पात्र का नियम नहीं है । जो मूढ़ लोग इस दिव्य चक्र में असावधानी से वंशगत या जातिगत भेदभाव करते हैं, उन्हें अति निकृष्ट गति प्राप्त होती है । अतः ब्रह्मज्ञ साधक धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के लिये सब यत्न करके तत्त्वचक्र का अनुष्ठान करे । श्रीदेवि ने कहा कि हे प्रभो! आपने गृहस्थों के धर्म को विस्तारपूर्वक कहा है । अब कृपया संन्यास में विहित धर्मों को कहिये ।। 217-220 ।।

अवधूताश्रम ही संन्यासाश्रम

अवधूताश्रमो देवि ! कलौ संन्यास उच्यते ।
विधिना येन कर्त्तव्यस्तत्सर्वं शृणु साम्प्रतम् ।। 221 ।।
ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने विरते सर्वकर्मणि ।
अध्यात्मविद्यानिपुणः संन्यासाश्रममाश्रयेत् ।। 222 ।।
विहाय वृद्धौ पितरौ शिशुं भार्यां पतिव्रताम् ।
त्यक्त्वाऽसमर्थान्बन्धूंश्च प्रव्रजन्नारकी भवेत् ।। 223 ।।
ब्रह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः सामान्य एव च ।

कुलावधूतसंस्कारे पञ्चानामधिकारिता ।। 224 ।।
सम्पाद्य गृहकर्माणि परितोष्य परानपि ।
निर्ममा निलयाद्गच्छेन्निष्कामो विजितेन्द्रियः ।। 225 ।।
आहूय स्वजनान्बन्धून्ग्रामस्थान्प्रातिवासिनः।
प्रीत्यानुमतिमन्विच्छद्गृहाज्जिगमिषुर्जनः ।। 226 ।।
तेषामनुज्ञामादाय प्रणम्य परदेवताम् ।
ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य निरपेक्षो गृहादियात् ।। 227 ।।
मुक्तः संसारपाशेभ्यः परमानन्दनिर्वृतः ।
कुलावधूतं ब्रह्मज्ञं गत्वा सम्प्रार्थयेदिदम् ।। 228 ।।

श्रीसदाशिव ने कहा कि हे देवि! कलियुग में अवधूताश्रम को ही संन्यासाश्रम कहा गया है । संन्यास आश्रम की विधि और कर्त्तव्य का वर्णन सुनो । ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होने पर सभी काम्य कर्मों से रहित होने पर अध्यात्म विद्या में पारंगत व्यक्ति संन्यास आश्रम का अवलम्बन करे । वृद्ध पिता-माता. शिशु-पुत्र, पतिव्रता भार्या, असमर्थ बन्धुवर्ग को त्याग कर जो प्रव्रज्या करते हैं, वे नरकगामी होते हैं । कुलावधूत संस्कार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र और सामान्य—इन पाँचों वर्णों का अधिकार है । साधक गृहस्थोचित कर्म सम्पन्न करके अपने सभी स्वजनों को सन्तुष्ट करके ममता और कामनाशून्य होकर जितेन्द्रिय होकर घर से बाहर निकले । गृहस्थाश्रम त्याग कर जाने का अभिलाषी अपने स्वजन बन्धुओं और आश्रित लोगों तथा गाँव के निवासियों को बुलाकर प्रेमपूर्ण मन से अनुमति देने की प्रार्थना करे । तब सबकी अनुमति लेकर अभीष्ट देवता को प्रणाम करके गाँव की प्रदक्षिणा करके निरपेक्ष हृदय से घर से बाहर निकले । संसार-बन्धन से मुक्त होकर परमानन्द से सुखी होकर कुलावधूत ब्रह्मज्ञ के पास जाकर यह प्रार्थना करे । श्लोक 229 प्रार्थना है । हे परब्रह्मन्! गृहस्थाश्रम में मेरी इतनी आयु बीत चुकी है । हे नाथ! अब मैं संन्यास लेने के लिये आया हूँ । मुझ पर आप प्रसन्न हों ।। 221-228 ।।

संन्यास-ग्रहण-विधि

गृहाश्रमे परब्रह्मन् ममैतद्विगतं वयः ।
प्रसादं कुरु मे नाथ! संन्यासग्रहणं प्रति ।। 229 ।।
निवृत्तगृहकर्माणं विचार्य विधिवद् गुरुः ।
शान्तं विवेकिनं वीक्ष्य द्वितीयाश्रममादिशेत् ।। 230 ।।

तत: शिष्य: कृतस्नानो यतात्मा विहिताह्निक: ।
ऋणत्रयविमुक्त्यर्थं देवर्षीनर्चयेत्पितॄन् ।। 231 ।।
देवा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्च स्वगणै: सह ।
ऋषय: सनकाद्याश्च देवब्रह्मर्षयस्तथा ।। 232 ।।
अत्र ये पितर: पूज्या वक्ष्यामि शृणु तानपि ।
पिता पितामहश्चैव प्रपितामह एव च ।। 233 ।।

गुरुदेव विचार करके गृहकर्म से निवृत्त उस व्यक्ति को शास्त्र और विवेक से युक्त देखकर द्वितीय आश्रम का आदेश प्रदान करें । इसके बाद शिष्य स्नान करके संयतात्मा होकर दैनिक कर्म सम्पन्न करके तीन ऋणों से मुक्त होने के लिये देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण करे । संन्यास लेते समय ब्रह्मा, विष्णु, अनुचरों सहित रुद्र, देवगण, ब्रह्मर्षिगण और पितृगण पूज्य हैं । उन सबको बताता हूँ; सुनो ।। 230-233 ।।

पित्रादि को पिण्डदान

माता पितामही देवि! तथैव प्रपितामही ।
मातामहादयोऽप्येवं मातामह्यादयोऽपि च ।। 234 ।।
प्राच्यामृषीन्यजेद्देवान्दक्षिणस्यां पितॄन्यजेत् ।
मातामहान्प्रतीच्याञ्च पूजयेन्न्यासकर्मणि ।। 235 ।।
पूर्वादिक्रमतो दद्यादासनानां द्वयं द्वयम् ।
देवादीन्क्रमतस्तत्रावाह्य पूजां समाचरेत् ।। 236 ।।
समर्च्य विधिवत्तेभ्य: पिण्डान्दद्यात्पृथक्पृथक् ।
पिण्डप्रदानविधिना दत्त्वा पिण्डं यथाक्रमम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत्पितृदेवता: ।। 237 ।।
तृप्यध्वं पितरो देवा देवर्षिमातृकागणा: ।
गुणातीतपदे यूयमनृणीकुरुताचिरात् ।। 238 ।।
इत्यानृण्यमर्थयित्वा प्रणम्य च पुन: पुन: ।
ऋणत्रयविनिर्मुक्त आत्मश्राद्धं प्रकल्पयेत् ।। 239 ।।
पिता ह्यात्मैव सर्वेषां तत्पिता प्रपितामह: ।
आत्मन्यात्मार्पणार्थाय कुर्यादात्मक्रियां सुधी: ।। 240 ।।
उत्तराभिमुखो भूत्वा पूर्व्ववत्कल्पितासने ।
आवाह्यात्मपितॄन्देवि! दद्यात्पिण्डं समर्चयन् ।। 241।।
प्रागग्रान्दक्षिणाग्रांश्च पश्चिमाग्रान्यथाक्रमात् ।

पिण्डार्थमास्तरेद्दर्भानुदगग्रान्स्वकर्मणि ॥ 242 ॥
समाप्य श्राद्धकर्माणि गुरुदर्शितवर्त्मना ।
मुमुक्षुश्चित्तशुद्ध्यर्थमिमं मन्त्रं शतं जपेत् ॥ 243 ॥
ह्रीं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ 244 ॥

हे देवि! पिता-पितामह-प्रपितामह, माता-पितामही-प्रपितामही, मातामह-प्रमाता-मह-वृद्धप्रमातामह, मातामही-प्रमातामही-वृद्धप्रमातामही की पूजा करे । संन्यास के समय पूर्व दिशा में देवगण और ऋषिगण एवं पश्चिम दिशा में मातामहपक्ष की पूजा करे । पूर्व दिशा से आरम्भ करके दो-दो आसन स्थापित करें । इन आसनों पर देवादिकों का आवाहन करके पूजा करे । सबका अर्चन करके अलग-अलग पिण्डदान करे । इस प्रकार पिण्डदान की विधि से यथाक्रम पिण्ड देकर पितृगणों और देवगणों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करे । श्लोक 238 प्रार्थना मन्त्र है । हे पितृगण! हे मातृगण! हे देवर्षिगण! मैं गुणातीत पद को प्राप्त करने को जा रहा हूँ । आप मुझे शीघ्र ऋणों से मुक्त कर दें । इस प्रकार देव-ऋषि-पितृ और मातृगण को वारम्बार प्रणाम करके और उनसे अपनी ऋणमुक्ति की प्रार्थना करके तीनों ऋण से मुक्त होकर साधक आत्मश्राद्ध करे ।

आत्मा ही सबका पिता, पितामह और प्रपितामह है: अतः ज्ञानी व्यक्ति परमात्मा को आत्मसर्मपण करने के लिये अपना श्राद्ध स्वयं करे । हे देवि! पूर्ववत् परिकल्पित आसन पर उत्तराभिमुख होकर बैठे । अपने पितृगण का आवाहन कर अर्चन करके पिण्डदान करे । देवगण, ऋषिगण और पितृगण के लिये पिण्डदान हेतु उत्तराभिमुख कुश रक्खे । मुमुक्षु व्यक्ति गुरु-प्रदर्शित पद्धति से श्राद्ध कर्म समाप्त करके चित्तशुद्धि के लिये निम्न मन्त्र का सौ बार जप करे । श्लोक 244 मन्त्रस्वरूप है । इस मन्त्र का अर्थ इस पुस्तक के पञ्चम उल्लास के श्लोक 210 में देखने की कृपा करें ।। 234-244 ।।

अग्निस्थापन, प्राण-होम

उपासनानुसारेण वेद्यां मण्डलपूर्वकम् ।
संस्थाप्य कलशं तत्र गुरुः पूजां समारभेत् ॥ 245 ॥
ततस्तु परमं ब्रह्म ध्यात्वा शाम्भववर्त्मना ।
विधाय पूजां ब्रह्मज्ञो वह्निस्थापनमाचरेत् ॥ 246 ॥

प्रागुक्तसंस्कृते वह्नौ स्वकल्पोक्ताहुतिं गुरुः ।
दत्त्वा शिष्यं समाहूय साकल्यं हावयेत्तु तम् ।। 247 ।।
आदौ व्याहृतिभिर्हुत्वा प्राणहोमं प्रकल्पयेत् ।
प्राणापानौ समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ।। 248 ।।
तत्त्वहोमं ततः कुर्याद्देहात्माध्यासमुक्तये ।
पृथिवीं सलिलं वह्निर्वायुराकाशमेव च ।। 249 ।।
गन्धो रसश्च रूपं च स्पर्शः शब्दो यथाक्रमम् ।
ततो वाक्पाणिपादाश्च पायूपस्थौ ततः परम् ।। 250 ।।
श्रोत्रं त्वङ्नयनं जिह्वा घ्राणं बुद्धीन्द्रियाणि च ।
मनो बुद्धिश्च चित्तञ्चाहङ्कारो देहजाः क्रियाः ।। 251 ।।
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि यानि च ।। 252 ।।
एतानि मे पदान्ते च शुद्ध्यन्तां पदमुच्चरेत् ।
ह्रींज्योतिरहं विरजाविपाप्मा भूयासमित्यपि ।। 253 ।।

गुरुदेव पूजा-पद्धति के अनुसार वेदी पर मण्डल बनाकर उस पर कलश-स्थापन करके पूजा करे । ब्रह्मज्ञानी परम ब्रह्म का ध्यान करके शैव पद्धति से पूजा करे और अग्नि-स्थापन करे । गुरुदेव संस्कारित अग्नि में स्वकल्पोक्त आहुतियाँ देकर शिष्य को बुलाकर साकल्य हवन करावे । पहले महाव्याहृति भूः भुवः स्वः से हवन करे । तब पाँच प्राणों—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान से हवन करे; जैसे— 1. ॐ भूः स्वाहा, 2. ॐ भुवः स्वाहा, 3. ॐ स्वः स्वाहा । 1. ॐ प्राणाय स्वाहा, 2. ॐ अपानाय स्वाहा, 3. ॐ समानाय स्वाहा, 4. ॐ उदानाय स्वाहा, 5. ॐ व्यानाय स्वाहा । इसके बाद देह को आत्मा समझने के भ्रम को हटाने के लिये तत्त्व होम करे । 249 से 253 तक से श्लोकों से इस प्रकार का हवनमन्त्र बनता है—

पृथ्वी सलिलं वह्निर्वायुराकाशं, गन्धो रसश्च रूपश्च स्पर्शः शब्दो, वाक् पाणि-पादाश्च पायूपस्थौ, श्रोत्रं त्वक् नयनं जिह्वा घ्राणं बुद्धीन्द्रियाणि च, मनो बुद्धिश्च चित्तं अहंकारो देहजाः क्रियाः सर्वाणीन्द्रियकर्माणि यानि च एतानि मे शुद्ध्यन्ताम् । ह्रीं ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश; गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द; वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ; श्रोत्र, त्वक्, नेत्र जिह्वा, घ्राण; बुद्धि की इन्द्रियाँ; मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, देहजन्य सभी कार्य, इन्द्रियकार्य, प्राणि-

कार्य—ये सभी जो मेरे हैं, वे शुद्ध हो जायँ। मैं ज्योतिस्वरूप हो जाऊँ। रज और पाप से रहित हो जाऊँ ।। 245-253।।

यज्ञोपवीत और शिखा-हवन

चतुर्विंशतितत्त्वानि कर्माणि दैहिकानि च ।
हुत्वाग्नौ निष्क्रियो देहं मृतवच्चिन्तयेत्ततः ।। 254 ।।
विभाव्य मृतवत्कायं रहितं सर्वकर्मणा ।
स्मरंस्तत्परमं ब्रह्म यज्ञसूत्रं समुद्धरेत् ।। 255 ।।
ऐंक्लींहंस इति मन्त्रेण स्कन्धादुत्तीर्य तत्त्ववित् ।
यज्ञसूत्रं करे कृत्वा पठित्वा व्याहृतित्रयम् ।
वह्निजायां समुच्चार्य्य घृताक्तमनले क्षिपेत् ।। 256 ।।
हुत्वैवमुपवीतञ्च कामबीजं समुच्चरन् ।
छित्त्वा शिखां करे कृत्वा घृतमध्ये नियोजयेत् ।। 257 ।।
ब्रह्मपुत्रि! शिखे! त्वं हि बालरूपा तपस्विनी ।
दीयते पावके स्थानं गच्छ देवि! नमोऽस्तु ते ।। 258 ।।
कामं मायां कूर्च्चमन्त्रं वह्निजायामुदीरयन् ।
तस्मिन्सुसंस्कृते वह्नौ शिखाहोमं समाचरेत् ।। 259 ।।
शिखामाश्रित्य पितरो देवा देवर्षयस्तथा ।
सर्वाण्याश्रमकर्माणि निवसन्ति शिखोपरि ।। 260 ।।
अतः सन्तर्प्य ताः सर्वा देवर्षिपितृदेवताः ।
शिखासूत्रपरित्यागाद्देही ब्रह्ममयो भवेत् ।। 261 ।।
यज्ञसूत्रशिखात्यागात्संन्यासः स्याद्द्विजन्मनाम् ।। 262 ।।
शूद्राणामितरेषां च शिखां हुत्वैव संस्क्रिया ।
ततो मुक्तशिखासूत्रः प्रणमेद्दण्डवद्गुरुम् ।
गुरुरुत्थाप्य तं शिष्यं दक्षकर्णे वदेदिदम् ।। 263 ।।
तत्त्वमसि महाप्राज्ञ ! हंसः सोऽहं विभावय ।
निर्ममो निरहङ्कारः स्वभावेन सुखं चर ।। 264 ।।
ततो घटञ्च वह्निञ्च विसृत्य ब्रह्मतत्त्ववित् ।
आत्मस्वरूपं तं मत्वा प्रणमेच्छिरसा गुरुः ।। 265 ।।
नमस्तुभ्यं नमो मह्यं तुभ्यं मह्यं नमो नमः ।
त्वमेव तत्तत्त्वमेव विश्वरूप! नमोऽस्तु ते ।। 266 ।।
ब्रह्ममन्त्रोपासकानां तत्त्वज्ञानां जितात्मनाम् ।
स्वमन्त्रेण शिखाच्छेदात्संन्यासग्रहणं भवेत् ।। 267 ।।

ब्रह्मज्ञानविशुद्धानां किं यज्ञैः श्राद्धपूजनैः ।
स्वेच्छाचारपराणान्तु प्रत्यवायो न विद्यते ।। 268 ।।

चौबीस तत्त्वों और दैहिक कर्मों को अग्नि में हवन करके निष्क्रिय होकर अपने शरीर को मृत समझे । अपने शरीर को मृतवत् सर्वकर्मरहित समझकर परम ब्रह्म का स्मरण करता हुआ गले से यज्ञोपवीत को उठाकर वक्ष पर करते हुए कन्धे पर रक्खें। तब तत्त्वज्ञ 'ऐं क्लीं हूँ' मन्त्र का उच्चारण करते हुए जनेऊ को कन्धे से उतार कर अपने हाथों में रखे । 'ॐ भुर्भुवः स्वः स्वाहा' का उच्चारण करते हुए उसमें घी लगावे और अग्नि में डाल दे । इस प्रकार यज्ञोपवीत का हवन करके काम बीज 'क्लीं' का उच्चारण करते हुआ शिखा को काटकर हाथ में लेकर घी में स्थापित करे । निम्न मन्त्र पढ़कर शिखा को अग्नि में डाल दे—

ब्रह्मपुत्री शिखे त्वं हि बालरूपा तपस्विनी ।
दीयते पावके स्थानं गच्छ देवि नमोस्तु ते ।
क्लीं ह्रीं हूं फट् स्वाहा ।

हे ब्रह्मपुत्री शिखे! तुम केशरूपा तपस्विनी हो । हे देवि! तुम्हें अग्नि में स्थान देता हूँ । तुम जाओ, तुम्हें नमस्कार है । पितृ, देव और देवर्षिगण शिखा का ही आश्रय ग्रहण कर रहते हैं । सभी आश्रमों के सारे कार्य शिखा पर ही आधारित हैं । अतः देव, ऋषि, पितृ, देवगण—सबों को संमर्पित कर देही शिखा तथा यज्ञसूत्र का त्याग करने से ब्रह्ममय हो जाता है । यज्ञसूत्र और शिखा के त्याग से द्विजों का संन्यास होता है । शूद्र और सामान्य जाति वालों का संस्कार केवल शिखाहोम से होता है । शिखासूत्र के त्याग करने के बाद गुरुदेव को दण्डवत् प्रणाम करे । गुरु शिष्य को उठाकर उसके दाहिने कान में निम्न मन्त्र सुनावे—श्लोक 264 मन्त्रस्वरूप है । हे महाप्राज्ञ! वह ब्रह्म तुम्हीं हो । तुम हंसः और सोऽहं भावना करो । तुम अहंकार और ममतारहित होकर अपने शुद्ध भाव में सुख से विचरण करो । इसके बाद ब्रह्मतत्त्वज्ञ गुरुदेव घट और अग्नि का विसर्जन करके शिष्य को आत्मस्वरूप मानकर उसे निम्न मन्त्र से प्रणाम करे । श्लोक 265 मन्त्ररूप है । तुम्हें नमस्कार हैं । मुझे नमस्कार है । मुझे और तुम्हें बारम्बार नमस्कार है । हे विश्वरूप! तुम्हीं वह हो अर्थात् जीव नहीं है और जीव ही तुम हो । तुमको नमस्कार करता हूँ, जितेन्द्रिय और तत्त्वज्ञानसम्पन्न ब्रह्ममन्त्रोपासक अपने मन्त्र का पाठ करके शिखाछेदन कर

संन्यास ग्रहण करते हैं । ब्रह्म-ज्ञान-विशुद्ध व्यक्ति को यज्ञ, पूजन और श्राद्धादि से कोई प्रयोजन नहीं रहता है । वे स्वेच्छाचार-परायण होते हैं । उन्हें प्रत्यवाय नहीं होता ।। 254-268 ।।

संन्यासी के कर्त्तव्य

ततो निर्द्वन्द्वरूपोऽसौ निष्कामः स्थिरमानसः ।
विहरेत्स्वेच्छया शिष्यः साक्षाद्ब्रह्ममयो भुवि ।। 269 ।।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सद्रूपेण विभावयन् ।
विस्मरन्नामरूपाणि ध्यायन्नात्मानमात्मनि ।। 270 ।।
अनिकेतः क्षमावृत्तो निःशङ्कः सङ्गवर्जितः ।
निर्ममो निरहङ्कारः संन्यासी विहरेत्क्षितौ ।। 271 ।।
मुक्तो विधिनिषेधेभ्यो निर्योगक्षेम आत्मवित् ।
सुखदुःखसमो धीरो जितात्मा विगतस्पृहः ।। 272 ।।
स्थिरात्मा प्राप्तदुःखोऽपि सुखे प्राप्तेऽपि निःस्पृहः ।
सदानन्दः शुचिः शान्तो निरपेक्षो निराकुलः ।। 273 ।।
नोद्वेजकः स्याज्जीवानां सदा प्राणिहिते रतः ।
विगतामर्षभीर्दान्तो निःसङ्कल्पो निरुद्यमः ।। 274 ।।
शोकद्वेषविमुक्तः स्याच्छत्रौ मित्रे समो भवेत् ।
शीतवातातपसहः समो मानापमानयोः ।। 275 ।।
समः शुभाशुभे तुष्टो यदृच्छाप्राप्तवस्तुना ।
निस्त्रैगुण्यो निर्विकल्पो निर्लोभः स्यादसञ्चयी ।। 276 ।।
यथा सत्यमुपाश्रित्य मृषा विश्वं प्रतिष्ठति ।
आत्माश्रितस्तथा देहो जानन्नेवं सुखी भवेत् ।। 277 ।।
इन्द्रियाण्येव कुर्वन्ति स्वं स्वं कर्म पृथक्पृथक् ।
आत्मा साक्षीविनिर्लिप्तो ज्ञात्वैवं मोक्षभाग्भवेत् ।। 278।।
धातुप्रतिग्रहं निन्दामनृतं क्रीडनं स्त्रिया ।
रेतस्त्यागमसूयाञ्च संन्यासी परिवर्ज्जयेत् ।। 279 ।।
सर्वत्र समदृष्टिः स्यात्कीटे देवे तथा नरे ।
सर्वं ब्रह्मेति जानीयात्परिव्राट् सर्वकर्मसु ।। 280 ।।
विप्रान्नं श्वपचान्नं वा यस्मात्तस्मात्समागतम् ।
देशं कालं तथा पात्रमश्नीयादविचारयन् ।। 281 ।।

इसके बाद शिष्य सुख-दुःखादि रूप द्वन्द्वों से रहित, कामनाविहीन,

स्थिर-चित्त, और साक्षात् ब्रह्ममय होकर भूतल पर स्वेच्छानुसार विचरण करे। वह ब्रह्म से तृणगुच्छ तक के सारे संसार को सत् स्वरूप समझे। नाम-रूप को भूलकर आत्मा से आत्मा का ध्यान करता हुआ आवासशून्य, क्षमाशील, निःशंक हृदय, संसर्गरहित, ममताविहीन अहंकाररहित और संन्यासी होकर संसार में विचरण करे। वह शास्त्र के विधि-निषेध से मुक्त हो जाता है। वह प्राप्त विषय की रक्षा और अप्राप्त विषय को पाने की चेष्टा न करे। वह सुख-दुःख में समान, धीर, जितेन्द्रिय और इच्छा-विहीन रहे। दुःख होने पर भी उसका हृदय स्थिर रहता है। सुख होने पर वह उसकी स्पृहा नहीं करता। वह सर्वदा आनन्दयुक्त, पवित्र, शान्त, निरेपक्ष और व्यग्रता से शून्य रहता है। वह किसी को उद्विग्न न करे, सब प्राणियों के हित में सदैव लगा रहे। क्रोध, भय, संकल्प और उद्यम से वह रहित रहे। शोक-द्वेष से शून्य और शत्रु-मित्र में समदर्शी रहे, वह शीत-वात-धूपादि प्रकृति के कष्टों को सहने में समर्थ रहे, मान-अपमान को समान समझे। शुभ और अशुभ को समान समझे। अयाचित वस्तु की प्राप्ति से ही वह सन्तुष्ट रहे। वह त्रिगुणातीत, निर्विकल्प, लोभशून्य होकर सञ्चय से दूर रहे।

जगत् मिथ्या होने पर भी जैसे एकमात्र सत्यस्वरूप परमात्मा का आश्रय लेकर सत्य प्रतीत होता है, वैसे ही आत्मा का आश्रय लेकर मिथ्याभूत यह देह आत्मवत् प्रतीत होता है। इसका अनुभव करके संन्यासी सुखी रहे। इन्द्रियाँ अपने-अपने कर्म अलग-अलग करती हैं। आत्मा साक्षी और निर्लिप्त है— यह जानकर संन्यासी मोक्ष प्राप्त करता है। धातु-द्रव्य का लेना, परनिन्दा, मिथ्या व्यवहार, स्त्रियों के साथ क्रीडा, वीर्यत्याग और असूया का त्याग सन्यासी को करना चाहिये। परिव्राजक संन्यासी देवता, मनुष्य या कीट सबों को सम दृष्टि से देखे। सभी कर्मों के समूहरूप जगत् को ब्रह्म जाने। ब्राह्मण का अन्न हो या चाण्डाल का, जिस किसी का भी अन्न हो और किसी भी देश से आया हो, इन सबमें देश-काल का विचार न करके भोजन करे। अवधूत स्वेच्छाचारी होकर भी वेदान्त आदि अध्यात्म शास्त्र के अध्ययन और सदा आत्मतत्त्व का विचार करने में अपना समय व्यतीत करे ।। 269-282 ।।

संन्यासियों के दाह का निषेध

अध्यात्मशास्त्राध्ययनैः सदा तत्त्वविचारणैः।
अवधूतो नयेत्कालं स्वेच्छाचारपरायणः ।। 282 ।।

संन्यासिनां मृतं कायं दाहयेन्न कदाचन ।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्निखनेद्वाप्सु मज्जयेत् ।। 283 ।।
अप्राप्तयोगमर्त्यानां सदाकामाभिलाषिणाम् ।
स्वभावाज्जायते देवि! प्रवृत्तिः कर्मसङ्कुले ।। 284 ।।
तत्रापि ते सानुरक्ता ध्यानार्च्चाजपसाधने ।
श्रेयस्तदेव जानन्तु यत्रैव दृढनिश्चयः ।। 285 ।।
अतः कर्मविधानानि प्रोक्तानि चित्तशुद्धये ।
नामरूपं बहुविधं तदर्थं कल्पितं मया ।। 286 ।।
ब्रह्मज्ञानादृते देवि! कर्मसंन्यसनं विना ।
कुर्वन्कल्पशतं कर्म न भवेन्मुक्तिभाग्जनः ।। 287 ।।
कुलावधूतस्तत्त्वज्ञो जीवन्मुक्तो नराकृतिः ।
साक्षान्नारायणं मत्वा गृहस्थस्तं प्रपूजयेत् ।। 288 ।।
यतेर्दर्शनमात्रेण विमुक्तः सर्वपातकात् ।
तीर्थव्रततपोदानसर्वयज्ञफलं लभेत् ।। 289 ।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-सदाशिवसंवादे वर्णाश्रमाचारधर्मकथनं नामाष्टमोल्लासः

❖

संन्यासियों के मृत देह को जलाया नहीं जाता । इस देह को गन्ध-पुष्पादि से अर्चित करके भूमि में समाधिस्थ किया जाता है या जलप्रवाह किया जाता है । हे देवि! जिन कामाभिलाषी मनुष्यों को योग प्राप्त नहीं होता, उनकी प्रवृत्ति स्वभावतः कर्म-काण्ड में होती है । ये लोग कर्मकाण्ड में आसक्त होकर ध्यान-पूजा-जप आदि साधनों में दृढ़ होकर उन्हीं को कल्याणकारी मानते हैं । इसलिये मैंने चित्तशुद्धि के लिये कर्मकाण्ड का विधान बताया है । इसीलिये मैंने बहुत प्रकार के नाम-रूपों की कल्पना की है । हे देवि! ब्रह्मज्ञान और कर्म-संन्यास के विना सौ कल्पों तक भी कर्म करने से कोई मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता । ब्रह्मज्ञानसम्पन्न कुलावधूत मनुष्याकृति में रहकर भी जीवन्मुक्त होता है । गृहस्थ उन्हें साक्षात् नारायण जानकर उनकी पूजा करते हैं । यति का दर्शन करने ही से मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । उन्हें तीर्थ, तपस्या-दान और सभी यज्ञानुष्ठानों के फल प्राप्त होते हैं ।। 283-289 ।।

वर्णाश्रमाचारधर्मवर्णन नामक अष्टम उल्लास सम्पूर्ण

❖

नवम उल्लास

दस प्रकार के संस्कार

दस संस्कार

वर्णाश्रमाचारधर्माः कथितास्तव सुव्रते ।
संस्कारान्सर्ववर्णानां शृणुष्व गदतो मम ॥ 1 ॥
संस्कारेण विना देवि! देहशुद्धिर्न जायते ।
नासंस्कृतोऽधिकारी स्याद्दैवे पैत्र्ये च कर्मणि ॥ 2 ॥
अतो विप्रादिभिर्वर्णैः स्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रिया ।
कर्त्तव्या सर्वथा यत्नैरिहामुत्र हितेप्सुभिः ॥ 3 ॥
जीवसेकः पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातनाम्नी निष्क्रमणमन्नाशनमतः परम् ।
चूडोपनयनोद्वाहाः संस्कारा कथिता दश ॥ 4 ॥
शूद्राणां शूद्रभिन्नानामुपवीतं न विद्यते ।
तेषां नवैव संस्कारा द्विजातीनां दश स्मृताः ॥ 5 ॥
नित्यानि सर्वकर्माणि तथा नैमित्तिकानि च ।
काम्यान्यपि वरारोहे! कुर्याच्छाम्भववर्त्मना ॥ 6 ॥
यानि यानि विधानानि येषु येषु च कर्मसु ।
पुरैव ब्रह्मरूपेण तान्युक्तानि मया प्रिये! ॥ 7 ॥
संस्कारेषु च सर्वेषु तथैवान्येषु कर्मसु ।
विप्रादिवर्णभेदेन क्रमान्मन्त्राश्च दर्शिताः ॥ 8 ॥
सत्यत्रेताद्वापरेषु तत्तत्कर्मसु कालिके!।
प्रणवाद्यांस्तु तान्मन्त्रान्प्रयोगेषु नियोजयेत् ॥ 9 ॥
कलौ तु परमेशानि! तैरेव मनुभिर्नराः ।
मायाद्यैः सर्वकर्माणि कुर्युः शङ्करशासनात् ॥ 10 ॥
निगमागमतन्त्रेषु वेदेषु संहितासु च ।
सर्वे मन्त्रा मयैवोक्ताः प्रयोगो युगभेदतः ॥ 11 ॥

कलावन्नगतप्राणा मानवा हीनतेजसः ।
तेषां हिताय कल्याणि! कुलधर्मो निरूपितः ।। 12 ।।

श्रीसदाशिव ने कहा कि हे सुव्रते! सभी वर्गों और आश्रमों के आचार और धर्म का वर्णन मैंने किया । अब सभी वर्णों के संस्कार को बतलाता हूँ ।

हे देवि! संस्कार के विना देह की शुद्धि नहीं होती । असंस्कृत मनुष्य दैव और पैत्र कर्मों को करने का अधिकारी नहीं होता, इसलिये इस लोक और परलोक में कल्याण चाहने वाले ब्राह्मण-विप्रादि वर्णों को यत्नपूर्वक अपने वर्ण के लिये निर्दिष्ट संस्कारों को अवश्य करना चाहिये । ये दस संस्कार इस प्रकार हैं—1. गर्भाधान । 2. पुंसवन । 3. सीमन्तोन्नयन । 4. जातकर्म । 5. नामकरण । 6. निष्क्रमण । 7. अन्नप्राशन । 8. मुण्डन । 9. उपनयन । 10. विवाह । शूद्र और सामान्य जाति में उपनयन नहीं होता । उनके लिये नव संस्कार ही हैं । द्विजों के लिये दस संस्कार हैं ।

वे वरारोहे! नित्य-नैमित्तिक और काम्य सभी कर्म शम्भु-प्रणीत मार्ग से करे । हे प्रिये! जिस-जिस कर्म में जो-जो विधान निर्दिष्ट हैं, उन्हें ब्रह्मा के रूप में मैंने प्रकट किया है । सभी संस्कार और ब्राह्मणादि वर्णभेद के अनुसार अन्यान्य मन्त्र मेरे ही द्वारा प्रकाशित हैं । हे कालिके! सत्य, त्रेता और द्वापरयुगों में सभी कर्मों के अनुष्ठान- काल में मन्त्रों के प्रारम्भ में प्रणव लगाकर प्रयोग करे । हे परमेशानि! शंकर के आदेशानुसार कलियुग में ॐ के बदले मन्त्रों के पहले 'ह्रीं' लगाकर सारे कर्म करे। निगम, आगम, तन्त्र, वेद और संहिता में सभी मन्त्र मेरे ही द्वारा कथित हैं । युगभेद से प्रयोग के भेद का कथन किया गया है । हे कल्याणि! कलिकाल में मनुष्यों के प्राण अन्न में रहते हैं, जिससे वे तेजहीन होते हैं । उन्हीं के हित के लिये कुल-धर्म का निरूपण किया गया है ।। 1-12 ।।

कलिदुर्बलजीवानां प्रयासाशक्तचेतसाम् ।
संस्कारादिक्रियास्तेषां संक्षेपेणापि वच्मि ते ।। 13 ।।
सर्वेषां शुभकार्याणामादिभूता कुशण्डिका ।
तस्मादादौ प्रवक्ष्यामि शृणु तां देववन्दिते! ।। 14 ।।
रम्ये परिष्कृते देशे तुषाङ्गारादिवर्जिते ।
हस्तमात्रप्रमाणेन स्थण्डिलं रचयेत्सुधीः ।। 15 ।।
तिस्रो रेखा विधातव्याः प्रागग्रास्तत्र मण्डले ।

कूर्च्चेनाभ्युक्ष्य ताः सर्वा वह्निना वह्निमाहरेत् ।। 16 ।।
आनीय वह्निं तत्पार्श्वे स्थापयेद्वाग्भवं स्मरन् ।। 17 ।।
ततस्तस्माज्ज्वलद्दारु गृहीत्वा दक्षपाणिना ।
ह्रींक्रव्यादेभ्यो नमःस्वाहा क्रव्यादांशं परित्यजेत् ।। 18 ।।
इत्थं प्रतिष्ठितं वह्निं पाणिभ्यामात्मसम्मुखम् ।
उद्धृत्य तासु रेखासु मायाद्यां व्याहृतिं स्मरन् ।। 19 ।।
संस्थाप्य तृणदारुभ्यां प्रबलीकृत्य पावकम् ।
समिधे द्वे घृताक्ते च हुत्वा तस्मिन्हुताशने ।
स्वकर्मविहितं नाम कृत्वा ध्यायेद्धनञ्जयम् ।। 20 ।।
बालार्कारुणसङ्काशं सप्तजिह्वं द्विमस्तकम् ।
अजारूढं शक्तिधरं जटामुकुटमण्डितम् ।। 21 ।।

कलियुग में दुर्बल जीव परिश्रम करने में असमर्थ होते हैं; अतएव उनके लिये संस्कारादि की क्रिया को अब मैं संक्षेप में कहता हूँ । हे सुरवन्दिते! कुशकण्डिका सभी शुभ कर्मों के प्रारम्भ में की जाती है । अतः पहले उसी को बतलाता हूँ; सुनो । बुद्धिमान् मनुष्य फूस तथा अंगार आदि से रहित मनोरम परिष्कृत स्थान में एक हाथ लम्बा तथा एक हाथ चौड़ा स्थण्डिल बनाए । उस मण्डल में पूर्वाग्र तीन रेखाएँ खींचे । उन्हें 'हूं' से अभिमन्त्रित करे फिर 'रं' बीज से अग्नि लाये तत्पश्चात् 'ऐं' का स्मरण करते हुए मण्डल के बगल में अग्नि को स्थापित करे । तब दाँयें हाथ से उसमें से एक जलती हुई लकड़ी लेकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए दक्षिण दिशा में राक्षस का अंश छोड़ दे । मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं क्रव्यादेभ्यो नमः स्वाहा । तब प्रतिष्ठित अग्नि को दोनों हाथों से उठाकर 'ह्रीं भुर्भुवःस्वः' का स्मरण करते हुए स्थण्डिल पर अंकित रेखाओं पर स्थापित करे । अग्नि-स्थापन के पश्चात् तृणकाष्ठ से उस अग्नि को प्रज्ज्वलित करे । तदनन्तर अग्नि में दो घृताक्त समिधाओं की आहुति देकर कर्मानुसार अग्नि का विहित नाम रखकर अग्नि का ध्यान करे । श्लोक 21 अग्नि का ध्यान हैं । बाल सूर्य के समान लाल रंग, सात जीभ वाले, दो मस्तक वाले, बकरे पर सवार, हाथ में शक्ति लिये, जटा और मुकुट से सुशोभित अग्निदेव हैं ।। 13-21।।

ध्यात्वैवं प्राञ्जलिर्भूत्वाऽऽवाहयेद्धव्यवाहनम् ।। 22 ।।
मायामेह्येहि पदतः सर्वामर वदेत्प्रिये!।
हव्यवाहपदान्ते च मुनिभिः स्वगणैः सह ।

अध्वरं रक्ष रक्षेति नमः स्वाहा ततो वदेत् ।। 23 ।।
इत्यावाह्य हव्यवाहमयं ते योनिरुच्चरन् ।
यथोपचारैः सम्पूज्य सप्त जिह्वान्प्रपूजयेत् ।। 24 ।।
काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता चैव सुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिङ्गिनी विश्वनिरूपिणी च लेलायमानेति च सप्तजिह्वाः ।। 25।।
ततोऽग्नेः पूर्वमारभ्य सह कीलालपाणिना ।
उत्तरान्तं महेशानि! त्रिधा प्रोक्षणमाचरेत् ।। 26 ।।
तथैव याम्यमारभ्य कौबेरान्तं हुताशितुः ।
त्रिधा पर्युक्षणं कुर्यात्ततो यज्ञीयवस्तुनः ।। 27 ।।
परिस्तरेत्ततो दर्भैः पूर्वस्मादुत्तरावधि ।
उदक्संस्थैरुत्तराग्रैः प्रागग्रैरन्यदिक्स्थितैः ।। 28 ।।
अग्निं दक्षिणतः कृत्वा गत्वा ब्रह्मासनान्तिकम् ।
वामाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां ब्रह्मणः कल्पितासनात् ।।29।।
गृहीत्वा कुशपत्रैकं ह्रीं निरस्तः परावसुः ।
इत्युक्त्वाग्नेर्दक्षिणस्यां निक्षिपेदुत्करादिना ।। 30 ।।
सीद यज्ञपते! ब्रह्मन्निदन्ते कल्पितासनम् ।
सीदामीति वदन्ब्रह्मा विशेत्तत्रोत्तरामुखः ।। 31 ।।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्ब्रह्माणं प्रार्थयेदिदम् । 32 ।।
गोपाय यज्ञं यज्ञेश! यज्ञं पाहि बृहस्पते ।
माञ्च यज्ञपतिं पाहि कर्मसाक्षिन्नमोऽस्तु ते ।। 33 ।।
गोपायामि वदेद्ब्रह्मा ब्रह्माभावे स्वयं वदेत् ।
तत्र दर्भमयं विप्रं कल्पयेद्यज्ञसिद्धये ।। 34 ।।
ततो ब्रह्मन्निहागच्छागच्छेत्यावाह्य साधकः ।
पाद्यादिभिश्च सम्पूज्य यावद्यज्ञसमापनम् ।
तावद्भवद्भिः स्थातव्यमिति प्रार्थ्य नमेत्ततः ।। 35 ।।

इस प्रकार ध्यान करके अग्नि का आवाहन हाथ जोड़कर आवाहनमन्त्र से करे । श्लोक 23 का उद्धार करने पर आवाहन मन्त्र यह है—'ह्रीं एह्येहि सर्वामरहव्यवाह! मुनिभः स्वगणैः सह अध्वरं रक्ष रक्ष नमः स्वाहा ।' इस प्रकार अग्नि का आवाहन करके कहे कि 'अयं ते योनिः' । उपलब्ध उपचारों से अग्निदेव का पूजन करके उनके सात जीभों का पूजन करे । सातों जीभों के नाम हैं—1. काली । 2. कराली । 3. मनोजवा । 4. सुलोहिता । 5. सुधूम्रवर्णा । 6. स्फुलिंगिनी । 7. विश्वरूपिणी । ये सभी जिह्वाएँ लपलपाती

हुई उज्ज्वल हैं । हे महेश्वरि! पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके उत्तर दिशा तक अग्नि का प्रोक्षण तीन बार करे । तब यज्ञीय सामग्रियों का भी प्रोक्षण तीन बार करे । तब स्थण्डिल को पूर्व दिशा से आरम्भ करके उत्तर दिशा तक कुश से आच्छादित करे । उत्तर दिशा में स्थित कुशों को उत्तरमुख और अन्य दिशाओं के कुशों को पूर्वमुख रक्खे । अग्नि को बाँईं ओर ब्रह्मासन के पास जाकर बाँयें हाथ की अंगूठे और कनिष्ठा अंगुलियों से ब्रह्मा के कल्पित आसन से एक कुशपत्र लेकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए अग्नि को दक्षिण दिशा में फेंक दे ।

ह्रीं निरस्तः परावसुः। सीद यज्ञपते ब्रह्मन् । इदं ते कल्प्तिासनम् । अर्थात् यज्ञपति हे ब्रह्मन्! यह आसन तुम्हारे लिये है । इस पर बैठिए । ब्रह्मा या उसका प्रतिनिधि या स्वयं 'सीदामि' अर्थात् मैं बैठता हूँ कह कर उत्तरमुख होकर आसन पर बैठे । गन्ध-पुष्पादि से ब्रह्मा की पूजा करके उनसे प्रार्थना करे । श्लोक 33 प्रार्थना है । हे यज्ञेश्वर! यज्ञ की रक्षा करो । हे बृहस्पते! यज्ञ की रक्षा करो । मैं यज्ञपति हूँ, मेरी रक्षा करो । हे कर्मसाक्षिन्! तुम्हें नमस्कार है । इसके उत्तर में ब्रह्मा कहे—'गोपयामि' अर्थात् मैं रक्षा करता हूँ । ब्रह्मा के न होने पर स्वयं यह वचन कहे । यज्ञ की सिद्धि के लिये वहाँ कुश के विप्र को कल्पित कर ले । फिर बोले —'ब्रह्मन्! इहागच्छागच्छ' अर्थात् इस स्थान पर आइये, आइये । इसके बाद पाद्यादि से उनकी पूजा करके उनसे प्रार्थना करे— 'यावद् यज्ञ समापनं तावद् भवद्भिः स्थातव्यम्' । जब तक यज्ञ समाप्त नहीं होता. तब तक आप यहाँ स्थिर रहें । इस प्रकार उनकी प्रार्थना करके उन्हें नमस्कार करे ।। 22-35 ।।

सोदकेन करेणाग्नेरीशानाद्ब्रह्मणोऽन्तिकम् ।
त्रिधा पर्युक्ष्य वह्निञ्च त्रिःप्रोक्ष्य तदनन्तरम् ।। 36 ।।
आगत्य वर्त्मना तेन सूपविश्य निजासने ।
स्थण्डिलस्योत्तरे दर्भानुदगग्रान्परिस्तरेत् ।। 37 ।।
तेषु यज्ञीयवस्तूनि सर्वाण्यासादयेत्सुधीः ।
सोदकं प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थालीसमित्कुशान् ।। 38 ।।
आसाद्य स्रुक्स्रुवादीनि ह्रांह्रींह्रूमितिमन्त्रकैः ।
दिव्यदृष्ट्या प्रोक्षणेन संस्कृत्य तदनन्तरम् ।। 39 ।।
पृथिव्यां दक्षिणं जानु पातयित्वा स्रुवे स्रुचा ।

घृतमादाय मतिमांश्चिन्तयन्हितमात्मन: ।
ह्रीं विष्णवे द्विठान्तेन प्रपद्यादाहुतित्रयम् ॥ 40 ॥
तथैव घृतमादाय ध्यायन्देवं प्रजापतिम् ।
वायव्यादग्निकोणान्तं जुहुयादाज्यधारया ॥ 41 ॥
पुनराज्यं समादाय ध्यायन्देवं पुरन्दरम् ।
नैर्ऋतादीशकोणान्तं जुहुयादाज्यधारया ॥ 42 ॥
ततोऽग्नेरुत्तरे याम्ये मध्ये च परमेश्वरि! ।
अग्निं सोममग्नीषोमौ समुल्लिख्य यथा क्रमात् ॥ 43 ॥
सचतुर्थीनमोऽन्तेन मायाद्येनाहुतित्रयम् ।
हुत्वा विधेयकर्मोक्तं होमं कुर्याद्विचक्षण: ॥ 44 ॥
आहुतित्रयदानान्तं धाराहोमं प्रचक्षते ॥ 45 ॥
यदुद्दिश्याहुतिं दद्यात्तद्देयोद्देशोऽपि तत्कृते ।
समाप्य प्रकृतं कर्म स्विष्टकृद्धोममाचरेत् ॥ 46 ॥
प्रायश्चित्तात्मको होम: कलौ नास्ति वरानने!।
स्विष्टकृता व्याहृतिभि: प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ 47 ॥
पूर्ववद्धविरादाय ब्रह्माणं मनसा स्मरन् ।
अस्मिन्कर्मणि देवेश प्रमादाद्भ्रमतोऽपि वा ॥ 48 ॥
न्यूनाधिकं कृतं यच्च सर्वं स्विष्टकृतं कुरु ।
मायाद्येनामुना देवि ! स्वाहान्तेनाहुतिं हुनेत् ॥ 49 ॥

अग्नि के ईशान कोण से आरम्भ करके ब्रह्मा के निकट तक हाथ में जल लेकर तीन बार पर्युक्षण करे । अग्नि का प्रोक्षण तीन बार करे । लौटकर अपने आसन पर बैठे । मण्डल के उत्तर दिशा में कुछ कुशों को उत्तराग्र बिछाये और उस पर जलपूर्ण प्रोक्षणी पात्र, आज्य स्थाली, समित, कुश आदि सभी यज्ञीय वस्तुओं को रक्खे । स्रुक-स्रुवा आदि रखकर 'ह्रां ह्रीं ह्रूं' बोलते हुए दिव्य दृष्टि से उन्हें देखे । प्रोक्षण करके संस्कृत करे । भूमि पर दाँयें घुटने के बल बैठकर स्रुव नामक यज्ञपात्र में रक्खे घी को स्रुक् से लेकर अपने कल्याण के लिये निम्न मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे—'ह्रीं विष्णवे स्वाहा' । इसी प्रकार स्रुक् से स्रुव में से घी लेकर प्रजापति का ध्यान करते हुए वायव्य कोण से आरम्भ करके अग्निकोण तक हवन करे । मन्त्र है—'ह्रीं प्रजापतये स्वाहा' । पुनः घृत लेकर इन्द्र का ध्यान करते हुए नैर्ऋत्य कोण से ईशान कोण तक घी की धार गिरावे । मन्त्र है—'ह्रीं पुरन्दराय स्वाहा' । हे परमेश्वरि! फिर अग्नि के उत्तर

में 'ह्रीं अग्नये नमः' से, दक्षिण में 'ह्रीं सोमाय नमः' से और मध्य में 'अग्निषोमाभ्यां नमः' से तीन आहुतियाँ प्रदान करे । यहाँ तक के कर्म को धाराहोम कहते हैं ।

अब विधेय कर्म के विधान से हवन करे । जिस देवता के लिये आहुति दे, उसी देवता के लिये देय वस्तु का उल्लेख करे । जैसे 'ह्रीं विष्णवे स्वाहा हविरिदं विष्णवे' । इस प्रकार प्रकृत कर्म समाप्त करके स्विष्टकृत् होम करे । हे वरानने! कलिकाल में प्रायश्चित्त होम नहीं होता । स्विष्टकृत् और व्याहृति होम से ही प्रायश्चित्त हो जाता है । पूर्ववत् हवि लेकर मन ही मन ब्रह्मा का स्मरण करके निम्न मन्त्र से आहुति प्रदान करे—

ह्रीं अस्मिन् कर्मणि देवेश प्रमादाद् भ्रमतोऽपि वा ।
न्यूनाधिकं कृतं यच्च सर्वं स्विष्टकृतं कुरु ।।

हे देवेश! प्रमाद या भ्रमवश इस कार्य में जो कुछ कम या अधिक हुआ हो, उन्हें मेरे लिये उत्तम फलदायक करो ।। 36-49 ।।

त्वमग्ने! सर्वलोकानां पावनः स्विष्टकृत्प्रभुः ।
यज्ञसाक्षी क्षेमकर्त्ता सर्वान्कामान्प्रपूरय ।
अनेन हवनं कुर्यान्मायया वह्निजायया ।। 50 ।।
इत्थं स्विष्टकृतं होमं समाप्य क्रतुसाधकः ।
कर्मणोऽस्य परब्रह्मन्नयुक्तं विहितञ्च यत् ।। 51 ।।
तच्छान्त्यै यज्ञसम्पत्त्यै व्याहृत्याहूयते विभो ।
मायादिवह्निजायान्तैर्भूर्भुवःस्वरिति त्रिभिः ।। 52 ।।
आहुतित्रितयं दद्यात्त्रितयेन तथैव च ।
हुत्वाग्नौ यजमानेन दद्यात्पूर्णाहुतिं बुधः ।। 53 ।।
स्वयं चेत्कर्मकर्त्ता स्यात्स्वयमेवाहुतिं क्षिपेत् ।
अभिषेकविधानानामेवमेव विधिः स्मृतः ।। 54 ।।
आदौ मायां समुच्चार्य्य ततो यज्ञपते! वदेत् ।
पूर्णो भवतु यज्ञो मे हृष्यन्तु यज्ञदेवताः ।
फलानि सम्यग्यच्छन्तु वह्निकान्तावधिर्मनुः ।। 55 ।।
मन्त्रेणानेन मतिमानुत्थाय सुसमाहितः ।
फलताम्बूलसहिताहुतिं दद्याद्धुताशने ।। 56 ।।
दत्तपूर्णाहुतिर्विद्वाञ्छान्तिकर्म समाचरेत् ।
प्रोक्षणीपात्रतोयेन कुशैः सम्मार्जयेच्छिरः ।। 57 ।।

आपः सुमित्रियाः सन्तु भवन्त्वोषधयो मम ।
आपो रक्षन्तु मां नित्यमापो नारायणः स्वयम् ।। 58 ।।
आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऊर्जेदधातन ।
इत्याभ्यां मार्जनं कृत्वा भूमौ बिन्दून्विनिक्षिपेत् ।। 59 ।।
ये द्विषन्ति च मां नित्यं यांश्च द्विष्मो नरान्वयम् ।
आपो दुर्मित्रियास्तेषां सन्तु भक्षन्तु तानपि ।। 60 ।।
अनेनेशानदिग्भागे बिन्दून्प्रक्षिप्य तान्कुशान् ।
हित्वा कृताञ्जलिर्भूत्वा प्रार्थयेद्धव्यवाहनम् ।। 61 ।।
बुद्धिं विद्यां बलं मेधां प्रज्ञां श्रद्धां यशः श्रियम् ।
आरोग्यं तेज आयुष्यं देहि मे हव्यवाहन !।। 62 ।।
इति प्रार्थ्य वीतिहोत्रं विसृजेदमुना शिवे !।। 63 ।।
यज्ञ! यज्ञपतिं गच्छ यज्ञं गच्छ हुताशन !।
स्वां योनिं गच्छ यज्ञेश! पूरयास्मन्मनोरथम् ।। 64 ।।
अग्ने ! क्षमस्व स्वाहेति मन्त्रेणाग्नेरुदग्दिशि ।
दत्त्वा दध्नाहुतिं वह्निं दक्षिणस्यां विचालयेत् ।। 65 ।।
ब्रह्मणे दक्षिणां दत्त्वा भक्त्या नत्वा विसर्जयेत् ।
ततस्तु तिलकं कुर्यात्स्रुवसंलग्नभस्मना ।। 66 ।।
मायां कामं समुच्चार्य्य सर्वशान्तिकरो भव ।
ललाटे तिलकं कुर्यान्मन्त्रेणानेन याज्ञिकः ।। 67 ।।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु वासवाग्निप्रसादतः ।
मरुतां ब्रह्मणश्चैव वसुरुद्रप्रजापतेः ।। 68 ।।
अनेन मनुनायुष्यं धारयन्मस्तकोपरि ।
स्वशक्त्या दक्षिणां दद्याद्धोमप्रकृतकर्मणोः ।। 69 ।।
इति ते कथिता देवि! सत्कर्मकुशकण्डिका ।
प्रयोज्या शुभकर्मादौ यत्नतः कुलसाधकैः ।। 70 ।।

इसके पश्चात् निम्न मन्त्र से आहुति प्रदान करे । श्लोक 50 के अनुसार हवन-मन्त्र निम्न प्रकार का है—

ह्रीं त्वमग्ने सर्वलोकानां पावनः स्विष्टकृत् प्रभुः ।
यज्ञसाक्षी क्षेमकर्त्ता सर्वान् कामान् प्रपूरय स्वाहा ।।

हे अग्ने! तुम सब लोकों को पवित्र करने वाले, अभीष्ट को देने वाले प्रभु, यज्ञ के साक्षी और मंगलकारी हो । तुम मेरी सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करो । इसके बाद प्रार्थना करे—'कर्मणोऽस्य परब्रह्मन्नयुक्तं तच्छान्त्यै यज्ञसम्पत्त्यै

व्याहृत्या हूयते विभो ।' हे परब्रह्मन्! इस कर्म में जो भी अयुक्त हुआ हो, उसकी शान्ति के लिये और यज्ञ-सम्पत्ति के लिये मैं व्याहृतियों के द्वारा हवन करता हूँ । यह प्रार्थना करके व्याहृति-हवन करे—'ह्रीं भूः स्वाहा । ह्रीं भुवः स्वाहा । ह्रीं स्वः स्वाहा ह्रीं भुर्भुवः स्वः स्वाहा' । इस प्रकार चार आहुतियाँ देकर यज्ञकर्त्ता यजमान के साथ पूर्णाहुति प्रदान करे । यदि कर्मकर्त्ता स्वयं ही यजमान हो तो स्वयं आहुति देवे । अभिषेक आदि में भी इसी प्रकार की विधि का कथन है । पूर्णाहुति मन्त्र है—'ह्रीं यज्ञपते पूर्णो भवतु यज्ञो मे हृष्यन्तु यज्ञदेवता । फलानि सम्यक् यच्छन्तु स्वाहा ।' हे यज्ञपते! मेरा यह यज्ञ पूर्ण हो । यज्ञ के देवता प्रसन्न हों । इस यज्ञ का पूरा फल प्रदान करें । ज्ञानी मनुष्य दण्डवत् लेटकर एकाग्र मन से उक्त मन्त्र के द्वारा फल और ताम्बूल के साथ अग्नि में पूर्णाहुति प्रदान करे । पूर्णाहुति देकर शान्तिकर्म करे ।

पहले प्रोक्षणी पात्र से कुश द्वारा जल लेकर निम्न मन्त्रों को पढ़ते हुए अपने मस्तक का भली-भाँति मार्जन करे —

1. आपः सुमित्रियाः सन्तु भवन्त्वोषधयो मम ।
   आपो रक्षन्तु मां नित्यमपापो नारायणः स्वयम् ।।
2. आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातनः ।

जल मेरा उत्तम बन्धुस्वरूप हो, मेरे लिये औषधिस्वरूप हो, जल मेरी नित्य रक्षा करे । जल स्वयं नारायण है । हे जल! तुम सुख दो । तुम मुझे ऐहिक विषय दो । इन दोनों मन्त्रों से क्रमशः मस्तक को सिक्त करके कुश से ईशान कोण में निम्न मन्त्र पढ़ते हुए भूमि पर जलबिन्दु छोड़े । श्लोक 60 मन्त्र है । जो नित्य मुझसे द्वेष करते हैं, हम जिनसे द्वेष करते हैं, उनके लिये जल शत्रुस्वरूप हों । उन्हें भक्षण करें । इसके बाद कुशों को त्याग कर हाथ जोड़कर अग्नि से प्रार्थना करे । श्लोक 62 प्रार्थना है । हे हव्यवाहन! मुझे शास्त्रादि तत्त्वज्ञान, शक्ति, मेधा, सारासार विवेक की दक्षता, श्रद्धा, यश, श्री, आरोग्य, तेज, आयु प्रदान करो । हे शिवे! इस प्रकार अग्नि की प्रार्थना के बाद निम्न मन्त्र से उनका विसर्जन करे । श्लोक 64 विसर्जन मन्त्र है । हे यज्ञ! तुम यज्ञपुरुष विष्णु के पास जाओ । हे हुताशन! तुम यज्ञ में प्रविष्ट हो जाओ। हे यज्ञेश्वर! तुम अपने स्थान को जाओ । मेरे मनोरथ को पूर्ण करो । हे अग्ने! क्षमा करो ।

इस मन्त्र को पढ़ते हुए अग्नि की उत्तर दिशा में दही की आहुति देकर अग्नि को दक्षिण दिशा में खिसका दे। तब ब्रह्मा को दक्षिणा देकर भक्तिसहित नमस्कार करके विदा करे। निम्न मन्त्र पढ़ते हुए यज्ञकर्त्ता स्त्रुव में लगे भस्म से अपने ललाट पर तिलक इस मन्त्र से लगाए—'ह्रीं क्लीं सर्वशान्तिकरो भव'। तब निम्न मन्त्र पढ़ता हुआ मस्तक पर आयुवर्द्धक पुष्प धारण करे। श्लोक 68 मन्त्र है। इन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, प्रजापति, वसुगण, रुद्रगण और मरुद्गण के प्रसाद से शान्ति हो और मंगल हो। तब हवन और प्रकृत कर्म की दक्षिणा यथाशक्ति प्रदान करे। हे देवि! मैंने सभी सत्कर्मों में किये जाने वाली इस कुशकण्डिका का वर्णन किया। कुलसाधक शुभ कर्म के पूर्व यत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करे ।। 50-70।।

चरु कर्म

प्रकृते कर्मणि शिवे ! चरुर्येषां कुलागमः।
सिद्ध्यर्थं कर्मणान्तेषां चरुकर्म निगद्यते ।। 71 ।।
चरुस्थाली प्रकर्त्तव्या ताम्रो वा मृत्तिकोद्भवा ।। 72 ।।
कुशण्डिकोक्तविधिना द्रव्यसंस्करणावधि ।
कृत्वा कर्म चरुस्थालीमानयेदात्मसम्मुखे ।। 73 ।।
अक्षतामव्रणां दृष्ट्वा प्रादेशपरिमाणकम् ।
पवित्रकुशमेकञ्च स्थालीमध्ये नियोजयेत् ।। 74 ।।
आनीय तण्डुलांस्तत्र संस्थाप्य स्थण्डिलान्तिके।
यस्मिन्कर्मणि ये देवा पूजनीयाः सुरार्चिते ।। 75 ।।
तत्तन्नाम चतुर्थ्यन्तमुक्त्वा त्वाजुष्टमीरयन् ।
गृह्णामि निर्वपामीति प्रोक्षामीति क्रमाद्वदन् ।। 76 ।।
गृहीत्वा निर्वपेत्स्थाल्यां प्रोक्षयेज्जलबिन्दुना ।
प्रत्येकञ्चतुरो मुष्टीन्देवमुद्दिश्य तण्डुलान् ।। 77 ।।
ततो दुग्धं सिताञ्चैव दत्त्वा पाकविधानतः ।
सुपचेत्संस्कृते वह्नौ सावधानेन सुव्रते !।। 78 ।।
सुपक्वं कोमलं ज्ञात्वा दद्यात्तत्र घृतस्त्रुवम् ।। 79 ।।
अग्नेरुत्तरतः पात्रं विनिधाय कुशोपरि ।
पुनस्त्रिधा घृतं दत्त्वा स्थालीमाच्छादयेत्कुशैः ।। 80 ।।
ततः स्त्रुवे चरुस्थाल्या घृताघारणपूर्वकम् ।
किञ्चिच्चरुं समादाय जानुहोमं समाचरेत् ।। 81 ।।

धाराहोमं ततः कृत्वा प्रधानीभूतकर्मणि ।
यत्र ये विहिता देवास्तन्मन्त्रैराहुतीर्हुनेत् ।। 82 ।।
समाप्य प्रकृतं होमं स्विष्टकृद्धोमपूर्वकम् ।
प्रायश्चित्तात्मकं हुत्वा कुर्यात्कर्मसमापनम् ।। 83 ।।
संस्कारेषु प्रतिष्ठासु विधिरेष प्रकीर्तितः ।
विधेयः शुभकर्मादौ कर्मसंसिद्धिहेतवे ।। 84 ।।

हे शिवे! वंशपरम्परा के अनुसार जिन्हें प्रकृत कर्म में चरु करने का विधान है, उनकी कर्मसिद्धि के लिये चरुकर्म का वर्णन करता हूँ । पहले ताम्बे या मिट्टी की थाली ले आये । तब कुशकण्डिका में वर्णित विधि से द्रव्य-संस्कार तक के सभी कर्म करके चरुथाली को अपने सामने रक्खे । साधक देखे कि उसमें टूट-फूट या छेद न हो । तब बीत्ते भर का एक कुश उसमें रक्खे । हे सुरवन्दिते! तब पूजक चावल लाकर स्थण्डिल के पास रक्खे । जिस कर्म में जिस देवता का पूजन करने का रिवाज हो, उसके नाम में चतुर्थी विभक्ति लगाकर 'त्वा जुष्टम्, गृह्णामि, निर्वपामि और प्रोक्षामि' बोले । मन्त्र-क्रिया इस प्रकार की होगी—'अमुक देवाय त्वा जुष्टं गृह्णामि' से चावल ग्रहण करे । 'अमुकदेवाय त्वा जुष्टं निर्वपामि' से थाली में चावल रक्खे । 'अमुकदेवाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि' से चावल में जल डाले । प्रत्येक देवता के लिये चार-चार मुट्ठी चावल की मात्रा होती है । हे सुव्रते! तब उन पर दूध और चीनी देकर एकाग्र हृदय से सुसंस्कृत अग्नि में उत्तम रूप से पकाये । उसके पूरा पकने पर स्रुव से घी डाले । तब अग्नि की उत्तर दिशा में कुश बिछाकर उस पर चरुपात्र रक्खे । तव उसमें तीन बार घी डालकर कुश से चरु स्थाली को ढँक दे । चरुपात्र से स्रुव नामक यज्ञपात्र में कुछ चरु लेकर उसमें घी डालकर जानुहोम करे । दाँयाँ घुटना नवाकर जानुहोम होता है । इसके बाद धारा-हवन करके प्रधान कर्म पूज्य देवता को मन्त्र से आहुति प्रदान करे । इसके बाद प्रायश्चित्त हवन करे और कर्म का समापन करे ।

दशविध संस्कार और प्रतिष्ठा के समय इसी विधि का विधान है । शुभ कर्म के प्रारम्भ में कर्मसिद्धि के लिये यह अपेक्षित है ।। 71-84 ।।

गर्भाधान में ऋतुसंस्कार

अथोच्यन्ते महामाये! गर्भाधानादिकाः क्रियाः ।
तत्रादावृतुसंस्कारः कथ्यते क्रमतः शृणु ।। 85 ।।

कृतनित्यक्रियः शुद्धः पञ्च देवान्समर्च्चयेत् ।
ब्रह्मा दुर्गा गणेशश्च ग्रहा दिक्पतयस्तथा ।। 86 ।।
स्थण्डिलस्येन्द्रदिग्भागे घटेष्वेतान्प्रपूजयेत् ।
ततस्तु मातृकाः पूज्या गौर्याद्याः षोडश क्रमात् ।। 87 ।।
गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा शान्तिः पुष्टिर्धृतिः क्षमा ।
आत्मनो देवता चैव तथैव कुलदेवता ।। 88 ।।
आयान्तु मातरः सर्वास्त्रिदशानन्दकारिकाः ।
विवाहव्रतयज्ञानां सर्वाभीष्टं प्रकल्प्यताम् ।। 89 ।।
यानशक्तिसमारूढाः सौम्यमूर्तिधराः सदा ।
आयान्तु मातरः सर्वा यज्ञोत्सवसमृद्धये ।। 90 ।।
इत्यावाह्य मातृगणान्स्वशक्त्या परिपूज्य च ।
देहल्यां नाभिमात्रायां प्रादेशपरिमाणतः ।
सप्त वा पञ्च वा बिन्दून्दद्यात्सिन्दूरचन्दनैः ।। 91 ।।
प्रत्येकबिन्दुं मतिमान्कामं मायां रमां स्मरन् ।
घृतधारामविच्छिन्नां दत्त्वा तत्र वसुं यजेत् ।। 92 ।।
वसुधारां प्रकल्प्यैवं मयोक्तेनैव वर्त्मना ।
विरच्य स्थण्डिलं धीरो वह्निस्थापनपूर्वकम् ।
होमद्रव्याणि संस्कृत्य पचेच्चरुमनुत्तमम् ।। 93 ।।
प्राजापत्यश्चरुश्चात्र वायुनामा हुताशनः ।
समाप्य धाराहोमान्तं कृत्यमार्त्तवमारभेत् ।। 94 ।।
ह्रीं प्रजापतये स्वाहा चरुणैवाहुतित्रयम् ।
प्रदायैकाहुतिं दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयन् ।। 95 ।।
विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।। 96 ।।

हे महामाये! अब गर्भाधान आदि सभी क्रियाओं का वर्णन करता हूँ । उनमें से ऋतु-संस्कार का वर्णन सबसे पहले करता हूँ । नित्य कर्म के समापन के बाद शुद्ध शरीर होकर ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, ग्रहगण और दिक्पाल नामक पञ्च देवताओं का पूजन करे । स्थण्डिल की पूर्व दिशा में घट के ऊपर इन सब देवों का पूजन करे । तब क्रमानुसार गौरी आदि षोडश मातृकाओं की पूजा करे । मातृकाएँ हैं—1. गौरी । 2. पद्मा । 3. शची । 4. मेधा । 5. सावित्री । 6. विजया । 7. जया । 8. देवसेना । 9. स्वधा । 10. स्वाहा ।

11. शान्ति । 12. पुष्टि । 13. धृति । 14. क्षमा । 15. आत्मदेवता । 16. कुलदेवता । निम्न मन्त्र से इनका आवाहन करे । श्लोक 89-90 आवाहन मन्त्र है । हे देवों की आनन्ददायिनी माताओं! आप सब आयें । विवाह, व्रत और यज्ञों के सभी अभीष्ट फल प्रदान करें । हे माताओं! अपने-अपने यान और शक्ति पर आरूढ होकर सदा सौम्य रूप में यज्ञोत्सव की समृद्धि के लिये आप सब आयें ।

इस प्रकार मातृकाओं का आवाहन करके यथाशक्ति उनका पूजन करे । नाभि तक ऊँची, दरवाजे से एक बीत्ते की दूरी पर दिवाल पर सिन्दूर और चन्दन से सात या पाँच बिन्दु बनाये । ज्ञानी व्यक्ति 'क्लीं ह्रीं श्रीं' बोलते हुए प्रत्येक पर अविच्छिन्न घी की धार गिराये । उनमें गन्ध-पुष्पादि से वसुओं का पूजन करे । धीरधारी मेरे द्वारा वर्णित पद्धति से वसुधारा कर्म करके स्थण्डिल-रचना करे । अग्निस्थापनपूर्वक होम द्रव्यों का संस्कार करके श्रेष्ठ चरुपाक करे । इस ऋतुसंस्कार कर्म में प्राजापत्य नामक चरु और वायु नामक अग्नि हैं । धाराहोम तक सभी कर्म समाप्त करके ऋतु-संस्कार कर्म का प्रारम्भ करे । 'ह्रीं प्रजापतये स्वाहा' पढ़ते हुए चरु की तीन आहुतियाँ प्रदान करे । इसके बाद एक आहुति निम्न मन्त्र से दे । श्लोक 96 मन्त्र है । विष्णु उत्पत्ति स्थान योनि की कल्पना करें । त्वष्टा रूप को परिष्कृत करें । प्रजापति अभिषेक करें । धाता! तुम्हारे गर्भ का पोषण करें ।। 85-96 ।।

आज्येन चरुणा वापि साज्येन चरुणापि वा ।
सूर्यं प्रजापतिं विष्णुं ध्यायन्नाहुतिमुत्सृजेत् ।। 97 ।।
गर्भं धेहि सिनीवाली गर्भं धेहि सरस्वती ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ।। 98 ।।
ध्यात्वा देवीं सिनीवालीं सरस्वत्यश्विनौ तथा ।
स्वाहान्तमनुनानेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम् ।। 99 ।।
ततः कामं वधूं मायां रमां कूर्च्चं समुच्चरन् ।
अमुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधेहि सद्विठम् ।
उक्त्वा ध्यात्वा रविं विष्णुं जुहुयात्संस्कृतेऽनले ।। 100 ।।
यथेयं पृथिवी देवी ह्युत्ताना गर्भमादधे ।
तथा त्वं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतये ।
स्वाहान्तेनामुना विष्णुं ध्यायन्नाहुतिमाचरेत् ।। 101 ।।

पुनराज्यं समादाय ध्यात्वा विष्णुं परात्परम् ।
विष्णो ज्येष्ठेन रूपेण नार्यामस्यां वरीयसम् ।
सुतमाधेहि च द्वन्द्वमुक्त्वा वह्नौ हविस्त्यजेत् ।। 102 ।।
कामेन पुटितां मायां मायया पुटितां वधूम् ।
पुनः कामं च मायां च पठित्वास्याः शिरः स्पृशेत् ।। 103 ।।
पतिपुत्रवतीभिश्च नारीभिः परिवेष्टितः ।
शिरश्चालभ्य हस्ताभ्यां वध्वाः क्रोडाञ्चले पतिः ।। 104 ।।
विष्णुं दुर्गां विधिं सूर्यं ध्यात्वा दद्यात्फलत्रयम् ।
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा प्रायश्चित्त्या समापयेत् ।। 105 ।।
यद्वा प्रदोषसमये गौरीशङ्करपूजनात् ।
भास्करार्घ्यप्रदानाच्च दम्पत्योः शोधनं भवेत् ।। 106 ।।
आर्त्तवं कथितं कर्म गर्भाधानमथो शृणु ।। 107 ।।

इसके बाद सूर्य, प्रजापति और विष्णु का ध्यान करते हुए घी से, चरु से या घी-चरु से आहुति प्रदान करे । तब देवी सिनीवाली, सरस्वती, दोनों अश्विनीकुमारों का ध्यान करके निम्न मन्त्रों से आहुति डाले—

1. गर्भं धेहि सिनीवाली । 2. गर्भं धेहि सरस्वती । 3. गर्भं ते अश्विनौ देवा वा धत्तां पुष्करस्रजौ ।

तुम सिनीवाली के रूप में गर्भ-धारण करो । तुम सरस्वतीरूपा होकर गर्भ-धारण करो । कमल के फूल-माला धारण करने वाले दोनों अश्विनीकुमार देव तुझमें गर्भ स्थापित करें । तब 'क्लीं स्त्रीं ह्रीं श्रीं हूं अमुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधेहि स्वाहा' से सूर्य और विष्णु का ध्यान करके संस्कारित अग्नि में आहुति प्रदान करे । तब विष्णु का ध्यान करते हुए निम्न मन्त्र से आहुति प्रदान करे—

यथेयं पृथिवी देवी ह्युत्ताना गर्भमादधे ।
तथा त्वं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतये स्वाहा ।।

उत्ताना पृथिवी जैसे गर्भ धारण करती है, वैसे ही दसवें मास में प्रसव होने के लिये तुम गर्भ धारण करो । फिर गोघृत लेकर परात्पर विष्णु का ध्यान करते हुए निम्न मन्त्र से आहुति डाले—

'विष्णो ज्येष्ठेन रूपेण नार्यामस्यां वरीयसम् सुतमाधेहि स्वाहा ।' हे

विष्णो! तुम श्रेष्ठरूप से इस नारी में श्रेष्ठ सन्तान का आधान करो । इसके बाद 'क्लीं ह्रीं क्लीं ह्रीं स्त्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं' बोलते हुए भार्या के मस्तक का स्पर्श करे । इसके बाद पति और पुत्रवती स्त्रियों से घिरकर पति अपने दोनों हाथों से पत्नी के मस्तक का स्पर्श करके विष्णु, दुर्गा, ब्रह्मा और सूर्य का ध्यान करके उसके आँचल में तीन फल देवे । तब स्विष्टकृत् हवन करके प्रायश्चित्त होम से कर्म का समापन करे । अथवा सायंकाल में गौरी-शंकर की पूजा करके सूर्यार्घ्य देकर दम्पति का शोधन करे । अब तक ऋतुशोधन कर्म का वर्णन किया गया । अब गर्भाधान कर्म को सुनो ।। 97-107।।

गर्भाधान

तद्रात्रावन्यरात्रौ वा युग्मायां निशि भार्यया ।
सदनाभ्यन्तरं गत्वा ध्यात्वा देवं प्रजापतिम् ।। 108 ।।
स्पृशन्पत्नीं पठेद्भर्त्ता मायाबीजपुरःसरम् ।
आवयोः सुप्रजायै त्वं शय्ये! शुभकरी भव ।। 109 ।।
आरूह्य भार्यया शयां प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
उपविश्य स्त्रियं पश्यन्हस्तमाधाय मस्तके ।
वामेन पाणिनालिङ्ग्य स्थाने स्थाने मनुं जपेत् ।। 110 ।।
शीर्षे कामं शतं जप्त्वा चिबुके वाग्भवं शतम् ।
कण्ठे रमां विंशतिधा स्तनद्वन्द्वे शतं शतम् ।। 111 ।।
हृदये दशधा मायां नाभौ तां पञ्चविंशतिम् ।
जप्त्वा योनौ करं दत्त्वा कामेन सह वाग्भवम् ।। 112।।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा लिङ्गेऽप्येवं समाचरन् ।
विकाश्य मायया तस्या योनिं गच्छेत्सुताप्तये ।। 113 ।।
रेतःसम्पातसमये ध्यात्वा विश्वकृतं पतिः ।
नाभेरधस्ताच्चित्कुण्डे रक्तिकायां प्रपातयेत् ।। 114 ।।
शुक्रसेकान्तरे विद्वानिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।। 115 ।।
यथाग्निना सगर्भा भूर्द्यौर्यथा वज्रधारिणा ।
वायुना दिग्गर्भवती तथा गर्भवती भव ।। 116 ।।

इसी ऋतुसंस्कार की रात में अथवा किसी अन्य युग्म तिथि की रात में घर के भीतर जाकर प्रजापति का ध्यान करके पत्नी को स्पर्श किए हुए पति 'ह्रीं आवयोः सुप्रजाय त्वं शय्ये शुभकरी भव' मन्त्र का उच्चारण करे । हे शय्ये! हम दोनों की उत्तम सन्तान के लिये तुम शुभ करने वाली बनो । तब पत्नी के

साथ शय्या पर चढ़कर पूर्व या उत्तरमुख होकर बैठे । पत्नी को देखते हुए उसके मस्तक पर हाथ रखकर बाँयें हाथ से आलिंगन करके अंग-अंग पर मन्त्र का जप करे । मस्तक पर 'क्लीं' का जप सौ बार, चिबुक पर 'ऐं' का जप सौ बार, कण्ठ पर 'श्रीं' का जप बीस बार, दोनों स्तनों पर 'श्रीं' का जप सौ-सौ बार, हृदय पर 'ह्रीं' का जप दस बार, नाभि पर 'ह्रीं' का जप पच्चीस बार करे । तब योनि पर हाथ रखकर 'क्लीं ऐं' का जप एक सौ आठ बार करे । तब 'ह्रीं' मन्त्र जप कर योनि को विकसित करके सन्तान की कामना से मैथुन करे । वीर्यपात के समय प्रजापति का ध्यान करके पति नाभि के नीचे चित् कुण्ड की रक्तिका नाड़ी में बीज का निक्षेप करे । वीर्य त्याग के समय निम्न मन्त्र का पाठ करे ।

श्लोक 116 मन्त्र है । जैसे पृथ्वी अग्नि से गर्भवती होती है, अमरावती इन्द्र से गर्भवती होती है, दिशा वायु से गर्भवती होती है; वैसे ही तुम भी गर्भवती बनो ।। 108-116 ।।

पुंसवन

जाते गर्भे ऋतौ तस्मिन्नन्यस्मिन्वा महेश्वरि ।
तृतीये गर्भमासे तु चरेत्पुंसवनं गृही ।। 117 ।।
कृतनित्यक्रियो भर्त्ता पञ्चदेवान्समर्च्चयेत् ।
गौर्य्यादिमातृकाश्चैव वसोर्धारां प्रकल्पयेत् ।। 118 ।।
वृद्धिश्राद्धं ततः कृत्वा पूर्वोक्तविधिना सुधीः ।
धाराहोमान्तमापाद्य कुर्यात्पुंसवनक्रियाम् ।। 119 ।।
प्राजापत्यश्चरुस्तत्र चन्द्रनामा हुताशनः ।। 120 ।।
गव्ये दध्नि यवञ्चैकं द्वौ माषावपि निक्षिपेत् ।
पतिः पृच्छेत्स्त्रियं भद्रे! किं त्वं पिबसि त्रिःकृतम् ।। 121 ।।
ततः सीमन्तिनी ब्रूयान्मायापुंसवनं त्रिधा ।
प्रसृतींस्त्रीन्पिबेन्नारी यवमाषयुतं दधि ।। 122 ।।
जीवत्सुताभिर्वनितां यागस्थानं समानयेत् ।
संस्थाप्य वामभागे तां चरुहोमं समाचरेत् ।। 123 ।।
पूर्ववच्चरुमादाय मायां कूर्चं समुच्चरन् ।
ये गर्भविघ्नकर्त्तारो ये च गर्भविनाशकाः ।। 124 ।।
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला बालघातकाः ।
तान्सर्वान्नाशय द्वन्द्वं गर्भरक्षां कुरु द्विठः ।। 125 ।।

मन्त्रेणानेन रक्षोघ्नं चिन्तयित्वा हुताशनम् ।
रुद्रं प्रजापतिं ध्यायन्प्रदद्याद्द्वादशाहुतीः ।। 126 ।।
ततो मायाचन्द्रमसे स्वाहेत्याहुतिपञ्चकम् ।
दत्त्वा भार्य्यां हृदि स्पृष्ट्वा मायालक्ष्मीं शतं जपेत् ।। 127 ।।

हे महेश्वरि! उसी ऋतु में अथवा अन्य मासिक ऋतुकाल के बाद गर्भ रहने पर गर्भाधान के तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार करे । पति नित्यकर्म समाप्त करके पञ्चदेवों का पूजन करे । तब गौरी आदि षोड़श मातृकाओं की पूजा करके वसुधारा प्रदान करे । तब वृद्धिश्राद्ध करे । पूर्वोक्त विधि से धाराहोम तक के कर्म करके पुंसवन क्रिया करे । उसमें प्राजापत्य नामक चरु और चन्द्र नामक अग्नि होती है । पति गाय के दही में एक जौ और दो उड़द छोड़कर पत्नी से तीन बार पूछे—'भद्रे! किं त्वं पिबसि?' भद्रे तुम क्या पीती हो ? इस पर पत्नी तीन बार कहे—'ह्रीं पुंसवनम्' पुत्र-प्रसव के लिये भूत वस्तु पीती हूँ । तब पत्नी तीन बार में जौ और उड़दयुक्त दही का पान करे । इसके बाद जीवित पुत्रों वाली स्त्रियों के साथ पत्नी को पति यागस्थान में ले आये और अपनी बाँयीं ओर उसे बैठाकर चरुहोम आरम्भ करे । पहले पूर्ववत् चरु लेकर रक्षोघ्न हुताशन का ध्यान करके रुद्र और प्रजापति का ध्यान करते हुए निम्न मन्त्र से बारह आहुतियाँ प्रदान करे—

ह्रीं हूं ये गर्भविघ्नकर्तारो ये च गर्भविनाशकाः ।
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला बालघातकाः ।।
तान् सर्वान् नाशय नाशय गर्भं रक्षा कुरु कुरु स्वाहा ।

गर्भ को नष्ट करने वाले जो-जो भूत, प्रेत, पिशाच, वेताल तथा बालघाती हैं, उन सबका नाश करो । गर्भ की रक्षा करो । इसके बाद निम्न मन्त्र से पाँच आहुतियाँ प्रदान करे—'ह्रीं चन्द्रमसे स्वाहा' । तब पत्नी के हृदय का स्पर्श करते हुए 'ह्रीं श्रीं' का जप सौ बार करे । तब स्विष्टकृत् हवन करके प्रायश्चित्त हवन करके पुंसवन कर्म का समापन करे ।। 117-127 ।।

पञ्चामृत-पान

ततः स्विष्टकृतं हुत्वा प्रायश्चित्त्या समापयेत् ।
ततस्तु पञ्चमे मासि दद्यात्पञ्चामृतं स्त्रियै ।। 128 ।।
शर्करामधुदुग्धञ्च घृतं दधि समांशकम् ।
पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं देहशुद्धौ विधीयते ।। 129 ।।

वाग्भवं मदनं लक्ष्मीं मायां कूर्च्चं पुरन्दरम् ।
पञ्चद्रव्योपरि शिवे! प्रजप्य पञ्चपञ्चधा ।
एकीकृत्यामृतान्यत्र प्राशयेदपि तां पतिः ।। 130 ।।

पाँचवें महीने में पत्नी को पञ्चामृत-पान कराये । दूध, दही, घी, मधु और शक्कर पाँचों को बराबर भाग में मिलाने से पञ्चामृत बनता है । देहशुद्धि के लिये यह विहित पानक है । इन पाँचों द्रव्यों में से प्रत्येक के ऊपर 'ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं हूं लं' का जप पाँच-पाँच बार करके पञ्चामृत बनाकर पत्नी को पिलाये ।। 128-130 ।।

सीमन्तोन्नयन

सीमन्तोन्नयनं कुर्यान्मासि षष्ठेऽष्टमेऽपि वा ।
यावन्न जायतेऽपत्यं तावत्सीमन्तनक्रिया ।। 131 ।।
पूर्वोक्तधाराहोमान्तं कर्म कृत्वा स्त्रिया सह ।
उपविश्यासने प्राज्ञः प्रदद्यादाहुतित्रयम् ।
विष्णवे भास्वते धात्रे वह्निजायां समुच्चरन् ।। 132 ।।
ततश्चन्द्रमसं ध्यात्वा शिवनाम्नि हुताशने ।
सप्तधा हवनं कुर्यात्सोममुद्दिश्य मानवः ।। 133 ।।
अश्विनौ वासवं विष्णुं शिवं दुर्गां प्रजापतिम् ।
ध्यात्वा प्रत्येकतो दद्यादाहुतीः पञ्चधा शिवे ।। 134 ।।
स्वर्णकङ्कतिकां भर्त्ता गृहीत्वा दक्षिणे करे ।
सीमन्ताद्बद्धकेशान्तः केशपाशे निवेशयेत् ।। 135 ।।
शिवं विष्णुं विधिं ध्यायन्मायाबीजं समुच्चरन् ।। 136 ।।
भार्ये कल्याणि सुभगे दशमे मासि सुव्रते ।
सुप्रसूता भव प्रीता प्रसादाद्विश्वकर्मणः ।। 137 ।।
आयुष्मती कङ्कतिका वर्च्चस्विनी शुभं कुरु ।
ततः समापयेत्कर्म स्विष्टकृद्धवनादिभिः ।। 138 ।।

छठे या आठवें मास में सीमन्तोन्नयन करे । जब तक सन्तान का जन्म न हो तब तक की अवधि मध्य में सीमन्तोन्नयन करना चाहिये । ज्ञानी पति पूर्वोक्त धाराहोम तक के सब कर्मों को करके पत्नीसहित आसन पर बैठकर तीन आहुतियाँ निम्न मन्त्रों से प्रदान करे—'विष्णवे स्वाहा । भास्वते स्वाहा । धात्रे स्वाहा ।' तब चन्द्रमा का ध्यान करके शिवनामक अग्नि में चन्द्र के लिये सात आहुतियाँ डाले । हे शिवे! दोनों अश्विनीकुमारों, इन्द्र, विष्णु, शिव, दुर्गा, प्रजापति का ध्यान करके प्रत्येक को पाँच आहुतियाँ प्रदान करे, तब पति दाँयें

हाथ में सोने की कंघी लेकर उसे सीमन्त (मांग) से लेकर जूड़े में प्रविष्ट करे। शिव, विष्णु और ब्रह्मा का ध्यान करके निम्न मन्त्र पढ़े—

ह्रीं भार्ये कल्याणि सुभगे दशमे मासि सुव्रते!
सुप्रसूता भवप्रीता प्रसादाद् विश्वकर्मणः ।
आयुष्मती कङ्कतिका वर्चस्वी ते शुभं कुरु ।।

हे भार्ये! हे कल्याणि! हे सुभगे! हे सुव्रते! तुम दसवें मास में उत्तम सन्तान को जन्म देकर प्रसन्न और आयुष्मती होओ। विश्वकर्मा के प्रसाद से कंघी तुम्हारे तेज को बढ़ाये। तुम शुभ कार्य का अनुष्ठान करो। इसके बाद स्विष्टकृत् होमादि करके कर्म का समापन करे ।। 131-138 ।।

जातकर्म

जातमात्रं सुतं दृष्ट्वा दत्त्वा स्वर्णं गृहान्तरे ।
पूर्वोक्तविधिना धीरो धाराहोमं समापयेत् ।। 139 ।।
ततः पञ्चहुतीर्दद्यादग्निमिन्द्रं प्रजापतिम् ।
विश्वान्देवांश्च ब्रह्माणमुद्दिश्य तदनन्तरम् ।। 140 ।।
मधु सर्पिः कांस्यपात्रे समानीयासमांशकम् ।
वाग्भवं शतधा जप्त्वा प्राशयेत्तनयं पिता ।। 141 ।।
दक्षहस्तानामिकया मन्त्रमेनं समुच्चरन् ।
आयुर्वर्च्चो बलं मेधा वर्द्धन्तां ते सदा शिशो ।। 142 ।।
इत्यायुर्जननं कृत्वा गुप्तं नाम प्रकल्पयेत् ।
कृतोपनयने पुत्रे तेन नाम्ना समाह्वयेत् ।। 143 ।।

सन्तान उत्पन्न होते ही धीर व्यक्ति सुवर्ण देकर पुत्र का मुख देखकर सूतिका गृह से भिन्न किसी दूसरे घर में पूर्वोक्त विधि से धाराहोम समाप्त करे। अग्नि, इन्द्र, प्रजा- पति, विश्वेदेव और ब्रह्मा के लिये पाँच आहुतियाँ प्रदान करे। इसके बाद पिता काँसे के पात्र में मधु और घी बराबर-बराबर लेकर उस पर 'ऐं' का जप दस बार करे। दाँयें हाथ की अनामिका अंगुलि से निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए पुत्र को चटाए—'आयुर्वर्चो बलं मेधा वर्धतां ते सदा शिशो'। हे शिशो! तुम्हारी आयु, तेज, बल और मेधा में निरन्तर वृद्धि हो। इस प्रकार आयुष्कर कार्य करके बालक का एक गुप्त नाम रक्खे। पुत्र के लाए जाने पर उसी नाम से उसे पुकारे। इसके बाद प्रायश्चित्तादि होम करके जातकर्म पूर्ण करे ।। 139-143 ।।

नाड़ी-छेदन

प्रायश्चित्तादिकं कृत्वा जातकर्म समापयेत् ।
नालच्छेदं ततो धात्री कुर्यादुत्साहपूर्वकम् ।। 144 ।।
यावन्न च्छिद्यते नालं तावच्छौचं न बाधते ।
प्रागेव नाडिकाच्छेदाद्दैवीं पैत्रीं क्रियां चरेत् ।। 145 ।।

इसके बाद दाई उत्साहपूर्वक नाड़ी-छेदन करे । जब तक नाड़ी-छेदन नहीं होता तब तक शौच बाधक नहीं होता अर्थात् अशौच नहीं होता । अतः नाड़ी-छेदन से पहले दैवी और पैत्री क्रिया करता रहे । कन्या के लिये ये सभी कर्म विना मन्त्र के ही करे ।। 144-145 ।।

नामकरण-अभिषेक

कुमार्याश्चापि कर्त्तव्यमेवमेवममन्त्रकम् ।
षष्ठे वा चाष्टमे मासि नाम कुर्यात्प्रकाशतः ।। 146 ।।
स्नापयित्वा शिशुं माता परिधाय्याम्बरे शुभे ।
भर्त्तुः पार्श्वे समागत्य प्राङ्मुखं स्थापयेत्सुतम् ।। 147 ।।
अभिषिञ्चेच्छिशोर्मूर्ध्नि सहिरण्यकुशोदकैः ।
जाह्नवी यमुना रेवा सुपवित्रा सरस्वती ।। 148 ।।
नर्मदा वरदा कुन्ती सागराश्च सरांसि च ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ।। 149 ।।
ओं ह्रीं आपोहिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन महेरणाय चक्षसे ।। 150।।
ओं यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः उशतीरिव मातरः ।
ओं तस्मा अरङ्गमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ आपोजनयथा च नः ।। 151।।
अभिषिच्य त्रिभिर्मन्त्रैः पूर्ववद्वह्निसंस्क्रियाम् ।
कृत्वा सम्पाद्य धारान्तं दद्यात्पञ्चाहुतीः सुधीः ।। 152 ।।
अग्नये प्रथमां दत्त्वा वासवाय ततः परम् ।
ततः प्रजानांपतये विश्वेदेवेभ्य एव च ।
ब्रह्मणे चाहुतिं दद्याद्वह्नौ पार्थिवसंज्ञके ।। 153 ।।
ततोऽङ्के पुत्रमादाय श्रावयेद्दक्षिणश्रुतौ ।
स्वल्पाक्षरं सुखोच्चर्य्यं शुभं नाम विचक्षणः ।। 154 ।।
श्रावयित्वा त्रिधा नाम ब्राह्मणेभ्यो निवेद्य च ।
ततः समापयेत्कर्म कृत्वा स्विष्टकृदादिकम् ।। 155 ।।

कन्याया निष्क्रमो नास्ति वृद्धिश्राद्धं न विद्यते।
नामान्नप्राशनं चूडां कुर्याद्धीमानमन्त्रकम् ॥ 156 ॥

छठे या आठवें मास में नामकरण करे। नामकरण के समय माता शिशु को स्नान कराकर उत्तम वस्त्र पहना कर पति के पास लाए और उसे पूर्वमुख करके बैठाए। पिता जल में सुवर्ण डालकर शिशु के मस्तक पर कुश से निम्न तीन मन्त्रों को पढ़ते हुए जल छिड़के। श्लोक 148 का उत्तरार्द्ध, श्लोक 149, 150, 151 मन्त्र हैं।

गंगा, यमुना, रेवा, सरस्वती, नर्मदा, वरदा, कुन्ती, सभी सागर और सभी सरोवर धर्म-अर्थ-काम की सिद्धि के लिये तुम्हारा अभिषेक करें। हे जल! तुम सुखदाता हो; अतः हमारे लिये इस समय अन्न की व्यवस्था करो और आगे परब्रह्म से हमारा मिलन कराओ। माता के समान स्नेहयुक्त तुम हम लोगों को मंगलकारी रस का अधिकारी बनाओ। हे सभी प्रकार के जल! तुमने जिस रस से जगन्मण्डल को व्याप्त कर रक्खा है, उससे हम तृप्त हों। हमें उसका भोग कराओ।

इसके बाद पिता पूर्ववत् अग्नि-संस्कार करके धाराहोम तक के सभी कर्म करके पाँच आहुतियाँ प्रदान करे। पार्थिव नामक उस अग्नि में पाँच आहुतियाँ देते समय पहले अग्नि को, तब इन्द्र को, तब प्रजापति को, तब विश्वेदेव को, तब ब्रह्मा को आहुति दे। तब पुत्र को गोद में लेकर उसके दाँयें कान में थोड़े अक्षरों का सरलता से उच्चारण होने वाला नाम सुनाए। इस प्रकार तीन बार नाम सुनाकर स्विष्टकृत् होम आदि सम्पन्न करके ब्राह्मणों को नाम बताकर कर्म समाप्त करे। कन्या सन्तान का निष्क्रम-वृद्धिश्राद्ध नहीं होता। उसका नामकरण, अन्नप्राशन और चूडाकरण विना मन्त्र का होता है ॥ 146-156 ॥

निष्क्रमण

चतुर्थे मासि षष्ठे वा कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोः ॥ 157 ॥
कृतनित्यक्रियः स्नातः सम्पूज्य गणनायकम्।
स्नापयित्वा तु तनयं वस्त्रालङ्कारभूषितम्।
संस्थाप्य पुरतो विद्वानिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ 158 ॥
ब्रह्मा विष्णुः शिवो दुर्गा गणेशो भास्करस्तथा।
इन्द्रो वायुः कुबेरश्च वरुणोऽग्निर्बृहस्पतिः।

शिशोः शुभं प्रकुर्वन्तु ते सर्वे पथि सर्वदा ॥ 159 ॥
इत्युक्त्वाऽङ्के समादाय गीतवाद्यपुरःसरम् ।
बहिर्निष्क्रामयेद्बालं सानन्दैः स्वजनैः सह ॥ 160 ॥
गत्वाध्वनि कियद्दूरं शिशुं सूर्यं निरीक्षयेत् ॥ 161 ॥
ओं ह्रीं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥ 162 ॥
इत्यादित्यं दर्शयित्वा समागत्य निजालयम् ।
अर्घ्यं दत्त्वा दिनेशाय स्वजनान्भोजयेत्पिता ॥ 163 ॥

चौथे या छठे मास में शिशु का निष्क्रमण संस्कार करे । संस्कार के समय पिता नित्य कर्म-स्नानादि करके गणेश का पूजन करे । तब शिशु को स्नान कराकर वस्त्र और अलंकार से सुशोभित करे । अपने सामने बैठाकर निम्न मन्त्र का पाठ करे । श्लोक 159 मन्त्र है ।

ब्रह्मा विष्णुः शिवो दुर्गा गणेशो भास्करस्तथा ।
इन्द्रो वायुः कुबेरश्च वरुणो अग्निर्बृहस्पतिः ।
शिशोः शुभं प्रकुर्वन्तु रक्षन्तु पार्थ सर्वदा ।।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा, गणेश, सूर्य, इन्द्र, वायु, कुबेर, वरुण, अग्नि और बृहस्पति सभी शिशु का मंगल करें । मार्ग में सदैव रक्षा करें । तब पिता शिशु को गोद में लेकर हर्षित स्वजनों से घिरकर गीत-वाद्य के साथ बालक को बाहर ले जाय । मार्ग में कुछ दूर जाकर निम्न मन्त्र पढ़ते हुए बालक को सूर्य का दर्शन कराए । श्लोक 162 मन्त्र है । शुक्र का अतिक्रमण कर जो देवगण के लिये भी हितकारी सूर्यरूप चक्षु वर्त्तमान है, उसे हम सौ वर्षों तक देखें और सौ वर्षों तक जीवित रहें । तब बालक को वापस अपने घर में लाकर सूर्य को अर्घ्य देकर आत्मीय जनों को भोजन कराए ।। 157-163 ।।

अन्नप्राशन

षष्ठे मासि कुमारस्य मासि वाप्यष्टमे शिवे ।
पितृभ्राता पिता वापि कुर्यादन्नाशनक्रियाम् ॥ 164 ॥
पूर्ववद्देवपूजादिवह्निसंस्करणं तथा ।
एवं धारान्तकर्माणि सम्पाद्य विधिवत्पिता ॥ 165 ॥
दद्यात्पञ्चाहुतीस्तत्र शुचिनाम्नि हुताशने ।
अग्निमुद्दिश्य प्रथमां द्वितीयां वासवं स्मरन् ॥ 166 ॥

ततः प्रजापतिं देवं विश्वान्देवांस्ततः परम् ।
ब्रह्माणञ्च समुद्दिश्य पञ्चमीमाहुतिं त्यजेत् ।। 167 ।।
ततोऽग्नावन्नदां ध्यात्वा दत्तपञ्चाहुतिः पिता ।
तत्राथवा गृहेऽन्यस्मिन्वस्त्रालङ्कारशोभितम् ।
क्रोडे निधाय तनयं प्राशयेत्पायसामृतम् ।। 168 ।।
पञ्चप्राणाहुतैर्मन्त्रैर्भोजयित्वा तु पञ्चधा ।
ततोऽन्नव्यञ्जनादीनां दत्त्वा किञ्चिच्छिशोर्मुखे ।। 169 ।।
शङ्खतूर्यादिघोषेण प्रायश्चित्त्या समापयेत् ।
इत्यन्नप्राशनं प्रोक्तं चूडाविधिमतः शृणु ।। 170 ।।

हे शिवे! कुमार के छठे या आठवें महीने में पिता या चाचा उसका अन्नप्राशन संस्कार करे । पूर्ववत् देवपूजन, वह्निसंस्कार करके यथाविधि धाराहोम तक के कर्म करके 'शुचि' नामक अग्नि में पाँच आहुतियाँ डाले । पहली आहुति अग्नि के लिये 'ह्रीं अग्नये स्वाहा' से, दूसरी आहुति वासव के लिये 'ह्रीं वासवाय स्वाहा' से, तीसरी आहुति प्रजापति के लिये 'ह्रीं प्रजापतये स्वाहा' से, चौथी आहुति विश्वेदेवों के लिये 'ह्रीं विश्वेदेवाय स्वाहा' से, पाँचवीं आहुति ब्रह्मा के लिये 'ह्रीं ब्रह्मणे स्वाहा' से अग्नि में डाले । तब पिता अग्नि में अन्नदा देवी का ध्यान करके उनके लिये पाँच आहुतियाँ देकर उसी घर में या दूसरे घर में वस्त्रालंकार-भूषित पुत्र को गोद में लेकर निम्न पञ्च प्राणाहुति मन्त्र पढ़ते हुए पाँच बार उसे पायसामृत पिलाये—1. प्राणाय स्वाहा । 2. अपानाय स्वाहा । 3. समानाय स्वाहा । 4. उदानाय स्वाहा । 5. व्यानाय स्वाहा । तब सभी भोज्यान्न पदार्थों में से थोड़ा-थोड़ा लेकर शिशु के मुख में चटाये । शंख, तुरही आदि बजवाकर प्रायश्चित्त होम करके कर्म का समापन करे । यह अन्नप्राशन विधि हुई । अब चूड़ाकरण, मुण्डन-विधि का वर्णन करता हूँ ।। 164-170 ।।

चूड़ाकरण-मुण्डन

तृतीये पञ्चमे वर्षे कुलाचारानुसारतः ।
चूडाकर्मशिशोः कुर्याद्बालसंस्कारसिद्धये ।। 171 ।।
देवपूजादिधारान्तं कर्म निष्पाद्य साधकः ।
सत्याग्नेरुत्तरे देशे वृषगोमयपूरितम् ।। 172 ।।
तिलगोधूमसंयुक्तं शरावं स्थापयेद् बुधः ।

कवोष्णं सलिलञ्चापि क्षुरमेकं सुशाणितम् ।। 173 ।।
आसाद्य तनयं तत्र जनकः स्वीयवामतः ।
संस्थाप्य जननीक्रोडे कवोष्णसलिलैश्च तैः ।। 174 ।।
वारुणं दशधा जप्त्वा सम्मार्ज्य शिशुमूर्द्धजान् ।
मायया कुशपत्राभ्यां जुष्टिमेकां प्रकल्पयेत् ।। 175 ।।
मायां लक्ष्मीं त्रिधा जप्त्वा गृहीत्वा लौहजं क्षुरम् ।
छित्त्वा तु जुष्टिकामूलं मातृहस्ते निवेशयेत् ।। 176 ।।
कुमारमाताहस्ताभ्यामादाय गोमयान्विते ।
शरावे स्थापयेज्जुष्टिं नापिताय पिता वदेत् ।। 177 ।।
क्षुरमुण्डिन्! शिशोः क्षौरं सुखं साधय ठद्वयम् ।
पठित्वा नापितं पश्यन्सत्यनामनि पावके ।
प्रजापतिं समुद्दिश्य प्रदद्यादाहुतित्रयम् ।। 178 ।।
नापितेन कृतक्षौरं स्नापयित्वा शिशुं ततः ।
वस्त्राभरणमाल्यानि धारयित्वाग्निसन्निधौ ।। 179 ।।
स्ववामभागे संस्थाप्य स्विष्टकृद्धोममाचरेत् ।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं पिता ।। 180 ।।
माया शिशो! ते कुशलं कुरुतां विश्वकृद्विभुः ।
पठित्वैनं शिशोः कर्णे स्वर्णमय्या शलाकया ।
राजत्या लोहमय्या वा कर्णवेधं प्रकल्पयेत् ।। 181 ।।
आपोहिष्ठेतिमन्त्रेण अभिषिच्य सुतं ततः ।
शान्त्यादिदक्षिणां कृत्वा चूडाकर्म समापयेत् ।। 182 ।।

जन्म होने के तीसरे या पाँचवें वर्ष में संस्कारसिद्धि के लिये कुलाचार के अनुसार बालक का चूड़ाकरण करे । साधक देवपूजा से धाराहोम तक के सभी कर्म पूरा करके 'सत्य' नामक अग्नि की उत्तर दिशा में बैल का गोबर, तिल, गेहूँ, नया प्याला, गर्म जल और एक तेज छुरी रक्खे । तब पिता उसी स्थान में अपनी बाँयीं ओर बालक को माँ की गोद में बैठाये । प्याले में गोबर, तिल, गेहूँ और गर्म जल मिलाकर 'वं' के दश जप से अभिमन्त्रित करे और उससे बालक के केशों का मार्जन करे । तब 'ह्रीं' का उच्चारण करते हुए दो कुशों से उसके मस्तक पर चोटी बनाए। 'ह्रीं श्रीं' का जप तीन बार करके लोहे की छुरी से उस चोटी को काटकर बालक की माँ के हाथ में रक्खे । बालक की माता उस चोटी को दोनों हाथों में लेकर उस गोबरयुक्त प्याले में रक्खे । तब

पिता नाई से निम्न मन्त्र कहे—'क्षुरमुण्डिन् शिशोः क्षौरं सुखं साधय स्वाहा ।' हे नापित! तुम सुखपूर्वक शिशु का क्षौरकर्म करो ।

यह मन्त्र पढ़कर पिता नाई को देखता हुआ प्रजापति के लिये सत्य नामक अग्नि में तीन आहुतियाँ प्रदान करे । तब नाई बालक के बालों को उस्तरे से काटे । तब पिता बालक को नहला कर वस्त्र पहनावे । अलंकार-माला से विभूषित करके अग्नि के पास अपनी बाँयीं ओर बैठाकर स्विष्टकृत् होम करे । प्रायश्चित्त होम करके पूर्णाहुति प्रदान करे । तब सोना-चाँदी या लोहे की शलाका से निम्न मन्त्र पढ़ते हुए शिशु का कर्णवेध करे ।

'ह्रीं शिशु ते कुशलं कुरुतां विश्वकृद् विभुः ।' अर्थात् हे शिशो! विश्वस्रष्टा विभु तुम्हारा मङ्गल करें । तब 'आपो हिष्ठा मयो भुव' से पुत्र का अभिषेक करके शान्ति कर्म करके दक्षिणा देकर चूड़ाकर्म समाप्त करे ।। 171-182 ।।

गर्भाधानादिचूडान्तं समानं सर्वजातिषु ।
शूद्रसामान्यजातीनां सर्वमेतदमन्त्रकम् ।। 183 ।।
जातकर्मादिचूडान्तं कुमार्याश्चाप्यमन्त्रकम् ।
कर्त्तव्यं पञ्चभिर्वर्णैरिकं निष्क्रमणं विना ।। 184 ।।

गर्भाधान से चूड़ाकरण तक के संस्कार सभी जातियों के लिये एक समान हैं । शूद्र और सामान्य जाति के ये सभी संस्कार विना मन्त्रोच्चार के होते हैं । ब्राह्मण आदि पाँच वर्णों की कन्या के जातकर्म से चूड़ाकरण तक के संस्कार, निष्क्रमण को छोड़कर विना मन्त्रोच्चार के ही करना चाहिये ।। 183-184 ।।

उपनयन

अथोच्यते द्विजातीनामुपवीतक्रियाविधिः ।
यस्मिन्कृते द्विजन्मानो दैवपैत्र्याधिकारिणः ।। 185 ।।
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे कुर्यादुपनयं शिशोः ।
षोडशाब्दाधिको नोपनेतव्यो निष्क्रियोऽपि सः ।। 186 ।।
कृतनित्यक्रियो विद्वान्पञ्च देवान्समर्च्चयेत् ।
गौर्यादिमातृकाश्चैव वसुधारां प्रकल्पयेत् ।। 187 ।।
वृद्धिश्राद्धं ततः कुर्याद्दैवतापितृतृप्तये ।
कुशकण्डिकोक्तविधिना धाराहोमान्तमाचरेत् ।। 188 ।।
प्रातः कृताशनं बालं सुस्नातं समलंकृतम् ।
शिखां विना कृतक्षौरं क्षौमाम्बरविभूषितम् ।। 189 ।।

छायामण्डपमानीय समुद्भवहुताशितुः ।
समीपे चात्मनो वामे संस्थाप्य विमलासने ।। 190 ।।
शिष्यं वदेद्ब्रह्मचर्यं कुरु वत्स! ततः शिशुः ।
ब्रह्मचर्यं करोमीति गुरवे विनिवेदयेत् ।। 191 ।।
ततो गुरुः प्रसन्नात्मा शिशवे शान्तचेतसे ।
काषायवाससी दद्याद्दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे ।। 192 ।।
मौञ्जीं कुशमयीं वापि त्रिवृत्तां ग्रन्थिसंयुताम् ।
तूष्णीं च मेखलां दद्यात्काषायाम्बरधारिणे ।। 193 ।।

अब द्विजों के उपनयन कर्म के विधान का वर्णन करता हूँ । इस संस्कार से उन्हें दैव और पैत्र कर्म करने का अधिकार होता है । गर्भ से आठवें वर्ष की आयु में बालक का उपनयन संस्कार करे । सोलह वर्ष की आयु के बाद उसका उपनयन नहीं हो सकता । इसके विना वह दैव एवं पैत्र कर्म करने का अधिकारी नहीं होता । विद्वान् पिता नित्यकर्म करके पञ्चदेवों की पूजा करे । गौरी आदि षोड़श मातृकाओं की पूजा करे । वसुधारा देवे । तब देवताओं और पितरों की तृप्ति के लिये वृद्धिश्राद्ध करे । कुशकण्डिकोक्त विधि के अनुसार धाराहोम तक के सभी कर्म करे । प्रातःकाल अच्छी तरह से स्नान कराकर, भोजन कराकर, उत्तम अलंकार पहनाकर, शिखा के सिवा पूर्ण रूप से मुण्डित बालक को रेशमी वस्त्र पहनाकर छायामण्डप में लाकर समुद्भव नामक अग्नि के पास अपनी बाँयीं और सुन्दर स्वच्छ आसन पर बिठावे । गुरु उस शिष्य से कहे—'ब्रह्मचर्यं कुरु वत्स' अर्थात् हे पुत्र! ब्रह्मचर्य करो। शिष्य उत्तर में गुरु से निवेदन करे—'ब्रह्मचर्यं करोमि' अर्थात् मैं ब्रह्मचर्य करता हूँ । तब गुरु प्रसन्न मन से शान्त हृदय शिशु के दीर्घायु और तेजोवृद्धि के लिये कषाय रंग के दो वस्त्र प्रदान करे । गेरुआ वस्त्रधारी इस बालक को गुरु मूंज या कुश की बनी, गाँठ लगी, तीन लट वाली मेखला मौन रहकर प्रदान करे । बालक निम्न मन्त्र का उच्चारण कर मेखला को अपनी कमर में बाँधे—'ह्रीं सुभगा मेखला स्यात् शुभप्रदा ।' यह शुभ मेखला मेरे लिये कल्याणकारिणी हो ।। 185-193 ।।

मायामुच्चार्य सुभगा मेखला स्याच्छुभप्रदा ।
इत्युक्त्वा मेखलां बद्ध्वा मौनी तिष्ठेद्गुरोः पुरः ।। 194 ।।
यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।। 195 ।।

मन्त्रेणानेन शिशवे दद्यात्कृष्णाजिनान्वितम् ।
यज्ञोपवीतं दण्डञ्च वैणवं खादिरञ्च वा ।
पालाशमथवा दद्यात्क्षीरवृक्षसमुद्भवम् ।। 196 ।।
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण मायया पुटितेन च ।
त्रिरावृत्त्या कुशाम्भोभिर्धृतदण्डोपवीतिनम् ।
अभिषिच्य ततस्तोयैः पूरयेद्बालकाञ्जलिम् ।। 197 ।।
तदञ्जलिं दिनेशाय दातारं ब्रह्मचारिणम् ।
तच्चक्षुरितिमन्त्रेण दर्शयेद्भास्करं गुरुः ।। 198 ।।

इसके बाद बालक मौन होकर गुरु के सामने खड़ा हो । गुरु निम्न मन्त्र पढ़कर बालक को काले मृग का यज्ञोपवीत और बांस, खैर या पलाश या दूधैले वृक्ष की लकड़ी से बना डंडा प्रदान करे । श्लोक 195 मन्त्र है । यह यज्ञोपवीत परम पवित्र है । पहले प्रजापति ने इस सहज यज्ञोपवीत को धारण किया था । आयुष्कर श्रेष्ठ शुभ्र इस यज्ञोपवीत को तुम धारण करो । तुम्हारे बल और तेज की वृद्धि हो । इसके बाद दण्ड और उपवीतधारी बालक को गुरु 'ह्रीं आपोष्ठा ह्रीं' का उच्चारण तीन बार करके कुशजल से अभिषिक्त करे । अञ्जलि को जल से भरे । तब ब्रह्मचारी उस जलाञ्जलि से सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे । तब गुरु 'तच्चक्षुर्देव हितं' बोलते हुए शिष्य को सूर्य का दर्शन कराये ।। 194-198 ।।

दृष्टभास्करमाचार्यो वदेन्माणवकं ततः ।
मम व्रते मनो धेहि मम वित्तं ददामि ते ।
जुषस्वैकमना वत्स ! मम वाचोऽस्तु ते शिवम् ।। 199 ।।
हृदि स्पृष्ट्वा पठित्वैनं किन्नामासीति तं वदेत् ।
शिष्यस्त्वमुकशर्म्माहं भवन्तमभिवादये ।। 200 ।।
कस्य त्वं ब्रह्मचारीति गुरौ पृच्छति पार्वति !
शिष्यः सावहितो ब्रूयाद्भवतो ब्रह्मचार्यहम् ।। 201 ।।
इन्द्रस्य ब्रह्मचारी त्वमाचार्यस्ते हुताशनः ।
इत्युक्त्वा सद्गुरुः पश्चाद्देवेभ्यस्तं समर्पयेत् ।। 202 ।।
त्वां प्रजापतये वत्स! सवित्रे वरुणाय च ।
पृथिव्यै विश्वेदेवेभ्यः सर्वदेवेभ्य एव च ।
समर्पयामि ते सर्वे रक्षन्तु त्वां निरन्तरम् ।। 203 ।।
ततो माणवको वह्निं दक्षिणावर्त्तयोगतः ।

गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य स्वासने पुनराविशेत् ।। 204 ।।
गुरुः शिष्येण संस्पृष्टः समुद्भवहुताशने ।
पञ्चदेवान्समुद्दिश्य दद्यात्पञ्चाहुतीः प्रिये !।। 205 ।।
प्रजापतिस्तथा शक्रो विष्णुर्ब्रह्मा शिवस्तथा ।। 206 ।।
मायादिवह्निजायान्तैर्जुहुयात्स्वस्वनामभिः ।
अनुक्तमन्त्रे सर्वत्र विधिरेष प्रकीर्त्तितः ।। 207 ।।
ततो दुर्गा महालक्ष्मीः सुन्दरी भुवनेश्वरी ।
इन्द्रादिदशदिक्पाला भास्करादिनवग्रहाः ।। 208 ।।
प्रत्येकनाम्ना हुत्वैतान्वाससाच्छाद्य बालकम् ।
पृच्छेन्माणवकं प्राज्ञो ब्रह्मचर्याभिमानिनम् ।
को वाश्रमस्ते तनय! ब्रूहि किन्ते मनोगतम् ।। 209 ।।
ततः शिष्यः सावहितो धृत्वा गुरुपदद्वयम् ।
करोतु मामाश्रमिणं ब्रह्मविद्योपदेशतः ।। 210 ।।
एवं प्रार्थयमानस्य दक्षकर्णे शिशोस्तदा ।
श्रावयित्वा त्रिधातारं सर्वमन्त्रमयं शिवे!
व्याहृतित्रयमुच्चार्य सावित्रीं श्रावयेद्गुरुः ।। 211 ।।

सूर्य का दर्शन कर चुकने पर बालक से गुरु कहे—

मम व्रते मनो धेहि मम चित्तं ददामि ते ।
जुषष्वैकमना वत्स मम वाचोऽस्तु ते शिवम् ।।

तुम मेरे व्रत में मन लगाओ । मैं तुम्हें अपना चित्त देता हूँ । हे पुत्र! एक मन होकर मेरे व्रत का आचरण करो । मेरी वाणी से तुम्हारा कल्याण हो । गुरु बालक के हृदय को छूकर उससे पूछे 'किं नामासि' अर्थात् तुम्हारा नाम क्या है? उत्तर में शिष्य बोले—'अमुकशर्माऽहं भवन्तमभिवादये' अर्थात् मैं अमुक शर्मा आपको प्रणाम करता हूँ । हे पार्वति! तब गुरु यह पूछे 'कस्य त्वं ब्रह्मचारी'? तुम किसके ब्रह्मचारी हो? शिष्य सावधानीपूर्वक उत्तर दे—'भवतो ब्रह्मचार्यहम्'—मैं आपका ब्रह्मचारी हूँ । इस पर सद्गुरु कहे—'इन्द्रस्य ब्रह्मचारी त्वमाचार्यस्ते हुताशनः' तुम इन्द्र के ब्रह्मचारी हो । तुम्हारे आचार्य अग्निदेव हैं । ऐसा कहकर गुरु निम्न मन्त्र पढ़कर शिष्य को देवताओं के निकट समर्पित करे । श्लोक 203 मन्त्ररूप है । हे पुत्र! तुमको प्रजापति के लिये, सविता के लिये, सब देवों के लिए समर्पित करता हूँ । वे सब तुम्हारी रक्षा निरन्तर करें ।

इसके बाद ब्रह्मचारी अग्नि की और गुरु की प्रदक्षिणा करे । अपने आसन पर बैठे । हे प्रिये! तब गुरु शिष्य से सटकर 'समुद्भव' नामक अग्नि में पञ्चदेवों को पाँच आहुतियाँ प्रदान करे । प्रजापति, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा और शिव पञ्चदेव हैं । निम्न मन्त्रों से आहुति प्रदान करे । 1. ह्रीं प्रजापतये स्वाहा । 2. ह्रीं इन्द्राय स्वाहा । 3. ह्रीं विष्णवे स्वाहा । 4. ह्रीं ब्रह्मणे स्वाहा । 5. ह्रीं शिवाय स्वाहा । इसी प्रकार जिसके मन्त्र की विधि ज्ञात न हो, उसके आदि में 'ह्रीं' और अन्त में 'स्वाहा' लगाकर हवन करे । जैसे—1. ह्रीं दुर्गायै स्वाहा । 2. ह्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा । 3. ह्रीं सुन्दर्यै स्वाहा । 4. ह्रीं भुवनेश्वर्यै स्वाहा । 5. ह्रीं इन्द्राय स्वाहा । 6. ह्रीं अग्नये स्वाहा । 7. ह्रीं यमाय स्वाहा। 8. ह्रीं निर्ऋतये स्वाहा । 9. ह्रीं वरुणाय स्वाहा । 10. ह्रीं वायवे स्वाहा । 11. ह्रीं कुवेराय स्वाहा । 12. ह्रीं ईशानाय स्वाहा । 13. ह्रीं ब्रह्मणे स्वाहा । 14. ह्रीं अनन्ताय स्वाहा । 15. ह्रीं सूर्याय स्वाहा । 16. ह्रीं चन्द्राय स्वाहा । 17. ह्रीं मंगलाय स्वाहा । 18. ह्रीं बुधाय स्वाहा । 19. ह्रीं वृहस्पतये स्वाहा । 20. ह्रीं शुक्राय स्वाहा । 21. ह्रीं शनैश्चराय स्वाहा । 22. ह्रीं राहवे स्वाहा । 23. ह्रीं केतवे स्वाहा ।

इसके बाद बालक को वस्त्र से ढककर गुरु ब्रह्मचर्याभिमानी बालक से पूछे—'को वाश्रमस्ते ब्रूहि किं ते मनोगतम्?' पुत्र! तुम्हारा आश्रम कौन-सा है? तुम्हारा मनोगत भाव क्या है ? इस पर शिष्य सावधान होकर गुरु के दोनों चरणों को पकड़कर कहे—'करोतु मामाश्रमिण ब्रह्मविद्योपदेशतः' ब्रह्मविद्या का उपदेश देकर मुझे आश्रमी बनाइये । हे शिवे! इस प्रकार प्रार्थना करने वाले शिष्य के दाहिने कान में गुरु सर्वमन्त्रमय 'ॐ' तीन बार कहे, तब 'भुर्भुवः स्वः' का उच्चारण कर गायत्री मन्त्र को सुनाए ।। 199-211 ।।

गायत्री का उपदेश

ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तश्छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।
अधिष्ठात्री तु सावित्री मोक्षार्थे विनियोगिता ।। 212 ।।
आदौ तत्सवितुः पश्चाद्वरेण्यं पदमुच्चरेत् ।
भर्गःपदान्ते देवस्य धीमहीति पदं वदेत् ।। 213 ।।
ततस्तु परमेशानि ! धियो यो नः प्रचोदयात् ।
पुनः प्रणवमुच्चार्य सावित्र्यर्थं गुरुर्वदेत् ।। 214 ।।

त्र्यक्षरात्मकतारेण परेशः प्रतिपाद्यते ।
पाता हर्त्ता च संस्रष्टा यो देवः प्रकृतेः परः ॥ 215 ॥
असौ देवस्त्रिलोकात्मा त्रिगुणं व्याप्य तिष्ठति ।
अतो विश्वमयं ब्रह्मवाच्यं व्याहृतिभिस्त्रिभिः ॥ 216 ॥
तारव्याहृतिवाच्यो यः सावित्र्या ज्ञेय एव सः ।
जगद्रूपस्य सवितुः संस्रष्टुर्दीव्यतो विभोः ॥ 217 ॥
अन्तर्गतं महद्वर्च्चो वरणीयं यतात्मभिः ।
ध्यायेम तत्परं सत्यं सर्वव्यापि सनातनम् ॥ 218 ॥
यो भर्गः सर्वसाक्षीशो मनोबुद्धिन्द्रियाणि नः ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रेरयेद्विनियोजयेत् ॥ 219 ॥
इत्थमर्थयुतां ब्रह्मविद्यामादिश्य सद्गुरुः ।
शिष्यं नियोजयेद्देवि! गृहस्थाश्रमकर्मसु ॥ 220 ॥
ब्रह्मचर्योचितं वेषं वत्सेदानीं परित्यज ।
शाम्भवोदितमार्गेण देवान्पितॄन् समर्च्चय ॥ 221 ॥
ब्रह्मविद्योपदेशेन पवित्रं ते कलेवरम् ।
प्राप्ता गृहस्थाश्रमिता तदुक्तं कर्म कल्पय ॥ 222 ॥
उपवीतद्वयं दिव्यं वस्त्रालङ्करणानि च ।
गृहाण पादुकां छत्रं गन्धमाल्यानुलेपनम् ॥ 223 ॥

इस गायत्री के ऋषि सदाशिव, छन्द त्रिष्टुप्, देवता सविता और मोक्ष के लिये इसका विनियोग होता है । पहले 'तत् सवितुः' तब 'वरेण्यं' 'तब भर्गः', तब 'देवस्य धीमहि' तब 'धियो यो नः प्रचोदयात्' का उच्चारण करे । इस प्रकार पूरा मन्त्र होता है—ॐ भुर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । इसके बाद 'ॐ' कहकर गुरु शिष्य को गायत्री का अर्थ बताए । त्र्यक्षरात्मक ॐ परमेश्वर का वाचक है । सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्ता जो देव प्रकृति से भी श्रेष्ठ है, वही देव तीनों लोकों की आत्मा है । वह सत्त्व, रज, तम को व्याप्त करके वर्त्तमान है; अतः 'भुर्भुवः स्वः' इन तीन व्याहृतियों का वाच्य है, ब्रह्म है । जो प्रणव और व्याहृतियों का वाच्य है, जगत् का सृष्टिकर्त्ता, दीप्त्यादि क्रियाओं का आश्रय, विभु के अन्तर्गत वरणीय है; उसी सर्वव्यापी, सनातन, महाज्योति का ध्यान करता हूँ । यही महाज्योति सबका साक्षी ईश्वर है । यह हमारे मन, बुद्धि, सभी इन्द्रियों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में प्रेरित करे, नियोजित करे । हे देवि! सद्गुरु इसी प्रकार अर्थसहित ब्रह्मविद्या

का उपदेश करके शिष्य को गृहस्थाश्रम के कर्म में नियुक्त करे । श्लोक 221, 222, 223 में गृहस्थाश्रम प्रवेश का आदेश गुरु देता है । हे पुत्र! अब ब्रह्मचर्योचित वेश को छोड़ो । शम्भु द्वारा दर्शित मार्ग के अनुसार देवों और पितरों का अर्चन करो । ब्रह्मविद्या के उपदेश से तुम्हारा शरीर पवित्र हो गया है । तुम गृहस्थाश्रम में जाओ । उसके निर्दिष्ट कर्मों को करो । दो उपवीत, दो दिव्य वस्त्र, अलंकार, पादुका, छत्र, गन्ध, माला और अनुलेपन ग्रहण करो।। 212-223 ।।

गृहस्थाश्रम-धारण

ततः काषायवसनं कृष्णाजिनसमन्वितम् ।
यज्ञसूत्रं मेखलाञ्च दण्डं भिक्षाकरण्डकम् ।। 224 ।।
आचारादर्जितां भिक्षां समर्प्य गुरवे शिवे!।
शुद्धोपवीतयुगलं परिधायाम्बरे शुभे ।। 225 ।।
गन्धमाल्यधरस्तूष्णीं तिष्ठेदाचार्यसन्निधौ ।
ततो गृहस्थाश्रमिणं शिष्यमेतद्वमेतद्वदेद्गुरुः ।। 226 ।।
जितेन्द्रियः सत्यवादी ब्रह्मज्ञानपरो भव ।
स्वाध्यायाश्रमकर्माणि यथाधर्मेण साधय ।। 227 ।।
इत्यादिश्य द्विजं पश्चात्समुद्भवहुताशने ।
मायादिप्रणवान्तेन भूर्भुवःस्वस्त्रयेण च ।। 228 ।।
हावयित्वा त्रिधाचार्यः स्विष्टकृद्धोममाचरन् ।
दत्त्वा पूर्णाहुतिं भद्रे ! व्रतकर्म समापयेत् ।। 229 ।।

इसके बाद शिष्य कृष्णाजिन से युक्त कषाय वस्त्र, यज्ञ सूत्र, मेखला, दण्ड, भिक्षापात्र और आचार के अनुसार उपार्जित भिक्षा गुरुदेव को समर्पित करे । शुद्ध दो यज्ञोपवीत और उत्तम दो वस्त्रों को पहन कर गन्ध और माला धारण कर आचार्य के पास मौन होकर बैठे । आचार्य गृहस्थाश्रमी से श्लोक 227 को सुनावें । तुम जितेन्द्रिय, सत्यवादी और ब्रह्मज्ञान में तत्पर होओ । धर्मशास्त्र का लङ्घन न करके अध्ययन करो । गृहस्थाश्रम के सभी कर्मों का पालन करो । द्विज शिष्य को गुरु इस प्रकार का आदेश देकर 'ह्रीं भुर्भुवः स्वः ॐ स्वाहा' मन्त्र से समुद्भव नामक अग्नि में तीन बार हवन कराकर स्विष्टकृत् हवन करे । हे भद्रे! पूर्णाहुति देने के बाद उपनयन क्रिया समाप्त करे ।। 224-229 ।।

ब्राह्म विवाह-विधान

जीवसेकादिसंस्कारा व्रतान्तः पितृतो नव ।
उद्वाहः पितृतो वापि स्वतोऽपि सिध्यति प्रिये !।। 230 ।।
विवाहेऽह्नि कृतस्नानः कृतनित्यक्रियः कृती !
पञ्च देवान्समभ्यर्च्च्य गौर्यादिमातृकास्तथा ।
वसोर्धारां कल्पयित्वा वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ।। 231 ।।
रात्रौ प्रतिश्रुतं पात्रं गीतवाद्यपुरःसरम् ।
छायामण्डपमानीय उपवेश्य वरासने ।। 232 ।।
वासवाभिमुखं दाता पश्चिमाभिमुखो विशेत् ।
आचम्य स्वस्तिऋद्धिं च कथयेद्ब्राह्मणैः सह ।। 233 ।।
साधुप्रश्नं वरं पृच्छेदर्च्चनाप्रश्नमेव च ।
वरात्प्रश्नोत्तरं नीत्वा पाद्यार्घ्यैर्वरमर्च्चयेत् ।। 234 ।।
समर्पयामि वाक्येन देयद्रव्यं समर्पयेत् ।
पादयोरर्पयेत्पाद्यं शिरस्यर्घ्यं निवेदयेत् ।। 235 ।।
आचम्य वदने दद्याद्गन्धं माल्यं सुवाससी ।
दिव्याभरणरत्नानि यज्ञसूत्रं समर्पयेत् ।। 236 ।।
ततस्तु भाजने कांस्ये कृत्वा दधि घृतं मधु ।
समर्पयामि वाक्येन मधुपर्कं करेऽर्पयेत् ।। 237 ।।
वरोऽपि पात्रमादाय वामे पाणौ निधाय च ।
दक्षाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां प्राणाहुत्युक्तमन्त्रकैः ।। 238 ।।
पञ्चधाघ्राय तत्पात्रमुदीच्यां दिशि धारयेत् ।
मधुपर्क्कं समर्प्यैवं पुनराचामयेद्वरम् ।। 239 ।।
दूर्वाक्षताभ्यां जामातुर्विधृत्य जानुदक्षिणम् ।
स्मृत्वा विष्णुं तत्सदिति मासपक्षतिथीस्ततः ।। 240 ।।
समुल्लिख्य निमित्तानि वृणुयाद्वरमुत्तमम् ।
गोत्रप्रवरनामानि प्रत्येकं प्रपितामहात् ।। 241 ।।
षष्ठ्यन्तानि समुच्चार्य वरस्य जनकावधि ।
द्वितीयान्तं वरं ब्रूयाद्गोत्रप्रवरनामभिः ।। 242 ।।
तथैव कन्यामुल्लिख्य ब्राह्मोद्वाहेन पण्डितः ।
दातुं भवन्तमित्युक्त्वा वृणेऽहमिति कीर्तयेत् ।। 243 ।।

हे प्रिये! जीवसेक से लेकर उपनयन तक के नव संस्कार पिता द्वारा ही सम्पन्न हो सकते हैं । उद्वाह संस्कार पिता करे या स्वयं करे । कार्यकुशल

मनुष्य विवाह के दिन स्नान के बाद नित्य कर्म करके पञ्चदेवों की पूजा करके गौरी आदि षोड़श मातृकाओं का पूजन करे । तब वसुधारा देकर वृद्धिश्राद्ध करे । पहले से निश्चित वर के गीत-वाद्य के साथ निशाकाल में आने पर उसे छायामण्डप में लाकर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठाए । कन्यादाता पश्चिम की ओर मुख करके बैठे । कन्यादाता पहले आचमन कर ब्राह्मणों के साथ स्वस्ति और ऋद्धि का पाठ करे । कन्यादाता वर से कुशलप्रश्न और अर्चनाप्रश्न करके उत्तर पाकर पाद्यादि से वर का अर्चन करे । 'समर्पयामि' कह कर देय द्रव्य प्रदान करे । मुख में आचमनीय देकर दो वस्त्र, गन्ध, माला, उत्तम आभूषण, रत्न और यज्ञसूत्र समर्पित करे । तब काँसे के वर्तन में दही, घी और मधु मिलाकर 'मधुपर्कं समर्पयामि' कहकर हाथ में मधुपर्क प्रदान करे । तब वर उस मधुपर्क पात्र को लेकर बाँयें हाथ में रखकर प्राणाहुति मन्त्र 'प्राणाय स्वाहा' इत्यादि कहकर दाँयें हाथ के अंगूठे और अनामिका से पाँच बार सूँघकर उस पात्र को उत्तर दिशा में रख दे । इस प्रकार मधुपर्क समर्पित करके वर को आचमन कराए । तब दूब और अक्षत हाथ में लेकर जामाता के दाँयें जानु को पकड़कर विष्णु का स्मरण करते हुए 'तत्सत्' कहते हुए मास-पक्ष और तिथि का उल्लेख करे । वर के परबाबा और पिता तक के गोत्र-प्रवरसहित षष्ठ्यन्त नाम का उच्चारण करे । इसी प्रकार गोत्र-प्रवरादि-सहित द्वितीयान्त वरनाम का उल्लेख करके वर का वरण करे । तब इसी प्रकार कन्या के परबाबा से पिता तक के तीन पुरखों के षष्ठ्यन्त नाम-गोत्र और प्रवर के सहित उच्चारण करके गोत्र-प्रवरसहित द्वितीयान्त कन्या के नाम का उल्लेख करके कन्यादाता कहे— 'ब्राह्मोद्वाहेन दातुं भवन्तं वृणेऽहम् ।' ब्राह्म विवाह द्वारा कन्यादान करने के लिये मैं तुम्हारा वरण करता हूँ ।। 230-243 ।।

वृतोऽस्मीति वरो ब्रूयात्ततो दाता वदेद्वरम् ।
यथाविहितमित्युक्त्वा विवाहं कर्म कुर्विति ।
वरो ब्रूयाद्यथाज्ञानं करवाणि तदुत्तरम् ।। 244 ।।
ततः कन्यां समानीय वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ।
वस्त्रान्तरेण सञ्छाद्य स्थापयेद्वरसम्मुखम् ।। 245 ।।
पुनर्वरं समभ्यर्च्य वासोऽलङ्करणादिभिः ।
वरस्य दक्षिणे पाणौ कन्यापाणिं नियोजयेत् ।। 246 ।।
तन्मध्ये पञ्चरत्नानि फलताम्बूलमेव वा ।
दत्त्वार्च्चयित्वा तनयां वराय विदुषेऽर्पयेत् ।। 247 ।।

प्राग्वत्त्रिपुरुषाख्यानं निमित्ताख्यानमेव च ।
आत्मनः काममुद्दिश्य चतुर्थ्यन्तं वरं वदेत् ।। 248 ।।
कन्याभिधां द्वितीयान्तामर्च्चितां समलङ्कृताम् ।
साच्छादनां प्रजापतिदेवताकामुदीरयन् ।। 249 ।।
तुभ्यमहमिति प्रोच्य दद्यात्सम्प्रददे वदन् ।
वरः स्वस्तीति स्वीकुर्यात्सम्प्रदाता वरं वदेत् ।। 250 ।।
धर्मे चार्थे च कामे च भवता भार्यया सह ।
वर्त्तितव्यं वरो बाढमुक्त्वा कामस्तुतिं पठेत् ।। 251 ।।
दाता कामो गृहीतापि कामायादाच्च कामिनीम् ।
कामेन त्वां प्रगृह्णामि कामः पूर्णोऽस्तु चावयोः ।। 252 ।।
ततो वदेत्सम्प्रदाता कन्यां जामातरं प्रति ।
प्रजापतिप्रसादेन युवयोरभिवाञ्छितम् ।।
पूर्णमस्तु शिवञ्चास्तु धर्मं पालयतं युवाम् ।। 253 ।।

इसके बाद वर कहे—'वृतोऽस्मि' मैं वृत होता हूँ । तब कन्यादाता वर से कहे—'यथाविहितं विवाहकर्म कुरु' विधि के अनुसार विवाहकर्म करो । उत्तर में वर कहे—'यथाज्ञानं करवाणि।' मैं अपने ज्ञान के अनुसार करता हूँ ।

तब वस्त्र और अलंकार से विभूषित कन्या को लाकर दूसरे वस्त्र से आच्छादित करे । उसे वर के सामने बैठाये । कन्यादाता पुनः वस्त्रालङ्कार आदि से वर की पूजा करके वर के दाँयें हाथ में कन्या का हाथ रक्खे । कन्या के हाथ में फल-पान और पञ्चरत्न देकर पूजा करे । वर को कन्या समर्पित करे । सर्मपण करते समय पहले अपनी कामना का उल्लेख कर तीन पुरखों के नामोल्लेखपूर्वक कारण का वर्णन कर वर के नाम में चतुर्थी विभक्ति लगाकर फिर तीन पुरखों के नामोल्लेखपूर्वक कन्या के द्वितीयान्त नाम के बाद निम्न पद का उच्चारण करे—'अर्चितां समलंकृतां साच्छादनां प्रजापति देवता काम अमुकीं देवीमेनां कन्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे' ।

कन्यादान मन्त्र इस प्रकार का होता है—विष्णुः ॐ तत्सत् ॐ अद्यामुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकाभीष्टार्थसिद्धिकामो अमुकगोत्रः श्रीमदमुकशर्मामुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्राय, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्राय, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पुत्राय अमुकगोत्रायामुकप्रवराय श्रीमते अमुकदेवशर्मणे वरायः

अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेव शर्मणः पुत्रीम्, अमुकगोत्रामुकप्रवरामर्चितां समलंकृतां साच्छादनां प्रजापतिदेवताकां अमुकीं देवीमेनां कन्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे ।

तब वर 'स्वस्ति' कहकर कन्या को ग्रहण करे । कन्यादाता वर से कहे—'धर्मे अर्थे कामे च भवता भार्यया सह वर्त्तितव्यम् ।' तुम धर्म-अर्थ और कामविषयक सभी बातों में भार्या के साथ मिल कर कार्य करना । वर उत्तर दे—'वाढं वर्तितव्यम्' । मैं ऐसा ही करूँगा । तब कामस्तुति का पाठ करे । श्लोक 252 कामस्तुति है । काम सम्प्रदान करता है । काम ही प्रतिग्रह करता है । काम ही कामहेतु कामिनी को ग्रहण करता है । हे भार्ये! मैं काम के हेतु तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हम दोनों के काम पूर्ण हों ।

इसके बाद कन्यादाता कन्या और जामाता से कहे—

प्रजापतिप्रसादेन युवयोरभिवाञ्छितम् ।
पूर्णमस्तु शिवं चास्तु धर्मं पालयतां युवाम् ।।

प्रजापति के प्रसाद से तुम दोनों का अभीष्ट पूरा हो । तुम दोनों का कल्याण हो । तुम दोनों एकत्र होकर धर्म का पालन करो ।। 244-253 ।।

तत आच्छाद्य वस्त्रेण सम्प्रदाता सुमङ्गलैः ।
परस्परशुभालोकं कारयेद्वरकन्ययोः ।। 254 ।।
ततो हिरण्यरत्नानि यथाशक्त्यनुसारतः ।
जामात्रे दक्षिणां दद्यादच्छिद्रमवधारयेत् ।। 255 ।।
वरस्तु भार्यायाः सार्द्धं तद्रात्रौ दिवसेऽपि वा ।
कुशकण्डिकोक्तविधिना वह्निस्थापनमाचरेत् ।। 256 ।।
योजकाख्यः पावकोऽत्र प्राजापत्यश्चरुः स्मृतः ।
धारान्तं कर्म सम्पाद्य दद्यात्पञ्चाहुतीर्वरः ।। 257 ।।
शिवं दुर्गां तथा विष्णुं ब्रह्माणं वज्रधारिणम् ।
ध्यात्वैकैकं समुद्दिश्य जुहुयात्संस्कृतेऽनले ।। 258 ।।
भार्यायाः पाणियुगलं गृह्णीयादित्युदीरयन् ।
पाणिं गृह्णामि सुभगे! गुरुदेवरता भव ।
गार्हस्थ्यं कर्म धर्मेण यथावदनुशीलय ।। 259 ।।

घृतेन स्वामिदत्तेन लाजैर्भ्रात्राहृतैः शिवे ।
प्रजापतिं समुद्दिश्य दद्याद्वेदाहुतीर्वधूः ॥ 260 ॥
प्रदक्षिणीकृत्य वह्निमुत्थाय भार्यया सह ।
दुर्गां शिवं रमां विष्णुं ब्राह्मीं ब्रह्माणमेव च ।
युग्मं युग्मं समुद्दिश्य त्रिस्त्रिधा हवनं चरेत् ॥ 261 ॥
अश्ममण्डलिकासप्तारोहौ कुर्यादमन्त्रकम् ।
निशायां चेत्तदा स्त्रीभिः पश्येद्ध्रुवमरून्धतीम् ॥ 262 ॥
प्रत्यावृत्त्यासने सम्यगुपविश्य वरस्तदा ।
स्विष्टकृद्धोमतः पूर्णाहुत्यन्तेन समापयेत् ॥ 263 ॥
ब्राह्मो विवाहो विहितो दोषहीनः सवर्णया ।
कुलधर्मानुसारेण गोत्रभिन्नासपिण्डया ॥ 264 ॥
ब्राह्मोद्वाहेनया ग्राह्या सैव पत्नी गृहेश्वरी ।
तदनुज्ञां विना ब्राह्मविवाहं नाचरेत्पुनः ॥ 265 ॥
तस्या अपत्ये तद्वंशे विद्यमाने कुलेश्वरि ।
शैवोद्भवान्यपत्यानि दायार्हाणि भवन्ति न ॥ 266 ॥
शैवास्तदन्वयाश्चैव लभेरन्धनभाजिनः ।
यथाविभवमाच्छादं ग्रासञ्च परमेश्वरि! ॥ 267 ॥

इसके बाद दाता मंगल गीत-वाद्य-शंखध्वनि के साथ कन्या और वर को वस्त्र से आच्छादित कर परस्पर शुभ दृष्टि कराए । फिर जामाता को यथाशक्ति स्वर्ण और रत्न की दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करे । उसी रात में या अगले दिन वर को भार्या के साथ कर कुशण्डिकोक्त विधि से अग्निस्थापन करे । इस स्थल में 'याजक' नामक अग्नि और 'प्राजापत्य' नामक चरु निर्दिष्ट है । वर धाराहोम तक समस्त कार्य सम्पन्न कर पाँच आहुतियाँ अग्नि में डाले । शिव, दुर्गा, विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र—इन पाँच देवों का ध्यान करके प्रत्येक के लिये एक-एक आहुति संस्कृत अग्नि में डाले । निम्न मन्त्र पढ़ते हुए वर भार्या के दोनों हाथों को पकड़े—

पाणिं गृह्णामि सुभगे! देव-गुरुरता भव ।
गार्हस्थ्यं कर्म धर्मेण यथावदनुशीलय ।।

हे सुभगे! मैं तुम्हारा पाणिग्रहण करता हूँ । तुम गुरु और देवता की भक्त होकर धर्मानुसार यथाविधि गृहस्थी के कार्य करो । हे शिवे! तब वधू स्वामी द्वारा दिये घृत और भाई के द्वारा दिए गए लावा से प्रजापति के लिये चार

आहुति प्रदान करे । तब वर भार्या के साथ खड़े होकर अग्नि की प्रदक्षिणा करे । दुर्गा-शिव, लक्ष्मी-विष्णु, सरस्वती-ब्रह्मा—इन तीन दम्पतियों में से प्रत्येक दम्पति के लिये तीन-तीन आहुतियाँ प्रदान करे । इसके बाद शिलारोहण और सप्तपद गमन करे । यदि विवाह की रात में ही कुशण्डिका हो तो वर-वधू स्त्रियों के साथ होकर अरुन्धती का दर्शन करें । तब लौटकर वर आसन पर बैठकर स्विष्टकृत् होम से लेकर पूर्णाहुति तक के सभी कर्म को समाप्त करे ।

भिन्नगोत्रा, असपिण्डा, सवर्णा के साथ कुल-धर्म के अनुसार ब्राह्म विवाह करना निर्दोष माना जाता है । जो भार्या ब्राह्मविवाह से परिगृहीता है, वही गृहस्वामिनी होती है । इस पत्नी की अनुमति के विना कोई भी पुनः ब्राह्म विवाह नहीं कर सकता । हे कुलेश्वरि! ब्राह्म विवाह से विवाहिता पत्नी के गर्भ से उत्पन्न सन्तान या उसके वंश का कोई विद्यमान हो तो शैव विवाह से विवाहिता भार्या के गर्भ से उत्पन्न सन्तान धन की अधिकारी नहीं हो सकती । हे परमेश्वरि! शैव विवाह से विवाहिता स्त्री के गर्भ से उत्पन्न सन्तान या उसके वंश की सन्तानें धनाधिकारी व्यक्ति की सम्पत्ति के अनुसार उससे भोजन-वस्त्र पा सकती हैं । 254-267 ।।

शैवविवाह-विधि

शैवो विवाहो द्विविधः कुलचक्रे विधीयते ।
चक्रस्य नियमेनैको द्वितीयो जीवनावधि ।। 268 ।।
चक्रानुष्ठानसमये स्वगणैः शक्तिसाधकैः ।
परस्परेच्छयोद्वाहं कुर्याद्वीरः समाहितः ।। 269 ।।
भैरवीवीरवृन्देषु स्वाभिप्रायं निवेदयेत् ।
आवयोः शाम्भवोद्वाहे भवद्भिरनुमन्यताम् ।। 270 ।।
तेषामनुज्ञामादाय जप्त्वा सप्ताक्षरं मनुम् ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या प्रणमेत्कालिकां पराम् ।। 271 ।।
ततो वदेत्तां रमणीं कौलानां सन्निधौ शिवे!।
अकैतवेन चित्तेन मतिभावेन मां वृणु ।। 272 ।।
गन्धपुष्पाक्षतैर्वृत्वा सा कौला दयिता ततः ।
सुश्रद्दधाना देवेशि! करं दद्यात्करोपरि ।। 273 ।।
ततोऽभिषिञ्चेच्चक्रेशो मन्त्रेणानेन दम्पती ।

तदा चक्र स्थिताः कौला ब्रूयुः स्वस्तीति सादरम् । 274 ॥
राजराजेश्वरी काली तारिणी भुवनेश्वरी ।
बगला कमला नित्या युवां रक्षन्तु भैरवी ॥ 275 ॥
अभिषिञ्चेद्द्वादशधा मधुना वार्घ्यपायसा ।
ततस्तौ प्रणतौ विद्वाञ्छ्रावयेद्वाग्भवं रमाम् ॥ 276 ॥
यद्यदङ्गीकृतं तत्र ताभ्यां पाल्यं प्रयत्नतः ।
शाम्भवोक्तविधानेन कुलीनाभ्यां कुलेश्वरि ॥ 277 ॥
वयोवर्णविचारोऽत्र शैवोद्वाहे न विद्यते ।
असपिण्डां भर्तृहीनामुद्वहेच्छम्भुशासनात् ॥ 278 ॥
परिणीता शैवधर्मे चक्रनिर्धारणेन या ।
अपत्यार्थी ऋतुं दृष्ट्वा चक्रातीते तु तां त्यजेत् ॥ 279 ॥
शैवभार्योद्भवापत्यमनुलोमेन मातृवत् ।
समाचरेद्विलोमेन तत्तु सामान्यजातिवत् ॥ 280 ॥
एषां सङ्करजातीनां सर्वत्र पितृकर्मसु ।
भोज्यप्रदानं कौलानां भोजनं विहितं भवेत् ॥ 281 ॥
नृणां स्वभावजं देवि प्रियं भोजनमैथुनम् ।
संक्षेपाय हितार्थाय शैवधर्मे निरूपितम् ॥ 282 ॥
अत एव महेशानि! शैवधर्मनिषेवणात् ।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्रभुर्भवति नान्यथा ॥ 283 ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-
सदाशिवसंवादे कुशकण्डिका-दशविधसंस्कार-
विधिर्नाम नवमोल्लासः

❖

शैव विवाह दो प्रकार का होता है । कुलचक्र में यह विवाह हो सकता है । पहले प्रकार का शैव विवाह चक्र के नियमानुसार होता है । दूसरे प्रकार का विवाह यावज्जीवन स्थायी होता है । चक्रानुष्ठान में वीराचारी एकाग्रचित्त से शक्तिसाधकों और स्वजनों के बीच परस्पर इच्छा से विवाह करे । इसके लिये भैरवियों और वीराचारी साधकों से अपना मनोरथ निवेदन करे । जैसे—'आवयोः शाम्भवोद्वाहे भवद्भिरनुमन्यताम् ।' हम दोनों के शैव विवाह के लिये आप लोग अनुमति प्रदान करें । इस प्रकार उनकी अनुमति लेकर सप्ताक्षर मन्त्र 'परमेश्वरि स्वाहा' का जप एक सौ आठ बार करके परमा काली को प्रणाम

करे । हे शिवे! तब कौलवर्ग के सामने उस रमणी से कहे—'अकैतवेन चित्तेन पतिभावेन मां वृणु ।' अपने चित्त में कोई कपट न रखकर पतिभाव से मुझे वरण करो । हे देवेशि! तब वह कौल कामिनी बड़ी श्रद्धा के साथ गन्ध-पुष्प-अक्षत से प्रियतम पति का वरण कर उसके हाथ में अपना हाथ रक्खे । तब चक्रेश्वर निम्न मन्त्र से उस दम्पति का अभिषेक करे । उस समय चक्र में उपस्थित सभी वीर साधक आदर के साथ 'स्वस्ति' कहें । श्लोक 275 अभिषेकमन्त्र है । राजराजेश्वरी, काली, तारिणी, भुवनेश्वरी, बगला, कमला, नित्या और भैरवी तुम्हारी रक्षा करें । इस मन्त्र का पाठ करते हुए मद्य अथवा अर्घ्यजल से उन दोनों का बारह बार अभिषेक करे । तब वह दम्पति प्रणाम करे । ज्ञानी चक्रेश्वर उन्हें 'ऐं श्रीं' मन्त्र का श्रवण कराए । हे कुलेश्वरि! वह कुलीन दम्पति उस शैवविवाह स्थल में जो-जो स्वीकार करे, उसका पालन शिवोक्त विधानानुसार यत्नपूर्वक करता रहे । इस शैव विवाह में आयु और वर्ण का विचार नहीं है । शम्भु के आदेशानुसार यह विवाह विधवा, असपिण्डा स्त्री से ही होना चाहिये । जो स्त्री शैव धर्मचक्र के नियमानुसार विवाहिता है, सन्तानार्थी वीर उसके नियमित ऋतुकाल को देखकर चक्र की निवृत्तिकाल में उसका परित्याग कर सकता है । वर उच्च जाति का हो और कन्या निम्न जाति की हो तो इस कन्या की सन्तान माता की जाति के अनुरूप ही व्यवहार में मानी जायगी । वर निम्न जाति का हो और कन्या उच्च जाति की हो तो उसके गर्भ से उत्पन्न सन्तान को सामान्य जाति का समझा जायगा । इन सभी संकर जाति वालों के पितृश्राद्धादि में कौलों को भोज्य द्रव्य देना और भोजन कराना होगा । हे देवि! भोजन और मैथुन मनुष्यों को स्वभाव से ही प्रिय हैं । अतएव उनके संक्षेप के लिये और हितसाधन के लिये शैव धर्म में उनकी सीमा निर्दिष्ट की गई है । हे महेश्वरि! इसीलिये शिव-प्रवर्तित धर्म का सेवन करने से मनुष्य धर्म अर्थ-काम और मोक्ष का पूर्ण अधिकारी होता है । इसमें सन्देह नहीं है ।। 268-284 ।।

कुशकण्डिकादशसंस्कारविधिनामक नवम उल्लास सम्पूर्ण

❖

दशम उल्लास

वृद्धिश्राद्ध-पूर्णाभिषेक आदि का वर्णन

नित्यनैमित्तिक क्रियाविधि

कुशण्डिकाविधिर्नाथ! संस्काराश्च दश श्रुता: ।
वृद्धिश्राद्धविधिं देव! कृपया मे प्रकाशय ।। 1 ।।
कस्मिन्कस्मिंश्च संस्कारे प्रतिष्ठासु च कास्वपि ।
कुशण्डिकाविधानञ्च वृद्धिश्राद्धञ्च शङ्कर! ।। 2 ।।
कर्त्तव्यं वा न कर्त्तव्यं तन्ममाचक्ष्व तत्त्वत: ।
मत्प्रीतये महेशान! जीवानां मङ्गलाय च ।। 3 ।।
जीवसेकाद्विवाहान्तदशसंस्कारकर्मसु ।
यत्र यद्विहितं भद्रे! सविशेषं प्रकीर्त्तितम् ।। 4 ।।
तदेव कार्यं मनुजैस्तत्त्वज्ञैर्हितमिच्छुभि: ।
अन्यत्र यद्विधातव्यं तच्छृणुष्व वरानने! ।। 5 ।।
वापीकूपतडागानां देवप्रतिकृतेस्तथा ।
गृहारामव्रतादीनां प्रतिष्ठाकर्मसु प्रिये! ।। 6 ।।
सर्वत्र पञ्चदेवानां मातृणामपि पूजनम् ।
वसोर्धारा च कर्त्तव्या वृद्धिश्राद्धकुशण्डिके ।। 7 ।।
स्त्रीणां विधेयकृत्येषु वृद्धिश्राद्धं न विद्यते ।
देवतापितृतृप्त्यर्थं भोज्यमेकं समुत्सृजेत् ।। 8 ।।
देवमात्रार्चनं तत्र वसुधारा कुशण्डिका ।
भक्त्या स्त्रिया विधातव्या ऋत्विजा कमलानने! ।। 9 ।।
पुत्रश्च पौत्रो दौहित्रो ज्ञातयो भगिनीसुत: ।
जामातर्त्विग्दैवपैत्र्ये शस्ता: प्रतिनिधौ शिवे! ।। 10 ।।

देवी ने कहा कि हे नाथ! आपने दस प्रकार के संस्कारों और कुशण्डिका विधि का वर्णन किया । अब कृपा करके मुझे वृद्धिश्राद्ध का विधान बताइये । हे शंकर! किस संस्कार में अथवा किस प्रतिष्ठाकर्म में कुशण्डिका और

वृद्धिश्राद्ध करना है और कहाँ नहीं करना है ? यह सब मेरी प्रसन्नता तथा जीवों के कल्याण के लिये ठीक-ठीक बताइये ।

श्री सदाशिव ने कहा कि हे भद्रे! गर्भाधान से विवाह तक के दस संस्कारों में जो कार्य जिसमें विहित है, उन सबों को मैं विशेषतः कहता हूँ । हे वरानने! मैंने उक्त प्रकार से जिस स्थान पर जैसी विधि बताई है, कल्याणकामी तत्त्वज्ञ लोग उसी प्रकार अनुष्ठान करें । उससे भिन्न अन्य स्थलों पर जैसी विधि है, वह कहता हूँ; सुनो ।

हे प्रिये! वापी, कूप, तडाग, देवप्रतिमा, गृह, उद्यान, व्रत आदि सभी प्रतिष्ठाकार्यों में पञ्चदेवपूजन, मातृकापूजन, वसुधारा, वृद्धिश्राद्ध और कुशण्डिका करना चाहिये । जो कर्म स्त्रियों द्वारा होते हैं, उनमें वृद्धिश्राद्ध नहीं होता । देवताओं और पितरों की वृद्धि के लिये एक भोज होता है । स्त्रियाँ पुरोहित के द्वारा भक्तिपूर्वक देवपूजा, षोडश मातृकापूजन, वसुधारा और कुशण्डिका करावें । हे शिवे! देव और पितृकर्मों में पुत्र, पौत्र, दौहित्र, भागिनेय, जामाता और पुरोहित को प्रतिनिधि बनाना प्रशस्त है ।। 1-10 ।।

वृद्धिश्राद्ध

वृद्धिश्राद्धं प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणु कालिके!।। 11 ।।
कृत्वा नित्योदितं कर्म मानवः सुसमाहितः ।
गङ्गां यज्ञेश्वरं विष्णुं वास्त्वीशं भूपतिं यजेत् ।। 12 ।।
ततो दर्भमयान्विप्रान्कल्पयेत्प्रणवं स्मरन् ।
पञ्चभिर्नवभिर्वापि सप्तभिस्त्रिभिरेव वा ।। 13 ।।
निर्गर्भैञ्च कुशैः साग्रैर्दक्षिणावर्त्तयोगतः ।
सार्द्धद्वयावर्त्तनेन ऊद्ध्वाग्रैरर्चयेद्द्विजान् ।। 14 ।।
वृद्धिश्राद्धे पार्वणादौ षड्विप्राः परिकीर्त्तिताः ।
एकोद्दिष्टे तु कथित एक एव द्विजः शिवे! ।। 15 ।।
ततो विप्रान्कुशमयानेकस्मिन्नेव भाजने ।
कौबेराभिमुखान्कृत्वा स्नापयेदमुना सुधीः ।। 16 ।।
ह्रीं शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयो रभिस्त्रवन्तु नः ।। 17 ।।
ततस्तु गन्धपुष्पाभ्यां पूजयेत्कुशभूसुरान् ।। 18 ।।
पश्चिमे दक्षिणे चैव युग्मयुग्ममात्सुधीः ।

षट्पात्राणि सदर्भाणि स्थापयेत्तुलसीतिलैः ।। 19 ।।
पात्रद्वये पश्चिमायां याम्ये पात्रचतुष्टयम् ।
पूर्वास्यानुत्तरमुखान्षड्विप्रानुपवेशयेत् ।। 20 ।।
दैवपक्षं पश्चिमायां दक्षिणे वामयाम्ययोः ।
पितुर्मातामहस्यापि पक्षौ द्वौ विद्धि पार्वति!।। 21 ।।
नान्दीमुखाश्च पितरो नान्दीमुख्यश्च मातरः ।
मातामहादयोऽप्येवं मातामह्यादयोऽपि च ।
श्राद्धे नाम्न्याभ्युदयिके समुल्लेख्या वरानने! ।। 22 ।।

हे कालिके! वृद्धिश्राद्ध को बतलाता हूँ; सुनो । नित्यकर्म करके एकाग्र होकर गंगा, यज्ञेश्वर विष्णु, वास्तुदेव और भूस्वामी की पूजा करे । प्रणव का स्मरण करते हुए कुश का ब्राह्मण बनाए । पाँच, नौ, सात या तीन कुशपत्र को लेकर उन्हें दक्षिणावर्त्त ढाई बार लपेटकर बाँटने से कुश के ब्राह्मण की रचना होती है । वृद्धि- श्राद्ध में और पार्वणादि श्राद्धों में छः ब्राह्मणों की विधि है । एकोद्दिष्ट श्राद्ध में एक ही ब्राह्मण के होने का कथन है । उन कुशमय ब्राह्मणों को एक पात्र मे उत्तरमुख रक्खे और निम्न मन्त्र से उन्हें स्नान कराये—

ह्रीं शन्नो देवीरभीष्टये शन्नो भवन्तु पीतये शंयोरभिश्रवन्तु नः ।

जलदेवता हमारे अभीष्ट की सिद्धि के लिये मंगल करें । हमारे पीने के लिये मंगल करें । हम पर सब प्रकार के कल्याण की वर्षा करें ।

इसके बाद कुशमय ब्राह्मणों की पूजा गन्ध-पुष्प से करे । तब पश्चिम और दक्षिण दिशा में छः पात्र स्थापित करे । उनमें तिल और दो-दो तुलसीपत्र रक्खे । पश्चिम में स्थापित दो पात्रों में और दक्षिण में स्थापित चार पात्रों में क्रमशः पूर्वमुख और उत्तर- मुख करके छः ब्राह्मणों को बिठाये । हे पार्वति! पश्चिम में देवपक्ष, दक्षिण में बाँईं ओर पितृपक्ष और दाँईं और मातामहपक्ष जाने । हे वरानने! आभ्युदयिक श्राद्ध में पितरों को 'नान्दीमुख' और माताओं को 'नान्दीमुखी' रूप में उल्लिखित करे । मातामह और मातामही का भी उल्लेख इसी प्रकार करे ।। 11-22 ।।

दक्षावर्त्तेनोत्तरास्यो दैवं कर्म समाचरेत् ।
वामावर्त्तेन दक्षास्यः पितृकर्माणि साधयेत् ।। 23 ।।
सर्वकर्म प्रकुर्वीत दैवादिक्रमतः शिवे! ।
लङ्घनान्मातृमातॄणां श्राद्धं तद्विफलं भवेत् ।। 24 ।।

कौबेराभिमुखोऽनुज्ञावाक्यं दैवे प्रकल्पयेत् ।
याम्यास्य: कल्पयेद्वाक्यं पित्रे मातामहेऽपि च ।
तत्रादौ दैवपक्षे तु वाक्यं शृणु शुचिस्मिते ।। 25 ।।
कालादीनि निमित्तानि समुल्लिख्य ततः परम् ।
तत्तत्कर्माभ्युदयार्थमुक्त्वा साधकसत्तमः ।। 26 ।।
पित्रादीनां त्रयाणां तु मात्रादीनां तथैव च ।
मातामहानां च मातामह्यादीनामपि प्रिये! ।। 27 ।।
षष्ठ्यन्तं कीर्त्तयेन्नाम गोत्रोच्चारणपूर्वकम् ।
विश्वेषाञ्चैव देवानां श्राद्धं पदमुदीरयेत् ।। 28 ।।
कुशांनिर्मितयोः पश्चाद्विप्रयोरहमित्यपि ।
करिष्ये परमेशानीत्यनुज्ञावाक्यमीरितम् ।। 29 ।।
विश्वान्देवान्परित्यज्य पितृपक्षे तु पार्वति! ।
तथा मातामहस्यापि पक्षेऽनुज्ञा प्रकीर्त्तिता ।। 30 ।।
ततो जपेद्ब्रह्मविद्यां गायत्रीं दशधा शिवे!।। 31 ।।
देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।
नमोऽस्तु पुष्ट्यै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति ।। 32 ।।
पठित्वैनं त्रिधा हस्ते जलमादाय सत्तमः ।
वं हूं फडिति मन्त्रेण श्राद्धद्रव्याणि शोधयेत् ।। 33 ।।
आग्नेय्यां पात्रमेकन्तु संस्थाप्य कुलनायिके ।
रक्षोघ्नममृतं प्रोच्य यज्ञरक्षां कुरुष्व मे ।
इत्युक्त्वा भाजने तस्मिंस्तुलसीदलसंयुतम् ।। 34 ।।
निधाय सलिलं देवि! देवादिक्रमतः सुधीः ।
विप्रेभ्यो जलगण्डूषं दत्त्वा दद्यात्कुशासनम् ।। 35 ।।
तत आवाहयेद्विद्वान्विश्वान्देवान्पितंस्तथा ।
मातुर्मातामहांश्चापि तथा मातामहीः शिवे! ।। 36 ।।

देवकर्म उत्तरमुख होकर दक्षिणावर्त्त क्रम से और पितृकर्म दक्षिणमुख होकर वामावर्त्त क्रम से करे । हे शिवे! माता की माता-पितादि (नाना-नानी) का लंघन करके श्राद्ध करने से वह निष्फल होता है । तात्पर्य यह है कि पितृकर्म में दक्षिणावर्त्त क्रम से दक्षिणमुख न होवे । देवकर्म के समय उत्तरमुख होकर अनुज्ञावाक्य का पाठ करे । पितृ तथा मातामहादि के कर्म के समय दक्षिणमुख होकर अनुज्ञावाक्य का पाठ करे । हे शुचिस्मिते! पहले दैवपक्ष के अनुज्ञावाक्य को सुनो—

विष्णुरों तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुककर्माभ्युदयार्थं अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितुरमुकदेवशर्मणः अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य प्रपितामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या मातुरमुकीदेव्याः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्याः पितामह्याः अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्रायाः नान्दीमुख्याः प्रपितामह्याः अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य मातामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य प्रमातामहस्य अमुकदेवशर्मणः अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य वृद्धप्रमातामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रायाः नान्दीमुख्या मातामह्या अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्रायाः नान्दीमुख्याः प्रमातामह्या अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या वृद्धप्रमातामह्याः अमुकीदेव्याश्च विश्वेषा देवा नामाभ्युदयिकश्राद्धं कुशनिर्मितयोर्ब्राह्मणयोरहं करिष्ये ।

हे पार्वति! पितृत्रय और मातामहत्रय के नामों के साथ 'विश्वेषां देवानां' पद का उच्चारण न करे । इसके बाद ब्रह्मविद्या गायत्री का जप दस बार करे । तब श्लोक 32 का पाठ तीन बार करे । देवताओं, पितरों, महायोगियों को पुष्टि करे और स्वाहा को नमस्कार । हाथ में जल लेकर 'वं हुं फट्' से श्राद्ध के सभी पदार्थों का प्रोक्षण करे । तब अग्निकोण में एक पात्र स्थापित करे और बोले—

रक्षोघ्नममृतं मम यज्ञ रक्षां कुरुष्व ।

तब उस पात्र में तुलसीदल और जल डाले । देवपक्ष से आरम्भ करके कुशमय ब्राह्मणों को देवादि क्रम से जल-गण्डूष देकर कुशासन प्रदान करे । तब विश्वेदेवगण का, पितृत्रय का, मातृत्रय का, मातामहत्रय का और मातामहीत्रय का आवाहन करे । कुशासन प्रदान करने की विधि निम्नवत् है—

'विश्वेदेवा इदमासनं वो नमः' यह वाक्य पढ़कर विश्वेदेवाओं को कुशासन दे । फिर—'अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन् अमुकगोत्रनान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन्, अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह अमुकदेवशर्मन्, इदमासनं वः स्वधा' यह मन्त्र पढ़कर पिता, पितामह और प्रपितामह को आसन दे । तदनन्तर—'अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि पितामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि, इदमासनं वः स्वधा' यह पढ़कर माता, पितामही को और प्रपितामही को आसन दे । अनन्तर 'अमुकगोत्र नान्दीमुख मातामह अमुकदेवशर्मन्, अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रमातामह

अमुकदेवशर्मन्, अमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन् इदमासनं वः स्वधा' पढ़कर मातमह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह को आसन दे। फिर—'अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामहि अमुकदीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवि, इदमासनं वः स्वधा' यह मन्त्र पढ़कर मातामही, प्रमातामही और वृद्धप्रमातामही को आसन दे।

आवाहन के मन्त्र यथा—'विश्वेदेवाः इहागच्छत इह तिष्ठत इह सन्निधत्त मम पूजां गृह्णीत' इस वाक्य से विश्वेदेवाओं का कुशासन पर आवाहन करे। 'अमुकगोत्र नान्दीमुखपितरमुकदेवशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' इस वाक्य से पिता का कुशासन पर आवाहन करे। तदनन्तर—'अमुकगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' यह वाक्य पढ़कर पितामह का आवाहन करे। तदुपरान्त 'अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह अमुकदेवशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' इस वाक्य से प्रपितामह का कुशासन पर आवाहन करे। पश्चात् 'अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' यह वाक्य पढ़कर माता का आवाहन करे। फिर—'अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' इस वाक्य से पितामही का कुशासन पर आवाहन करे। फिर—'अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' इसे पढ़कर प्रपितामही का आवाहन करे। अनन्तर—'अमुकगोत्रे नान्दीमुख मातामह अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' यह मन्त्र पढ़कर मातामह का कुशासन पर आवाहन करे। फिर—'अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रमातामह अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' यह वाक्य पढ़कर प्रमातामह का कुशासन पर आवाहन करे। तदुपरान्त—'अमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' यह वाक्य पढ़कर वृद्धप्रमातामह का कुशासन पर आवाहन करे। अनन्तर—'अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' इस वाक्य से मातामही का कुशासन पर आवाहन करे। फिर—'अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' यह

वाक्य पढ़कर प्रमातामही का कुशासन पर आवाहन करे । फिर 'अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण' इस वाक्य से वृद्धप्रमातामही का आवाहन करे ।। 23-36 ।।

आवाह्य पूजयेदादौ विश्वान्देवांस्ततो यजेत् ।
पितृत्रयं तथा मातृत्रयं मातामहत्रयम् ।। 37 ।।
मातामहीत्रयं चापि पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ।
धूपैर्दीपैश्च वासोभिः पूजयित्वा वरानने! ।
पात्राणां पातनप्रश्नं कुर्याद्दैवक्रमाच्छिवे ।। 38 ।।
मण्डलं रचयेदेकं मायया चतुरस्रकम् ।
द्वे द्वे च मण्डले कुर्यात्तद्वत्पक्षद्वयोरपि ।। 39 ।।
वारुणप्रोक्षितेष्वेषु पात्राण्यासाद्य साधकः ।
तेन क्षालितपात्रेषु सर्वोपकरणैः सह ।
पानार्थपाथसान्नानि क्रमेण परिवेषयेत् ।। 40 ।।
ततो मधुयवान्दत्त्वा ह्रां हूँ फडितिमन्त्रकैः ।
सम्प्रोक्ष्यान्नानि सर्वाणि विश्वान्देवांस्तथा पितॄन् ।। 41 ।।
मातॄर्मातामहान्मातामहीरुल्लिख्य तत्त्ववित् ।
निवेद्य देवीं गायत्रीं देवताभ्यस्त्रिधा पठेत् ।। 42 ।।
शेषान्नापिण्डयोः प्रश्नौ कुर्यादाद्ये! ततः परम् ।। 43 ।।
दत्तशेषैरक्षताद्यैर्मालूरफलसन्निभान् ।
द्विजात्प्राप्तोत्तरः पिण्डान्रचयेद्द्वादश प्रिये ।। 44 ।।
अन्यं तु कल्पयेदेकं पिण्डं तत्सममम्बिके! ।
आस्तरेन्नैर्ऋते दर्भान्मण्डले यवसंयुतान् ।। 45 ।।
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।
अग्निदग्धाश्च ये केऽपि व्यालव्याघ्रहताश्च ये ।। 46 ।।
ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
मद्दत्तपिण्डतोयाभ्यां ते यान्तु तृप्तिमक्षयाम् ।। 47 ।।
दत्त्वा पिण्डमपिण्डेभ्यो मन्त्राभ्यां सुरवन्दिते! ।
प्रक्षाल्य हस्तावाचान्तः सावित्रीं प्रजपंस्ततः ।
देवताभ्यस्त्रिधा जप्त्वा मण्डलानि प्रकल्पयेत् ।। 48 ।।
उच्छिष्टपात्रपुरतः पूर्वोक्तविधिना बुधः ।
द्वे द्वे च मण्डले देवि! रचयेत्पितृतः क्रमात् ।। 49 ।।
पूर्वमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य कुशांस्तेष्वास्तरेत्कृती ।

अभ्युक्ष्य वायुना दर्भान्पितृदर्भक्रमाच्छिवे ।
ऊर्ध्वे मूले च मध्ये च त्रींस्त्रीन्पिण्डान्निवेदयेत् ॥ 50 ॥
आमन्त्रणेन प्रत्येकं नामोच्चार्य महेश्वरि!।
स्वधया वितरेत्पिण्डं यवमाध्वीकसंयुतम् ॥ 51 ॥
पिण्डान्ते पिण्डशेषञ्च विकीर्य लेपभाजिनः ।
प्रीणयेत्करलेपेन नैकोद्दिष्टेष्वयं विधिः ॥ 52 ॥
देवतापितृतृप्त्यर्थं सावित्रीं दशधा जपेत् ।
देवताभ्यस्त्रिधा जप्त्वा पिण्डान्सम्पूजयेत्ततः ॥ 53 ॥
प्रज्वाल्य धूपं दीपं च निमील्य नयनद्वयम् ।
दिव्यदेहधरान्पितॄनश्नतः कव्यमध्वरे ।
विभाव्य प्रणमेद्धीमानिमं मन्त्रगुदीरयेत् ॥ 54 ॥
पिता मे परमो धर्मः पिता मे परमं तपः ।
स्वर्गः पिता मे तत्तृप्तौ तृप्तमस्त्यखिलं जगत् ॥ 55 ॥
ततो निर्म्माल्यमादाय प्रार्थयेदाशिषः पितॄन् ॥ 56 ॥
आशिषो मे प्रदीयन्तां पितरः करुणामयाः ।
वेदाः सन्ततयो नित्यं वर्द्धन्तां बान्धवा मम ॥ 57 ॥
दातारो मे विवर्द्धन्तां बहून्यन्नानि सन्तु मे ।
याचितारः सदा सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन ॥ 58 ॥
देवादितो द्विजान्पिण्डान्विसृजेत्तदनन्तरम् ।
तथैव दक्षिणां कुर्यात्पक्षेषु त्रिषु तत्त्ववित् ॥ 59 ॥
गायत्रीं दशधा जप्त्वा देवताभ्योऽपि पञ्चधा ।
दृष्ट्वा वह्निं रविं विप्रमिदं पृच्छेत्कृताञ्जलिः ॥ 60 ॥
इदं श्राद्धं समुच्चार्य साङ्गं जातमुदीरयेत् ।
द्विजो वदेत्सम्यगेव साङ्गं जातं विधानतः ॥ 61 ॥
अङ्गवैगुण्यशान्त्यर्थं प्रणवं दशधा जपन् ।
अच्छिद्राभिविधानेन कुर्यात्सर्वसमापनम् ।
पात्रीयान्नानि पिण्डांश्च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ 62 ॥
विप्राभावे गवाजेभ्यः सलिले वा विनिःक्षिपेत् ।

पहले विश्वेदेवों की पूजा करे । तब पितृत्रय, मातृत्रय, मातामहत्रय और माता-महीत्रय को पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, धूप, दीप, प्रसाद आदि से पूजा करे । पूजा हेतु कल्पितवाक्य इस प्रकार हैं—'विश्वेदेवाः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्ध-पुष्पधूपदीपाच्छादनानि वो नमः' यह वाक्य पढ़कर प्रथम विश्वेदेवताओं की पूजा

करे, फिर—'ओम् अद्य अमुकगोत्रा नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रपितामहा अमुकाममुकदेवशर्माणः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा' इस वाक्य से ऊपर कहे गये तीनों की पूजा करे । अनन्तर 'अमुकगोत्राः नान्दीमुख्यः मातृपितामहीप्रपितामह्यः अमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा' इस वाक्य को पढ़कर तीनों माताओं की पूजा करे । फिर—'अमुकगोत्रा नान्दीमुखा मातामहप्रमातामहवृद्ध-प्रमातामहा अमुकामुकामुकदेवशर्माणः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छा-दनानि वः स्वधा' इस वाक्य से तीन नानाओं की पूजा करे । अनन्तर 'अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यो मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामह्यः अमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा' इस वाक्य से तीनों मातामहियों की पूजा करे ।

तब ब्राह्मण से प्रश्न करे कि 'पात्राणि पातयिष्ये' । इस पर ब्राह्मण उत्तर दे कि 'पातय' । इसके बाद मायाबीज 'ह्रीं' का उच्चारण कर देवपक्ष के लिये एक चतुष्कोण मण्डल बनाए । इसी प्रकार पितृपक्ष और मातामहपक्ष के लिये भी 'ह्रीं' कहते हुए दो-दो मण्डल बनाए । वरुणबीज 'वं' से इन मण्डलों का प्रोक्षण करे । उन पर पात्रों को क्रमशः स्थापित करे और 'वं' से प्रोक्षित करे । देवपक्ष से प्रारम्भ करके सभी उपचारों सहित पीने के लिये जल और अन्न प्रदान करे । अन्न पर मधु और यव रक्खे । 'ह्रां ह्रूं फट्' से अन्न का प्रोक्षण करे । विश्वेदेवगण को, पितृगण को, मातृगण को, मातामहगण को, मातामहीगण को नामोल्लेख करते हुए उन्हें अन्न प्रदान करे । अन्न प्रदान करने की विधि निम्नवत् है—

'विश्वेदेवाः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणसहितमेतदन्नं वो नमः' इस मन्त्र से विश्वेदेवाओं को अन्न निवेदन करे । फिर—'अमुकगोत्राः नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रपितामहाः अमुकामुकामुकदेवशर्माणः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणा-न्वितमेतदन्नं वः स्वधा' यह वाक्य पढ़कर पितृगणों को अन्न निवेदन करे । फिर—'अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यः मातृपितामहीप्रपितामह्योऽमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणान्वितमेतदन्नं वः स्वधा' इस वाक्य से मातृगणों को अन्न निवेदित करे । फिर—'अमुकगोत्रा नान्दीमुखा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमाता-महाः अमुकामुकामुकदेवशर्माणः एतत् पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणान्वितमन्नं

वः स्वधा' इस मन्त्र से मातामहों को अन्न निवेदन करे । फिर—'अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यो मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामह्यः अमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः एतत् पानार्थोकमधुयवसर्वोपकरणान्वितमन्त्रं वः स्वधा' इस वाक्य को पढ़ नानियों को जल देवे ।

तव गायत्री और देवताभ्यः आदि मन्त्र का तीन पाठ करे । गायत्री मन्त्र 'ॐ भुर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं........प्रचोदयात्' है । देवताभ्यः मन्त्र इस प्रकार का है—

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्यः एव च ।
नमोऽस्तु पुष्ट्यै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति ।।

इसके बाद ब्राह्मण से इस प्रकार शेषान्न प्रश्न करे कि 'शेषान्नमस्ति क्व देयम्' । तब पिण्डप्रश्न करे कि 'पिण्डदानं करिष्ये' । ब्राह्मण उत्तर दे कि 'ॐ कुरुष्व' । ब्राह्मण से उत्तर पाकर बचे हुए अक्षतादि से बेल के बराबर बारह पिण्ड बनाए । उसी प्रकार बेलफल के बराबर एक और पिण्ड बनावे । तब नैर्ऋत्य कोण में मण्डल के ऊपर यवसहित कुश बिछाये । निम्न दो मन्त्रों का पाठ करते हुए अपिण्डों को पिण्डदान करे । श्लोक 46, 47 मन्त्र है । मेरे वंश में जो लुप्त पिण्ड हैं, जो स्त्री-पुत्र से रहित हैं, जो आग से जले हैं, जो साँप-बाघ से मारे गये हैं, मेरे जो बान्धव-अबान्धव हैं, जो अन्य जन्म के मेरे बन्धन हैं, वे सब मेरे द्वारा दिये गये इस पिण्ड और जल से अक्षय तृप्ति को प्राप्त करें । तब हाथ धोकर आचमन करे । गायत्री तथा देवताभ्यः इत्यादि मन्त्र का तीन बार जप कर मण्डल बनाए । हे देवि! पितरों से प्रारम्भ कर उच्छिष्ट पात्र के सम्मुख पूर्वोक्त विधि से दो-दो मण्डल बनाए । 'बं' से मण्डलों को प्रोक्षित करे । इन पर कुश बिछावे । 'यं' से सभी कुशों को प्रोक्षित करे । पितृ दर्भ से आरम्भ कर दर्भ के मूल-मध्य-ऊर्ध्व भाग में क्रमशः 1. पितृत्रय 2. मातृत्रय 3. मातामहत्रय और 4. मातामहीत्रय को तीन-तीन पिण्ड प्रदान करे । हे देवि! प्रत्येक का सम्बोधनान्त नाम उच्चारण करके 'स्वधा' कहते हुए प्रत्येक को यव और मधुसहित पिण्ड प्रदान करे । पिण्डदान मन्त्र टिप्पणीसंख्या एक में अंकित है ।

पिण्डदान के बाद हाथ में अन्नलेप करके कुश में रगड़कर लेपभोजी चौथे से सातवें पुरुष को प्रसन्न करे । एकोद्दिष्ट श्राद्ध में यह 'लेपभोजि पितृगण

प्रीणनविधि' नहीं होती । देवताओं और पितृगण की तृप्ति के लिये दश बार गायत्री जप और तीन बार 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च' का पाठ कर पिण्डपूजन करे । तब धूप-दीप जलाकर दोनों नेत्र बन्द करके यह भावना करे कि दिव्य देहधारी पितृगण यज्ञस्थल में उनके लिए दिए गए द्रव्यों का भोजन कर रहे हैं । निम्न मन्त्र से पितरों को प्रणाम करे । श्लोक 55 प्रार्थनामन्त्र है । पिता मेरे परम धर्म हैं, पिता ही मेरे परम तप हैं । पिता ही मेरे स्वर्ग हैं । उनके तृप्त होने से सारा संसार तृप्त होता है । तब निर्माल्य लेकर पितृगण से आशीर्वाद के लिये प्रार्थना करे । श्लोक 57, 58 प्रार्थना मन्त्र है । दयामय पितृगण मुझे आशीर्वाद दें । मेरे वेदज्ञान, पुत्रों और बान्धवों की नित्य वृद्धि हो । दान-दाताओं की वृद्धि मुझे प्राप्त हो । मेरे पास बहुत अन्न हो । याचक लोग सदैव मेरे पास बने रहें । मैं किसी से याचना न करूँ । इसके बाद देवताओं से प्रारम्भ करके ब्राह्मणों और सभी पिण्डों का विसर्जन करे । इसके बाद देवपक्ष, पितृपक्ष और मातामहपक्ष के लिये दक्षिणा दान दे । तब दश बार गायत्री और पाँच बार 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च' मन्त्र का जप करे । अग्नि और सूर्य का दर्शन करे । तब हाथ जोड़कर ब्राह्मण से पूछे—'इदं श्राद्धं साङ्गं जातम्?' क्या यह श्राद्ध सभी अंग-कार्यों सहित सम्पन्न हो गया । ब्राह्मण उत्तर दे—'विधानतः सम्यगेव साङ्गं जातम्' । विधि के अनुसार यह सम्पूर्ण रूप से सभी कार्यों के सहित सम्पन्न हो गया । तब अंगवैगुण्य की शान्ति के लिये दश बार ॐ का जप कर अच्छिद्राभिधान द्वारा कर्म को समाप्त करे । पात्र के अन्न और पिण्डों को ब्राह्मण को दे दे । ब्राह्मण न हो तो गाय या बकरी को दे दे अथवा उन्हें जल में डाल दे ।। 37-62 ।।

पार्वण श्राद्ध

वृद्धिश्राद्धमिदं प्रोक्तं नित्यसंस्कारकर्मणि ।। 63 ।।
श्राद्धे पर्वाणि कर्त्तव्ये पार्वणत्वेन कीर्त्तयेत् ।। 64 ।।
देवतादिप्रतिष्ठासु तीर्थयात्राप्रवेशयोः ।
पार्वणेन विधानेन श्राद्धमेतदुदीरयेत् ।। 65 ।।
नैतेषु श्राद्धकृत्येषु पितॄन्नान्दीमुखान्वदेत् ।
नमोऽस्तु पुष्ट्यायित्यत्र स्वधायै पदमुच्चरेत् ।। 66 ।।
पित्रादित्रयमध्ये तु यो जीवति वरानने! ।
तस्योद्ध्र्वतनमुल्लिख्य श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ।। 67 ।।

जनकादिषु जीवत्सु त्रिषु श्राद्धं विवर्जयेत् ।
तेषु प्रीतेषु देवेशि! श्राद्धयज्ञफलं लभेत् ।। 68 ।।
जीवत्पितरि कल्याणि! नान्यश्राद्धाधिकारिता ।
मातुः श्राद्धं विना पत्न्यास्तथा नान्दीमुखं विना ।। 69 ।।

नित्य अवश्य करणीय संस्कारों में यही वृद्धिश्राद्ध है । अमावस आदि पर्व के उपलक्ष्य में करणीय श्राद्ध को पार्वण श्राद्ध कहते हैं । देवता आदि की प्रतिष्ठा. तीर्थ-यात्रा और तीर्थ में पार्वण श्राद्ध की विधि से श्राद्ध करे । इन सब श्राद्धों में पितरों को नान्दीमुख विशेषण से युक्त न करे । 'नमोऽस्तु पुष्ट्यै' के स्थान पर 'नमः स्वधायै' कहे । हे वरानने! पिता आदि पुरुषत्रय में से जो जीवित हों, उनके ऊपर वाले पुरुष का उल्लेख करके श्राद्ध करे । पिता-पितामह-प्रपितामह तीनों यदि जीवित हों तो श्राद्ध न करे । उनके प्रसन्न रहने से ही श्राद्ध और यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है । हे कल्याणि! पिता यदि जीवित हों तो माता और पत्नी के श्राद्ध और नान्दीमुख श्राद्ध के अतिरिक्त अन्य किसी श्राद्ध के करने का अधिकार नहीं है ।। 63-69 ।।

एकोद्दिष्ट श्राद्ध

एकोद्दिष्टे तु कौलेशि ! विश्वेदेवान्न पूजयेत् ।
एकमेव समुद्दिश्यानुज्ञावाक्यं प्रकल्पयेत् ।। 70 ।।
दक्षिणाभिमुखो दद्यादन्नं पिण्डं च मानवः ।
यवस्थाने तिला देयाः सर्वमन्यच्च पूर्ववत् ।। 71 ।।

एकोद्दिष्ट श्राद्ध के समय विश्वेदेवों की पूजा नहीं होती है । उसके बदले एक ही व्यक्ति को लक्ष्य करके अनुज्ञावाक्य कल्पित करे । दक्षिण तरफ मुख करके अन्न और पिण्डदान करे । यव के बदले तिल प्रदान करे । शेष सामग्रियाँ पूर्ववत् रहती हैं ।। 70-71 ।।

प्रेतश्राद्ध

प्रेतश्राद्धे विशेषोऽयं गङ्गाद्यर्चा विवर्जयेत् ।
मृतं समुल्लिखेत्प्रेतं वाक्ये दानेऽन्नपिण्डयोः ।। 72 ।।
एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं तदुच्यते ।
प्रेतस्यान्ने च पिण्डे च मत्स्यमांसं नियोजयेत् ।। 73 ।।
आशौचान्तादद्द्वितीयेऽह्नि श्राद्धं यत्कुरुते नरः ।
प्रेतश्राद्धं विजानीहि तदेव कुलनायिके ।। 74 ।।

प्रेतश्राद्ध में गंगा आदि की पूजा नहीं होती । अन्न तथा पिण्डदान के समय मृत व्यक्ति का उल्लेख 'प्रेत' कहकर करे । एक व्यक्ति के उद्देश्य से जो श्राद्ध किया जाता है, उसे एकोदिष्ट कहते हैं । प्रेतश्राद्ध में प्रेत के अन्न और पिण्ड में मत्स्य और मांस प्रदान करे । हे कुलनायिके! अशौच के अन्त में दूसरे दिन यह श्राद्ध होता है । इसी को प्रेतश्राद्ध कहते हैं ।। 72-74 ।।

अशौच-निर्णय

गर्भस्त्रावाज्जातमृतादन्यत्र मृतजातयोः ।
कुलाचारानुसारेण मानवोऽशौचमाचरेत् ।। 75 ।।
द्विजातीनां दशाहेन द्वादशाहेन पक्षतः ।
शूद्रसामान्ययोर्देवि! मासेनाशौचकल्पना ।। 76 ।।
असपिण्डमृतज्ञातौ त्रिरात्राशौचमिष्यते ।
शृण्वतोऽपि गताशौचे सपिण्डस्य मृतिं शिवे!।। 77 ।।
अशुचिर्नाधिकारी स्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
ऋते कुलार्च्चनादाद्ये! तथा प्रारब्धकर्मणः ।। 78 ।।
पञ्चवर्षाधिकान्मर्त्यान्दाहयेत्पितृकानने ।

जहाँ गर्भस्त्राव हो या बालक जन्म लेकर पृथ्वी पर मर जाय, वहाँ से अन्य स्थान पर सन्तान के जन्म लेने या मरने पर कुलाचार के अनुसार अशौच का पालन करे । ब्राह्मण के लिये दश दिन, क्षत्रिय के लिये बारह दिन, वैश्य के लिये पन्द्रह दिन और शूद्र एवं सामान्य जाति के लिये एक मास का अशौच माना गया है । हे शिवे! असपिण्ड जाति के मरने पर और सपिण्ड के मरने पर अशौच काल के बाद अथवा एक वर्ष के अन्दर मरने की सूचना मिलने पर तीन रात्रि का अशौच होता है । अशौचयुक्त व्यक्ति कुलपूजा और प्रारब्ध कर्म को छोड़कर अन्य कोई दैव या पितृ कर्म नहीं कर सकता । हे कुलश्वरि! पाँच वर्ष से अधिक आयु वाले मृत मनुष्य को श्मशान में दग्ध करे ।। 75-78 ।।

सहमरण का निषेध

भर्त्रा सह कुलेशानि! न दहेत्कुलकामिनीम् ।। 79 ।।
तव स्वरूपा रमणी जगत्याच्छन्नविग्रहा ।
मोहाद्भर्त्तुश्चितारोहाद्भवेन्नरकगामिनी ।। 80 ।।

कुलस्त्री को पति के साथ चिता पर चढ़ाकर सती नहीं बनाना चाहिये;

क्योंकि स्त्री भगवतीस्वरूपा होती है । मोह-विवश होकर ही वह चिता पर चढ़ती है और नरक में जाती है ।। 79-80 ।।

ब्रह्ममन्त्रोपासक की इच्छा के अनुसार दाहादि

ब्रह्ममन्त्रोपासकांस्तु तेषामाज्ञानुसारतः ।
प्रवाहयेद्वा निखनेद्दाहयेद्वापि कालिके! ।। 81 ।।
पुण्यक्षेत्रे च तीर्थे वा देव्याः पार्श्वे विशेषतः ।
कुलीनानां समीपे वा मरणं शस्तमम्बिके! ।। 82 ।।
विभावयन्सत्यमेकं विस्मरञ्जगतां त्रयम् ।
परित्यजति यः प्राणान्स स्वरूपे प्रतिष्ठति ।। 83 ।।

हे कालिके! जो ब्रह्ममन्त्रोपासक हैं, उनके पार्थिक शरीर को जल में विसर्जित करे या मिट्टी में गाड़ दे या जला दे । हे अम्बिके! पुण्यक्षेत्र में, तीर्थ में, विशेषतः देवी के समीप या कौलिकों के पास मरना प्रशस्त होता है । जो मृत्यु के समय तीनों लोकों को विस्मृत कर केवल सत्यस्वरूप की भावना करते हुए प्राण-त्याग करता है, वह गुणत्रय के सम्बन्ध का त्याग कर निर्लेप, निर्गुण, नित्यबुद्ध इत्यादि निज भाव में प्रतिष्ठित होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है ।। 81-83 ।।

अन्त्येष्टि क्रिया

प्रेतभूमौ शवं नीत्वा स्नापयित्वा घृतोक्षितम् ।
उत्तराभिमुखं कृत्वा शाययेत्तं चितोपरि ।। 84 ।।
सम्बोधनान्तं तद्गोत्रं प्रेताख्यानं समुच्चरन् ।
दत्त्वा पिण्डं प्रेतमुखे दहेद्वह्निमनुस्मरन् ।। 85 ।।
पिण्डं तु रचयेत्तत्र सिद्धान्नैस्तण्डुलैश्च वा ।
यवगोधूमचूर्णैर्वा धात्रीफलसमं प्रिये! ।। 86 ।।

श्मशान भूमि में शव को ले जाकर उसे घी लगाकर स्नान कराए । चिता पर उसका शिर उत्तर दिशा में रक्खे । प्रेत का गोत्र और सम्बोधनान्त प्रेत के नाम का उल्लेख करते हुए प्रेत के मुख में पिण्ड देकर वह्निबीज 'रं' का स्मरण करते हुए दाह-कर्म करे । यहाँ पका हुआ अन्न या चावल या यवचूर्ण या गेहूँ-आँटा से बड़े आँवला-फल के बराबर पिण्ड बनाए ।। 84-86 ।।

श्राद्ध का अधिकार

स्थितेषु प्रेतपुत्रेषु ज्येष्ठे श्राद्धाधिकारिता ।
तदभावेऽन्यपुत्रादौ ज्येष्ठानुक्रमतो भवेत् ।। 87 ।।

मृतक के अनेक पुत्र हों तो ज्येष्ठ पुत्र ही श्राद्ध करने का अधिकारी होता है । ज्येष्ठ पुत्र के न रहने पर वरीयता के क्रम से दूसरे पुत्रों का अधिकार होता है ।। 87 ।।

तिल-काञ्चन दान

अशौचान्तान्तदिवसे कृतस्नानो नरः शुचिः।
मृतप्रेतत्वमुक्त्यर्थमुत्सृजेत्तिलकाञ्चनम् ।। 88 ।।
गां भूमिं वसनं यानं पात्रं धातुविनिर्म्मितम् ।
भोज्यं बहुविधं दद्यात्प्रेतस्वर्गाय सत्सुतः ।। 89 ।।
गन्धं माल्यं फलं तोयं शय्यां प्रियकरीं तथा ।
यद्यत्प्रेतप्रियद्रव्यं तत्स्वर्गाय समुत्सृजेत् ।। 90 ।।

अशौच की समाप्ति के दूसरे दिन स्नान कर पवित्र हो मृतक के प्रेतत्व की मुक्ति के लिये तिल और सोने का दान करे । मृत पिता की स्वर्गप्राप्ति के लिये सत्पुत्र गाय-भूमि, वस्त्र, सवारी, धातुनिर्मित गात्र और अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों का दान करे । गन्ध, माला, फल, जल, सुखद शय्या और जीवित अवस्था में मृतक को जो वस्तुयें प्रिय थीं, वे सभी प्रेत के स्वर्ग-लाभ के लिये ब्राह्मणों को दान करे ।। 88-90 ।।

वृषोत्सर्ग

ततस्तु वृषभञ्चैकं त्रिशूलाङ्केन लाञ्छितम् ।
स्वर्णेनालंकृतं कृत्वा त्यजेत्तत्स्वरवाप्तये ।। 91 ।।
प्रेतश्राद्धोक्तविधिना श्राद्धं कृत्वातिभक्तितः ।
ब्रह्मज्ञान्ब्राह्मणान्कौलान्क्षुधितानपि भोजयेत् ।। 92 ।।
दानेष्वशक्तो मनुजः कुर्वञ्छ्राद्धं स्वशक्तितः ।
बुभुक्षितान्भोजयित्वा प्रेतत्वं मोचयेत्पितुः ।। 93 ।।
आद्यैकोद्दिष्टमेतत्तु प्रेतत्वान्मुक्तिकारणम् ।
वर्षे वर्षे मृततिथौ दद्यादन्नं गतासवे ।। 94 ।।

मृत पिता की स्वर्गप्राप्ति के लिये एक साँढ़ को त्रिशूल से चिह्नित कर, सोने से सजाकर छोड़ दे । श्रद्धापूर्वक प्रेतश्राद्ध में कथित विधि से श्राद्ध करे ।

ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणों, कौलों और अन्य भूखे लोगों को भोजन कराए । गाय आदि के दान करने में अशक्त हो तो वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार श्राद्ध कर भूखे लोगों को भोजन कराकर पिता के प्रेतत्व का मोचन करे । यह प्रेतश्राद्ध आद्य एकोद्दिष्ट और प्रेतपन की मुक्ति का कारण है । तब प्रतिवर्ष मृत्युतिथि पर मृतक के लिये अन्नदान करे ।। 91-94 ।।

श्राद्धादि कार्य में कौलार्चन

बहुभिर्विधिभिः किंवा कर्मभिर्बहुभिश्च किम् ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति मानवः कौलिकार्च्चनात् ।। 95 ।।
विना होमाज्जपाच्छ्राद्धात्संस्कारेषु च कर्मसु ।
सम्पूर्णकार्यसिद्धिः स्यादेकया कौलिकार्च्चया ।। 96 ।।

बहुत विधान या बहुत कर्मों का अनुष्ठान करने से कोई लाभ नहीं होता । कौलिक साधकों का अर्चन करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । हवन, जप, श्राद्ध, व्यतीत संस्कार और अन्य कर्मों में केवल कौलिक साधक की अर्चना करने से सभी कार्य पूर्ण रूप से सिद्ध होते हैं ।। 95-96 ।।

कौल-माहात्म्य

शुक्लां चतुर्थीमारभ्य शुभकर्माणि कारयेत् ।
असितां पञ्चमीं यावद्विधिरेष शिवोदितः ।। 97 ।।
अन्यत्रापि विरुद्धेऽह्नि गुर्वृत्विक्कौलिकाज्ञया ।
कर्माण्यपरिहार्याणि कर्मार्थी कर्तुमर्हति ।। 98 ।।
गृहारम्भः प्रवेशश्च यात्रा रत्नादिधारणम् ।
सम्पूज्याद्यां पञ्चतत्त्वैः कुर्यादेतानि कौलिकः ।। 99 ।।
संक्षेपयात्रामथवा कुर्यात्साधकसत्तमः ।
ध्यायन्देवीं जपन्मन्त्रं नत्वा गच्छेद्यथामति ।। 100 ।।
सर्वासु देवताच्चार्सु शारदीयोत्सवादिषु ।
तत्तत्कल्पोक्तविधिना ध्यानपूजां समाचरेत् ।। 101 ।।
आद्यापूजोक्तविधिना बलिहोमं प्रयोजयेत् ।
कौलार्च्चनं दक्षिणाञ्च कृत्वा कर्म समापयेत् ।। 102 ।।
गङ्गां विष्णुं शिवं सूर्यं ब्रह्माणं परिपूज्य च ।
उद्देश्यमर्च्चयेद्देवं सामान्यो विधिरीरितः ।। 103 ।।
कौलिकः परमो धर्मः कौलिकः परदेवता ।

कौलिकः परमं तीर्थं तस्मात्कौलं सदार्च्चयेत् ॥ 104 ॥
सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि ब्रह्माद्याः सर्वदेवताः ।
वसन्ति कौलिके देहे किन्न स्यात्कौलिकार्च्चनात् ॥ 105 ॥
पूर्णाभिषिक्तः सत्कौलो यस्मिन्देशे विराजते ।
धन्यो मान्यः पुण्यतमः स देशः प्रार्थ्यते सुरैः ॥ 106 ॥
कृतपूर्णाभिषेकस्य साधकस्य शिवात्मनः ।
पुण्यपापविहीनस्य प्रभावं वेत्ति को भुवि ॥ 107 ॥
केवलं नररूपेण तारयन्नखिलं जगत् ।
शिक्षयँल्लोकयात्राञ्च कौलो विहरति क्षितौ ॥ 108 ॥

शिवोक्त विधि के अनुसार शुक्ल चतुर्थी से आरम्भ करके कृष्ण पञ्चमी तक सभी शुभ कर्म करे । गुरु, आचार्य और कौलिक साधक की अनुमति से कर्मार्थी किसी भी अन्य शुभ दिन में सभी अपरिहार्य कार्य कर सकता है । कौलिक पञ्चतत्त्व से आद्या काली की पूजा करके गृहारम्भ, गृहप्रवेश, यात्रा, शंख-रत्न-धारण आदि सभी कार्य कर सकता है । अथवा श्रेष्ठ साधक देवी का ध्यान करते हुए मन्त्रजप और नमस्कार करके इच्छानुसार प्रस्थान करे । शारदीय नवरात्र, उत्सव आदि सभी देवपूजनों में अपने कल्पोक्त विधि के अनुसार ध्यान और पूजन करे । आद्या कालिका के पूजास्थान में उक्त विधान के अनुसार बलिदान और हवन करे । कौलिक की पूजा कर और दक्षिणा देकर कर्म को समाप्त करे । गंगा, विष्णु, शिव, सूर्य और ब्रह्मा की पूजा कर उद्दिष्ट देवता की पूजा करे । यही सामान्य विधि कथित है ।

कौलिक ही परम धर्म, कौलिक ही परम देवता और कौलिक ही परम तीर्थ है । अतः सदैव कौलिक साधक की अर्चना करे । साढ़े तीन करोड़ तीर्थ और ब्रह्मादि सभी देवता कौलिक के शरीर में वास करते हैं । अतः कौलिक साधक की पूजा करने से क्या नहीं हो सकता है? पूर्णाभिषिक्त सत्कौलिक जिस देश में रहता है, वही देश धन्य, मान्य, पुण्यतम और देवताओं द्वारा प्रार्थनीय होता है । साक्षात् शिवस्वरूप पाप पुण्य-रहित पूर्णाभिषिक्त साधक के प्रभाव को पृथ्वी पर कौन जान सकता हैं? अर्थात् कोई नहीं जानता । कौल नररूप में सारे जगत् के उद्धार का निमित्त कारण है । लोकयात्रा की शिक्षा देने के लिये वह भूमण्डल पर विहार करता है।। 97-106 ।।

पूर्णाभिषेक की विधि

श्रीदेव्युवाच

पूर्णाभिषिक्तकौलस्य माहात्म्यं कथितं प्रभो! ।
विधानमभिषेकस्य कृपया श्रावयस्व माम् ।। 109 ।।

श्रीसदाशिव उवाच

विधानमेतत्परमं गुप्तमासीद्युगत्रये ।
गुप्तभावेन कुर्वन्तो नरा मोक्षं ययुः पुरा ।। 110 ।।
प्रबले कलिकाले तु प्रकाशे कुलवर्त्तिनः ।
नक्तं वा दिवसे कुर्यात्सप्रकाशाभिषेचनम् ।। 111 ।।
नाभिषेकं विना कौलः केवलं मद्यसेवनात् ।
पूर्णाभिषेकात्कौलः स्याच्चक्राधीशः कुलार्चकः ।। 112 ।।

श्री देवी ने कहा कि हे प्रभो! पूर्णाभिषिक्त साधक की महिमा का वर्णन आपने किया । अव आप कृपया मुझे उस अभिषेक का विधान सुनाइये । श्री सदाशिव ने कहा कि सत्य, त्रेता और द्वापर युगों में यह विधान गुप्त रहा है तथा पूर्व काल में गुप्त रूप से इसका अनुष्ठान करके लोगों ने मोक्ष पाया है । प्रवल कलिकाल में कुलाचारी लोग रात में या दिन में प्रकट रूप से इसका अभिषेक करें । विना अभिषेक के केवल मद्यपान से ही कोई कौल नहीं होता । जिसका पूर्णाभिषेक हुआ हो, वही कौल कुलार्चक और चक्राधीश्वर होता है ।। 109-112 ।।

पूर्णाभिषेक के एक दिन पहले गणेशपूजन

तत्राभिषेकपूर्वेऽह्नि सर्वविघ्नोपशान्तये ।
यथाशक्त्युपचारेण विघ्नेशं पूजयेद्गुरुः ।। 113 ।।
गुरुश्चेन्नाधिकारी स्याच्छुभपूर्णाभिषेचने ।
तदाभिषिक्तकौलेन संस्कारं साधयेत्प्रिये! ।। 114 ।।
खान्तार्णं बिन्दुसंयुक्तं बीजमस्य प्रकीर्तितम् ।। 115 ।।
गणकोऽस्य ऋषिश्छन्दो नीवृद्विघ्नस्तु देवता ।
कर्त्तव्यकर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगिता ।। 116 ।।
षड्दीर्घयुक्तमूलेन षडङ्गानि समाचरेत् ।
प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यायेद्गणपतिं शिवे! ।। 117 ।।

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
शङ्खं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्वारुणीपूर्णकुम्भम् ।
बालेन्दुद्दीप्तमौलिं करिपतिवदनं बीजपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ।। 118 ।।

अभिषेक के एक दिन पहले सब विघ्नों की शान्ति के लिये गुरुदेव यथोपलब्ध उपचारों से विघ्नराज गणेश का पूजन करे । हे प्रिये! यदि गुरुदेव पूर्णाभिषेक के अधिकारी न हों तो पूर्णाभिषिक्त कौल से यह संस्कार कराये । 'ख' वर्ण के बाद के वर्ण 'ग' को अनुस्वारयुक्त करने से जो 'गं' बीज बनता हैं, वह गणपति का बीजमन्त्र है । इस गणपति मन्त्र के ऋषि गणक, छन्द निवृत, देवता गणपति हैं । कर्त्तव्य कर्म की विघ्नशान्ति के लिये इसका विनियोग होता है । हे देवि! छः दीर्घ स्वरों से सानुस्वार युक्त 'गं' अर्थात् 'गां गीं गूं गैं गौं गः' से षडंग न्यास करे । तब प्राणायाम और गणपित का ध्यान करे ।

ऋष्यादि न्यास—अस्य गणपतिबीजमन्त्रस्य गणक ऋषिः निवृच्छन्दो, विघ्नो देवता कर्तव्यस्य शुभपूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः । शिरसि गणकाय ऋषये नमः । मुखे निवृच्छन्दसे नमः । हृदये विघ्नाय देवतायै नमः । कर्तव्यस्य पूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः । अङ्गुष्ठादिषडंगन्यासे—गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । गूं मध्यमाभ्यां वषट् । गैं अनामिकाभ्यां हुम् । गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । गः करतलकरपृष्ठभ्यां फट् । गां हृदयाय नमः । गीं शिरसे स्वाहा । गूं शिखायै वषट् । गैं कवचाय हुं । गौं नेत्रत्रयाय वौषट् । गः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

इसके बाद ध्यान करे । श्लोक 118 ध्यानमन्त्र है । श्री गणेश का वर्ण सिन्दूरतुल्य लाल है । तीन नेत्र हैं । उदर स्थूल है । चारो करकञ्जों में शंख, पाश, अंकुश और वरमुद्रा है । उनके विशाल शुण्ड में वारुणी से पूर्ण कुम्भ है । नूतन चन्द्रकला से प्रदीप्त मस्तक है । हाथी के समान मुख है । दोनों कपोल सतत् निःसृत मद से सिक्त हैं । जिनका शरीर नागराज से विभूषित है । वस्त्र लाल वर्ण के हैं । लाल अंगराज से युक्त गणपति का मैं ध्यान करता हूँ ।। 113-118 ।।

ध्यात्वैवं मानसैरिष्ट्वा पीठशक्तीः प्रपूजयेत् ।
तीव्रा च ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी ॥ 119 ॥
उग्रा तेजस्विनी सत्या मध्ये विघ्नविनाशिनी ।
पूर्वादितोऽर्च्चयित्वैताः पूजयेत्कमलासनम् ॥ 120 ॥
पुनर्ध्यात्वा गणेशान पञ्चतत्त्वोपचारकैः ।
अभ्यर्च्य तच्चतुर्दिक्षु गणेशं गणनायकम् ॥ 121 ॥
गणनाथं गणक्रीडं यजेत्कौलिकसत्तमः ।
एकदन्तं रक्ततुण्डं लम्बोदरगजाननौ ॥ 122 ॥
महोदरञ्च विकटं धूम्राभं विघ्ननाशनम् ॥ 123 ॥
ततो ब्राह्मीमुखाः शक्तीर्दिक्पालांश्च प्रपूजयन् ।
तेषामस्त्राणि सम्पूज्य विघ्नराजं विसर्जयेत् ॥ 124 ॥
एवं सम्पूज्य विघ्नेशमधिवासनमाचरेत् ।
भोजयेच्च पञ्चतत्त्वैर्ब्रह्मज्ञान्कुलसाधकान् ॥ 125 ॥

ध्यान के बाद मानसोपचारों से पूजा करे—

1. लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः ।
2. हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः ।
3. यं वाय्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि नमः ।
4. वं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि नमः ।
5. वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि नमः ।
6. सं सर्वात्मकं सर्वोपचारान् समर्पयामि नमः ।

इसके बाद पीठशक्तियों की पूजा पूर्वादि क्रम से करके मध्य में विघ्नविनाशिनी की पूजा करके कमलासन की पूजा करे; जैसे—

1. पूर्व में—एते गन्धपुष्पे ॐ तीव्रायै नमः ।
2. अग्नि में—एते गन्धपुष्पे ॐ ज्वालिन्यै नमः ।
3. दक्षिण में—एते गन्धपुष्पे ॐ नन्दायै नमः ।
4. नैर्ऋत्यकोण में—एते गन्धपुष्पे ॐ भोगदायै नमः ।
5. पश्चिम में—एते गन्धपुष्पे ॐ कामरूपिण्यै नमः ।
6. वायव्य में—एते गन्धपुष्पे ॐ अग्रायै नमः ।
7. उत्तर में—एते गन्धपुष्पे ॐ तेजस्विन्यै नमः ।

8. ईशान में—एते गन्धपुष्पै ॐ सत्यायै नमः ।

9. मध्य में—एते गन्धपुष्पै ॐ विघ्नविनाशिन्यै नमः ।

इसके बाद आसन की पूजा करे—एते गन्धपुष्पै ॐ कमलासनाय नमः । तब गणेश जी का पुनः ध्यान करके मन्त्रशोधित पञ्चतत्त्वों से पूजा करे । उनके सभी ओर बारह गणेश नाम से, ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं की. इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके अस्त्रों की पूजा करे । जैसे —

1. एते मद्यै ॐ गणेशाय नमः ।
2. एते मांसै ॐ गणेशाय नमः ।
3. एते मत्स्यै ॐ गणेशाय नमः ।
4. एते मुद्रयै ॐ गणेशाय नमः ।
5. एते मैथुनै ॐ गणेशाय नमः ।

इसके बाद गणेश का पूजन उनके बारह नामों से करे—

1. एते गन्धपुष्पै ॐ गणेशाय नमः ।
2. एते गन्धपुष्पै ॐ गणनायकाय नमः ।
3. एते गन्धपुष्पै ॐ गणनाथाय नमः ।
4. एते गन्धपुष्पै ॐ गणक्रीड़ाय नमः ।
5. एते गन्धपुष्पै ॐ एकदन्ताय नमः ।
6. एते गन्धपुष्पै ॐ रक्ततुण्डाय नमः ।
7. एते गन्धपुष्पै ॐ लम्बोदराय नमः ।
8. एते गन्धपुष्पै ॐ गजाननाय नमः ।
9. एते गन्धपुष्पै ॐ महोदराय नमः ।
10. एते गन्धपुष्पै ॐ विकटाय नमः ।
11. एते गन्धपुष्पै ॐ धूम्राभाय नमः ।
12. एते गन्धपुष्पै ॐ विघ्ननाशनाय नमः ।

ब्राह्मी आदि अष्टशक्तियों का पूजन इस प्रकार करे—

1. एते गन्धपुष्पै ॐ ब्राह्म्यै नमः ।
2. एते गन्धपुष्पै ॐ माहेश्वर्यै नमः ।

3. एते गन्धपुष्पे ॐ कौमार्यै नमः ।
4. एते गन्धपुष्पे ॐ वैष्णव्यै नमः ।
5. एते गन्धपुष्पे ॐ वाराह्यै नमः ।
6. एते गन्धपुष्पे ॐ ऐन्द्र्यै नमः ।
7. एते गन्धपुष्पे ॐ चामुण्डायै नमः ।
8. एते गन्धपुष्पे ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।

तब इन्द्रादि दस दिक्पालों का पूजन करे—

1. एते गन्धपुष्पे ॐ इन्द्राय नमः ।
2. एते गन्धपुष्पे ॐ अग्नये नमः ।
3. एते गन्धपुष्पे ॐ यमाय नमः ।
4. एते गन्धपुष्पे ॐ नैर्ऋतये नमः ।
5. एते गन्धपुष्पे ॐ वरुणाय नमः ।
6. एते गन्धपुष्पे ॐ वायवे नमः ।
7. एते गन्धपुष्पे ॐ कुवेराय नमः ।
8. एते गन्धपुष्पे ॐ ईशानाय नमः ।
9. एते गन्धपुष्पे ॐ ब्रह्मणे नमः ।
10. एते गन्धपुष्पे ॐ अनन्ताय नमः ।

तब इनके अस्त्रों की पूजा करे—

1. एते गन्धपुष्पे ॐ वज्राय नमः ।
2. एते गन्धपुष्पे ॐ शक्तये नमः ।
3. एते गन्धपुष्पे ॐ दण्डाय नमः ।
4. एते गन्धपुष्पे ॐ खड्गाय नमः ।
5. एते गन्धपुष्पे ॐ पाशाय नमः ।
6. एते गन्धपुष्पे ॐ अङ्कुशाय नमः ।
7. एते गन्धपुष्पे ॐ गदाय नमः ।
8. एते गन्धपुष्पे ॐ त्रिशूलाय नमः ।
9. एते गन्धपुष्पे ॐ पद्माय नमः ।
10. एते गन्धपुष्पे ॐ चक्राय नमः ।

इस प्रकार विघ्नराज की पञ्चतत्त्वों से पूजा करके विघ्नराज को विसर्जित करे । इसके बाद अधिवास करे और ब्रह्मज्ञ कुलसाधकों को भोजन कराये ।

तिल-काञ्चन दान

ततः परदिने स्नातः कृतनित्योदितक्रियः ।
आजन्मकृतपापानां क्षयार्थं तिलकाञ्चनम् ।
उत्सृजेत्कौलतृप्त्यर्थं भोज्यञ्चैकमपि प्रिये! ।। 126 ।।

अगले दिन स्नान और नित्य कर्म करके जन्म से अब तक किए गये पापों के नाश के लिये तिल-काञ्चन का दान करे । हे प्रिये! कौलों की तृप्ति के लिये उन्हें भोजन कराए । तिल-काञ्चन दान एवं कौलों को भोजन कराने की विधि निम्नवत् है—

तिल-काचन दान की विधि—'ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकराशिस्थे भास्करे अमुकतिथौ अमुकवासरे जम्बूद्वीपान्तर्गतभारतवर्षैकदेशस्थिता-मुकग्रामवासी अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिने श्रीअमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय दातुं काञ्चनसहितान् तिलानहं समुत्सृजे ।' यह वाक्य पढ़कर तिलकाञ्चन उत्सर्ग करे ।

कौलों को भोजन कराने की विधि—'ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकराशिस्थे भास्करे अमुकंतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायी श्रीअमुकदेवशर्मा कौलादितृप्तिकामः अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिने श्रीमते अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय कौलाय दातुं भोज्यमहं समुत्सृजे' वह वाक्य पढ़कर भोज्य का उत्सर्ग करे ।। 126।।

वसुधारा

अर्घ्यं दत्त्वा दिनेशाय ब्रह्माविष्णुशिवग्रहान् ।
अर्च्चयित्वा मातृगणान्वसुधारां प्रकल्पयेत् ।। 127 ।।
कर्मणोऽभ्युदयार्थाय वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ।
ततो गत्वा गुरोः पार्श्वं प्रणम्य प्रार्थयेदिदम् ।। 128 ।।

सूर्य को अर्घ्य देकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नवग्रह मातृकाओं की पूजा करके वसुधारा दे । कर्म की अभ्युदय की कामना से वृद्धिश्राद्ध करे । उसके बाद गुरु के पास जाकर प्रणाम करके उनसे प्रार्थना करे ।। 127-128।।

गुरुवरण

त्राहि नाथ! कुलाचार! नलिनीकुलवल्लभ! ।
त्वत्पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि कृपानिधे! ।। 129 ।।
आज्ञां देहि महाभाग! शुभपूर्णाभिषेचने ।
निर्विघ्नं कर्मणः सिद्धिमुपैमि त्वत्प्रसादतः।। 130 ।।
शिवशक्त्याज्ञया वत्स! कुरु पूर्णाभिषेचनम् ।
मनोरथमयी सिद्धिर्ज्जायतां शिवशासनात् ।। 131 ।।
इत्थमाज्ञां गुरोः प्राप्य सर्वोपद्रवशान्तये ।
आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यावाप्त्यै सङ्कल्पमाचरेत् ।। 132 ।।
ततस्तु कृतसङ्कल्पो वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
कारणैः शुद्धिसहितैरभ्यर्च्य वृणुयाद्गुरुम् ।। 133 ।।

श्लोक 129 और 130 गुरुप्रार्थना मन्त्र हैं । हे नाथ! हे कुलाचाररूप कमलिनीसमूह के प्रियतम! हे दयासिन्धु! मेरे मस्तक पर अपने पादपद्मों की छाया प्रदान करें । हे महानुभाव! मेरे पूर्णाभिषेक के लिये आज्ञा दें । आपकी कृपा से मैं कार्य की सफलता निर्विघ्न पाऊँ । इस प्रार्थना को सुनकर गुरुदेव श्लोक 131 का पाठ करे । हे पुत्र! शिवशक्ति की आज्ञानुसार पूर्णाभिषेक करो । शिव के आदेश से तुम्हें इच्छानुरूप सिद्धि प्राप्त हो । गुरुदेव से इस प्रकार की आज्ञा प्राप्त करके सभी उपद्रवों की शान्ति के लिये आयु, लक्ष्मी. बल तथा आरोग्य की प्राप्ति के लिये निम्न प्रकार से संकल्प करे—

'ॐ तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदी अमुकशाखाध्यायी कुमारिकाखण्डान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामवासी श्रीअमुकदेवशर्मा निःशेषोपद्रव-शान्तिकामः आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यकामश्च शुभपूर्णाभिषेचनमहं करिष्ये' ।

'ॐ तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदी अमुकशाखाध्यायी कुमारिकाखण्डान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामवासी श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकगोत्रम् अमुकप्रवरम् अमुकवेदिनम् अमुकशाखाध्यायिनं कुमारिकाखण्डान्तर्गतामुकप्रदेशीया-मुकग्रामनिवासिनं श्रीमन्तममुकानन्दनाथं गुरुत्वेन भवन्तं वस्त्रालंकारादिभिरहं वृणे' इस प्रकार गुरुवरण का संकल्प पढ़कर गुरु को वरण करके वस्त्र, अलंकार.

भूषण और शुद्धिसहित कारण (मद्य) से गुरुदेव की पूजा करके उनका वरण करे ।। 129-133 ।।

कलश-स्थापन

गुरुर्मनोहरे गेहे गैरिकादिविचित्रिते ।
चित्रध्वजपताकाभिः फलपल्लवशोभिते ।। 134 ।।
किङ्किणीजालमालाभिश्चन्द्रातपविभूषिते ।
घृतप्रदीपावलिभिस्तमोलेशविवर्ज्जिते ।। 135 ।।
कर्पूरसहितैर्धूपैर्यक्षधूपैः सुवासिते ।
व्यजनैश्चामरैर्बर्हैर्दर्पणाद्यैरलङ्कृते ।। 136 ।।
सार्द्धहस्तमितां वेदीमुच्चकैश्चतुरङ्गुलाम् ।
रचयेन्मृण्मयीं तत्र चूर्णैरक्षतसम्भवैः ।। 137 ।।
पीतरक्तासितश्वेतश्यामलैः सुमनोहरम् ।
मण्डलं सर्वतोभद्रं विदध्याच्छ्रीगुरुस्ततः ।। 138 ।।
स्वस्य कल्पोक्तविधिना मानसार्चावधिक्रियाम् ।
कृत्वा पूर्वोक्तमन्त्रेण पञ्चतत्त्वानि शोधयेत् ।। 139 ।।
संशोध्य पञ्चतत्त्वानि पुरःकल्पितमण्डले ।
स्वार्णं वा राजतं ताम्रं मृण्मयं घटमेव वा ।। 140 ।।
क्षालितञ्चास्त्रबीजेन दध्यक्षतविवर्जितम् ।
स्थापयेद्ब्रह्मबीजेन सिन्दूरेणाङ्कयेच्छ्रिया ।। 141 ।।
क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुविभूषितैः ।
मूलमन्त्रत्रिजापेन पूरयेत्कारणेन तम् ।। 142 ।।
अथवा तीर्थतोयेन शुद्धेन पाथसापि वा ।
नवरत्नं सुवर्णं वा घटमध्ये विनिःक्षिपेत् ।। 143 ।।
पनसोदुम्बराश्वत्थबकुलाम्रसमुद्भवम् ।
पल्लवं तन्मुखे दद्याद्वाग्भवेन कृपानिधिः ।। 144 ।।

गुरुदेव गैरिकादि रङ्गों से चित्रित, सुन्दर ध्वज-पताकाओं से सुशोभित, फल-पत्तों से सुसज्जित, मालाकार किंकिणियों से शोभित, रङ्ग-विरङ्गी चाँदनी से युक्त, ज्वलित घृत-दीपकों की पंक्तियों से पूर्ण प्रकाशित, कपूर-धूप-धूना से सुगन्धित, तालवृन्त, चामर, मोरपंख, दर्पणादि से शोभित, मनहर गृह में चार अङ्गुल ऊँची और डेढ़ हाथ लम्बी-चौड़ी वेदी बनाए । उसमें पीले-लाल-काली-सफेद-साँवले रङ्ग के चावलचूर्ण से सुन्दर सर्वतोभद्र मण्डल बनावे ।

तब अपने कल्प में कथित विधि से मानस पूजा तक के कर्म करके पूर्वोक्त मन्त्रों से पञ्चतत्त्वों का शोधन करे । सोने-चाँदी-ताम्बे या मिट्टी के कलश को 'फट्' से प्रक्षालित करके दही-चावलचूर्ण का लेप लगाकर 'ॐ' का उच्चारण करते हुए सर्वतोभद्र मण्डल पर स्थापित करे । 'श्रीं' का जप करते हुए उसमें सिन्दूर लगावे । तब अनुस्वारसहित 'क्ष' से 'अ' तक के पचास वर्णों के सहित मूल मन्त्र का तीन बार जप कर मद्य या तीर्थजल या शुद्ध जल से पूर्ण करे । उसमें नवरत्न या सोना छोड़े । तब 'ऐं' का जप करते हुए घट के मुख पर कटहल, गूलर, पीपल, मौलसिरी और आम्रपल्लवों को स्थापित करे ।। 134-144 ।।

कलश और पात्रस्थापन

शरावं मार्त्तिकं वापि फलाक्षतसमन्वितम् ।
रमां मायां समुचार्य स्थापयेत्पल्लवोपरि ।। 145 ।।
बध्नीयाद्वस्त्रयुग्मेन ग्रीवां तस्य वरानने! ।
शक्तौ रक्तं शिवे विष्णौ श्वेतवासः प्रकीर्त्तितम् ।। 146 ।।
स्थां स्थीं मायां रमां स्मृत्वा स्थिरीकृत्य घटान्तरे ।
निक्षीप्य पञ्चतत्त्वानि नवपात्राणि विन्यसेत् ।। 147 ।।
राजतं शक्तिपात्रं स्याद्गुरुपात्रं हिरण्मयम् ।
श्रीपात्रन्तु महाशङ्खताम्राण्यन्यानि कल्पयेत् ।। 148 ।।
पाषाणदारुलौहानां पात्राणि परिवर्ज्जयेत् ।
शक्त्या प्रकल्पयेत्पात्रं महादेव्याः प्रपूजने ।। 149 ।।
पात्राणां स्थापनं कृत्वा गुरून्देवीं प्रतर्पयेत् ।
ततस्त्वमृतसम्पूर्णघटमभ्यर्च्चयेत्सुधीः ।। 150 ।।
दर्शयित्वा धूपदीपौ सर्वभूतबलिं हरेत् ।
पीठदेवान्पूजयित्वा षडङ्गन्यासमाचरेत् ।। 151 ।।
प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यात्वावाह्य महेश्वरीम् ।
स्वशक्त्या पूजयेदिष्टां वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।। 152 ।।
होमान्तकृत्यं निष्पाद्य कुमारीशक्तिसाधकान् ।
पुष्पचन्दनवासोभिरर्च्चयेत्सद्गुरुः शिवे! ।। 153 ।।

'श्रीं ह्रीं' का जप करते हुए फल-अक्षत से युक्त सोने-चाँदी-ताम्बे या मिट्टी का प्याला कलश के पत्तों पर रक्खे । हे वरानने! दो वस्त्रों से कलश के गले को बान्धे । शक्तिमन्त्र हो तो लाल और विष्णुमन्त्र हो तो उजला वस्त्र बाँधना चाहिये । निम्न मन्त्र से कलश को स्थिर करे—'स्थां स्थीं ह्रीं श्रीं स्थिरी

भव' । इस प्रकार स्थापित स्थिर कलश में पञ्चरत्न डाले । तब नौ पात्रों को स्थापित करे ।

शक्तिपात्र चाँदी का, गुरुपात्र सोने का, श्रीपात्र नरकपाल या नारिकेल का और अन्य पात्र ताम्बे का होना चाहिये । महादेवी की पूजा में पत्थर, लकड़ी और लोहे के पात्र का उपयोग न करे । सामर्थ्य के अनुसार अन्य द्रव्यों के पात्रों को ही रक्खे । पात्रों की स्थापना के बाद गुरुओं और आनन्दभैरवी का तर्पण करे । तब गुरुदेव अमृतघट की पूजा करे । धूप-दीप दिखाकर सर्वभूत को बलि प्रदान करे । तब पीठ- देवतादि की पूजा करके षडंग न्यास करे । प्राणायाम करके महेश्वरी का ध्यान और आवाहन करके अपनी सामर्थ्य के अनुसार इष्टदेवता की पूजा करे । पूजा के समय सामर्थ्य के अनुरूप खर्च न कर कञ्जूसी करना अनुचित होता है । हे शिवे! गुरुदेव हवन तक के कर्म करने के बाद फूल-चन्दन और वस्त्र से कुमारी, शक्ति और साधकों की पूजा करे । तब गुरुदेव उपस्थित कौल साधकों से अपने शिष्य का पूर्णाभिषेक करने की अनुमति माँगे ।। 145-153 ।।

अनुगृह्णन्तु कौला मे शिष्यं प्रति कुलव्रताः ।
पूर्णाभिषेकसंस्कारे भवद्भिरनुमन्यताम् ।। 154 ।।
एवं पृच्छति चक्रेशे तं ब्रूयुर्गुरुमादरात् ।
महामायाप्रसादेन प्रभावात्परमात्मनः ।
शिष्यो भवतु पूर्णस्ते परतत्त्वपरायणः ।। 155 ।।
शिष्येण च गुरुर्देवीमर्चयित्वार्चिते घटे ।
कामं मायां रमां जप्त्वा चालयेद्विमलं घटम् ।। 156 ।।
उत्तिष्ठ ब्रह्मकलश! देवतात्मक! सिद्धिद!।
त्वत्तोयपल्लवैः सिक्तः शिष्यो ब्रह्मरतोऽस्तु मे ।। 157 ।।
इत्थं सञ्चाल्य कलशमुत्तराभिमुखं गुरुः ।
मन्त्रैरेतैर्वक्ष्यमाणैरभिषिञ्चेत्कृपान्वितः ।। 158 ।।

श्लोक 154 अनुमति का प्रार्थना मन्त्र है । हे कुलव्रतपरायण कौलगण! आप लोग मेरे शिष्य पर अनुग्रह करें और पूर्णाभिषेक संस्कार की अनुमति प्रदान करें । चक्रेश्वर के इस प्रकार प्रार्थना करने पर कौल लोग चक्रेश्वर गुरुदेव से श्लोक 155 रूप में अनुमति आशीर्वाद प्रदान करें । महामाया के प्रसाद से आपका शिष्य परब्रह्म में तत्पर होकर पूर्ण होवे । इसके बाद गुरुदेव शिष्य

से देवी का पूजन कराएँ। पूजित घट के ऊपर 'क्लीं ह्रीं श्रीं' मन्त्र का जप कर उस घट को निम्न मन्त्र से हिलावे। घट हिलाने का मन्त्र श्लोक 157 है। हे सिद्धिदायक! देवतास्वरूप ब्रह्मकलश! तुम उठो। तुम्हारे जल और पल्लव द्वारा सिक्त होकर मेरा शिष्य ब्रह्म में रत होवे। तब शिष्य को गुरुदेव उत्तरमुख बैठाये। निम्न मन्त्रों का पाठ करते हुए घटस्थ जल से पञ्चपल्लवों द्वारा गुरुदेव शिष्य का अभिषेक करे ।। 154-158 ।।

अभिषेक-मन्त्र

शुभपूर्णाभिषेकस्य सदाशिवऋषिः स्मृतः।
छन्दोऽनुष्टुब्देवताद्या प्रणवं बीजमीरितम्।
शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।। 159 ।।
गुरवस्त्वाभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
दुर्गालक्ष्मीभवान्यस्त्वामभिषिञ्चन्तु मातरः ।। 160 ।।
षोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिषमर्दिनी।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।। 161 ।।
जयदुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु बगला वरदा शिवा ।। 162 ।।
नारसिंही च वाराही वैष्णवी वनमालिनी।
इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वाभिषिञ्चन्तु शक्तयः ।। 163 ।।
भैरवी भद्रकाली च तुष्टिः पुष्टिरुमा क्षमा।
श्रद्धा कान्तिर्दयाशान्तिरभिषिञ्चन्तु ते सदा ।। 164 ।।
महाकाली महालक्ष्मीर्महानीला सरस्वती।
उग्रचण्डा प्रचण्डा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।। 165 ।।
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा।
रामो भार्गवरामस्त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ।। 166 ।।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः।
कपाली भीषणश्च त्वामभिषिञ्चतु वारिणा ।। 167 ।।
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी।
विप्रचित्ता महोग्रा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।। 168 ।।
इन्द्रोऽग्निः शमनो रक्षो वरुणः पवनस्तथा।
धनदश्च महेशानः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ।। 169 ।।
रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः।

राहुः केतुः सनक्षत्रा अभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ।। 170 ।।
नक्षत्रं करणं योगो वाराः पक्षौ दिनानि च ।
ऋतुर्मासो हायनस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।। 171 ।।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ।
समुद्रास्त्वाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।। 172 ।।
गङ्गा सूर्यसुता रेवा चन्द्रभागा सरस्वती ।
सरयूर्गण्डकी कुन्ती श्वेतगङ्गा च कौशिकी ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।। 173 ।।
अनन्ताद्या महानागाः सुपर्णाद्याः पतत्त्रिणः ।
तरवः कल्पवृक्षाद्याः सिञ्चन्तु त्वां महीधराः ।। 174 ।।
पातालभूतलव्योमचारिणः क्षेमकारिणः ।
पूर्णाभिषेकसन्तुष्टास्त्वाभिषिञ्चन्तु पाथसा ।। 175 ।।
दौर्भाग्यं दुर्यशो रोगा दौर्मनस्यं तथा शुचः ।
विनश्यन्त्वभिषेकेण परमब्रह्मतेजसा ।। 176 ।।
अलक्ष्मीः कालकर्णी च डाकिन्यो योगिनीगणाः ।
विनश्यन्त्वभिषेकेण कालीबीजेन ताडिताः ।। 177 ।।
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ग्रहा येऽरिष्टकारकाः ।
विद्रुतास्ते विनश्यन्तु रमाबीजेन ताडिताः ।। 178 ।।
अभिचारकृता दोषा वैरिमन्त्रोद्भवाश्च ये ।
मनोवाक्कायजा दोषा विनश्यन्त्वभिषेचनात् ।। 179 ।।
नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।
अभिषेकेन पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।। 180 ।।

अभिषेक करने के पूर्व उसका विनियोग किया जाता है, जो इस प्रकार है—

विनियोग—ॐ शुभपूर्णाभिषेकमन्त्रस्य सदाशिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, आद्याकाली देवता, ॐ बीजं शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः ।

सब गुरुजन तुम्हें अभिषिक्त करें । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा, लक्ष्मी, भवानी माताएँ तुम्हें अभिषिक्त करें । षोडशी, तारा, नित्या, स्वाहा, महिषमर्दिनी मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करें । जय दुर्गा, लक्ष्मी, ब्रह्माणी, सरस्वती, बगला, वरदा, शिवा तुम्हारा अभिषेक करें । नारसिंही, वैष्णवी, वाराही,

वनमालिनी, इन्द्राणी, वारुणी, रौद्री शक्तियाँ तुम्हें अभिषिक्त करें । भैरवी, भद्रकाली, तुष्टि, पुष्टि, उमा, क्षमा, श्रद्धा, कान्ति, दया, शान्ति सभी तुम्हें सदैव अभिषिक्त करें । महाकाली, महालक्ष्मी, महानीला, सरस्वती, उग्रचण्डा, प्रचण्डा, सभी देवियाँ तुम्हें सर्वदा अभिषिक्त करें । मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम सभी देवपूत जल से सदैव तुम्हारा अभिषेक करें । असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण—ये सभी पूत जल से तुम्हारा अभिषेक करें । काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, महोग्रा—ये सभी तुम्हारा अभिषेक सदैव करें । इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, आठो दिक्पाल तुम्हें अभिषिक्त करें । सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु नवों ग्रह सभी नक्षत्रों के साथ तुम्हारा अभिसेचन करें । अश्विनी आदि नक्षत्र, वव आदि करण, विष्कंभादि योग, रवि इत्यादि वार, शुक्ल पक्ष, कृष्ण पक्ष, तिथियाँ, वसन्तादि छः ऋतु, बारह महीने, उत्तरायण और दक्षिणायन तुम्हारा अभिषेक सदा करें । लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासागर, घृतसिन्धु, दधिसागर, दूधसागर सभी समुद्र मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करें । गङ्गा, यमुना, रेवा, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, गंडकी, कुन्ती, श्वेतगङ्गा, कौशिकी सभी नदियाँ मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करें । अनन्त, वासुकी, पद्म आदि महानाग, गरुड़ादि पक्षी, कल्पवृक्षादि द्रुम और पर्वत तुम्हारा अभिषेक करें । पातालचारी, भूतलचारी और व्योमचारी जीवगण तुम्हारा मङ्गल करें । ये सभी पूर्णाभिषेक को देखकर सन्तुष्ट हो जल से तुम्हारा अभिषेक करें । पूर्णाभिषेक होने से और परब्रह्म के तेज से तुम्हारा दुर्भाग्य, अपयश, रोग, दौर्मनस्य और शोकादि का विनाश हो जायँ । अलक्ष्मी, कालकर्णी, डाकिनी, योगिनी अभिषेक से और काली जी के बीजमन्त्र से ताड़ित होकर विनष्ट हो जायँ । भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह और सव अनिष्ट करने वाले श्रीं से ताड़ित होकर भाग जायँ और नष्ट हो जायँ । अभिचार से उत्पन्न दोष, वैरिमन्त्र से उत्पन्न दोष, मानसिक दोष, वाचिक दोष, कायिक दोष अभिषेक से नष्ट हो जायँ । इस अभिषेक से तुम्हारी सभी विपत्तियों का नाश हो । तुम्हारी सभी सम्पत्तियाँ स्थिर हों । इस पूर्णाभिषेक से तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण हों ।। 159-180 ।।

इत्येकाधिकविंशत्या मन्त्रैः संसिक्तसाधकम् ।
पशोर्मुखाल्लब्धमन्त्रं पुनः संश्रावयेद्गुरुः ।। 181 ।।

पूर्वोक्तनाम्ना सम्बोध्य ज्ञापयञ्छक्तिसाधकान् ।
दद्यादानन्दनाथान्तमाख्यानं कौलिको गुरुः ।। 182 ।।

उपर्युक्त इक्कीस मन्त्रों से अभिषिक्त साधक ने यदि पहले पशु से दीक्षा ली हो तो इस समय कौल गुरु उसे वही मन्त्र पुनः सुनायें । कौलिक गुरुदेव पूर्वोक्त नाम से शिष्य को सम्बोधित करके सभी शक्तिसाधकों को सूचित करते हुए उसे आनन्दनाथान्त नाम प्रदान करें ।।। 181-182 ।।

गुरुपूजन

श्रुतमन्त्रो गुरोर्यन्त्रे सम्पूज्य निजदेवताः ।
पञ्चतत्त्वोपचारेण गुरुमभ्यर्चयेत्ततः ।। 183 ।।
गोभूहिरण्यवासांसि यानालङ्करणानि च ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा यजेत्कौलाञ्छिवात्मकान् ।। 184 ।।
कृतकौलार्च्चनो धीरः शान्तोऽतिविनयान्वितः ।
श्रीगुरोश्चरणौ स्पृष्ट्वा भक्त्या नत्वेदमर्थयेत् ।। 185 ।।
श्रीनाथ! जगतांनाथ! मन्नाथ! करुणानिधे! ।
परामृतप्रदानेन पूरयास्मन्मनोरथम् ।। 186 ।।
आज्ञां मे दीयतां कौलाः प्रत्यक्षशिवरूपिणः ।
सच्छिष्याय विनीताय ददामि परमामृतम् ।। 187 ।।
चक्रेश! परमेशान! कौलपङ्कजभास्कर! ।
कृतार्थं कुरु सच्छिष्यं देह्यमुष्मै कुलामृतम् ।। 188 ।।
आज्ञामादाय कौलानां परमामृतपूरितम् ।
सशुद्धिकं पानपात्रं शिष्यहस्ते समर्पयेत् ।। 189 ।।
हृद्याकृष्य गुरुर्देवीं स्त्रवसंलग्नभस्मना ।
स्वस्य शिष्यस्य कौलानां कूर्च्चे च तिलकं न्यसेत् ।। 190 ।।
ततः प्रसादतत्त्वानि कौलेभ्यः परिवेषयन् ।
चक्रानुष्ठानविधिना विदध्यात्पानभोजनम् ।। 191 ।।

गुरुदेव से मन्त्र प्राप्त करके शिष्य यन्त्रराज में देवता की पूजा करके पञ्चतत्त्वोपचारों से गुरुदेव की पूजा करे । दक्षिणा में गुरुदेव को शिष्य भूमि, सोना, वस्त्र, मद्य, अलंकार आदि दे । तब शिवस्वरूप कौलों की पूजा करे । शान्त और विनम्र भाव से भक्तिपूर्वक शिष्य श्रीगुरुदेव का पादस्पर्श करके प्रणाम करे और प्रार्थना करे । श्लोक 186 गुरुप्रार्थना मन्त्र है । हे श्रीनाथ!

हे जगत् के नाथ! हे मेरे नाथ! हे दयानिधे! परमामृत देकर मेरे मनोरथ पूरा करें । तब गुरुदेव कौलों से अनुमति-प्राप्ति के लिये श्लोक 187 का वाचन करे । हे शिवस्वरूप कौलगण! अपने विनम्र सच्छिष्य को मैं परमामृत देता हूँ । आप लोग मुझे आज्ञा देवें । उत्तर में कौलगण श्लोक 188 का वाचन करें । हे चक्रेश्वर! हे परमेश्वर! हे कौलकमलभानु! आप इस सच्छिष्य को कुलामृत देकर कृतार्थ करें । कौलों की अनुमति पाकर गुरुदेव शुद्धि- सहित परमामृतपूर्ण पात्र को शिष्य के हाथ में प्रदान करें । तब गुरुदेव हृदय में देवी का ध्यान करके स्रुव में लगे भस्म से शिष्य और कौलसाधकों के भ्रूमध्य में तिलक लगावें । इसके बाद सभी कौलों को सभी प्रसाद तत्त्व अर्पित करके चक्रानुष्ठान की विधि से पान और भोजन करे।। 183-191 ।।

इति ते कथितं देवि! शुभपूर्णाभिषेचनम् ।
ब्रह्मज्ञानैकजननं शिवत्वफलसाधनम् ।। 192 ।।
नवरात्रं सप्तरात्रं पञ्चरात्रं त्रिरात्रकम् ।
अथवाप्येकरात्रञ्च कुर्यात्पूर्णाभिषेचनम् ।। 193 ।।
संस्कारेऽस्मिन्कुलेशानि! पञ्चकल्पा: प्रकीर्तिता: ।
नवरात्रे विधातव्यं सर्वतोभद्रमण्डलम् ।। 194 ।।
नवनाभं सप्तरात्रे पञ्चाब्जं पञ्चरात्रके ।
त्रिरात्रे चैकरात्रे च पद्ममष्टदलं प्रिये! ।। 195 ।।
मण्डले सर्वतोभद्रे नवनाभेऽपि साधकै: ।
स्थापनीया नव घटा: पञ्चाब्जे पञ्चसङ्ख्यका: ।। 196 ।।
नलिनेऽष्टदले देवि! घटस्त्वेक: प्रकीर्तित: ।
अङ्गावरणदेवांश्च केशरादिषु पूजयेत् ।। 197 ।।
पूर्णाभिषेकसिद्धानां कौलानां निर्मलात्मनाम् ।
दर्शनात्स्पर्शनाद्घ्राणाद्द्रव्यशुद्धिर्विधीयते ।। 198 ।।

हे देवि! मैंने तुम्हें ब्रह्मज्ञान का एकमात्र कारण और शिवत्व-प्राप्ति का उपाय इस शुभ पूर्णाभिषेक को बता दिया । नौ, सात, पाँच, तीन या एक रात में पूर्णाभिषेक करे । हे कुलेश्वरि! इस संस्कार के पाँच कल्प बताए गये हैं । नौ रात के अभिषेक में सर्वतोभद्र मण्डल बनता है । सात रात के अभिषेक में नवनाग मण्डल, पाँच रात के अभिषेक में पञ्चाब्ज मण्डल एवं तीन और एक रात के अभिषेक में अष्टदल कमल की रचना होती है । सर्वतोभद्र और नवनाग

मण्डल में नौ कलशों की तथा पञ्चाब्ज मण्डल में पाँच कलशों की स्थापना होती है । हे देवि! अष्टदल कमल में एक ही कलश की स्थापना होती है । केशरादि में अङ्ग देवता और आवरण देवताओं की पूजा करे । पूर्णाभिषेक से सिद्ध निर्मल चित्त कौलों के देखने, छूने और सूघने से सभी द्रव्यों की शुद्धि हो जाती है ।। 192-198 ।।

कौल दीक्षा की प्रशंसा

शाक्तैर्वा वैष्णवैः शैवैः सौरैर्गाणपतैरपि ।
कौलधर्माश्रितः साधु:पूजनीयोऽतियत्नतः ।। 199 ।।
शाक्ते शाक्तो गुरुः शस्तः शैवे शैवो गुरुर्मतः ।
वैष्णवे वैष्णवः सौरे सौरो गुरुरुदाहृतः ।। 200 ।।
गाणपे गाणपश्चैव कौलः सर्वत्र सद्गुरुः ।
अतः सर्वात्मना धीमान्कौलाद्दीक्षां समाचरेत् ।। 201 ।।
पञ्चतत्त्वेन यत्नेन भक्त्या कौलान्यजन्ति ये ।
उद्धृत्य पुरुषान्सर्वांस्ते यान्ति परमां गतिम् ।। 202 ।।
पशोर्वक्त्राल्लब्धमन्त्रः पशुरेव न संशयः ।
वीराल्लब्धमनुर्वीरः कौलाद्भवति ब्रह्मवित् ।। 203 ।।
शाक्ताभिषेकी वीरः स्यात्पञ्चतत्त्वानि शोधयेत् ।
स्वेष्टपूजाविधावेव न तु चक्रेश्वरो भवेत् ।। 204 ।।
वीरघाती वृथापायी वीराणां स्त्रीगमस्तथा ।
स्तेयी महापातकिनस्तत्संसर्गी च पञ्चमः ।। 205 ।।
कुलवर्त्म कुलद्रव्यं कुलसाधकमेव च ।
ये निन्दन्ति दुरात्मानस्ते गच्छन्त्यधमाङ्गतिम् ।। 206 ।।
नृत्यन्ति रुद्रडाकिन्यो नृत्यन्ति रुद्रभैरवाः ।
मांसास्थिचर्वणानन्दाः सुराः कौलद्विषां नृणाम् ।। 207 ।।
दयालवः सत्यशीलाः सदा परहितैषिणः ।
तान्गर्हयन्तो नरकान्निष्कृतिं यान्ति न क्वचित् ।। 208 ।।
उक्ताः प्रयोगा बहवः कर्माणि विविधानि च ।
ब्रह्मैकनिष्ठकौलस्य त्यागानुष्ठानयोः समम् ।। 209 ।।
एकमेव परं ब्रह्म जगदावृत्य तिष्ठति ।
विश्वार्चया तदर्चा स्याद्यतः सर्वं तदन्वितम् ।। 210 ।।

फलासक्ताः कामपराः कर्मजालरताः प्रिये! ।
पृथक्त्वेन यजन्तोऽपि तत्प्रयान्ति विशन्ति च ॥ 211 ॥
सर्वं ब्रह्मणि सर्वत्र ब्रह्मैव परिपश्यति ।
ज्ञेयः स एव सत्कौलो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ 212 ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-सदाशिवसंवादे वृद्धिश्राद्धादिमृतक्रिया-पूर्णाभिषेककथनं नाम दशमोल्लासः ।

❖

कुल-धर्माश्रित साधु शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर और गाणपत्य सभी उपासकों द्वारा पूजनीय हैं । शाक्तों के लिये शाक्त गुरु, शैवों के लिये शैव गुरु, वैष्णवों के लिये वैष्णव गुरु, सौरों के लिये सूर्योपासक गुरु और गणपति के गाणपत्य गुरु ही प्रशस्त माने गये हैं । परन्तु कौल सवों के लिये प्रशस्त गुरु हैं । अतः बुद्धिमान मनुष्य सव प्रकार से कौल से ही दीक्षा ग्रहण करे । जो लोग यत्नपूर्वक भक्ति से पञ्चतत्त्वों के द्वारा कौलों की पूजा करते हैं, वे अपने सभी पूर्वजों का उद्धार करके स्वयं परम गति को प्राप्त करते हैं । पशु के मुख से मन्त्र प्राप्त करने वाला पशु ही होता है । जो वीर से मन्त्र लेता हैं, वह वीर और जो कौल से मन्त्र ग्रहण करता है, वह ब्रह्मज्ञ होता है । शाक्ताभिषेक व्यक्ति ही वीर होता है । अपने इष्टदेवता की पूजाविधि से वह पञ्चतत्त्वों का शोधन कर सकता है; पर चक्रेश्वर नहीं बन सकता । वीर का हत्यारा वृथा मद्यपायी है । वीरपत्नीगामी महापापी होता है । अस्सी रत्ती सोने के मूल्य वाला विप्रधन चुराने वाला महापापी होता है । इन चारो प्रकार के मनुष्यों के सम्पर्क में रहने वाला मनुष्य पाँचवाँ महापापी होता है । जो पापी लोग कुलमार्ग, कुलद्रव्य और कुलसाधक की निन्दा करते हैं; उन्हें अधोगति मिलती है । रुद्रडाकिनियाँ और रुद्रभैरव कौलद्वेषी मनुष्यों के मांसास्थि का चर्वण करते हैं । आनन्दित होकर नृत्य करते हैं । दयालु, सत्यनिष्ठ और सदा परोपकारी व्यक्ति भी कौलों की निन्दा करके किसी भी प्रकार नरक जाने से बच नहीं सकता । बहुत प्रकार के प्रयोग और बहुत से कर्मों का वर्णन है; परन्तु केवल ब्रह्मपरायण कौल का कर्म-त्याग और कर्मानुष्ठान दोनों बराबर फलप्रद हैं । केवल परम ब्रह्म ही तीनों लोक में व्याप्त होकर अवस्थित है; अतः विश्व की पूजा करने से ब्रह्म की ही पूजा होती है; क्योंकि सभी वस्तुएँ ब्रह्म से अन्वित अभिन्न हैं । हे प्रिये! फल

में आसक्त कामपरायण और कर्मकाण्ड में लग्न मनुष्य अलग-अलग भावों से अन्य देवताओं की पूजा करते हैं. वे भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं और ब्रह्म में ही लय हो जाते हैं । जो सभी वस्तुओं को ब्रह्म में और सभी वस्तुओं में ब्रह्म को देखते हैं, उन्हें ही सत्कौल और जीवन्मुक्त जाना जाता है । इसमें सन्देह नहीं है।। 199-212 ।।

वृद्धिश्राद्धादि मृतक्रियापूर्णाभिषेककथन नामक दशमोल्लास सम्पूर्ण

❖

एकादश उल्लास

पापों के प्रायश्चित्त का वर्णन

पापभेद का वर्णन

श्रुत्वा शाम्भवधर्मांश्च वर्णाश्रमविभेदतः ।
अपर्णा परया प्रीत्या पप्रच्छ शङ्करं प्रति ॥ 1 ॥

श्रीदेव्युवाच

वर्णाश्रमाचारधर्माः संस्कारा लोकसिद्धये ।
कथिताः कृपया मह्यं सर्वज्ञेन त्वया प्रभो ॥ 2 ॥
कलौ दुर्वृत्तयो लोकाः कामक्रोधान्धचेतसः ।
नास्तिकाः संशयात्मानः सदेन्द्रियसुखैषिणः ॥ 3 ॥
भवन्निगदितं वर्त्म नानुष्ठास्यन्ति दुर्धियः ।
तेषां का गतिरीशान! विशेषाद्वक्तुमर्हसि ॥ 4 ॥

श्रीसदाशिव उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि! लोकानां हितकारिणि!।
त्वं जगज्जननी दुर्गा जन्मसंसारमोचनी ॥ 5 ॥
त्वमाद्या जगतां धात्री पालयित्री परात्परा ।
त्वयैव धार्यते देवि! विश्वमेतच्चराचरम् ॥ 6 ॥
त्वमेव पृथ्वी त्वं वारि त्वं वायुस्त्वं हुताशनः ।
त्वं वियत्त्वमहङ्कारस्त्वं महत्तत्त्वरूपिणी ॥ 7 ॥
त्वमेव जीवलोकेऽस्मिंस्त्वं विद्या परदेवता ।
इन्द्रियाणि मनोबुद्धिर्विश्वेषां त्वं गतिः स्थितिः ॥ 8 ॥
त्वमेव वेदाः प्रणवः स्मृतयस्त्वं हि संहिताः ।
निगमागमतन्त्राणि सर्वशास्त्रमयी शिवा ॥ 9 ॥
महाकाली महालक्ष्मीर्महानीला सरस्वती ।
महोदरी महामाया महारौद्री महेश्वरी ॥ 10 ॥
सर्वज्ञा त्वं ज्ञानमयी नास्त्यवेद्यं तवान्तिके ।
तथापि पृच्छसि प्राज्ञे! प्रीतये कथयामि ते ॥ 11 ॥

सत्यमुक्तं त्वया देवि! मनुजानां विचेष्टितम् ।
जानन्तोऽपि हितं मत्ता: पापैराशु सुखप्रदः ।। 12 ।।
नाचरिष्यन्ति सद्धर्महिताहितबहिष्कृता: ।
तेषां नि:श्रेयसार्थाय कर्त्तव्यं यत्तदुच्यते ।। 13 ।।
अनुष्ठानं निषिद्धस्य त्यागो विहितकर्मण: ।
नृणां जनयत: पापं क्लेशशोकामयप्रदम् ।। 14 ।।
स्वानिष्टमात्रजननात्परानिष्टोपपादनात् ।
तदेव पापं द्विविधं जानीहि कुलनायिके!।। 15 ।।
परानिष्टकरात्पापान्मुच्यते राजशासनात् ।
अन्यस्मान्मुच्यते मर्त्य: प्रायश्चित्तात्समाधिना ।। 16 ।।
प्रायश्चित्त्याथवा दण्डैर्न पूता ये कृतांहस: ।
नरकान्न निवर्त्तन्ते इहामुत्र विगर्हिता: ।। 17 ।।

अपर्णा देवी वर्णाश्रम के अनुसार धर्म का वर्णन सुनकर बडी प्रसन्न हुईं और उन्होंने शंकर से पूछा । श्रीदेवी ने कहा कि हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं । संसार-यात्रा में सफलता हेतु आपने वर्ण और आश्रम का आधार धर्म और संस्कारों को बताया है । किन्तु कलिकाल में मनुष्य काम-क्रोधादि से बुद्धिहीन, नास्तिक, शंकालु और सदा इन्द्रियसुख चाहने वाले होंगे । हे ईशान! जो आपके द्वारा बताए गये अनुष्ठान नहीं करेंगे. उनकी गति क्या होगी? इसे विशेष रूप से बतायें ।

श्रीसदाशिव के कहा कि हे देवि! तुम्हारा प्रश्न उत्तम है । तुम जगन्माता हो । जन्म-मृत्युभय, संसार-बन्धन से छुड़ाने वाली दुर्गा हो । इस चराचर जगत् को तुम्हीं बनाए रखती हो । तुम्हीं पृथ्वी, तुम्हीं जल, तुम्हीं आकाश, तुम्हीं अहंकार और तुम्हीं महत्तत्त्वस्वरूपा हो । इस संस्कृति में तुम्हीं सर्वजीव, तुम्हीं विद्या, तुम्हीं परम देवता, तुम्हीं इन्द्रियवृन्द, तुम्हीं मन, तुम्हीं बुद्धि, तुम्हीं जगत् की गति और स्थिति हो । सभी वेद तुम्हीं हो । तुम्हीं प्रणव हो । सभी स्मृतियाँ तुम ही हो । महाभारतादि सभी संहिता तुम्हीं हो । तुम्हीं निगम और आगम भी तुम ही हो । तुम्हीं तन्त्र,, सर्वशास्त्रमयी शिवा हो । महाकाली, महालक्ष्मीं, महानील, सरस्वती, महादेवी, महामाया. महारौद्री, एवं महेश्वरी तुम्हीं हो । सर्वज्ञ ज्ञानमयी तुम ही हो । तुमसे कुछ भी अज्ञात नहीं है । हे प्राज्ञे! फिर भी इस समय तुम जो पूछती हो, उसे तुम्हारी प्रसन्नता के लिय बताता हूँ ।

हे देवि! कलियुग के मनुष्यों का आचरण तुमने ठीक बताया है । अपने हित की बात ज्ञात होने पर भी वे सत्पथ पर नहीं चलते । शीघ्र सुखद पाप में मस्त होकर हिताहित के विवेचन से रहित हो जाते हैं । उनकी मुक्ति के लिये जो कर्तव्य है, उन्हें बतलाता हूँ । निषिद्ध कर्म करना और विहित कर्म छोड़ देना—ये दोनों बातें ही मनुष्य के दुःख और रोगादि देने वाले पाप को उत्पन्न करती हैं । हे कुलनायिके! पाप दो प्रकार के होते हैं—1. केवल अपना अनिष्टकारी: जैसे—सन्ध्यादि दैनिक कर्म न करना । 2. दूसरों को दुःख देने वाला; जैसे—ब्रह्महत्यादि । राजदण्ड से दूसरों के लिये अनिष्टकारी पाप से छुटकारा पा सकते हैं । प्रायश्चित्त और समाधि से दूसरे प्रकार के पापों से छुटकारा मिलता है । जो पापी प्रायश्चित्त या राजदण्ड से पवित्र नहीं होते, वे इस लोक में निन्दित होकर परलोक में नरकगामी होते हैं और दीर्घ काल तक नरक में वास करते हैं ।। 1-17 ।।

पापी राजा का दण्ड

तत्रादौ कथयाम्याद्ये! नृपशासननिर्णयम् ।
यल्लङ्घनान्महेशानि! राजा यात्यधमां गतिम् ।। 18 ।।
भृत्यान्पुत्रानुदासीनान्प्रियानपि तथाऽप्रियान् ।
शासने च तथा न्याये समदृष्ट्याऽवलोकयेत् ।। 19 ।।
स्वयं चेत्कृतपापः स्यात्पीडयेदकृतांहसः ।
उपवासैश्च दानैस्तान्परितोष्य विशुद्ध्यति ।। 20 ।।
वधार्हं मन्यमानः स्वं कृतपापो नराधिपः ।
त्यक्त्वा राज्यं वनं प्राप्य तपसाऽऽत्मानमुद्धरेत् ।। 21 ।।
गुरुदण्डं नैव राजा विदध्याल्लघुपापिषु ।
न लघुं गुरुपापेषु विना हेतुं विपर्यये ।। 22 ।।
तस्मिन्यच्छासने शास्या अनेकोन्मार्गवर्त्तिनः ।
पापेभ्यो निर्भये शस्तो लघुपापे गुरुर्दमः ।। 23 ।।
सकृत्कृतापराधेन सत्रपे बहुमानिनि ।
पापाद्भीरौ प्रशस्तः स्याद्गुरुपापे लघुर्दमः ।। 24 ।।
स्वल्पापराधी कौलश्चेद्ब्राह्मणो लघुपापकृत् ।
बहुमान्योऽपि दण्ड्यः स्याद्वचोभिरवनीभृता ।। 25 ।।

न्यायं दण्डं प्रसादं च विचार्य सचिवैः सह ।
यो न कुर्यान्महीपालः स महापातकी भवेत् ।। 26 ।।
न त्यजेत्पितरां पुत्रो न त्यजेयुर्नृपं प्रजाः ।
न त्यजेत्स्वामिनं भार्या विना तानतिपापिनः ।। 27 ।।
राज्यं धनं जीवनं च धार्मिकस्य महीपतेः ।
संरक्षेयुः प्रजा यत्नैरन्यथा यान्त्यधोगतिम् ।। 28 ।।

हे आद्ये! पहले राजशासन का निर्णय बतलाता हूँ । हे महेश्वरि! इस शासन का त्याग करने से राजा को अधम गति प्राप्त होती है । शासन में भृत्य, पुत्र, प्रिय या अप्रिय सबों को राजा समान दृष्टि से देखे । यदि राजा स्वयं पापाचार करता है तो उसकी शुद्धि उपवास और दान से होती है । राजा यदि निर्दोषों को दण्ड दे, तो सभी निर्दोषों को दान देकर सन्तुष्ट करे । उपवास करके शुद्धि प्राप्त करे । राजा से यदि ऐसा पाप हो जाय, जो उसे मृत्युदण्ड के लायक बनाता हो तो वह राज्य का त्याग करके वन में जाए । तपस्या द्वारा अपना उद्धार करे । राजा बड़े पाप के लिये छोटा दण्ड और छोटे पाप के लिये बड़ा दण्ड न दे । जिस राजा की बहुसंख्यक प्रजा कुमार्गी हो जाय तो पाप से न डरने वाले मनुष्य को छोटे पाप के लिये भी बड़ा दण्ड देवे । लज्जायुक्त, प्रतिष्ठित एवं पाप से डरने वाले मनुष्य को बड़े पाप के लिये छोटा दण्ड देना उचित है । बहुमान्य कौल से यदि छोटा अपराध हो जाय, वैसे ही ब्राह्मण यदि छोटा पाप करे तो राजा उन्हें केवल वचन से दण्डित करे । जो राजा मन्त्रियों के साथ विचार-विमर्श के विना न्यायदण्ड और पुरस्कार का निर्णय करता है, वह महापापी होता है । पुत्र पिता का त्याग न करे । प्रजा राजा का त्याग न करे । विनम्रा पत्नी पति का परित्याग न करे । बहुत पापी होने पर भी इनका त्याग उचित नहीं है । धार्मिक राजा के राज्य, धन और जीवन की रक्षा करना प्रजावर्ग का कर्त्तव्य है; अन्यथा प्रजा को अधोगति प्राप्त होती है ।

पापभेद से दण्डभेद

मातरं भगिनीञ्चापि तथा दुहितरं शिवे! ।
गन्तारो ज्ञानतो ये च महागुरुनिघातकाः ।। 29 ।।
कुलधर्मं समाश्रित्य पुनस्त्यक्तकुलक्रियाः ।
विश्वासघातिनो लोका अतिपातकिनः स्मृताः ।। 30 ।।
मातरं भगिनीं कन्यां गच्छतो निधनं दमः ।

तासामपि सकामानां तदेव विहितं शिवे! ॥ 31 ॥
मातृपितृष्वसुस्तल्पं स्नुषां श्वश्रूं गुरुस्त्रियम् ।
पितामहस्य वनितां तथा मातामहस्य च ॥ 32 ॥
पित्रोर्भ्रातुः सुतां जायां भ्रातुः पत्नीं सुतामपि ।
भागिनेयीं प्रभोः पत्नीं तनयाञ्च कुमारिकाम् ॥ 33 ॥
गच्छतां पापिनां लिङ्गच्छेदो दण्डो विधीयते ।
गृहान्निर्यापणं चैव पापादस्माद्विमुक्तये ॥ 34 ॥
सपिण्डदारतनयाः स्त्रियं विश्वासिनामपि ।
सर्वस्वहरणं केशवपनं गच्छतो दमः ॥ 35 ॥
स्त्रीभिरेताभिरज्ञानाद्भवेत्परिणयो यदि ।
ब्राह्मेण वापि शैवेन ज्ञात्वा तास्तत्क्षणं त्यजेत् ॥ 36 ॥
सवर्णदारान्यो गच्छेदनुलोमपरस्त्रियम् ।
दमस्तस्य धनादानं मासैकं कणभोजनम् ॥ 37 ॥
राजन्यवैश्यशूद्राणां सामान्यानां वरानने ।
ब्राह्मणीं गच्छतां ज्ञानाल्लिङ्गच्छेदो दमः स्मृतः ॥ 38 ॥
ब्राह्मणीं विकृतां कृत्वा देशान्निर्यापयेन्नृपः ।
वीरस्त्रीगामिनां तासामेवमेव दमो विधिः ॥ 39 ॥
दुरात्मा यस्तु रमते प्रतिलोमपरस्त्रिया ।
दण्डस्तस्य धनादानं त्रिमासं कणभोजनम् ॥ 40 ॥

हे शिवे! जो जान-बूझ कर माता, बहन, पुत्री से सहवास करते हैं या जानकर बड़ी हत्या करते हैं, या कुलधर्मी होकर कुलकर्मों का त्याग कर देते हैं, विश्वास-घाती हैं, वे सब बहुत बड़े पापी होते हैं । माता, बहन या पुत्री के साथ यौनाचार करने वालों को मृत्युदण्ड उचित है । इस कार्य में सहमत होने वाली माता, बहन या वेटी को भी यही दण्ड देना उचित है । विमाता, बुआ, बहू, सास, गुरुपत्नी, दादी, नानी, चचेरी बहन, ममेरी बहन, चाची, मामी, भाभी, भतीजी, भांजे को पत्नी, स्वामी की पत्नी, स्वामी की पुत्री या कुमारी कन्या के साथ यौनाचारी के लिये विहित दण्ड लिंगच्छेद है । इस दुष्कर्म की इच्छा रखने वाला इन सभी स्त्रियों के पापमोचन के लिये नाक काट कर घर से निकाल देना उचित दण्ड है । सपिण्ड की पत्नी, पुत्री या विश्वासी की पत्नी के साथ यौनाचारकर्त्ता का सर्वस्व हरण कर शर मुण्डवाना विहित दण्ड है । यदि अज्ञानवश पूर्वोक्त किसी नारी के साथ ब्राह्म या शैव विवाह हुआ हो, तो

इस अकार्य का ज्ञान होते ही उस स्त्री को त्याग दे । जो मनुष्य सजातीय परपत्नी से यौनाचार करे, जो अपने से नीच जाति की स्त्री, जैसे डोमिन से यौनाचार करे तो उसे पर्याप्त जुर्माना के साथ एक माह तक कणभोजन का दण्ड दे । हे वरानने! जानबूझ कर ब्राह्मणी से यौनाचार करने वाले क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सामान्य मनुष्य का लिंग कटवा देना उचित है । इस कर्म में सहमति देने वाली ब्राह्मणी को अङ्गहीन करके देश-निकाला कर दे । जो वीराचारियों की पत्नी से यौनाचार करे, उसका लिंगच्छेद करे । इस कुक्रिया में लिप्त वीरपत्नी को विकृत करके देशनिकाला होने का दण्ड दे । जो पापी उच्चजातीय स्त्री के साथ कुकर्म करे, उसका सर्वस्व हरण करके उसे तीन महीने तक कण-भोजन का दण्ड दे ।। 29-40 ।।

सकामायाः स्त्रियाश्चापि दण्डस्तद्द्विधीयते ।
बलात्काररता भार्या त्याज्या पाल्या भवेच्छिवे ।। 41।।
ब्राह्मी भार्याथवा शैवी कामतो वाप्यकामतः ।
सर्वथा हि परित्याज्या स्वाच्चेत्परगता सकृत् ।। 42 ।।
गच्छतां वारनारीषु गवादिपशुयोनिषु ।
शुद्धिर्भवति देवेशि! त्रिरात्रं कणभोजनात् ।। 43 ।।
गच्छतां कामतः पुंसः स्त्रियाः पायुं दुरात्मनाम् ।
वध एव विधातव्यो भूभृता शम्भुशासनात् ।। 44 ।।
बलात्कारेण यो गच्छेदपि चाण्डालयोषितम् ।
वधस्तस्य विधातव्यो न क्षन्तव्यः कदापि सः । 45 ।
परिणीतास्तु या नार्यो ब्राह्मैर्वा शैववर्त्मभिः ।
ता एव दारा विज्ञेया अन्याः सर्वाः परस्त्रियः ।। 46 ।।
कामात्परस्त्रियं पश्यन्रहः सम्भाषयन्स्पृशन् ।
परिष्वज्योपवासेन विशुध्येद्द्विगुणक्रमात् ।। 47 ।।
कुर्वत्येवं सकामा या परपुंसा कुलाङ्गना ।
उक्तोपवासविधिना स्वात्मानं परिशोधयेत् ।। 48 ।।
ब्रुवन्निन्द्यं वचः स्त्रीषु पश्यन्गुह्यं परस्त्रियाः ।
हसन्गुरुतरं मर्त्यः शुध्येद्द्विरुपवासतः ।। 49 ।।
दर्शयन्नग्नमात्मानं कुर्वन्नग्नं तथापरम् ।
त्रिरात्रमशनं त्यक्त्वा शुद्धो भवति मानवः ।। 50 ।।
पत्न्याः पराभिगमनं प्रमाणयति चेत्पतिः ।
नृपस्तदा तां तज्जारं शास्याच्छास्त्रानुसारतः ।। 51 ।।

प्रमाणे यद्यशक्तः स्याद्दयितोपपतेः पतिः ।
त्यक्त्वा तां पोषयेद् ग्रासैस्तिष्ठेच्चेपतिशासने ।। 52 ।।
रममाणामुपपतौ पश्यन्पत्नीं पतिस्तदा ।
निघ्नन्वनितया जारं वधार्हो नैव भूभृतः ।। 53 ।।
भर्त्तुर्निवारणं यत्र गमने येन भाषणे ।
प्रयाणाद्भाषणात्तत्र त्यागार्हा स्यात्कुलाङ्गना ।। 54 ।।

जो उच्च जाति की स्त्री नीच जाति के पुरुष से कामेच्छा करे, उसका भी सर्वस्व हरण करके तीन महीने तक केवल खुद्दी खाने के लिये दे । यदि विवाहिता स्त्री के साथ परपुरुष बलात्कार करे तो पति उस पत्नी को त्याग दे, परन्तु उसका पालन-पोषण करता रहे । ब्राह्मी या शैवी भार्या इच्छा या अनिच्छा से एक बार परपुरुष से कामाचार करे तो उसे त्याग देना चाहिये । हे देवेशि! वेश्या या गौ आदि पशुयोनि से यौनाचार करने वाले की शुद्धि तीन रात तक खुद्दी का भात खाने से होती है । जो पापी पुरुष स्त्रियों से गुदा-मैथुन करते हैं, उन्हें राजा मृत्युदण्ड दे । यदि कोई चाण्डाल कन्या से बलपूर्वक यौनाचार करता है तो उसे मृत्युदण्ड दे । जो कन्यायें ब्राह्म या शैव विवाह द्वारा विवाहिता हैं, वे ही भार्यायें हैं । उनसे भिन्न स्त्रियों को परस्त्री कहा जाता है । जो मनुष्य कामुकतापूर्वक स्त्री-दर्शन करे, वह एक दिन के उपवास से शुद्ध हो जाता है । जो मनुष्य सकाम भाव से परायी स्त्री के साथ एकान्त में बात करता है, वह दो दिनों तक उपवास करके शुद्ध होता है । जो परायी स्त्री का स्पर्श करता है, वह चार दिनों के उपवास से पापमुक्त होता है । जो परायी स्त्री का आलिंगन करता है, वह आठ दिन उपवास करके शुद्ध होता है । जो कुलांगना कामुक भाव से परपुरुष के साथ यह सब करती है, वह भी उन्हीं प्रकार के उपवासों से शुद्ध होती है । स्त्रियों को कुत्सित बात कहने, उनके गुप्तांग को देखने और देखकर हंसने पर दो दिनों के उपवास से शुद्धि होती है । जो पुरुष अपने को नङ्गा दिखाता है और जो दूसरे को नङ्गा करता है, वह तीन रात निराहार रहने से शुद्ध होता है । यदि पति अपनी पत्नी के परपुरुष के संसर्ग को प्रमाणित कर दे तो राजा उस व्यभिचारिणी स्त्री और उसके जार को शास्त्रानुसार दण्ड दे । यदि पति पत्नी के उपपति के संसर्ग को प्रमाणित करने में असमर्थ हो तो स्त्री को त्याग कर उसका तब तक पालन करता रहे, जब तक वह स्त्री पति का आदेश मानती रहे । स्वामी पत्नी को उपपति से रत देखकर

यदि स्त्री-सहित उपपति को तत्काल मार डाले तो राजा उसे कोई दण्ड न दे । जहाँ जाने पर या जिससे बात करने को पति ने मना किया हो, वहाँ यदि कुलस्त्री जाती है या बात करती है तो पति उसे छोड़ दे ।। 41-54 ।।

विधवा के कर्त्तव्य

मृते पत्यौ स्वधर्मेण पतिबन्धुवशे स्थिता ।
अभावे पितृबन्धूनां तिष्ठन्ती दायमर्हति ।। 55 ।।
द्विर्भोजनं परान्नं च मैथुनामिषभूषणम् ।
पर्यङ्कं रक्तवासश्च विधवा परिवर्जयेत् ।। 56 ।।
नाङ्गमुद्वर्त्तयेद्वासैर्ग्राम्यालापमपि त्यजेत् ।
देवव्रतान्नयेत्कालं वैधव्यं धर्ममाश्रिता ।। 57 ।।

स्वामी की मृत्यु के बाद पति के बन्धुओं के साथ या उनके अभाव में पितृकुल के अधीन रहकर अपने धर्म का पालन करने वाली स्त्री पति की सारी सम्पत्ति पाती है । विधवा दो बार भोजन, परान्न भोजन, मैथुन, मांसाहार, भूषण, पलंग पर सोना और लाल वस्त्र पहनना छोड़ दे । वैधव्य धर्म स्वीकार कर सुगन्धित द्रव्य शरीर में न लगाए । ग्राम्य आलाप छोड़ दे । सदा देवपूजन में लगी रहकर समय व्यतीत करे।। 55-57 ।।

मातृबान्धव-पितृबान्धव-निरूपण

न विद्यते पिता यस्य शिशोर्माता पितामहः ।
नियतं पालने तस्य मातृबन्धुः प्रशस्यते ।। 58 ।।
मातुर्माता पितभ्राता मातुर्भ्रातुः सुतास्तथा ।
मातुः पितुः सोदराश्च विज्ञेयाः मातृबान्धवाः ।। 59 ।।
पितुर्माता पिता भ्राता पितुर्भ्रातुः स्वसुः सुताः ।
पितुः पितुः सोदराश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः ।। 60 ।।
पत्युर्माता पिता भ्राता पत्युर्भ्रातुः स्वसुः सुताः ।
पत्युः पितुः सोदराश्च विज्ञेयाः पतिबान्धवाः ।। 61 ।।
पित्रे मात्रे पितुः पित्रे पितामह्यै तथा स्त्रियै ।
अयोग्यसूनवे पुत्रहीनमातामहाय च ।। 62 ।।
मातामह्यै दरिद्रेभ्यो येभ्यो वासस्तथाशनम् ।
दापयेन्नृपतिः पुंसा यथाविभवमम्बिके !।। 63 ।।
दुर्वाच्यं कथयन्पत्नीमेकाहमशनं त्यजेत् ।

त्र्यहं सन्ताडयन्नक्तं पातयन्सप्तवासरान् ॥ 64 ॥
क्रोधाद्वा मोहतो भार्यां मातरं भगिनीं सुताम् ।
वदन्नुपोष्य सप्ताहं विशुध्येच्छिवशासनात् ॥ 65 ॥
षण्ढेनोद्वाहितां कन्यां कालातीतेऽपि पार्थिवः ।
जानन्नुद्वाहयेद्भूयो विधिरेष शिवोदितः ॥ 66 ॥
परिणीता न रमिता कन्यका विधवा भवेत् ।
साप्युद्वाह्या पुनः पित्रा शैवधर्मेष्वयं विधिः ॥ 67 ॥
उद्वाहाद्द्वादशे पक्षे पत्यन्ताद्गतहायने ।
प्रसूते तनयं योग्यं न सा पत्नी न सः सुतः ॥ 68 ॥

जिस बालक के पिता, माता या बाबा नहीं हैं, उसके पालन के लिये मातृबन्धु प्रशस्त हैं । नानी, नाना, मामा, ममेरे भाई और नाना के भाई—ये सब मातृबन्धु हैं । दादी, दादा, चाचा, चचेरे भाई, बाबा के भाई—ये सब पितृबन्धु हैं । सास, ससुर, देवर, देवरपुत्र, पति की बहन के पुत्र, ससुर के भाई को पतिबान्धव कहते हैं । पिता, माता, बाबा, दादी, पत्नी, पुत्रहीन नाना-नानी के दरिद्र होने पर राजा यथाशक्ति अन्न-वस्त्र प्रदान करे । अपनी पत्नी को दुर्वचन कहने पर, एक दिन पत्नी को पीटने पर, तीन रात और पीटने से यदि पत्नी को खून गिरे तो सात रात तक भोजन का त्याग करे। क्रोध या मोहवश भार्या को माता, बहन या बेटी कहे तो सात रात उपवास करने से शुद्धि होती है । कन्या का विवाह नपुंसक से हो और बहुत दिनों के बाद यह बात मालूम हो तो राजा उस कन्या का दूसरा विवाह करायें । यही शिवोक्त विधि है । यदि कन्या विवाह के बाद पति-सहवास के पूर्व विधवा हो जाय तो पिता उसका पुनर्विवाह करे । यह शैव धर्म की विधि है । विवाह के बाद छः माह में या पति के मरने के एक वर्ष बाद यदि स्त्री परिपुष्ट सन्तान को जन्म दे तो वह अपने स्वामी की पत्नी नहीं और वह पुत्र भी उसका पुत्र नहीं होता ।। 58-68 ।।

भ्रूणहत्यादि पापों का प्रायश्चित्त

आगर्भात्पञ्चमासान्तर्गर्भं या स्रावयेद्धिया ।
तदुपायकृतं तां च यातयेत्तीव्रताडनैः ॥ 69 ॥
पञ्चमात्परतो मासाद्या स्त्री भ्रूणं प्रपातयेत् ।
तत्प्रयोक्तुश्च तस्याश्च पातकं स्याद्वधोद्भवम् ॥ 70 ॥
यो हन्ति ज्ञानतो मर्त्यं मानवः क्रूरचेष्टितः ।

वधस्तस्य विधातव्यः सर्वथा धरणीभृता ॥ 71 ॥
प्रमादाद्भ्रगतोऽज्ञानाद्घ्नन्तन्नरमरिन्दमः ।
द्रविणादानतस्तीव्रताडनैस्तं विशोधयेत् ॥ 72 ॥
स्वतो वा परतो वापि वधोपायं प्रकुर्वतः ।
अज्ञानवधिनां दण्डो विहितस्तस्य पापिनः ॥ 73 ॥
मिथः संग्रामयोद्धारमाततायिनमागतम् ।
निहत्य परमेशानि! न पापार्हो भवेन्नरः ॥ 74 ॥
अङ्गच्छेदे विधातव्यं भूभृताङ्गनिकृन्तनम् ।
प्रहारे च प्रहरणं नृषु पापं चिकीर्षुषु ॥ 75 ॥
विप्रान्गुरूनवगुरेत्प्रहरेद्यो दुरासदः ।
धनादानाद्धस्तदाहात्क्रमतस्तं विशोधयेत् ॥ 76 ॥
शस्त्रादिक्षतकायस्य षणमासात्परतो मृतौ ।
प्रहर्त्ता दण्डनीयः स्याद्वधार्हो न हि भूभृतः ॥ 77 ॥
राष्ट्रविप्लाविनो राज्यं जिहीर्षोर्नृपवैरिणाम् ।
रहोहितैषिणो भृत्याद्भेदकान्नृपसैन्ययोः ॥ 78 ॥
योद्धुमिच्छुः प्रजा राज्ञा शस्त्रिणः पान्थपीडकान् ।
हत्वा नरपतिस्त्वेतान्नैव किल्विषभाग्भवेत् ॥ 79 ॥
यो हन्यान्मानवं भर्त्तुराज्ञयापरिहार्यया ।
भर्त्तुरिव वधस्तत्र प्रहर्त्तुर्न शिवाज्ञया ॥ 80 ॥
अयत्नपुंसः पशुना शस्त्रैर्वा म्रियते नरः ।
धनदण्डेन वा कायदमेनास्य विशोधनम् ॥ 81 ॥
बहिर्मुखान्नृपाज्ञासु नृपाग्रे प्रौढवादिनः ।
दूषकान्कुलधर्माणां शास्याद्राजा विगर्हितान् ॥ 82 ॥

गर्भाधान के पाँचवें महीने के बाद जो स्त्री जानकर गर्भपात करे तो उस स्त्री को और जो व्यक्ति उस गर्भपात का उपाय करे उसको राजा तीव्र ताड़न द्वारा पीड़ित करे । पाँचवें मास के बाद जो स्त्री गर्भपात करे और जो व्यक्ति इसका उपाय करे, उसे हत्याजन्य पाप होता है । जो क्रूरकर्मा मनुष्य जानकर नरहत्या करे, उसे राजा अवश्य मृत्युदण्ड दे । प्रमाद या भ्रमवश अनजान में मनुष्य-हत्या करने वाले व्यक्ति को राजा अर्थदण्ड एवं कठिन प्रताड़ना द्वारा शुद्ध करे । जो स्वयं या अन्य के द्वारा वध का उपाय करे. उस पापी को भी अज्ञानता में हत्या करने वाले के समान ही दण्ड दे । हे परमेश्वरि! परस्पर युद्धरत, एक-दूसरे को मार डाले या आततायी मनुष्य को मारने वाला पाप का

भागी नहीं होता । पाप करने की इच्छा वाला व्यक्ति दूसरे का अङ्ग काट दे तो राजा उसका भी अङ्ग कटवा दे । दूसरे पर प्रहार करे वाले पर राजा प्रहार करावे । जो पापी ब्राह्मण या गुरु को मारने के लिय डण्डा आदि उठाए. राजा उसके धन-सम्पत्ति को जप्त करके या हाथ जलाकर शुद्ध करे । शस्त्र से घायल व्यक्ति की मृत्यु छः महीने के अन्दर होने पर प्रहारकर्त्ता दण्डनीय होता है; पर वह मृत्युदण्ड का भागी नहीं होता । राज्यविद्रोही, राज्यहरण का इच्छुक, गुप्त रूप से राजशत्रुओं का हित चाहने वाला. राजासहित सेना का भेद लेने वाला. राजा से युद्ध करने का इच्छुक. शस्त्र लेकर प्रजा और पथिकों को पीड़ित करने वाला—इन सबका विनाश करने से राजा पाप का भागी नहीं होता । जो व्यक्ति स्वामी के अनिवार्य आदेश से नरहत्या करता है तो हत्यारा मृत्युदण्ड का भागी नहीं होता । मृत्युदण्ड का भागी हत्यारे का स्वामी ही होता है । असावधान मनुष्य के अस्त्र या पशु द्वारा किसी की मृत्यु होने पर अर्थदण्ड या शारीरिक दण्ड से शुद्धि होती है । राजाज्ञा न मानने वाला. राजा के सामने विवाद करने वाला. कुलधर्म की निन्दा करने वाला—इन सभी व्यक्तियों को राजा दण्डित करे ।। 69-82 ।।

चोरी आदि के पापों का प्रायश्चित्त

स्थाप्यापहारिणं क्रूरं वञ्चकं भेदकारिणम् ।
विवादयन्तं लोकांश्च देशान्निर्यापयेन्नृपः ।। 83 ।।
शुल्केन कन्यां दातृंश्च पुत्रं षण्ढे प्रयच्छतः ।
देशान्निर्यापयेद्राजा पतितान्दुष्कृतात्मनः ।। 84 ।।
मिथ्यापवादव्याजेन परानिष्टं चिकीर्षवः ।
यथापराधं ते शास्या धर्मज्ञेन महीभृता ।। 85 ।।
यो यत्परिमितानिष्टं कुर्यात्तत्सम्मितं धनम् ।
नृपतिर्द्दापयेत्तेन जनयानिष्टभागिने ।। 86 ।।
मणिमुक्ताहिरण्यादिधातूनां स्तेयकारिणः ।
करस्य बाह्वोश्छेदो वा कार्यो मूल्यं विचारयन् ।। 87 ।।
महिषाश्वगवादीनां रत्नादीनां तथा शिशोः ।
बलेनापहृतां नृणां स्तेयिवद्विहितो दमः ।। 88 ।।
अन्नानामल्पमूल्यस्य वस्तुतः स्तेयिनं नृपः ।
विशोधयेत्तं पक्षैकं सप्ताहं वाशयन्कणम् ।। 89 ।।

पथिकों का धन हरण करने वाले, क्रूर, ठग, भेदिया और लोगों में झगड़ा लगाने वाले दुष्टों को राजा देश से निकाल दे । जो पैसा लेकर कन्या या पुत्र का दान करे या जो जानकर भी नपुंसक से कन्या का विवाह करे, ऐसे पापियों को राजा देश से निकाल दे । मिथ्यापवाद से दूसरों का अनिष्ट करने वाले व्यक्तियों को धर्मज्ञ राजा अपवाद के अनुरूप दण्डित करे । जो व्यक्ति जिस परिमाण में अनिष्ट करे, उसी परिमाण में अनिष्टकर्त्ता को आर्थिक दण्ड देकर वह धन अनिष्टभोगी व्यक्ति को राजा प्रदान करे । मणि-मुक्ता या सोना आदि धातु के मूल्य का विचार कर चोर के हाथ या दोनों बाँह कटवा दे । बलपूर्वक भैंस, घोड़ा, गाय आदि पशु, रत्नादि या शिशु सन्तान के अपहरण करने वालों के लिये भी चोर के समान ही दण्ड का विधान है । अन्न या कम मूल्य के द्रव्य के चोर को राजा एक पक्ष या सप्ताह भर कण-भोजन कराकर शुद्धि करे ।। 83-89 ।।

साक्षी-निरूपण

विश्वासघातके पुंसि कृतघ्ने सुरवन्दिते ।
यज्ञैर्व्रतैस्तपोदानैः प्रायश्चित्तैर्न निष्कृतिः ।। 90 ।।
ये कूटसाक्षिणो मर्त्त्या मध्यस्थाः पक्षपातिनः ।
शास्यात्तांस्तीव्रदण्डेन देशान्निर्यापयेन्नृपः ।। 91 ।।
षट् साक्षिणः प्रमाणं स्युश्चत्वारस्त्रय एव वा ।
अभावे द्वावपि शिवे! प्रसिद्धौ यदि धार्मिकौ ।। 92 ।।
देशतः कालतो वापि तथा विषयतः प्रिये!।
परस्परमयुक्तञ्चेदग्राह्यं साक्षिणां वचः ।। 93 ।।
अन्धानां वाक्प्रमाणं स्याद्बधिराणां तथा प्रिये!।
मूकानामेडमूकानां शिरसाङ्गीकृतिर्लिपिः ।। 94 ।।
लिपिः प्रमाणं सर्वेषां सर्वत्रैव प्रशस्यते ।
विशेषाद्व्यवहारेषु न विनश्येच्चिरं यतः ।। 95 ।।

हे सुरपूजिते! विश्वासघातक या कृतघ्न की निवृत्ति यज्ञ, व्रत, तपस्या या दान आदि किसी प्रायश्चित्त से नहीं होती । जो लोग मध्यस्थ होकर पक्षपात करते हैं, राजा उन्हें कठोर दण्ड देकर शासित करे और देश से निकाल दे । छः, चार या तीन लोगों की गवाही का प्रमाण माने । अभाव में एक व्यक्ति की गवाही ही मान्य है, यदि गवाह प्रसिद्ध या धार्मिक हो । हे प्रिये! देश, काल

और विषयविशेष में जो परस्पर विरोधी बात बोले, उसकी गवाही अग्राह्य होती है । अन्धे और बहरे लोगों की बात प्रमाण होती है । गूंगे और हकलाने वाले का सिर हिलाना स्वीकृति तथा प्रमाण के लिये उनकी लिखी बात को ग्रहण करना चाहिए । सभी स्थानों में सबों के लिये लिखित बातें ही प्रशस्त प्रमाण होती हैं । विशेषतः व्यवहार में यह प्रशस्त है; क्योंकि बहुत समय तक नष्ट नहीं होता ।। 90-95 ।।

साक्ष्य में जाल करने का दण्ड

स्वीयार्थमपरार्थञ्चेत्कुर्वतः कल्पितां लिपिम् ।
दण्डस्तस्य विधातव्यो द्विपाद्यं कूटसाक्षिणः ।। 96 ।।
अभ्रमस्याप्रमत्तस्य यदङ्गीकरणं सकृत् ।
स्वीयार्थे तत्प्रमाणं स्याद्वचसो बहुसाक्षिणाम् ।। 97 ।।

जो मनुष्य अपने लिये या दूसरे के लिये जाली प्रमाण बनाते हैं, उन्हें कूटसाक्षी दण्ड का दुगुना दण्ड देना चाहिये । भ्रम और प्रमादरहित व्यक्ति अपने विषय में केवल एक बार स्वीकार करे तो बहुत गवाहों के होने पर भी प्रमाण है ।। 96-97 ।।

शपथ के प्रकार

यथा तिष्ठन्ति पुण्यानि सत्यमाश्रित्य पार्वति! ।
तथाऽनृतं समाश्रित्य पातकान्यखिलान्यपि ।। 98 ।।
अतः सत्यविहीनस्य सर्वपापाश्रयस्य च ।
ताडनाद्दमनाद्राजा न पापार्हः शिवाज्ञया ।। 99 ।।
सत्यं ब्रवीमि सङ्कल्प्य स्पृष्ट्वा कौलं गुरुं द्विजम् ।
गङ्गातोयं देवमूर्तिं कुलशास्त्रं कुलामृतम् ।। 100 ।।
देवनिर्म्माल्यमथवा कथनं शपथो भवेत् ।
तत्रानृतं वदन्मर्त्यः कल्पान्तं नरकं व्रजेत् ।। 101 ।।
अपापजनिकार्याणां त्यागे वा ग्रहणेऽपि वा ।
तत्कार्यं सर्वथा मर्त्यैः स्वीकृतं शपथेन यत् ।। 102 ।।
स्वीकारोल्लङ्घनाच्छुध्येत्पक्षमेकमभोजनैः ।
भ्रमेणापि तमुल्लङ्घ्य द्वादशाहं कणाशनैः ।। 103 ।।
कुलधर्मोऽपि सत्येन विधिना चेन्न सेवितः ।
मोक्षाय श्रेयसे न स्यात्कौले पापाय केवलम् ।। 104 ।।

हे पार्वति! जैसे सत्य का आश्रय ग्रहण कर सभी पुण्य रहते हैं; वैसे ही झूठ का आश्रय लेकर सभी पाप रहते हैं । अतः जो मनुष्य सत्य से रहित है, वह सब पापों का आश्रय है । ऐसे पापात्मा का ताड़न या दमन करने से राजा को पाप नहीं लगता । कौलगुरु, ब्राह्मण, गङ्गाजल, देवमूर्त्ति, कुलशास्त्र, कुलामृत, देवनिर्माल्य का स्पर्श करते हुए जो यह सङ्कल्प लेता है कि 'मैं जो कहूँगा, वह सत्य है' इसी को शपथ कहते हैं । यह शपथ लेकर जो झूठ बोलते हैं, वे एक कल्प तक नरक में रहते हैं । जो कार्य पापजनक नहीं है, उसका त्याग या ग्रहण शपथपूर्वक लेने पर वह अवश्य करणीय है । स्वीकृत बात को जानकर उल्लंघन करने से एक पक्ष तक निराहार रहने से उसकी शुद्धि होती है । भ्रमवश उल्लंघन हो तो बारह दिन खुद्दी खाने से शुद्धि होती है । यदि कुलधर्म का पालन सच्चे मन से न करे तो वह मोक्ष और मङ्गलदायक नहीं होता । कौल के लिये वह पापजनक होता है ।। 98-104 ।।

पञ्चतत्त्व-सेवन का माहात्म्य

सुरा द्रवमयी तारा जीवनिस्तारकारिणी ।
जननी भोगमोक्षाणां नाशिनी विपदां रुजाम् ।। 105 ।।
दाहिनी पापसङ्घानां पावनी जगतां प्रिये ।
सर्वसिद्धिप्रदा ज्ञानबुद्धिविद्याविवर्द्धिनी ।। 106 ।।
मुक्तैर्मुमुक्षुभिः सिद्धैः साधकैः क्षितिपालकैः ।
सेव्यते सर्वदा देवैराद्ये! स्वाभीष्टसिद्धये ।। 107 ।।
सम्यग्विधिविधानेन सुसमाहितचेतसा ।
पिबन्ति मदिरां मर्त्त्या अमर्त्त्या एव ते क्षितौ ।। 108 ।।
प्रत्येकतत्त्वस्वीकाराद्विधिना स्याच्छिवा नरः ।
न जाने पञ्चतत्त्वानां सेवनात्किंफलं भवेत् ।। 109 ।।

तारा का ही तरल रूप सुरा है । अतः वह जीवों के लिये मोक्ष और भोग दोनों को देने वाली और रोग-विपत्ति का नाश करने वाली है । सुरा सभी पापों को भस्म करती है । सुरा से संसार पावन है । सुरा सभी सिद्धियों की दायिका है । सुरा ज्ञान, बुद्धि और विद्या को बढ़ाती है । हे आद्ये! भुक्त, मुमुक्षु, सिद्ध, साधक, राजा और देवता सभी अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये इस सुरा का सेवन सदैव करते हैं । जो शास्त्र में निर्दिष्ट नियम से और सावधान चित्त से सुरा पीते हैं, वे पृथ्वी पर मर्त्य होकर भी अमर देव के समान होते हैं ।

पञ्चतत्त्वों में से प्रत्येक तत्त्व का सेवन विधिपूर्वक करने से मनुष्य शिवतुल्य हो जाता है । पाँचों तत्त्वों के सेवन करने से क्या फल होता है, उसे मैं भी नहीं जानता । इसका फल ज्ञान के परे है ।। 105-109 ।।

अवैध पान-अतिपान के दोष और दण्ड

इयं चेद्वारुणी देवी निपीता विधिवर्जिता ।
नृणां विनाशयेत्सर्वं बुद्धिमायुर्यशोधनम् ।। 110 ।।
अत्यन्तपानान्मद्यस्य चतुर्वर्गप्रसाधनी ।
बुद्धिर्विनश्यति प्रायो लोकानां मत्तचेतसाम् ।। 111 ।।
विभ्रान्तबुद्धेर्मनुजात्कार्याकार्यमजानतः ।
स्वानिष्टं च परानिष्टं जायतेऽस्मात्पदे पदे ।। 112 ।।
अतो नृपो वा चक्रेशो मद्ये मादकवस्तुषु ।
अत्यासक्तजनान्कायधनदण्डेन शोधयेत् ।। 113 ।।
सुराभेदाद्व्यक्तिभेदान्न्यूनेनाप्यधिकेन वा ।
देशकालविभेदेन बुद्धिभ्रंशो भवेन्नृणाम् ।। 114 ।।
अतएव सुरापानादतिपानं न लक्ष्यते ।
स्खलद्वाक्पाणिपाद्दृग्भिरतिपानं विचारयेत् ।। 115 ।।
नेन्द्रियाणि वशे यस्य मदविह्वलचेतसः ।
देवतागुरुमर्यादोल्लङ्घिनो भयरूपिणः ।। 116 ।।
निखिलानर्थयोग्यस्य पापिनः शिवघातिनः ।
दहेज्जिह्वां हरेदर्थांस्ताडयेत्तं च पार्थिवः ।। 117 ।।
विचलत्पादवाक्पाणिं भ्रान्तमुन्मत्तमुद्धतम् ।
तमुग्रं यातयेद्राजा द्रविणं चाहरेत्ततः ।। 118 ।।
अपवाग्वादिनं मत्तं लज्जाभयविवर्जितम् ।
धनादानेन तं शास्यात्प्रजाप्रीतिकरो नृपः ।। 119 ।।
शताभिषिक्तः कौलश्चेदतिपानात्कुलेश्वरि! ।
पशुरेव स मन्तव्यः कुलधर्मबहिष्कृतः ।। 120 ।।
पिबन्नतिशयं मद्यं शोधितं वाप्यशोधितम् ।
त्याज्यो भवति कौलानां दण्डनीयोऽपि भूभृतः ।। 121 ।।
ब्राह्मीं भार्यां सुरां मत्ताः पाययन्तो द्विजातयः ।
शुध्येयुर्भार्यया सार्द्धं पञ्चाहं कणभोजनात् ।। 122 ।।

यदि विधि-विधान के विना इस वारुणी देवी का पान किया जाता है तो

वह पीने वाले की बुद्धि, आयु, यश, धन सब कुछ नष्ट कर देती है । जो प्रमत्त-चित्त से अधिक सुरा-पान करता है, उसका धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधक ज्ञान नष्ट हो जाता है । अधिक 'मद्य' पान करने वाले का कार्याकार्य विचार नष्ट हो जाता है । बुद्धि भ्रान्त हो जाती है । वह पग-पग पर अपना और दूसरों का अनिष्ट करता है । अतः मद्य या मादक वस्तुओं में अधिक आसक्त मनुष्यों को राजा या चक्रेश्वर शारीरिक दण्ड या आर्थिक दण्ड से शुद्ध करे । सुरा-सेवन अधिक मात्रा में या कम मात्रा में किया गया हो, वह सुराभेद से, व्यक्तिभेद से, देशभेद से और कालभेद से बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है । अतः लड़खड़ाती वाणी, काँपते हाथ, डगमगाते पैरों और अस्थिर दृष्टियुक्त लक्षणों से पान का निर्णय करे; क्योंकि सुरा के परिणाम से अतिपान को नहीं जाना जा सकता है ।

जिसकी इन्द्रियाँ वश में न हों, मद से व्याकुल चित्त वाले, देवता और गुरु की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, भयप्रद, सभी प्रकार के अनर्थ करने को तैयार शिवघाती पापी की जीभ राजा जलवा दे । उसका धन छीन ले और उसे प्रताड़ित करे । जिसके पैर, वचन और हाथ विचलित हों, जो भ्रमित, उन्मत्त, उद्धत हो, उस उग्र व्यक्ति को राजा दण्ड देकर उसका धन छीन ले । जो मनुष्य मदमत्त होकर अश्लील वचन बोले, लज्जा और भयविहीन हो, राजा उसका धन छीनकर दण्डित करे । हे कुलेश्वरि! सौ बार अभिषिक्त कौल यदि अतिपान करे तो उसे कुलधर्म से बहिष्कृत पशु ही माना जाता है । मद्य शोधित हो या अशोधित, जो व्यक्ति उसे अधिक पीता है, वह कौलों से त्याज्य और राजा से दण्डनीय है । यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य मत्त होकर ब्राह्म धर्म की विधि से परिणीता पत्नी को मद्य पान कराए तो उसकी भार्या के सहित पाँच दिन कण-भोजन करने से शुद्धि होती है । असंस्कृत 'सुरा' पीने वाला तीन दिनों के उपवास से शुद्ध होता है ।। 110-122 ।।

अशोधित मांस-भक्षण दण्ड

असंस्कृतसुरापानाच्छुद्ध्येदुपवसंस्त्र्यहम् ।
भुक्त्वाप्यशोधितं मांसमुपवासद्वयं चरेत् ।। 123 ।।
असंस्कृते मीनमुद्रे खादन्नुपवसेदहः ।
अवैधं पञ्चमं कुर्वन्राज्ञो दण्डेन शुध्यति ।। 124 ।।

भुञ्जानो मानवं मांसं गोमांसं ज्ञानतः शिवे! ।
उपोष्य पक्षं शुद्धः स्यात्प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ॥ 125 ॥
नराकृतिपशोर्मांसं मांसं मांसादनस्य च ।
अत्त्वा शुध्येन्नरः पापादुपवासैस्त्रिभिः प्रिये ॥ 126 ॥

यदि कोई व्यक्ति अशोधित मांस खाता है तो उसे दो दिन उपवास करके शुद्ध होना पड़ता है । कोई व्यक्ति असंस्कृत मत्स्य और मुद्रा खाता है तो उसे एक दिन उपवास करना चाहिये । यदि कोई विधि का उल्लंघन कर पञ्चम तत्त्व (मैथुन) का सेवन करता है तो वह व्यक्ति राजदण्ड से द्वारा शुद्ध होता है । हे शिवे! यदि कोई व्यक्ति जान-बूझकर मनुष्य या गाय का मांस खाता है तो वह पन्द्रह दिनों के उपवास से शुद्ध होता है । यह उसका प्रायश्चित्त है । जो मनुष्याकृति वाले पशु या मांस खाने वाले जीव का मांस खाता है, वह तीन दिनों के उपवास से शुद्ध होता है ।। 122-126 ।।

अवैध अन्न-भक्षण का प्रायश्चित्त

म्लेच्छानां श्वपचानां च पशूनां कुलवैरिणाम् ।
खादन्नन्नं विशुद्धः स्यात्पक्षमेकमुपोषितः ॥ 127 ॥
उच्छिष्टं यदि भुञ्जीत ज्ञानादेषां कुलेश्वरि! ।
शुध्येन्मासोपवासेनाज्ञानात्पक्षोपवासतः ॥ 128 ॥
अनुलोमेन वर्णानामन्नं भुक्त्वा सकृत्प्रिये!।
दिनत्रयोपवासेन विशुद्धः स्यान्ममाज्ञया ॥ 129 ॥
पशुश्वपचम्लेच्छानामन्नं चक्रार्पितं यदि ।
वीरहस्तार्पितं वापि तदश्नन्नैव पापभाक् ॥ 130 ॥
अन्नाभावे च दौर्भिक्ष्ये विपदि प्राणसङ्कटे ।
निषिद्धेनादनेनापि रक्षन्प्राणान्न पातकी ॥ 131 ॥
करिपृष्ठे तथानेकोद्वाह्यपाषाणदारुषु ।
अलक्षितेऽपि दूष्याणां भक्ष्यदोषो न विद्यते ॥ 132 ॥

जो म्लेच्छ, यवन, चाण्डाल या कुलाचार-विरोधी पशु का अन्न खाता है, उसकी शुद्धि पन्द्रह दिनों के उपवास से होती है । हे कुलेश्वरि! जो अनजान में पूर्वोक्त व्यक्तियों का जूठा खा लेता है, वह पन्द्रह दिनों के उपवास से शुद्ध होता है । जो जानकर खाता है, वह तीस दिनों के उपवास से शुद्ध होता है । जो व्यक्ति एक बार अनुलोम जाति अर्थात् क्रमशः नीच जाति का अन्न खाता

हैं; जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय का अन्न खाए, क्षत्रिय वैश्य का अन्न खाय इत्यादि तो वह तीन दिनों के उपवास से शुद्ध होता है । यदि पशु, चाण्डाल या म्लेच्छ का अन्न चक्र में अर्पित हो या वीरसाधक के हाथ से दिया गया हो तो उसे खाने में कोई पाप नहीं होता । अन्नाभाव, दुर्भिक्ष, विपत् काल या प्राणसंकट के समय निषिद्ध भोजन करके भी प्राणरक्षा करने वाला पाप का भागी नहीं होता । हाथी की पीठ पर, अनेक लोगों द्वारा वहनीय पत्थर या काष्ठासन पर और दूषित पदार्थ का यदि लक्ष्य न हो तो भक्ष्य-दोष नहीं होता ।। 127-132 ।।

गोवध का प्रायश्चित्त

पशूनभक्ष्यमांसांश्च व्याधियुक्तानपि प्रिये! ।
न हन्याद्देवतीर्थेऽपि हत्वा च पातकी भवेत् ।। 133 ।।
कृच्छ्रव्रतं नरः कुर्याद्गोवधे बुद्धिपूर्वके ।
अज्ञानादाचरेदर्द्धं व्रतं शङ्करशासनात् ।। 134 ।।
न केशवपनं कुर्यान्न नखच्छेदनं तथा ।
न क्षारयोगं वसने यावन्न व्रतमाचरेत् ।। 135 ।।
उपवासैर्नयेन्मासं मासमेकं कणाशनैः ।
मासं भैक्षान्नमश्नीयात्कृच्छ्रव्रतमिदं शिवे! ।। 136 ।।
व्रतान्ते वापितशिराः कौलाञ्ज्ञातींश्च बान्धवान् ।
भोजयित्वा विमुक्तः स्याज्ज्ञानगोवधपातकात् ।। 137 ।।
अपालनवधाद्गोश्च शुध्येदष्टोपवासतः ।
बाहुजाद्या विशुध्येयुः पादन्यूनक्रमाच्छिवे! ।। 138 ।।

हे प्रिये! जिन पशुओं का मांस अभक्ष्य है, जो पशु रोगी हैं, उन्हें देवता के लिये न मारे । मारने से पाप होता है । जानकर गोहत्या हो तो कृच्छ्रव्रत करे । अनजान में गोहत्या हो जाय तो अर्द्धकृच्छ्र व्रत करे । जबतक इस व्रत को न कर ले तब तक क्षौरकर्म, नाखून काटना, वस्त्र धोना आदि कर्म न करे । एक मास उपवास में बिताकर, एक मास कण खाकर, एक मास भिक्षान्न खाकर समय बिताना ही कृच्छ्रव्रत है । व्रत पूरा होने पर कौलों की जाति वालों को और बन्धु-बान्धवों को भोजन कराने से जानकर की गई गोहत्या के पाप से छुट्टी मिल जाती है । हे शिवे! ठीक से न पालन करने से हुई गोहत्या का पाप आठ दिनों के उपवास से दूर होता है । क्षत्रिय छः दिन, वैश्य चार दिन और शूद्र दो दिनों के उपवास से इस पाप से छुटकारा पा जाता है? 133-138 ।।

जीववध का प्रायश्चित्त

गजोष्ट्रमहिषाश्वांश्च हत्वा कौलिनि कामतः ।
उपवासैस्त्रिभिः शुध्येन्मानवः कृतकिल्बिषः ।। 139 ।।
मृगमेषाजमार्ज्जारान्निघ्नन्नुपवसेदहः ।
मयूरशुकहंसांश्च सज्योतिरशनं त्यजेत् ।। 140 ।।
निहत्य सास्थिजन्तूंश्च नक्तमद्यान्निरामिषम् ।
निरस्थिजीविनो हत्वा मनस्तापेन शुद्ध्यति ।। 141 ।।
पशुमीनाण्डजान्निघ्नन्मृगयायां महीपतिः ।
न पापार्हो भवेद्देवि राज्ञो धर्मः सनातनः ।। 142 ।।
देवोद्देशं विना भद्रे! हिंसां सर्वत्र वर्ज्जयेत् ।
कृतायां वैधहिंसायां नरः पापैर्न लिप्यते ।। 143 ।।
सङ्कल्पितव्रतापूर्त्तौ देवनिर्म्माल्यलङ्घने ।
अशुचौ देवतास्पर्शे गायत्रीजपमाचरेत् ।। 144 ।।

इच्छा करके हाथी, ऊँट, भैंसे और घोड़े की हत्या करने वाला पापी तीन दिनों के उपवास से शुद्ध होता है । हिरण, भेड़, बकरे और बिल्ली की हत्या करने पर एक दिन का उपवास करे । मोर, तोते या हंस की हत्या करने पर सूर्योदय से सूर्यास्त तक उपवास करे । अस्थियुक्त जीव की हत्या करने पर एक रात निरामिष भोजन करे । अस्थिहीन जीव की हत्या करने पर दुःख करने से ही शुद्धि होती है । हे देवि! शिकार करते समय पशु, मछली या अण्डज जीव की हत्या करने से राजा पापी नहीं होता; क्योंकि मृगया उसका नित्य कर्म है । हे भद्रे! देवता के लिये जो कर्म हैं, उन्हें छोड़कर अन्य सभी कर्मों में हिंसा वर्जित है । वैध हिंसा करने से मनुष्य को पाप नहीं लगता । संकल्पित व्रत पूरा न कर सके, देवनिर्माल्य को लांघ जाय, अशौच काल में देव-प्रतिमा छू ले तो गायत्री-जप से ही पाप कट जाता है ।। 139-144 ।।

माता-पिता की निन्दा, कौल की निन्दा का प्रायश्चित्त

माता पिता ब्रह्मदाता महान्तो गुरवः स्मृताः ।
निन्दन्नेतान्वदन्क्रूरं शुद्ध्येत्पञ्चोपवासतः ।। 145 ।।
एवमन्यान्गुरून्कौलान्विप्रान्गर्हन्नपि प्रिये ।
सार्द्धद्वयोपवसने मुक्तो भवति पातकात् ।। 146 ।।
वित्तार्थी मानवो देशानखिलान्गन्तुमर्हति ।
निषिद्धकौलिकाचारं देशं शास्त्रमपि त्यजेत् ।। 147 ।।

गच्छंस्तु स्वेच्छया देशे निषिद्धे कुलवर्त्मनि ।
कुलधर्मात्पतेद्भूयः शुध्येत्पूर्णाभिषेकतः ।। 148 ।।

माता-पिता और ब्रह्ममन्त्र-प्रदाता—ये महागुरु हैं, जो इनकी निन्दा करता है या इन्हें कठोर वचन कहता है, वह पाँच दिनों के उपवास से शुद्ध होता है । इसी प्रकार जो किसी अन्य गुरु, कौल या ब्राह्मण की निन्दा करता है या कटु वचन कहता है, वह ढ़ाई दिनों के उपवास से पापमुक्त होता है । धनार्थी सभी देशों में जा सकते हैं; परन्तु जिस देश में या शास्त्र में कौलाचार निषिद्ध हो, उस देश और शास्त्र का उन्हें त्याग कर देना चाहिये । कौलाचार-निषिद्ध देश में इच्छानुसार जाने से कुलधर्म से पतित होना पड़ता है, जिसकी शुद्धि केवल पूर्णाभिषेक से ही होती है ।। 145-148 ।।

अनेक पापों का प्रायश्चित्त

तपनोदयमारभ्य यामाष्टकमभोजनम् ।
उपवासः स विज्ञेयः प्रायश्चित्ते विधीयते ।। 149 ।।
पिबंस्तोयाञ्जलिञ्चैकं भक्षन्नपि समीरणम् ।
मानवः प्राणरक्षार्थं न भ्रश्येदुपवासतः ।। 150 ।।
उपवासासमर्थश्चेद्रुजा वा जरसापि वा ।
तदा प्रत्युपवासं च भोजयेद्द्वादश द्विजान् ।। 151 ।।
परनिन्दां निजोत्कर्षं व्यसनायुक्तभाषणम् ।
अयुक्तं कर्म कुर्वाणो मनस्तापैर्विशुध्यति ।। 152 ।।
अन्यानि यानि पापानि ज्ञानाज्ञानकृतान्यपि ।
नश्यन्ति जपनाद्देव्याः सावित्र्याः कौलभोजनात् ।। 153 ।।
सामान्यनियमान्पुंसां स्त्रीषु षण्डेषु योजयेत् ।
योषितां तु विशेषोऽयं पतिरेको महागुरुः ।। 154 ।।
महारोगान्विता ये च ये नराश्चिररोगिणः ।
स्वर्णदानेन पूताः स्युर्दैवे पैत्र्येऽधिकारिणः ।। 155 ।।
अपघातमृतेनापि दूषितं विद्युदग्निना ।
गृहं विशोधयेद्धोमैर्व्याहृत्या शतसंख्यकैः ।। 156 ।।

सूर्योदय से आठ प्रहर तक निराहार रहना उपवास है । प्रायश्चित्त में यही उपवास विहित है । प्राणधारण के लिये एक अञ्जलि जल पीने से या हवा खाने से उपवास नहीं टूटता है । वृद्धावस्था या शारीरिक पीड़ा से उपवास में असमर्थ हो तो प्रत्येक उपवास के अनुकल्प में बारह ब्राह्मणों को भोजन

कराए । दूसरे की निन्दा, अपनी प्रशंसा या दुःखदायी अनुचित बात करने या अवैध कार्य करने पर केवल परिताप से शुद्धि होती है । इनके अतिरिक्त जाने या अनजाने में किए सभी पाप गायत्री देवी की उपासना और कौल-भोजन कराने से नष्ट होते हैं । पुरुषों के लिये जो नियम विहित हैं, वही स्त्रियों और नपुंसकों के लिये भी प्रयुक्त हैं; किन्तु स्त्रियों के विषय में यह विशेष बात है कि उनके पति ही उनके महागुरु हैं । महाव्याधि से ग्रस्त चिररोगी लोग स्वर्णदान से पवित्र होकर दैव और पितृकर्म के अधिकारी होते हैं । अपमृत्यु या विद्युदग्नि से दूषित घट को 'भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा' से एक सौ आहुति से शुद्ध करे ।। 149-156 ।।

मृत देह-दूषित गृहवापी-कूपादि का शोधन

वापीकूपतडागेषु सास्थ्नां शवनिरीक्षणात् ।
उद्धृत्य कुणपं तेभ्यस्ततस्तान्परिशोधयेत् ।। 157 ।।
पूर्णाभिषेकमनुभिर्मन्त्रितैः शुद्धवारिभिः ।
पूर्णैस्त्रिसप्तकुम्भैस्तान्प्लावयेदिति शोधनम् ।। 158 ।।
यदि स्वल्पजलास्ते स्युः शवदुर्गन्धिदूषिताः ।
सपङ्कं सलिलं सर्वमुद्धृत्याप्लावयेत्तु तान् ।। 159 ।।
सन्ति भूरीणि तोयानि गजदघ्नानि तेषु च ।
शतकुम्भजलोद्धारैरभिषेकेण शोधयेत् ।। 160 ।।
यद्येवं शोधिता न स्युर्मृतस्पृष्टजलाशयाः ।
अपेयसलिलास्तेषां प्रतिष्ठामपि नाचरेत् ।। 161 ।।
स्नानमेषु जलैरेषां कुर्वन्कर्म वृथा भवेत् ।
दिनमेकं विनाहारः शुध्येत्पञ्चामृताशनात् ।। 162 ।।

बावली, कुआँ, तालाब आदि में अस्थियुक्त शव दिखने पर उस शव को बाहर निकाल दे । कूपादि का शोधन करे । इक्कीस घड़े विशुद्ध जल को पूर्णाभिषेक मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके जल को उन जलाशयों में छोड़े दे । यदि उन कूपादि में थोड़ा ही जल हो और वह शव के दुर्गन्ध से दूषित हो गया हो तो कीचड़सहित सारा जल बाहर निकालने के बाद उक्त विधि से मन्त्रपूत इक्कीस घड़े जल को उनमें डाले । उक्त जलाशय में यदि हाथी डूबने भर बहुत जल हो तो एक सौ घड़े जल उससे बाहर निकाल कर मन्त्रपूत इक्कीस घट जल उसमें डालकर शुद्धि करे । शव से दूषित जलाशय यदि इस विधि से शोधित न हो तो उसका जल न पिए और वैसे जलाशय की प्रतिष्ठा भी न

करे । उसके जल से स्नान या उसके जल से किया गया कोई भी कर्म व्यर्थ होता है । यदि स्नान या कोई कर्म कर ले तो एक दिन निराहार रहकर पञ्चामृत पीने से शुद्धि होती है ।। 157-162 ।।

अनेक पापों का प्रायश्चित्त

याचकं धनिनं दृष्ट्वा वीरं युद्धपराङ्मुखम् ।
दूषकं कुलधर्माणां मद्यपां च कुलस्त्रियम् ।। 163 ।।
मित्रद्रोहकरं मर्त्यं स्वयं पापरतं बुधम् ।
पश्यन्सूर्यं स्मरन्विष्णुं सचैलं स्नानमाचरेत् ।। 164 ।।
खरकुक्कुटकोलांश्च विक्रीणन्तो द्विजातयः ।
नीचवृत्तिं चरन्तोऽपि शुध्येयुस्त्रिदिनव्रतात् ।। 165 ।।
दिनमेकं निराहारो द्वितीयं कणभोजनः ।
अपरन्तु नयेदद्भिस्त्रिदिनव्रतमम्बिके ।। 166 ।।
गृहेऽनुद्घाटितद्वारेऽनाहूतः प्रविशन्नरः ।
वारितार्थप्रवक्तापि पञ्चाहमशनं त्यजेत् ।। 167 ।।
आगच्छतो गुरून् दृष्ट्वा नोत्तिष्ठेद्यो मदान्वितः ।
तथैव कुलशास्त्राणि शुध्येदेकोपवासतः ।। 168 ।।
एतस्मिञ्छाम्भवे शास्त्रे व्यक्तार्थपदबृंहिते ।
कूटेनार्थं कल्पयन्तः पतिता यान्त्यधोगतिम् ।। 169 ।।
इदं ते कथितं देवि सारात्सारं परात्परम् ।
इहामुत्रार्थदं धर्म्यं पावनं हितकारकम् ।। 170 ।।

इति श्रीमहानिवार्णतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे स्वपरानिष्टजनकपाप-
प्रायश्चित्तकथनं नामैकादशोल्लासः

❖

जो धनी होकर याचना करता है, वीर होकर युद्ध से मुख मोड़ता है, जो कुल-धर्म में दोष लगाता है, जो कुलस्त्री होकर सुरापान करती है, जो मित्र से द्रोह करता है, जो पण्डित होकर स्वयं पापाचार करता है, ऐसे सभी पापी लोगों को जो देख ले वह सूर्य का दर्शन करके विष्णु का स्मरण करे । पहने हुए वस्त्रों सहित स्नान करे । ऐसा करने से ही उनके दर्शनजनित पाप से मुक्ति मिलती है । जो द्विज गदहे, मुर्गे या सूअर को बेचता है या किसी अन्य नीच कर्म को करता है तो वह तीन दिनों के व्रतानुष्ठान से शुद्ध होता है । हे अम्बिके! तीन दिनों की व्रतविधि यह है कि एक दिन निराहार, एक दिन कण-

भोजन और एक दिन जलपान करे । बन्द द्वार वाले घर में यदि कोई विना बुलाए प्रवेश करता है या बताने के लिये मना की गयी बात को यदि बता देता है तो उसकी शुद्धि पाँच दिनों तक निराहार रहने से होती है । जो अहंकारयुक्त होकर आने वाले गुरुजन को देखकर खड़ा नहीं होता, वह एक दिन के उपवास से शुद्ध होता है । अच्छी तरह से स्पष्ट अर्थ वाले इस शिवप्रणीत शास्त्र का जो कूट अर्थ करेंगे, वे पतित होकर अधोगति को प्राप्त करेंगे । हे देवि! तुमसे जो कहा है, वह सारों का सार है । उत्कृष्टों से उत्कृष्ट है, पवित्र करने वाला है । कल्याणकारी है । इस लोक में और परलोक में परमार्थ देने वाला है ।। 163-170 ।।

स्वपरानिष्टजनकपापप्रायश्चित्तकथननामक एकादशउल्लास सम्पूर्ण

❖

द्वादश उल्लास

सनातन व्यवहार का वर्णन

धनाधिकार-निरूपण

श्रीसदाशिव उवाच

भयस्ते कथयाम्याद्ये व्यवहारान्सनातनम् ।
यान्रक्षन्प्रविदन्राजा स्वच्छन्दं पालयेत्प्रजा: ॥ 1 ॥
नियमेन विना राज्ञो मानवा धनलोलुपा: ।
मिथस्ते विवदिष्यन्ति गुरुस्वजनबन्धुभि: ॥ 2 ॥
व्यतिघ्नन्ति तदा देवि स्वार्थिनो वित्तहेतवे ।
पापाश्रया भविष्यन्ति हिंसया च जिहीर्षया ॥ 3 ॥
अतस्तेषां हितार्थाय नियमो धर्मसम्मत: ।
नियोज्यते यमाश्रित्य न भ्रश्येयु: शुभान्नरा: ॥ 4 ॥
दण्डयेत्पापिनो राजा यथा पापापनुत्तये ।
तथैव विभजेद्दायान्नृणां सम्बन्धभेदत: ॥ 5 ॥
सम्बन्धो द्विविधो ज्ञेयो विवाहाज्जन्मनस्तथा ।
तत्रोद्वाहिकसम्बन्धादपरो बलवत्तर: ॥ 6 ॥
दाये तूर्ध्वतनाज्ज्यायान्सम्बन्धोऽधस्तन: शिवे ।
अध ऊर्ध्वक्रमादत्र पुमान्मुख्यतर: स्मृत: ॥ 7 ॥
तत्रापि सन्निकर्षेण सम्बन्धी दायमर्हति ।
अनेन विधिना धीरा विभजेयु: क्रमाद्धनम् ॥ 8 ॥
मृतस्य पुत्रे पौत्रे च कन्यासु पितरि स्थिते ।
भार्यायामपि दायार्ह: पुत्र एव न चापर: ॥ 9 ॥
बहवस्तनया यत्र सर्वे तत्र समांशिन: ।
ज्येष्ठे राज्याधिकारित्वं तत्तु वंशानुसारत: ॥ 10 ॥
ऋणं यत्पैतृकं तच्च शोधयेत्पैतृकैर्धनै: ।
तस्मिन्स्थिते विभागार्हं न भवेत्पैतृकं वसु ॥ 11 ॥
विभज्य यदि गृह्णीयुर्विभवं पैतृकं नरा: ।

तेभ्यस्तद्धनमाहृत्य पितॄणां दापयेन्नृपः ।। 12 ।।
यथा स्वकृतपापेन निरयं यान्ति मानवाः ।
ऋणेनापि तथा बद्धः स्वयमेव न चापरः ।। 13 ।।
साधारणं धनं यच्च स्थावरं स्थावरेतरम् ।
अंशिनः प्राप्तुमर्हन्ति स्वं स्वमंशं विभागतः ।। 14 ।।
अंशिनां सम्मतावेव विभागः परिसिद्ध्यति ।
तेषामसम्मतौ राजा समदृष्ट्यांशमाचरेत् ।। 15 ।।
स्थावरस्य चरस्यापि विभागानर्हबस्तुनः ।
मूल्यं तदुपभोगं वाप्यंशिनां विभजेन्नृपः ।। 16 ।।
विभक्तेऽपि धने यस्तु स्वीयांशं प्रतिपादयेत् ।
पुनर्विभज्य तद्द्रव्यमप्राप्तांशाय दापयेत् ।। 17 ।।

श्रीसदाशिव ने कहा कि हे आद्ये! मैं तुम्हें पुनः सनातन व्यवहार बतलाता हूँ । इस व्यवहार की रक्षा करने से राजा स्वच्छन्द होकर प्रजा का पालन करता है । राजनियम के विरुद्धाचार से मनुष्य धनलोभी होकर गुरुजनों, स्वजनों, बन्धुओं के साथ झगड़ा करने लगता है । हे देवि! वे सभी धन के लिये एक-दूसरे पर चोट करेंगे, हिंसा करेंगे और धन चुराने की इच्छा के कारण पापी होंगे । अतः मनुष्य के कल्याण के लिये मैं धर्मसम्मत राजनियमों का वर्णन करता हूँ । इन नियमों के पालन से मनुष्यों का अमंगल भी नहीं होगा । राजा पापों के निवारण के लिये जैसे पापियों के दण्ड का विधान करे, वैसे ही वह मनुष्यों के सम्बन्ध-भेद के अनुसार सम्पत्ति के विभाजन का भी प्रावधान करे । विवाह और जन्म के भेद से सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं, जिनमें जन्माधीन सम्बन्ध अति सबल होता है ।

हे शिवे! धन के अधिकार के लिये ऊर्ध्वतन सम्बन्ध की अपेक्षा अधस्तन सम्बन्ध श्रेष्ठ है अर्थात् दादा, परदादा इत्यादि के रहते बेटे-पोते इत्यादि धन के अधिकारी होंगे । ऐसे ही ऊर्ध्व क्रम से स्त्रीजाति की अपेक्षा पुरुषजाति ही श्रेष्ठ है । इनके बीच अधिकतर निकट सम्बन्ध के क्रम से सम्पत्ति का अधिकारी होता है । पण्डितजन इसी के अनुसार यथाक्रम धन का विभाजन करते हैं। मृतक के यदि पुत्र, पौत्र, कन्या, पिता और पत्नी आदि जीवित हैं तो पुत्र ही धन का अधिकारी होगा । जहाँ सन्तानों की संख्या अधिक हो, वहाँ सभी पुत्र समान अंश प्राप्त करेंगे । वंशानुक्रम से ज्येष्ठ पुत्र ही राज्याधिकारी

होगा । यदि पैतृक कर्ज हो तो पैतृक धन से ही उसकी अदायगी होगी; क्योंकि पैतृक ऋण के रहने पर पैतृक धन का बँटवारा उचित नहीं है । यदि कर्ज के होने पर भी पैतृक धन का विभाजन पुत्रों में हो गया हो तो राजा उनसे वह धन लेकर पैतृक ऋण को चुकता करे । जैसे पाप करने से स्वयं नरक में जाना पड़ता है, वैसे ही ऋण से अपने को ही बँधना पड़ता है; अन्य कोई नहीं बँधता । स्थायी या अस्थायी जो भी सामान्य धन हो, उसमें अधिकारियों को उनके विभाग के अनुसार उनका अंश मिलता है । अधिकारियों में सहमति होने पर बँटवारा सिद्ध होता है । यदि उनमें सहमति न हो तो राजा पक्षपात-रहित होकर अंशों को बाँट दे । जिस स्थायी या अस्थायी धन को बाँटा न जा सके, राजा उसका मूल्य या उपस्वामित्व अधिकारियों में विभाजित कर दे । धन के विभाजन के बाद भी यदि कोई किसी धन में अपना भाग प्रमाणित करे तो राजा उस धन को पुनः बाँटकर अंश न पाने वाले को उसका भाग दिला दे ।। 1-17 ।।

कृते विभागे द्रव्याणामंशिनां सम्मतौ शिवे ।
पुनर्विवादयंस्तत्र शास्यो भवति भूभृतः ।। 18 ।।
स्थिते प्रेतस्य पौत्रे च भार्यायां च पितर्यपि ।
पौत्र एव धनार्हः स्यादधस्ताज्जन्मगौरवात् ।। 19 ।।
अपुत्रस्य स्थिते ताते सोदरे च पितामहे ।
जन्मतः सन्निकर्षेण पितैवास्य धनं हरेत् ।। 20 ।।
विद्यमानासु कन्यासु सन्निकृष्टास्वपि प्रिये ।
मृतस्य पौत्रो धनभाग्यतो मुख्यतरः पुमान् ।। 21 ।।
धनं मृतेन पुत्रेण पौत्रं याति पितामहात् ।
अतोऽत्र गीयते लोकैः पुत्ररूपः स्वयं पिता ।। 22 ।।
औद्वाहिकेऽपि सम्बन्धे ब्राह्मी भार्या वरीयसी ।
अपुत्रस्य हरेदृक्थं पत्युर्देहार्द्धहारिणी ।। 23 ।।
पतिपुत्रविहीना तु सम्प्राप्य स्वामिनो धनम् ।
नैव दातुं न विक्रेतुं समर्था स्वधनं विना ।। 24 ।।
पितृभिः श्वशुरैर्वापि दत्तं यद्धर्मसम्मतम् ।
स्वकृत्योपार्जितं यच्च स्त्रीधनं तत्प्रकीर्तितम् ।। 25 ।।
तस्यां मृतायामृक्थं तत्पुनः स्वामिपदं व्रजेत् ।

तदासन्नतरोरिक्थमध ऊद्ध्वं क्रमाद्धरेत् ॥ 26 ॥
मृते पत्यौ स्वधर्मेण पतिबन्धुवशे स्थिता ।
तदभावे पितृबन्धोस्तिष्ठन्ती दायमर्हति ॥ 27 ॥
शङ्कितव्यभिचारापि न पत्युर्द्दायभागिनी ।
लभते जीवनं वस्त्रं भर्त्तुर्विभवहारिण: ॥ 28 ॥
बह्व्यश्चेद्वनितास्तस्य स्वर्यातुर्धर्मतत्परा: ।
भजेरन्स्वामिनो वित्तं समांशेन शुचिस्मिते ॥ 29 ॥
पत्युर्धनहरायाश्च मृतौ भर्तृसुतास्थितौ ।
पुन: स्वामिपदं गत्वा धनं दुहितरं व्रजेत् ॥ 30 ॥

हे शिवे! सभी अधिकारियों की सम्मति से धन के बँटवारे के बाद उस विभाजन के सम्बन्ध में विवाद करने वाला राजा के द्वारा दण्डनीय होगा । मृतक के पौत्र, पत्नी, पिता यदि विद्यमान हैं तो पौत्र ही अधस्तनत्व रूप से गौरव पाकर धन का अधिकारी होगा । पुत्रहीन मृतक के पिता, भाई और पितामह यदि विद्यमान हैं तो जन्मानुसार निकटता होने के कारण पिता ही उसके धन के अधिकारी होंगे । हे प्रिये! कन्या के बहुत समीप होने पर भी पौत्र ही धन का अधिकारी होगा; क्योंकि स्त्री की अपेक्षा पुरुषों की ही मुख्यता होती है । मृत पुत्र को सोपान मानकर धन पितामह से पौत्र को मिलता है । संसार में प्रसिद्ध है कि स्वयं पिता ही पुत्रस्वरूप होता है । विवाह-सम्बन्ध में ब्राह्म विधि से विवाहिता पत्नी ही श्रेष्ठ है । पति की अर्द्धाङ्गस्वरूपा वह ब्राह्मी पत्नी ही पुत्रहीन पति के धन की अधिकारिणी होती है । पति-पुत्ररहित नारी पति के धन को पाकर भी उसका दान या विक्रय नहीं कर सकती; केवल स्त्रीधन का ही वह दान या विक्रय कर सकती है । पितृकुल या श्वसुर-कुल से प्राप्त धन या अपने से अर्जित धन को स्त्रीधन कहा गया है । उस नारी के मरणोपरान्त पति के प्राप्त धन की स्थिति पूर्ववत् हो जायगी अर्थात् पति के निकटवर्ती व्यक्ति को ही वह धन प्राप्त होगा । स्वामी के मरणोपरान्त स्त्री स्वधर्म के अनुसार पति के बन्धुओं के अधीन या उनके अभाव में पिता के बन्धुओं के अधीन रहकर धन की अधिकारिणी होगी । व्यभिचारिणी स्त्री अपने पति का धन नहीं पायेगी । जो व्यक्ति उसके पति के धन का अधिकारी होगा, उससे वह जीविका, भरण-पोषण प्राप्त कर सकती है । हे शुचिस्मिते! यदि स्वर्गीय व्यक्ति की अनेक पत्नियाँ हों तो उन सबको पति का धन बँटकर

बराबर-बराबर मिलेगा । स्वामी के धन की अधिकारिणी पत्नी की मृत्यु होने पर और पति की कन्या के विद्यमान होने पर वह धन पुनः पति का होकर नाती को मिलेगा ।। 18-30 ।।

एवंस्थितायां कन्यायामृक्थं पुत्रवधूगतम् ।
तन्मृतौ स्वामिनं प्राप्य श्वशुरात्तत्सुतामियात् ।। 31 ।।
पितामहस्य सत्त्वेऽपि वित्तं मातृगतं शिवे ।
तस्यां मृतायां पुत्रेण भर्त्रा श्वशुरगं भवेत् ।। 32 ।।
मृतस्योर्ध्वगतं वित्तं यथा प्राप्नोति तत्पिता ।
जनन्यपि तथाप्नोति पतिहीना भवेद्यदि ।। 33 ।।
अतः सत्यां जनन्यां तु विमाता न धनं हरेत् ।
मृते जनन्यास्तं प्राप्य पित्रा गच्छेद्विमातरम् ।। 34 ।।
अधस्तनानां विरहाद्यथा रिक्थं न यात्यधः ।
येनैवाधस्तनं प्राप्तं तेनैवोद्र्ध्वं तदा व्रजेत् ।। 35 ।।
अतः स्थितौ पितृव्यस्य धनं स्वसृगतं च सत् ।
पत्यौ स्थितेऽनपत्याया मृतौ पितृव्यमाश्रयेत् ।। 36 ।।
ऊद्र्ध्वाद्वित्तमधः प्राप्य पुमांसमवलम्बते ।
अतः सत्यां सोदरायां वैमात्रेयो धनं हरेत् ।। 37 ।।
स्थितायां सोदरायां च विमातुः पुत्रसन्ततौ ।
वैमात्रेयगतं वित्तं वैमात्रेयान्वयो भवेत् ।। 38 ।।
मृतस्य सोदरो भ्राता वैमात्रेयस्तथा शिवे ।
धनं पितृगतत्वेन विभजेतां समांशिनौ ।। 39 ।।
कन्यायां जीवितायां च तदपत्यं न दायभाक् ।
यत्र यद्वाधितं वित्तं तन्मृतावपरं व्रजेत् ।। 40 ।।
विभजेयुर्दुहितरः पुत्राभावे पितुर्वसु ।
उद्वाहयन्त्योऽनूढां तु पितुः साधारणैर्धनैः ।। 41 ।।
असन्तत्या मृतायाश्च स्त्रीधनं स्वामिनं व्रजेत् ।
अन्यत्तु द्रविणं यायादाप्तं तत्पदमाश्रयेत् ।। 42 ।।
प्रेतलब्धधनैर्नारी विदध्यादात्मपोषणम् ।
पुण्यं तु तदुपस्वत्वैर्न शक्ता दानविक्रये ।। 43 ।।
पितामहस्नुषायां च सत्यां तातविमातरि ।
पितामहगतं रिक्थं तत्पुत्रेण स्नुषां व्रजेत् ।। 44 ।।

पितामहे पितृव्ये च तथा भ्रातरि जीवति ।
अधोभवानां मूल्यत्वाद्भ्रातैव धनभाग्भवेत् ।। 45 ।।

इसी प्रकार कन्या के रहने पर पुत्रवधू को प्राप्त धन उसकी मृत्यु होने पर पुनः स्वामी के पास जाकर श्वसुर के अधीन होकर उस कन्या को मिलेगा । हे शिवे! पितामह के विद्यमान होने पर यदि धन माता को मिला हो तो माता की मृत्यु होने पर वह धन पुत्रधन होकर पितृ सम्बन्ध से दादा को मिलेगा । मृतक का ऊर्ध्वगत धन जैसे पिता को मिलता है. वैसे ही पतिहीना माता को भी मिलता है । जननी के रहते सौतेली माँ धन की अधिकारिणी नहीं होती । जननी की मृत्यु होने पर पुत्र का आश्रय लेकर पिता के द्वारा विमाता को धन प्राप्त होगा । अधस्तन अधिकारी के न होने पर धन अधोगामी नहीं होता; परन्तु वही धन जिस क्रम से वैसा होता है, उसी क्रम से वह ऊर्ध्वगामी होगा । चाचा के रहने पर बहन को प्राप्त धन भी चाचा को ही मिलेगा. यदि कन्या पुत्रहीना हो । पुत्रहीना कन्या की मृत्यु के बाद उसके पति को वह धन नहीं मिलेगा । धन ऊर्ध्वगामी होकर पहले पुरुष को मिलता है । अतः सहोदरा बहन के रहने पर भी सौतेला भाई धन का अधिकारी होता है । सहोदरा बहन और सौतेले भाई की सन्तान के रहने पर सौतेले भाई को प्राप्त धन को सौतेले भाई की सन्तान ही पायेगी । हे शिवे! मृत व्यक्ति के धन को सहोदर और सौतेले भाई दोनों बराबर-बराबर बाँट लें । क्योंकि यह धन मृत व्यक्ति के पितृधन के समान है । कन्या जीवित है तो उसका पुत्र धनाधिकारी नहीं होगा । जहाँ जो धनाधिकार का बाधक है, वहाँ उसकी मृत्यु के बाद दूसरे को धन मिलेगा । यहाँ कन्या दौहित्र के धनाधिकार में बाधक है । अतः कन्या की मृत्यु के बाद दौहित्र को अधिकार मिलेगा । अविवाहित बहन का विवाह सामान्य पैतृक धन से करने पर पुत्र न होने पर कन्या के पितृधन को बाँट कर ले । सन्ततिहीना मृत स्त्री का स्त्रीधन स्वामी को मिलता है । स्त्रीधन के अतिरिक्त दूसरा धन जिसे उत्तराधिकारसूत्र से प्राप्त है, उसी को मिलेगा । उत्तरांधिकार के सम्बन्ध से जो सम्पत्ति नारी को मिलती है; उससे वह अपना भरण-पोषण और पुण्यकर्म कर सकती है; लेकिन उसे दान या बिक्री नहीं कर सकती । चाचा और पिता की विमाता विद्यमान हो तो धन पितामहगामी होकर बाद में चाचा के द्वारा चाची को ही मिलता है । दादा, चाचा और भ्राता जीवित हो तो अधस्तन पुरुष की प्रधानता होने से भाई ही धन का अधिकारी होगा ।। 31-45 ।।

पितृव्यात्सन्निकर्षेऽत्र तुल्यौ भ्रातृपितामहौ ।
धनं पितृपदं गत्वा प्रयातुर्भ्रातरं व्रजेत् ॥ 46 ॥
स्थितेऽप्यपत्ये दुहितुः प्रेतस्य पितरि स्थिते ।
दुहित्रपत्यं धनभाग्धनं यस्मादधोमुखम् ॥ 47 ॥
स्वप्रयातुः स्थिते ताते तथा मातरि कालिके ।
पुंसो मुख्यतरत्वेन धनहारी भवेत्पिता ॥ 48 ॥
स्थितः स्वपितृसापिण्डो वर्त्तमानेऽपि मातुले ।
प्रेतस्य धनहारी स्यात्पितुः सम्बन्धगौरवात् ॥ 49 ॥
अधस्ताद्गमनाभावे धनमूद्‌र्ध्वभवं गतम् ।
तत्रापि पुंसां मुख्यत्वादितं पितृकुलं शिवे ।
अतोऽत्र सन्निकृष्टोऽपि मातुलो नाप्नुयाद्धनम् ॥ 50 ॥
अजीवत्पितृकः पौत्रः पितृव्यैः सह पार्वति ।
पितामहस्य द्रविणात्स्वपितुर्द्दायमर्हति ॥ 51 ॥
भ्रातृहीना तथा पौत्री पितृव्यैः समभागिनी ।
पितामहधनं साप्याहरेच्चेन्मृतमातृका ॥ 52 ॥
सत्यां पौत्र्याः पितामह्यां पौत्र्याः पितृष्वसर्यपि ।
वित्ते पितृगते देवि पौत्री तत्राधिकारिणी ॥ 53 ॥
अधोगामिषु वित्तेषु पुमाञ्ज्यायानधस्तनः ।
ऊद्‌र्ध्वगामिधने श्रेष्ठः पुमानूद्‌र्ध्वोद्भवो भवेत् ॥ 54 ॥
अतः स्नुषायां पौत्र्यां च सत्यां दुहितरि प्रिये ।
प्रेतस्य विभवं हर्तुं नैव शक्नोति तत्पिता ॥ 55 ॥
यदा पितृकुले न स्यान्मृतस्य धनभाजनम् ।
पूर्वोक्तविधिना रिक्थं मातामहकुलं भजेत् ॥ 56 ॥
मातामहगतं वित्तं मातुलैस्तत्सुतादिभिः ।
अध ऊद्‌र्ध्वक्रमेणैवं पुमांसे स्त्रियमाश्रयेत् ॥ 57 ॥
ब्राह्मान्वये विद्यमाने पित्रोः सापिण्डने स्थिते ।
मृतस्य शैवीतनयो न पितुर्दायभाग्भवेत् ॥ 58 ॥
शैवी पत्नी च तत्पुत्रा लभेरन्धनभागिनः ।
ग्रासमाच्छादनं भद्रे स्वप्रयातुर्यथाधनम् ॥ 59 ॥
शैवोद्वाहं प्रकुर्वन्तीं शैवभर्त्तैव पालयेत् ।
सौम्याञ्चेन्नाधिकारोऽस्याः पित्रादीनां धने प्रिये ॥ 60 ॥
अतः सत्कुलजां कन्यां शैवैरुद्वाहयन्पिता ।
क्रोधाद्वा लोभतो वापि स भवेल्लोकगर्हितः ॥ 61 ॥

शैवी तदन्वयाभावे सोदको ब्रह्मदो नृपः ।
हरेयुः क्रमतो वित्तं मृतस्य शिवशासनात् ।। 62 ।।

चाचा की तुलना में भाई और पितामह दोनों ही समान रूप से सन्निकृष्ट हैं । ऐसी स्थिति में मृत व्यक्ति का धन पितृधन होकर भाई को मिलेगा । मृत व्यक्ति के नाती और पिता विद्यमान हों तो नाती ही धनाधिकारी होगा; क्योंकि धन स्वभावतः अधोगामी होता है । हे कालिके! मृतक के पिता और माता विद्यमान हों तो पुरुष की प्रधानता होने से पिता ही धनाधिकारी होगा । मृतक के मामा के जीवित होने पर भी पितृसम्बन्ध की गुरुता होने से पितृसपिण्डी ही धन पायेगा । हे शिवे! धन यदि अधोगामी न हो सकेगा तो वह ऊर्ध्वतन पुरुष को मिलेगा । पुरुष की प्रधानता होने से पहले धन पितृकुल को मिलेगा । इसी कारण से मामा के सन्निकृष्ट होने से वह धन-भागी नहीं होगा । हे पार्वति! मृतपितृक पौत्र पितामह के धन में पिता के प्राप्य अंश को पायेगा । पौत्री यदि भ्रातृहीना हो, पिता-माताविहीना और स्वधर्मिणी हो तो पितामह के धन में पितृव्य के साथ बराबर भाग पायेगी । हे देवि! पौत्री की दादी, फूआ यदि जीवित हों तो पितृधन में पौत्री ही अधिकारिणी होगी अर्थात् धनी कन्या, माता, बहन के बीच कन्या ही उत्तराधिकारिणी होती है । अधोगामी धन में अधस्तन पुरुष की ही प्रधानता है और ऊर्ध्वगामी धन में ऊर्ध्वतन पुरुष की । हे प्रिये! इसी से पुत्रवधू, पोती या बेटी के जीवित रहने पर मृतक का धन उसका पिता नहीं ले सकता । यदि मृत व्यक्ति के पितृकुल में कोई उत्तराधिकारी न हो तो पूर्वोक्त विधि के अनुसार वह धन दादी के कुल को मिलेगा । नानी-कुल को प्राप्त धन मामा, मामा के पुत्र आदि के द्वारा पहले अधस्तन, उसके न होने पर ऊर्ध्वतन पुरुष को और उसके न होने पर नारी को मिलेगा । ब्राह्म विवाह से विवाहिता पत्नी की सन्तान के होने पर और पितृसपिण्ड के रहने पर शैव विवाह से विवाहिता स्त्री की सन्तान मृतक के धन को नहीं पायेगी । हे भद्रे! शैव विवाह से विवाहिता पत्नी का पालन शैव पति ही करता है, यदि वह व्यभिचारिणी न हो । यह शैवी पत्नी पिता-माता आदि के धन की अधिकारिणी नहीं होती है । पिता क्रोध या लोभ से सत्कुलोत्पन्ना कन्या को यदि शैव विवाह में देता है तो वह लोक-समाज में निन्दित होता है । शैवी पत्नी और उसका वंश न होने पर शिवशासन से क्रमशः पूर्व-पूर्व भाव में समानोदक आचार्य और राजा मृत व्यक्ति के धन को पायेंगे ।। 46-62 ।।

पिण्डाधिकार-निरूपण

पिण्डदात्सप्तपुरुषाः सपिण्डाः कथिताः प्रिये ।
सोदका दशमान्ताः स्युस्ततः केवलगोत्रजाः ।। 63 ।।
विभक्तं द्रविणं यच्च संसृष्टं स्वेच्छया तु चेत् ।
अविभक्तविधानेन भजेरंस्तद्धनं पुनः ।। 64 ।।
अविभक्ते विभक्ते वा यस्य यादृग्विभागिता ।
मृतेऽपि तस्य दायादास्तादृग्विभवभागिनः ।। 65 ।।
ये यस्य धनहर्त्तारो भवेयुर्ज्जीवनावधि ।
दद्युः पिण्डं त एवास्य शैवभार्यासुतं विना ।। 66 ।।

हे प्रिये! पिण्डदाता से सातवें पुरुष तक सपिण्ड और आठवें से दसवें पुरुष तक समानोदक कहलाते हैं । इसके बाद केवल गोत्रज कहलाते हैं । जो धन एक बार बाँट कर बाद में स्वेच्छा से एक साथ कर लिया गया हो, उसे विना बाँटा मानकर पुनः बाँटा जायेगा । बाँटे हुए या न बँटे हुए धन में जिसका जितना अंश निर्दिष्ट है, उस व्यक्ति के मरणोपरान्त उसके उत्तराधिकारी उसी के अनुसार अपना अंश प्राप्त करेंगे । जो जिसके धन का अधिकारी है, वह उसे अपने जीवन भर पिण्डदान करेगा । यह अधिकार शैव पत्नी के पुत्र को नहीं होता ।। 63-66 ।।

अशौच-व्यवस्था

लोकेऽस्मिञ्जन्मसम्बन्धाद्यथाशौचं विधीयते ।
धनभागित्वसम्बन्धात्त्रिरात्रं विहितं तथा ।। 67 ।।
पूर्णेऽशौचेऽथवाऽपूर्णे तत्कालाभ्यन्तरे च ते ।
श्रवणाच्छेषदिवसैर्विशुद्ध्येयुर्द्विजातयः ।। 68 ।।
कालातीते तु विज्ञाते खण्डेऽशौचं न विद्यते ।
पूर्णे त्रिरात्रं विहितं न चेत्संवत्सरात्परम् ।। 69 ।।
वर्षातीतेऽपि चेन्मातुः पितुर्वा मरणश्रुतौ ।
त्रिरात्रमशुचिः पुत्रस्तथा भर्त्तुः पतिव्रता ।। 70 ।।
अशौचाभ्यन्तरे यस्मिन्नशौचान्तरमापतेत् ।
गुर्वशौचेन मर्त्यानां शुद्धिस्तत्र विधीयते ।। 71 ।।
अशौचानां गुरुत्वं च कालव्यापित्वगौरवात् ।
व्याप्यव्यापकयोर्मध्ये गरीयो व्यापकं स्मृतम् ।। 72 ।।
यद्यशौचान्तदिवसे पतेदपरसूतकम् ।

पूर्वाशौचेन शुद्धिः स्यादाद्यवृद्ध्या दिनद्वयम् ।। 73 ।।
तावत्पितृकुलाशौचं यावन्नोद्वहनं स्त्रियाः ।
जाते परिणये पित्रोर्मृतौ त्र्यहमुदाहृतम् ।। 74 ।।
विवाहानन्तरं नारी पतिगोत्रेण गोत्रिणी ।
तथा गृहीतगोत्रेण दत्तपुत्रस्य गोत्रता ।। 75 ।।

इस लोक में जन्मसम्बन्ध से जिस प्रकार का अशौच विहित है, उसी प्रकार उत्तराधिकारी को भी तीन रात का अशौच लगता है । पूर्णाशौच या खण्डाशौच के निर्दिष्ट अशौचकाल में बीच में सुनने पर अशौच काल के जो कुछ दिन शेष हों, द्विजादि सभी वर्ण उन्हीं कुछ दिनों में शुद्ध होंगे । अशौच काल के व्यतीत होने पर खण्डाशौच सुनने पर अशौच नहीं होता; किन्तु पूर्णाशौच के ज्ञात होने पर तीन दिनों का अशौच होगा । यह अशौच एक वर्ष के बाद नहीं लगता । एक वर्ष बीत जाने पर पुत्र पिता या माता का और पतिव्रता पत्नी पति का मरण सुनने पर तीन रात का अशौच माने । जब एक अशौच के बीच में दूसरा अशौच होता है तब गुरु अशौच द्वारा मनुष्यों की शुद्धि होती है । दीर्घकाल तक होने से अशौच व्याप्य होता है, उससे व्यापक अशौच गुरुतर होता है । यदि मरणाशौच या जननाशौच के शेष दिनों में कोई दूसरा मृत्युजनित या जन्मजनित खण्डाशौच उपस्थित हो तो पूर्व अशौच से ही वह छूट जायगा अर्थात् खण्डाशौच को ग्रहण नहीं किया जायगा । यदि पूर्णाशौच हो तो पूर्व अशौच के बाद दो दिन अशौच बढ़ जायगा । स्त्रियों का जब तक विवाह नहीं होता, तब तक पितृकुल में अशौच होगा । विवाह होने पर पिता-माता की मृत्यु पर तीन रात का अशौच होगा । विवाह के बाद स्त्री पति के गोत्र की हो जाती है ।। 67-75 ।।

दत्तक पुत्र की विधि

सुतमादाय सम्मत्या जनन्या जनकस्य च ।
स्वगोत्रनामान्युल्लिख्य संस्कुर्यात्स्वजनैः सह ।। 76 ।।
औरसेऽपि यथा पित्रोर्धने पिण्डेऽधिकारिता ।
आदात्रोर्दत्तके तद्वद्यतोऽस्य पितरौ हि तौ ।। 77 ।।
आ पञ्चाब्दं शिशुं गृह्णन्सवर्णात्परिपालयेत् ।
पञ्चवर्षाधिको बालो दत्तको न प्रशस्यते ।। 78 ।।
भ्रातृपुत्रोऽपि दत्तश्चेद्ग्रहीतैव भवेत्पिता ।

उत्पादकः पितृव्यः स्यात्सर्वकर्मसु कालिके ॥ 79 ॥
यो यस्य धनहर्त्ता स्यात्स तद्धर्माणि पालयेत् ।
सरक्षेन्नियमांस्तस्य तद्वन्धून्परितोषयेत् ॥ 80 ॥
कानीना गोलकाः कुण्डा अतिपातकिनश्च ये ।
नाशौचं मरणे तेषां नैव दायाधिकारिता ॥ 81 ॥
लिङ्गच्छेदो दमो येषां यासां नासानिकृन्तनम् ।
महापातकिनां चापि मृतौ नाशौचमाचरेत् ॥ 82 ॥
नृणामुद्देशहीनानां परिवारान्धनान्यपि ।
पालयेद्रक्षयेद्राजा यावद्द्वादशवत्सरम् ॥ 83 ॥
द्वादशाब्दे गते तेषां दर्भदेहान्विदाहयेत् ।
त्रिरात्रान्ते तत्सुताद्यैः प्रेतत्वं परिमोचयेत् ॥ 84 ॥
ततस्तत्परिवारेभ्यः पुत्रादिक्रमतो धनम् ।
विभज्य नृपतिर्दद्यादन्यथा पातकी भवेत् ॥ 85 ॥
न कोऽपि रक्षिता यस्य दीनस्यापद्गतस्य च ।
तस्यैव नृपतिः पाता यतो भूपः प्रजाप्रभुः ॥ 86 ॥
यद्यागच्छेदनुद्दिष्टो विभागान्तेऽपि कालिके ।
तस्यैव दाराः पुत्राश्च धनं तस्यैव नान्यथा ॥ 87 ॥

दत्तक पुत्र गोद लेने वाले के गोत्र का हो जाता है । माता-पिता की सहमति-पूर्वक पुत्रग्रहण करके अपने गोत्र और नाम का उल्लेख करके दत्तक पुत्र का संस्कार करे । जैसे औरस पुत्र को पिता-माता के धन और पिण्ड का अधिकार होता है, वैसे ही दत्तक पुत्र का भी गोद लेने वाले स्त्री-पुरुष के धन और पिण्ड का अधिकार होता है; क्योंकि वे ही दत्तक के पिता-माता हैं । पाँच वर्षीय बालक को सवर्ण से लेकर उसका पालन-पोषण करे । दत्तक लेने में पाँच वर्ष से अधिक आयु का बालक प्रशस्त नहीं है । हे कालिके! यदि भाई का पुत्र भी दत्तक हो तो दत्तक लेने वाला ही उसका पिता होगा और उसका जन्मदाता सभी कार्यों में उसका चाचा होगा । जो व्यक्ति जिसके धन का अधिकारी होगा, वही व्यक्ति उसके धर्म का पालन करेगा और नियम मानेगा । उनके सगे-सम्बन्धियों को सन्तुष्ट करेगा । कानीन (कुमारी का पुत्र), गोलक (विधवा का पुत्र) और कुण्ड (सधवा स्त्री का दूसरे पुरुष से उत्पन्न पुत्र) अति पापी होते हैं । उनके मरने पर अशौच नहीं होता । जिन पुरुषों को लिंगच्छेद का दण्ड मिला हो या जिन स्त्रियों की नाक राजदण्ड द्वारा काटी गयी हो या

जो महापापी हों, उनके मरने पर अशौच नहीं माना जाता । जो मनुष्य लापता हों, उनके परिवार और धन की रक्षा राजा बारह वर्ष तक करे । बारह वर्ष बीतने पर उक्त लापता व्यक्ति की कुशमय देह का दाह कराये । तीन रात के बाद उसके पुत्रादि के द्वारा प्रेतत्व-मोचन कराए । तब राजा उस लापता व्यक्ति के धन को उसके पुत्रादि के क्रम से यथासम्भव उसके सगे-सम्बन्धियों में बाँट दें; अन्यथा राजा पाप का भागी होगा । जिसका रक्षक कोई न हो, उसका और दीन-विपत्तिग्रस्तादि लोगों का रक्षक राजा ही होता है; क्योंकि राजा प्रजागण का प्रभु है । हे कालिके! लापता व्यक्ति यदि धन बँटने के बाद भी आ जाय तो स्त्री-पुत्र-धन उसी के होंगे ।। 75-87 ।।

स्व-उपार्जित धन का अधिकार

न समर्थः पुमान्दातुं पैतृकं स्थावरं च यत् ।
स्वजनायाथवान्यस्मै दायादानुमतिं विना ।। 88 ।।
यत्तु स्वोपार्ज्जितं रिक्थं स्थावरं स्थावरेतरम् ।
अस्थावरं पैतृकं च स्वेच्छया दातुमर्हति ।। 89 ।।
स्थिते पुत्रेऽथवा पत्न्यां कन्यायां तत्सुतेऽपि वा ।
जनके च जनन्यां वा भ्रातर्येवं स्वसर्यपि ।। 90 ।।
स्वार्जितं स्थावरधनमस्थावरधनं च यत् ।
अस्थावरं पैतृकं च दातुं सर्वं क्षमो भवेत् ।। 91 ।।
धनमेवं विधानेन दत्तं वा धर्मसात्कृतम् ।
पुंसां तदन्यथा कर्तुं पुत्राद्यैर्नैव शक्यते ।। 92 ।।
धर्मार्थं स्थापितं रिक्थं दाता रक्षितुमर्हति ।
न प्रभुः पुनरादातुं धर्मो ह्यस्य यतः प्रभुः ।। 93 ।।
मूलं वा तदुपस्वत्वं यथासङ्कल्पमम्बिके ।
स्वयं वा तत्प्रतिनिधिर्धर्मार्थं विनियोजयेत् ।। 94 ।।
स्वोपार्जितधनस्यार्द्धं दायादायापि चेद्धनी ।
दद्यात्स्नेहेन तच्चान्यो नान्यथाकर्तुमर्हति ।। 95 ।।
यदि स्वोपार्जितस्यार्द्धमेकस्मै धनहारिणाम् ।
ददात्यन्यैश्च दायादैः प्रतिरोद्धुं न शक्यते ।। 96 ।।
एकेन पितृवित्तेन यत्र वित्तमुपार्जितम् ।
पित्रे समांशा दायादा न लाभार्हा विनार्जकम् ।। 97 ।।
पैतृकाणि च वित्तानि नष्टेऽप्युद्धारयेत्तु यः ।

दायादानां तद्धनेभ्य उद्धर्त्ता द्व्यंशमर्हति ।। 98 ।।
पुण्यं वित्तं च विद्या च नाश्रयेदशरीरिणम् ।
शरीरं तु पितुर्यस्मात्किन्न स्यात्पैतृकं वसु ।। 99 ।।
पृथगन्नैः पृथग्वित्तैर्मनुजैर्यदुपार्जितम् ।
सर्वं तत्पितृसंक्रान्तं तदा स्वोपार्जितं कुतः ।। 100 ।।
अतो महेशि स्वायासैर्येन यद्धनमर्जितम् ।
स्वोपार्जितं तदेव स्यात्स तत्स्वामी न चापरः ।। 101 ।।

हिस्सेदारों की सहमति के विना पुरुष भी पैतृक स्थावर धन को स्वजन को या अन्य व्यक्ति को दान नहीं कर सकते । जो स्थायी-अनस्थायी धन स्वयं उपार्जित हो, उसे और अस्थायी पैतृक सम्पत्ति को स्वेच्छा से दान कर सकते हैं । पुत्र, पत्नी, पुत्री, नाती या जनक-जननी अथवा भाई या बहन के रहते हुए भी जो स्थायी या अनस्थायी धन स्वोपार्जित हो तथा अस्थायी पैतृक सारा धन दान में दे सकता है । इस प्रकार का धन ऐसे दान में या किसी धर्म-कर्म में व्यय करे तो पुत्रादि उसे बदल नहीं सकते । धर्मार्थ में लगाई सम्पत्ति की रक्षा धनदाता ही करेगा; किन्तु उसे वह वापस नहीं ले सकता; क्योंकि धर्म ही उस धन का स्वामी है, हे अम्बिके! स्वयं या प्रतिनिधि द्वारा सङ्कल्प के अनुसार मूल धन या उपस्वत्व को धर्मार्थ में लगाए । धनी मनुष्य यदि स्नेहवश किसी उत्तराधिकारी को अपने उपार्जित धन का आधा दे तो उसे कोई दूसरा व्यक्ति रोक नहीं सकता । यदि उत्तराधिकारियों में से एक ही व्यक्ति को स्वोपार्जित धन का आधा दे दे तो अन्य उत्तराधिकारी उसे रोक नहीं सकते । जहाँ बहुत भाइयों में से एक भाई पैतृक धन द्वारा धन पैदा करता है, वहाँ उक्त पैतृक धन में ही सब भाइयों का अधिकार है । उपार्जित धन उपार्जन करने वाले के सिवा दूसरे किसी को नहीं मिलेगा । जो भाई पैतृक नष्ट द्रव्य का उद्धार करता है, वह उत्तराधिकारियों के बीच दो भाग पायेगा । मृत व्यक्ति को पुण्य, धन और विद्या नहीं मिलती । यह शरीर पितृ से सम्बन्धित है; अतः सब धन पैतृक होता है । मनुष्य पृथक् अन्न, पृथक् धन वाले होकर भी जो कुछ उपार्जित करते हैं, वह सब पितृ-संक्रान्त है; अतः अपना उपार्जित धन कैसे सम्भव हो सकता है? अतः हे महेश्वरि! व्यक्ति अपने परिश्रम से जो धन उपार्जित करता है, वही उसका उपार्जित है और वही उस धन का स्वामी है । दूसरा कोई नहीं हो सकता है ।। 88-101 ।।

अनधिकारिता का निरूपण

मातरं पितरं देवि गुरुं चैव पितामहान् ।
मातामहान्करेणापि प्रहरन्नैव दायभाक् ।। 102 ।।
निघ्नन्नन्यानपि प्राणैर्न तेषां धनमाप्नुयात् ।
हतानामन्यदायादा भवेयुर्धनभागिनः ।। 103 ।।
नपुंसकाः पङ्गवश्च ग्रासाच्छादनमम्बिके ।
यावज्जीवनमर्हन्ति न ते स्युर्दायभागिनः ।। 104 ।।
सस्वामिकं धनं प्राप्तं पथि वा यत्रकुत्रचित् ।
नृपस्तत्स्वामिने प्राप्ता दापयेत्सुविचारयन् ।। 105 ।।
अस्वामिकानां जीवानामस्वामिकधनस्य च ।
प्राप्ता तत्र भवेत्स्वामी दशमांशं नृपेऽर्पयेत् ।। 106 ।।

हे देवि! माता-पिता, गुरु, दादा-दादी को हाथ से मारने वाला व्यक्ति उनके धन का अधिकारी नहीं होता । दूसरे किसी सम्बन्धी का भी प्राणनाश करने वाला मृत व्यक्ति के धन को नहीं पायेगा । कोई दूसरा व्यक्ति उसके धन का उत्तराधिकारी होगा । हे अम्बिके! नपुंसक और पंगु जीवन भर अन्न-वस्त्र पायेगा, धन का अधिकारी नहीं होगा । मार्ग में या अन्य किसी स्थान में किसी दूसरे का धन मिलने पर राजा विचार कर उस धन को पाने वाले के द्वारा धनस्वामी को वह धन दिलवा दे । अस्वामिक जीव या धन मिलने पर पाने वाला व्यक्ति ही उसका अधिकारी होगा । राजा को उसका दशमांश प्राप्त होता है ।। 102-106 ।।

स्थावर सम्पत्ति बेचने का अधिकार

स्थावरं धनमन्यस्मै स्थिते सान्निध्यवर्त्तिनि ।
योग्ये क्रेतरि विक्रेतुं न शक्तः स्थावराधिपः ।। 107 ।।
सान्निध्यवर्त्तिनां ज्ञातिः सवर्णो वा विशिष्यते ।
तयोरभावे सुहृदो विक्रेत्रिच्छा गरीयसी ।। 108 ।।
निर्णीतमूल्येऽप्यन्येन स्थावरस्य क्रयोद्यमे ।
तन्मूल्यं चेत्समीपस्थो राति क्रेता न चापरः ।। 109 ।।
मूल्यं दातुमशक्तश्चेत्सम्मते विक्रयेऽपि वा ।
सन्निधिस्थस्तदान्यस्मै गृही शक्नोति विक्रये ।। 110 ।।
क्रीतं चेत्स्थावरं देवि! परोक्षे प्रतिवासिनः ।
श्रवणादेव तन्मूल्यं दत्त्वासौ प्राप्तुमर्हति ।। 111 ।।

क्रेता तत्र गृहारामान्विनिर्माति भनक्ति वा ।
मूल्यं दत्त्वापि नाप्नोति स्थावरं सन्निधिस्थितः ॥ 112 ॥
करहीना प्रतिहता वन्यारण्यातिदुर्गमा ।
अनादिष्टोऽपि तां भूमिं सम्पन्नां कर्तुमर्हति ॥ 113 ॥
बहुप्रयाससाध्यायास्तस्या भूमेर्महीभृते ।
दत्त्वा दशांशं भुञ्जीयाद्भूमिस्वामी यतो नृपः ॥ 114 ॥

योग्य खरीदने वाला पास में हो तो स्वामी स्थावर धन दूसरे को नहीं बेच सकता । समीपवर्ती क्रेताओं के बीच जाति या वर्ण को प्राथमिकता मिलेगी । उनके न रहने पर बन्धु को क्रय का अधिकार है । खरीदने के इच्छुक बन्धुओं की संख्या यदि अधिक हो तो विक्रेता की इच्छा ही मान्य होगी । वह इच्छानुसार जिसको बेचना चाहे, उसे बेच सकता है । दूसरा व्यक्ति यदि स्थावर धन का मूल्य निश्चित कर खरीदने को तैयार हो और निकटस्थ व्यक्ति यदि वही मूल्य दे तो निकटस्थ व्यक्ति ही खरीददार होगा; दूसरा नहीं होगा । यदि निकटस्थ व्यक्ति मूल्य देने में असमर्थ हो या अन्य को बेचे जाने में सहमत हो तो विक्रेता दूसरे के हाथ भी बेच सकता है । हे देवि! प्रवासी व्यक्ति के अज्ञातवास के समय यदि स्थावर सम्पत्ति कोई दूसरा खरीद ले तो सुनने पर वही मूल्य देकर प्रवासी उसे पुनः वापस पा सकता है; परन्तु यदि क्रेता ने उसमें गृह-उपवन बना लिया हो या उसे तोड़ दिया हो तो निकटस्थ व्यक्ति मूल्य देकर भी उस स्थावर धन को नहीं पा सकता है । जल या वन से निकाली हुई, अति दुर्गम, अनिवारित, भोग एवं राजस्वशून्य भूमि को राजाज्ञा के विना भी उपजाऊ बना सकते हैं । वह भूमि बहुत परिश्रम से भी तैयार की गयी हो तो भी उसमें उत्पन्न वस्तु का दशमांश राजा को देकर उसका भोग करे; क्योंकि राजा ही सारी भूमि का स्वामी होता है ।। 107-114 ।।

वापी-कूपादि में जलपान का अधिकार

वापीकूपतडागानां खननं वृक्षरोपणम् ।
परानिष्टकरे देशे न गृहं कर्तुमर्हति ॥ 115 ॥
देवार्थं दत्तकूपादौ तथा स्रोतस्वतीजले ।
पानाधिकारिणः सर्वे सेचनेऽन्तिकवासिनः ॥ 116 ॥
यत्तोयसेचनाल्लोका भवेयुर्जलकातराः ।
न सिञ्चेयुर्जलं तस्मादपि सन्निधिवर्त्तिनः ॥ 117 ॥

धनानामविभक्तानामंशिनां सम्मतिं विना ।
तथानिर्णीतवित्तानामसिद्धौ न्यासविक्रयौ ।। 118 ।।
स्थाप्यतां बद्धवित्तानां ज्ञानान्नष्टेऽप्ययत्नतः ।
तन्मूल्यं दापयेत्तेन स्वामिने सर्वथा नृपः ।। 119 ।।
अभिमत्या स्थापकस्य पश्चादिन्यस्तवस्तुनाम् ।
व्यवहारे कृते तत्र धर्त्ता सम्पोषयेत्पशून् ।। 120 ।।
लाभे नियोजयेद्यत्र स्थावरादीनि मानवः ।
नियमेन विना काललाभयोरन्यथा भवेत् ।। 121 ।।
साधारणानि वस्तूनि लाभार्थं नैव योजयेत् ।
मृते पितरि सर्वेषामंशिनां सम्मतिं विना ।। 122 ।।
क्रमव्यत्ययमूल्येन द्रव्याणां विक्रये सति ।
नृपस्तदन्यथाकर्त्तुं क्षमो भवति पार्वति ।। 123 ।।

जिस जगह में दूसरे का अनिष्ट हो सकता है, वहाँ बावली-कुआँ-तालाव खोदना, वृक्ष लगाना या घर बनवाना निषिद्ध है । देवोद्देश्य से बने कुएँ और नदी का जल सभी पी सकते हैं और इन जलाशयों के निकट रहने वाले उनसे सिंचाई करने के अधिकारी हैं । जिस जलाशय से सिंचाई करने से लोगों को जल की कमी का अनुभव हो, उससे निकटस्थ लोग भी सिंचाई नहीं कर सकते । अंशी लोगों की सहमति के विना अविभक्त सम्पत्ति को रेहन रखना या बेचना अवैध है । इसी प्रकार जिस सम्पत्ति का स्वामित्व या परिमाण निर्दिष्ट नहीं हो, उसको बेचना या बन्धक रखना अनुचित है । बन्धक वस्तु को जानकर नष्ट करने पर राजा उस नष्ट करने वाले व्यक्ति से उस वस्तु के स्वामी को उसका मूल्य दिलाए । बन्धक करने वाले की सहमति से बन्धक पशु आदि वस्तु को उपयोग में लाने वाला व्यक्ति ही उस पशु का पोषण करेगा । जब कोई समय और लाभ के नियम का उल्लंघन करके अपने लाभ के लिए स्थावर-अस्थावर सम्पत्ति को लगायेगा तो वह लाभ निरस्त होगा । पिता की मृत्यु होने पर सभी भागीदारों की सहमति के विना सामान्य सम्पत्ति को लाभ के लिये नहीं लगाया जा सकता । हे पार्वति! यदि बहुमूल्य वस्तु कम मूल्य में या कम मूल्य की वस्तु बहुत मूल्य में बिके तो राजा उसे रोक सकता है ।। 115-123 ।।

विविध आचार

जननं चापि मरणं शरीराणां यथा सकृत् ।
दानं तथैव कन्याया ब्राह्मोद्वाहः सकृत्सकृत् ।। 124 ।।
नैकपुत्रः सुतं दद्यान्नैकस्त्रीकस्तथा स्त्रियम् ।
नैककन्यः सुतां शैवोद्वाहे पितृहितः पुमान् ।। 125 ।।
दैवे पित्र्ये च वाणिज्ये राजद्वारे विशेषतः ।
यद्विदध्यात्प्रतिनिधिस्तन्नियन्तुः कृतिर्भवेत् ।। 126 ।।
न दण्डार्हः प्रतिनिधिस्तथा दूतोऽपि सुव्रते ।
नियोक्तृकृतदोषेण विधिरेष सनातनः ।। 127 ।।
ऋणे कृषौ च वाणिज्ये तथा सर्वेषु कर्मसु ।
यद्यदङ्गीकृतं लोकैस्तत्कार्यं धर्मसम्मतम् ।। 128 ।।
अधीशेनावितं विश्वं नाशं यान्ति निनंक्षवः ।
तत्पातन्पाति विश्वेशस्तस्माल्लोकहितो भवेत् ।। 129 ।।

इति श्रीमहानिवार्णतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे सनातनव्यवहारकथनं
नाम द्वादशोल्लासः

❖

जैसे शरीर का जन्म और मरण एक ही बार होता है, वैसे ही दान और कन्या का ब्राह्म विवाह भी एक ही बार होता है । जिसको एक ही पुत्र है, वह पुत्र का दान नहीं कर सकता । जिसकी एक ही स्त्री है, वह अपनी स्त्री का दान नहीं कर सकता । जो पितरों का हितचिन्तक है, वह एक ही कन्या होने पर उसे शैव विवाह में नहीं दे सकता । देवकार्य में, पितृकार्य में, वाणिज्य में; विशेषतः राजदरबार में प्रतिनिधि जो कुछ करेगा, वह उसके नियोक्ता के द्वारा ही किया हुआ माना जायेगा । हे सुव्रते! प्रतिनिधि को नियुक्त करने वाले के दोष के लिये प्रतिनिधि या दूत दण्डनीय नहीं है; यह नित्य विधि है । ऋण, कृषिकार्य, वाणिज्य और अन्य सभी कार्यों में धर्मसम्मत जो कुछ भी स्वीकार किया गया हो, उसे करना होगा । जगदीश्वर जगत् की रक्षा करते हैं । जो इस जगत् को नष्ट करना चाहते हैं, वे स्वयं विनष्ट हो जाते हैं । ईश्वर द्वारा पालित जगत् के रक्षकों की रक्षा जगदीश्वर करते हैं । अतः सदैव जगत् के हित में लगे रहना चाहिये ।। 124-129 ।।

सनातनव्यवहारकथन नामक द्वादश उल्लास सम्पूर्ण

❖

त्रयोदश उल्लास

देवता-जलाशयादि-प्रतिष्ठा एवं वास्तुयागविधि का वर्णन

निराकार शक्ति के आकार की कल्पना

इति निगदितवन्तं देवदेवं महेशं
निखिलनिगमसारं स्वर्गमोक्षैकबीजम् ।
कलिमलकलितानां पावनैकान्तचित्ता
त्रिभुवनजनमाता पार्वती प्राह भक्त्या ॥ 1 ॥

श्रीदेव्युवाच

महद्योनेरादिशक्तेर्महाकाल्या महाद्युतेः ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मभूतायाः कथं रूपानुरूपणम् ॥ 2 ॥
रूपं प्रकृतिकार्याणां सा तु साक्षात्परात्परा ।
एतन्मे संशयं देव विशेषाच्छेत्तुमर्हसि ॥ 3 ॥

श्रीसदाशिव उवाच

उपासकानां कार्याय पुरैव कथितं प्रिये ।
गुणक्रियानुसारेण रूपं देव्याः प्रकल्पितम् ॥ 4 ॥
श्वेतपीतादिको वर्णो यथा कृष्णे विलीयते ।
प्रविशन्ति तथा काल्यां सर्वभूतानि शैलजे ॥ 5 ॥
अतस्तस्याः कालशक्तेर्निर्गुणाया निराकृतेः ।
हितायाः प्राप्तयोगानां वर्णः कृष्णो निरूपितः ॥ 6 ॥
नित्यायाः कालरूपाया अव्ययायाः शिवात्मनः ।
अमृतत्वाल्ललाटेऽस्याः शशिचिह्नं निरूपितम् ॥ 7 ॥
शशिसूर्याग्निभिर्नित्यैरखिलं कालिकं जगत् ।
सम्पश्यति यतस्तस्मात्कल्पित नयनत्रयम् ॥ 8 ॥
ग्रसनात्सर्वसत्त्वानां कालदन्तेन चर्वणात् ।
तद्रक्तसंघो देवेश्या वासोरूपेण भाषितम् ॥ 9 ॥
समये समये जीवरक्षणं विपदः शिवे ।

प्रेरणं स्वस्वकार्येषु वरश्चाभयमीरितम् ।। 10 ।।
रजोजनितविश्वानि विष्टभ्य परितिष्ठति ।
अतो हि कथितं भद्रे रक्तपद्मासनस्थिता ।। 11 ।।
क्रीडन्तं कालिकं कालं पीत्वा मोहमयीं सुराम् ।
पश्यन्ती चिन्मयी देवी सर्वसाक्षिस्वरूपिणी ।। 12 ।।
एवं गुणानुसारेण रूपाणि विविधानि च ।
कल्पितानि हितार्थाय भक्तानामल्पमेधसाम् ।। 13 ।।

सभी निगमों के सारांश, स्वर्ग-मोक्ष-प्राप्ति के साधन बताने वाले देव-देव महेश्वर से कलिकाल के मलिन जीवों की पावनता के लिये त्रिलोकजननी पार्वती ने भक्तिपूर्वक कहा कि महत्तत्त्व की उत्पादिका मूल प्रकृति, महाज्योतिर्मयी, सर्वथा दुर्ज्ञेया महाकाली का रूप-निरूपण कैसे होगा? हे देव! घट-पट का ही रूप होता है; किन्तु महाकाली प्रकृतिरूपा हैं । अतः उनका कोई रूप नहीं हो सकता । इसके बारे में मुझे विशेष सन्देह है । हे देव! आप मेरे इस सन्देह को विशेष रूप से दूर करने की कृपा करें । श्रीसदाशिव ने कहा कि हे प्रिये! मैंने पहले ही बताया है कि उपासकों के कार्य के लिये गुण और क्रिया के अनुसार देवी का रूप कल्पित होता है । हे शैलजे! श्वेत-पीत रंग जैसे काले रंग में लुप्त हो जाते हैं, वैसे ही सभी पञ्चभूत काली में व्याप्त हैं । इसी से उस निर्गुणा, निराकारा, योगियों की हितैषिणी कालशक्ति का वर्ण काला कहा गया है । नित्या, कालरूपा, अव्यया और कल्याणरूपा इस काली के मस्तक पर चन्द्रकला का चिह्न अमृत की विद्यमानता का सूचक है । नित्यस्वरूप चन्द्र-सूर्य और अग्नि द्वारा कालसम्भूत सारा संसार दिखायी पड़ता है । इसी से काली के तीन नेत्र कल्पित हैं । सभी प्राणियों का ग्रास करने और कालदण्ड द्वारा चबाने के कारण सभी प्राणियों के रुधिर से ही महेश्वरी के लाल वस्त्र की कल्पना हुई है । हे शिवे! समय-समय पर विपत्ति से जीवों की रक्षा करने और जीवों को अपने-अपने कार्य में प्रेरित करने का तथ्य उनके वर और अभय मुद्रा को प्रदर्शित करता है । हे भद्रे! रजोगुण से उत्पन्न विश्व उनका वास है । लाल कमल का उनका आसन इसी का प्रतीक है । ज्ञानस्वरूपा, सबों की साक्षी वे देवी मोहमयी सुरा का पान करके क्रीड़ा करने वाले काल से उत्पन्न जगत् को देखती हैं । अल्प बुद्धि भक्तों के कल्याण के लिये उक्त प्रकार के गुणों के अनुरूप भगवती के अनेक प्रकार के रूपों की कल्पना की गयी है ।। 1-13 ।।

सकाम उपासना का फल

श्रीदेव्युवाच

ध्यानं यत्कथितं काल्या जीवनिस्तारहेतवे ।
तस्यानुरूपतो मूर्तिं मृन्मयीं वा शिलामयीम् ।। 14 ।।
दारुधातुमयीं वापि निर्माय यदि साधकः ।
विचित्रभवनं कृत्वा वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ।। 15 ।।
स्थापयेत्तत्र देवेशीं किं फलं तस्य जायते ।
प्रतिष्ठा केन विधिना तस्याः प्रतिकृतेः प्रभो ।
कर्त्तव्या तदशेषेण कृपया मे प्रकाश्यताम् ।। 16 ।।
वापीकूपगृहारामदेवप्रतिकृतेस्तथा ।
प्रतिष्ठा सूचिता पूर्वं गदिता न विशेषतः ।। 17 ।।
तद्विधानमपि श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखाम्बुजात् ।
कथ्यतां परमेशान कृपया यदि रोचते ।। 18 ।।

श्रीदेवी ने कहा कि जीवों के कल्याण के लिये आपने आद्या काली का जो ध्यान बताया है, यदि उसी के अनुसार मिट्टी, पत्थर, लकड़ी या धातु की मूर्त्ति बनाकर उपासक उसे वस्त्र और अलंकार से विभूषित कर सुन्दर घर बनाकर उसमें काली की उस मूर्त्ति को स्थापित करे तो उसका क्या फल होगा? हे प्रभो! किस विधि-विधान से उस प्रतिमा की प्रतिष्ठा की जायगी? यह सब मुझे बताने की कृपा कीजिये । आपने पहले बावली, कुआँ, घर, उद्यान और देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा का उल्लेख किया है; किन्तु उनका वर्णन विशेष रूप से नहीं किया है । हे परमेश्वर! मैं आपके मुख से उनकी प्रतिष्ठा के विधान को जानना चाहती हूँ । यदि आपकी इच्छा हो तो बताने की कृपा कीजिये ।। 14-18 ।।

देवालय-संस्कार और प्रतिष्ठा का फल

श्रीसदाशिव उवाच

गुह्यमेतत्परं तत्त्वं यत्पृष्टं परमेश्वरि ।
कथयामि तव स्नेहात्समाहितमनाः शृणु ।। 19 ।।
सकामाश्चैव निष्कामा द्विविधा भुवि मानवाः ।
अकामानां पदं मोक्षं कामिनां फलमुच्यते ।। 20 ।।

यो यद्देवप्रतिकृतिं प्रतिष्ठापयति प्रिये ।
स तल्लोकमवाप्नोति भोगानपि तदुद्भवान् ।। 21 ।।
मृन्मये प्रतिबिम्बे तु वसेत्कल्पायुतं दिवि ।
दारुपाषाणधातूनां क्रमाद्दशगुणाधिकम् ।। 22 ।।
तृणकाष्ठादिरचितं ध्वजावाहनसंयुतम् ।
मन्दिरं देवमुद्दिश्य काममुद्दिश्य वा नरः ।
संस्कुर्यादुत्सृजेद्वापि तस्य पुण्यं निशामय ।। 23 ।।
तृणादिनिर्मितं गेहं यो दद्यात्परमेश्वरि ।
वर्षकोटिसहस्राणि स वसेद्देववेश्मनि ।। 24 ।।
इष्टकागृहदाने तु तस्माच्छतगुणं फलम् ।
ततोऽयुतगुणं पुण्यं शिलागेहप्रदानतः ।। 25 ।।

सदाशिव ने कहा कि हे परमेश्वरि! तुमने जो जिज्ञासा व्यक्त की है, उसका उत्तर बहुत गोपनीय है । तुम्हारे स्नेहवश मैं उसे बताता हूँ । तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो । इस संसार में मनुष्य दो प्रकार से उपासना करते हैं—सकाम और निष्काम । निष्काम उपासकों को मोक्षपद प्राप्त होता है । सकाम उपासकों को जैसा फल मिलता है, उसे मैं बतलाता हूँ । हे प्रिये! जो मनुष्य जिस देवता की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करता है, वह उसी देवता के लोक को प्राप्त करता है और उस लोक के भोगों को भोगता है । मिट्टी की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने वाला दस हजार कल्पों तक स्वर्ग में रहता है । लकड़ी, पत्थर और धातु की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने का फल इस प्रकार का होता है । लकड़ी, पत्थर और धातु की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने से एक लाख कल्प तक स्वर्ग में रहता है । जो मनुष्य देवता की प्रसन्नता के लिये या किसी कामना से ध्वज और वाहन के साथ तृण-काष्ठादि का घर बनाकर उत्सर्ग करता है या इस प्रकार के उत्कृष्ट मन्दिर का संस्कार कराता है, उसका पुण्य कैसा होता है, इसे सुनो । हे परमेश्वरि! जो मनुष्य तृणादि से बने घर को दान करता है, वह कई हजार करोड़ वर्षों तक देवलोक में रहता है । ईंट के बने मन्दिर के दान करने से इससे सौगुना अधिक फल होता है । पत्थर से निर्मित मन्दिर दान करने का फल इससे दस हजार गुना अधिक है ।। 19-25 ।।

सेतु-निर्माण का फल

सेतुसंक्रमदाताद्ये यमलोकं न पश्यति ।
सुखं सुरालयं प्राप्य मोदते स्वर्निवासिभिः ।। 26 ।।

हे आद्ये! सेतु और विशेष प्रकार के सेतु को बनाने वालों को यमलोक नहीं देखना पड़ता । वह सुखपूर्वक देवलोक को प्राप्त कर स्वर्गवासियों के साथ आनन्दपूर्वक वास करता है ।। 26 ।।

वृक्ष और उद्यानादि की प्रतिष्ठा का फल

वृक्षारामप्रतिष्ठाता गत्वा त्रिदशमन्दिरम् ।
कल्पपादपवृन्देषु निवसन्दिव्यवेश्मनि ।
भुङ्क्ते मनोरमान्भोगान्मनसो यानभीप्सितान् ।। 27 ।।

वृक्ष और उपवन की प्रतिष्ठा करने वाला देवलोक में जाकर कल्पवृक्षों से युक्त दिव्य आवास में निवास करता है और अपनी मनचाही सभी सुन्दर भोज्य वस्तुओं का उपभोग करता है ।। 27 ।।

जलाशय की प्रतिष्ठा का फल

प्रीतये सर्वसत्त्वानां ये प्रदद्युर्जलाशयम् ।
विधूतपापास्ते प्राप्य ब्रह्मलोकमनामयम् ।
निवसेयुः शतवर्षानम्भसां प्रतिशीकरम् ।। 28 ।।

सभी प्राणियों की प्रसन्नता के लिये जो जलाशय का दान करता है, वह पापों से छूटकर ब्रह्मलोक में जाता है । उस जलाशय में जितनी बूँदें हैं, उतने सौ वर्षों तक वह वहाँ रहता है ।। 28 ।।

देववाहन-दान का फल

यो दद्याद्वाहनं देवि देवताप्रीतिकारकम् ।
स तेन रक्षितो नित्यं तल्लोके निवसेच्चिरम् ।। 29 ।।
मृन्मये वाहने दत्ते यत्फलं जायते भुवि ।
दारुजे तद्दशगुणं शिलाजे तद्दशाधिकम् ।। 30 ।।
रीतिकाकांस्यताम्रादिनिर्मिते देववाहने ।
दत्ते फलमवाप्नोति क्रमाच्छतगुणाधिकम् ।। 31 ।।
देव्यागारे महासिंहं वृषभं शङ्करालये ।
गरुडं कैशवे गेहे प्रदद्यातसाधकोत्तमः ।। 32 ।।
तीक्ष्णदंष्ट्रः करालास्यः सटाशोभितकन्धरः ।
चतुरङ्घ्रिर्वज्रनखो महासिंहः प्रकीर्तितः ।। 33 ।।
शृङ्गायुधः शुद्धकायश्चतुष्पादः सितक्षुरः ।

बृहत्ककुत्कृष्णपुच्छः श्यामस्कन्धो वृषः स्मृतः ।। 34 ।।
गरुडः पक्षिजंघस्तु नरास्यो दीर्घनासिकः ।
पादसङ्कोचसंविष्टः पक्षयुक्तः कृताञ्जलिः ।। 35 ।।

हे देवि! देवता की प्रीति के लिये जो कोई वाहन देता है, वह उस देवता से रक्षित होकर उस देवलोक में दीर्घकाल तक रहता है । इस भूमण्डल पर मिट्टी के वाहन देने का जो फल है, उससे दसगुना अधिक फल लकड़ी के वाहन दान करने से होता है । पत्थर के वाहन दान करने का फल उससे दसगुना अधिक होता है । भगवती के मन्दिर में महासिंह, शिवमन्दिर में वृषभ और विष्णुमन्दिर में जो गरुड़ का दान करता है, उसका फल अवर्णनीय है । ताम्बे, पीतल, काँसे आदि धातु से बने देववाहन के दान से क्रमशः सौगुना अधिक फल होता है । महासिंह के सभी दाँत तीक्ष्ण हैं, मुखमण्डल भयंकर है, कन्धे केशरों से सुशोभित हैं, चार पैर हैं, नाखून वज्र के समान हैं । वृषभ के दो सिंग ही उनके अस्त्र हैं, शरीर सफेद वर्ण का है, चार पैर हैं, खुर काले रंग के हैं, ककुद बड़ा और भारी है, पूँछ काली है, कन्धे काले रंग के हैं । गरुड़ की जांघ पक्षी के समान है, मुख मनुष्य के समान है, नाक लम्बी है । वह दो पंखों से युक्त अञ्जलि बाँधकर दोनों पैरों को सिकोड़ कर बैठा है ।। 29-35 ।।

देवालय में ध्वज-पताका दान का फल

पताकाध्वजदानेन देवप्रीतिः शतं समाः ।
ध्वजदण्डस्तु कर्तव्यो द्वात्रिंशद्धस्तसम्मितः ।। 36 ।।
सुदृढश्छिद्ररहितः सबलः शुभदर्शनः ।
वेष्टितो रक्तवस्त्रेण कोटौ चक्रसमन्वितः ।। 37 ।।
पताका तत्र संयोज्या तत्तद्वाहनचिह्निता ।
प्रशस्तमूला सूक्ष्माग्रा दिव्यवस्त्रविनिर्मिता ।
शोभमाना ध्वजाग्रे या पताका सा प्रकीर्त्तिता ।। 38 ।।

देवालय में ध्वज-पताका दान करने से देवता की सौ वर्ष तक रहने वाली प्रसन्नता होती है । बत्तीस हाथ ऊँचे, रंग-विरंगे, सुदृढ़, छिद्ररहित, देखने में सुन्दर, लाल वस्त्र से लिपटा हुआ और अग्रभाग में विष्णु के चक्र से युक्त ध्वज का निर्माण करे । ऐसे ध्वजदण्ड के अग्रभाग में सम्बन्धित देवता के वाहन के चिह्न से युक्त पताका लगाए । पताका का मूल भाग प्रशस्त, अगला

भाग पतला और सुन्दर वस्त्र से वह बनती है । यह ध्वज के आगे रहती है ।। 36-38 ।।

वस्त्रालंकार-दान का फल

वासोभूषणपर्य्यङ्कयानसिंहासनानि च ।
पानप्राशनताम्बूलभाजनानि पतद्ग्रहम् ।। 39 ।।
मणिमुक्ताप्रवालादिरत्नान्यात्मप्रियञ्च यत् ।
यो दद्याद्देवमुद्दिश्य श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
स तल्लोकं समासाद्य तत्तत्कोटिगुणं लभेत् ।। 40 ।।
कामिनां फलमित्युक्तं क्षयिष्णुः स्वप्नराज्यवत् ।
निष्कामानान्तु निर्वाणं पुनरावृत्तिवर्जितम् ।। 41 ।।

वस्त्र, अलंकार, पर्यंक, यान, सिंहासन, पानपात्र, भोजनपात्र, ताम्बूलपात्र, मणि-मुक्ता-मूँगा आदि रत्न और अन्य दूसरी प्रिय वस्तुएँ देवता को जो श्रद्धा-भक्ति से दान करता है, वह उस देवता के लोक में जाकर उन्हीं वस्तुओं का करोड़गुना अधिक फल पाता है । सकाम उपासकों का फल स्वप्न में प्राप्त राज्य के समान नाशवान होता है एवं निष्काम उपासकों को पुनर्जन्मरहित निर्वाण मिलता है ।। 39-41 ।।

वास्तुदेव की पूजाविधि

जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनाम् ।
देवतानां प्रतिष्ठायां वास्तुदेवं प्रपूजयेत् ।। 42 ।।
अनर्च्चयित्वा यो वास्तुं कुर्यात्कर्माणि मानवः ।
विघ्नन्तस्याचरेद्वास्तुः परिवारगणैः सह ।। 43 ।।
कपिलास्यः पिङ्गकेशो भीषणो रक्तलोचनः ।
कोटराक्षो लम्बकर्णो दीर्घजङ्घो महोदरः ।। 44 ।।
अश्वतुण्डः काककण्ठो वज्रबाहुर्व्रतान्तकः ।
एते परिकरा वास्तोः पूजनीयाः प्रयत्नतः ।। 45 ।।
मण्डलं शृणु वक्ष्यामि यत्र वास्तुं प्रपूजयेत् ।। 46 ।।
वेद्यां वा समदेशे वा शस्ताद्भिरुपलेपिते ।
वाय्वीशकोणयोर्मध्ये हस्तमात्रप्रमाणतः ।
सूत्रपातक्रमेणैव रेखामेकां प्रकल्पयेत् ।। 47 ।।
ईशानादग्निपर्यन्तमपरां रचयेत्तथा ।

आग्नेयान्नैर्ऋतं यावन्नैर्ऋताद्वायवावधि ।। 48 ।।
दत्त्वा रेखे चतुष्कोणमेकं मण्डलमालिखेत् ।। 49 ।।
कोणसूत्रे पातयित्वा चतुर्द्धा विभजेत्तु तत् ।
यथा तत्र भवेद्देवि मत्स्यपुच्छचतुष्टयम् ।। 50 ।।
ततो भित्त्वा पुच्छमूलं वारुणाद्वासवावधि ।
कौबेराद्याम्यपर्यन्तं दद्याद्रेखाद्वयं सुधीः ।। 51 ।।
ततश्चतुर्षु कोणेषु कोणरेखान्वितेष्वपि ।
कर्णाकर्णिप्रयोगेण न्यसेद्रेखाचतुष्टयम् ।। 52 ।।
एवं सङ्केतविधिना कोष्ठानां षोडशं लिखन् ।
पञ्चवर्णेन चूर्णेन रचयेद्यन्त्रमुत्तमम् ।। 53 ।।
चतुर्षु मध्यकोष्ठेषु पद्मं कुर्यान्मनोहरम् ।
चतुर्द्दलं पीतरक्तकर्णिकं रक्तकेशरम् ।। 54 ।।
दलानि शुक्लवर्णानि यद्वा पीतानि कल्पयेत् ।
यथेष्टं पूरयेत्पद्मसन्धिस्थानानि वर्णकैः ।। 55 ।।
शाम्भवं कोष्ठमारभ्य कोष्ठानां द्वादशं क्रमात् ।
श्वेतकृष्णापीतरक्तैश्चतुर्वर्णैः प्रपूरयेत् ।। 56 ।।
दक्षिणावर्त्तयोगेन कोष्ठानां पूरणं प्रिये ।
वामावर्त्तेन देवानां पूजनं तेषु साधयेत् ।। 57 ।।
पद्मे समर्चयेद्वास्तुदैत्यं विघ्नोपशान्तये ।
ईशादिद्वादशे कोष्ठे कपिलास्यादिदानवान् ।। 58 ।।
कुशण्डिकोक्तविधिना कुर्वन्ननलसंस्कृतिम् ।
यथाशक्त्याहुतिं दत्त्वा वास्तुयज्ञं समापयेत् ।। 59 ।।
इति ते कथिता देवि! वास्तुपूजा शुभप्रदा ।
यां साधयन्नरः कापि वास्तुविघ्नैर्न बाध्यते ।। 60 ।।

जलाशय, गृह, धर्मशाला, सेतु, संक्रम, वृक्ष और देवप्रतिष्ठा के समय वास्तु- राक्षस की पूजा अवश्य करे । जो वास्तुपूजा न करके देवप्रतिष्ठा आदि कर्म करता है । उसके उस कर्म में वास्तुदेव अपने गणों के साथ विघ्न करते हैं । वास्तुदेवता के बारह गण हैं । उनके नाम हैं—1. कपिलास्य । 2. पिंगकेश । 3. भीषण । 4. रक्तलोचन । 5. कोटराक्ष । 6. लम्बकर्ण । 7. दीर्घजंघ । 8. महोदर । 9. अश्वतुण्ड । 10. काककण्ठ । 11. बज्रबाहु । 12. व्रतान्तक । इन सभी गणों की पूजा सयत्न करनी चाहिये । जिस प्रकार के मण्डल में वास्तुदेव की पूजा करनी चाहिये, उसे बताता हूँ, सुनो ।

वेदी या चौकी या पानी से लिपी हुई किसी समतल भूमि पर वायुकोण से ईशान कोण तक एक हाथ लम्बी रेखा सूत्रपात करके बनाए । ईशान कोण से अग्निकोण तक ऐसी ही एक रेखा बनाए । अग्निकोण से नैर्ऋत्य कोण तक ऐसी ही एक रेखा खींचे । नैर्ऋत्य कोण से वायु कोण तक रेखा खींच कर चतुष्कोण मण्डल बनाए । हे देवि! इस मण्डल के एक कोने से दूसरे कोने तक एक-एक रेखा बनाकर मण्डल को चार भागों में बाँटे । इससे उस चतुष्कोण में मछली की पूँछ के समान चार आकृतियाँ बन जायेंगी । उन पुच्छमूलों को भेदकर पश्चिम से पूर्व और उत्तर से दक्षिण दिशा तक रेखाएँ खींचे । तब कोण रेखायुक्त चतुष्कोणों में कर्णा-कर्णी चार रेखाएँ और मध्य स्थल में पश्चिम से पूर्व तक और उत्तर-दक्षिण तक दो रेखाएँ खींचे । इससे उक्त मण्डल में सोलह कोष्ठ बनते हैं । उसकी आकृति निम्न प्रकार की होगी ।

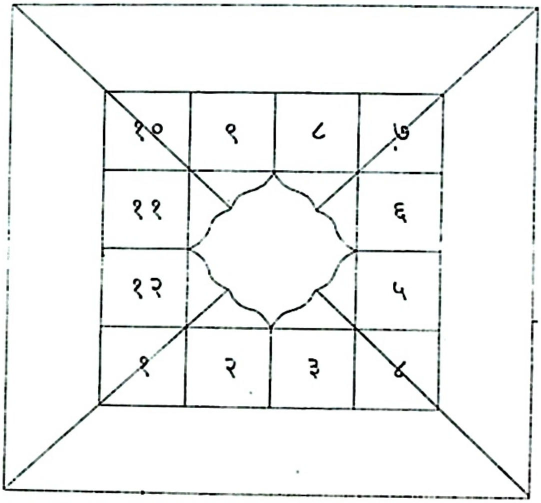

इन सोलह कोष्ठों को पाँच रंग के चावलचूर्णों से भरे । मध्य के चार चतुष्कोणों में एक चतुर्दल कमल अङ्कित करे । इस कमल की कर्णिका पीले रंग की और केशर लाल रंग का हो । तब सभी दलों में पीला चूर्ण भरे । पद्म की सन्धि को इच्छानुसार रङ्गों से रंगे । तब ईशान कोण के कोष्ठ से प्रारम्भ करके क्रमशः श्वेत-कृष्ण-पीत रक्त के चूर्णों से भरे । हे प्रिये! दक्षिणावर्त्त क्रम से इन कोष्ठों को करे । तब वामावर्त्त क्रम से उसमें देवों की पूजा करे । वामावर्त्त क्रम को कोष्ठों में क्रमांकों से अंकित किया गया है । विघ्न की शान्ति के लिये पद्म में वास्तु दैत्य की पूजा करे । ईशान कोण से प्रारम्भ करके

वामावर्त्त रूप में अङ्कित क्रमांकों में कपिलास्य आदि बारह गणों की पूजा करे। पूजन मन्त्र इस प्रकार के होंगे—

1. ह्रीं वास्तुदेवाय नमः। 2. ह्रीं कपिलास्याय नमः। 3. ह्रीं पिंगकेशाय नमः 4. ह्रीं भीषणाय नमः 5. ह्रीं रक्तलोचनाय नमः। 6. ह्रीं कोटराक्षाय नमः। 7. ह्रीं लम्बकर्णाय नम। 8. ह्रीं दीर्घजंघाय नमः। 9. ह्रीं महोदराय नमः। 10. ह्रीं अश्वतुण्डाय नमः। 11. ह्रीं काककण्ठाय नमः। 12. ह्रीं वज्रबाहवे नमः। 13. ह्रीं व्रतान्तकाय नमः।

इसके बाद कुशण्डिकोक्त विधि से अग्निसंस्कार करके यथाशक्ति आहुतियाँ देकर वास्तुयज्ञ को समाप्त करे। हे देवि! तुमसे यह मङ्गलदायिनी वास्तुपूजन का विधान कहा गया। इसके करने से मनुष्य को वास्तुविघ्नों से पीड़ित नहीं होना पडता ।। 42-60 ।।

वास्तु देवता का ध्यान

मण्डलं कथितं वास्तोर्विधानमपि पूजने।
ध्यानं न गदितं नाथ! तदिदानीं प्रकाशय ।। 61 ।।
ध्यानं वच्मि महेशानि! श्रूयतां वास्तुरक्षसः।
यस्यानुशीलनात्सद्यो नश्यन्ति सकलापदः ।। 62 ।।
चतुर्भुजं महाकायं जटामण्डितमस्तकम्।
त्रिलोचनं करालास्यं हारकुण्डलशोभितम् ।। 63 ।।
लम्बोदरं दीर्घकर्णं लोमशं पीतवाससम्।
गदात्रिशूलपरशुखट्वाङ्गं दधतं करैः ।। 64 ।।
असिचर्मधरैर्वीरैः कपिलास्यादिभिर्वृतम्।
शत्रूणामन्तकं साक्षादुद्यदादित्यसन्निभम् ।। 65 ।।
ध्यायेद्देवं वास्तुपतिं कूर्मपद्मासनस्थितम् ।। 66 ।।
मारीभये रोगभये डाकिन्यादिभये तथा।
औत्पातिकापत्यदोषे व्यालरक्षोभयेऽपि च।
ध्यात्वैवं पूजयेद्वास्तुं परिवारसमन्वितम् ।। 67 ।।

श्रीदेवी ने कहा कि हे नाथ! वास्तुदेव का मण्डल और वास्तु-पूजा की विधि का वर्णन आपने किया; परन्तु वास्तु देवता के ध्यान का वर्णन आपने नहीं किया। अब इसे प्रकट करें। श्रीसदाशिव ने कहा कि हे महेश्वरि! वास्तुराक्षस का ध्यान बतलाता हूँ, सुनो। इस ध्यान का स्मरण करने से सारी

विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं । श्लोक 63-66 ध्यानमन्त्र है । वास्तु राक्षस की चार भुजायें हैं, शरीर विशाल है । मस्तक पर जटाजूट हैं, तीन नेत्र हैं । मुख भयानक है । हार और कुण्डल धारण किए हुए हैं । तुन्दिल उदर हैं । कान लम्बे हैं । शरीर पर रोएँ बहुत हैं । वस्त्र पीला है । चारो हाथों में गदा, त्रिशूल, फरसा और खटपावा है । ढाल, तलवार से युक्त कपिलास्यादि वीरगणों से घिरे हुए हैं । शत्रुसंहारक, उदीयमान सूर्य से तेजस्वी, कूर्म पर पद्मासन में बैठे वास्तुपतिदेव का ध्यान करना चाहिये । महामारी, रोग, डाकिनी-भय, उपद्रव, सन्तान के दोष, सर्प या राक्षसभय होने पर इस प्रकार का ध्यान करके सपरिवार वास्तुदेव की पूजा करनी चाहिये । तब तिल, घी, पायस से हवन करे तो सभी बातों की शान्ति मिलती है ।। 61-67 ।।

नवग्रह-पूजन और मन्त्र

तिलाज्यपायसैर्हुत्वा सर्वशान्तिमवाप्नुयात् ।
यथा वास्तुः पूजनीयः प्रोक्तकर्मसु सुव्रते! ।। 68 ।।
ग्रहाश्चापि तथा पूज्या दशदिक्पतिभिर्युताः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वाणी लक्ष्मीश्च शङ्करी ।। 69 ।।
मातरः सगणेशाश्च सम्पूज्या वसवस्तथा ।
पितरो यद्यतृप्ताः स्युः कर्मस्वेतेषु कालिके ।। 70 ।।
सर्वं तस्य भवेद्व्यर्थं विघ्नश्चापि पदे पदे ।
अतो महेशि! यत्नेन प्रोक्तसंस्कारकर्मसु ।। 71 ।।
पितॄणां तृप्तयेऽत्राभ्युदयिकं श्राद्धमाचरेत् ।
ग्रहयन्त्रं प्रवक्ष्यामि सर्वशान्तिविधायकम् ।। 72 ।।
यत्र सम्पूजिताः सेन्द्रा ग्रहा यच्छन्ति वाञ्छितम् ।
त्रित्रिकोणैर्लिखेद्यन्त्रं तद्बहिर्वृत्तमालिखेत् ।। 73 ।।
विदध्याद्वृत्तलग्नानि दलान्यष्टौ च तद्बहिः ।
चतुर्द्वारान्वितं कुर्याद्भूपुरं सुमनोहरम् ।। 74 ।।
वासवेशानयोर्मध्ये भूपुरस्य बहिःस्थले ।
वृत्तं विरचयेदेकं प्रादेशपरिमाणकम् ।। 75 ।।
रक्षोवारुणयोर्मध्ये चापरं कल्पयेत्तथा ।। 76 ।।
नवग्रहाणां वर्णेन नवकोणानि पूरयेत् ।
मध्यत्रिकोणपार्श्वौ द्वौ सव्यदक्षिणभेदतः ।। 77 ।।

श्वेतपीतौ विधातव्यौ पृष्ठभागः सितेतरः ।
अष्टदिक्पतिवर्णेन पर्णान्यष्टौ प्रपूरयेत् ।। 78 ।।
सितरक्तासितैश्चूर्णैः पुरः प्राकारमाचरेत् ।
पुरोबहिस्थे द्वे वृत्ते देवि! प्रादेशसम्मिते ।। 79 ।।
उपर्य्यधः क्रमेणैव रक्तश्वेते विधाय च ।
सन्धिस्थानानि यन्त्रस्य स्वेच्छया रचयेत्सुधीः ।। 80 ।।

शिव जी ने कहा कि हे सुव्रते! पूर्ववर्णित कर्मों में जैसे वास्तु-राक्षस पूज्य हैं, वैसे ही नवग्रह, दश दिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, मातृगण, गणेश और वसुगण भी पूजनीय हैं । हे कालिके! उक्त सभी कर्मों में यदि पितर लोग तृप्त नहीं होते तो कर्त्ता का सभी कर्म व्यर्थ होता है । उसके पग-पग पर विघ्न आते हैं । अतः हे महेश्वरि! यत्नपूर्वक उक्त संस्कार कर्मों में और इसमें पितरों की तृप्ति के लिये आभ्युदायिक श्राद्ध करना चाहिये । अब सर्व-शान्तिदायक ग्रहयन्त्र बतलाता हूँ, जिसमें ग्रहगण और इन्द्रादि दिक्पाल पूजित होकर वाञ्छित फल देते हैं । तीन त्रिकोण बनाकर

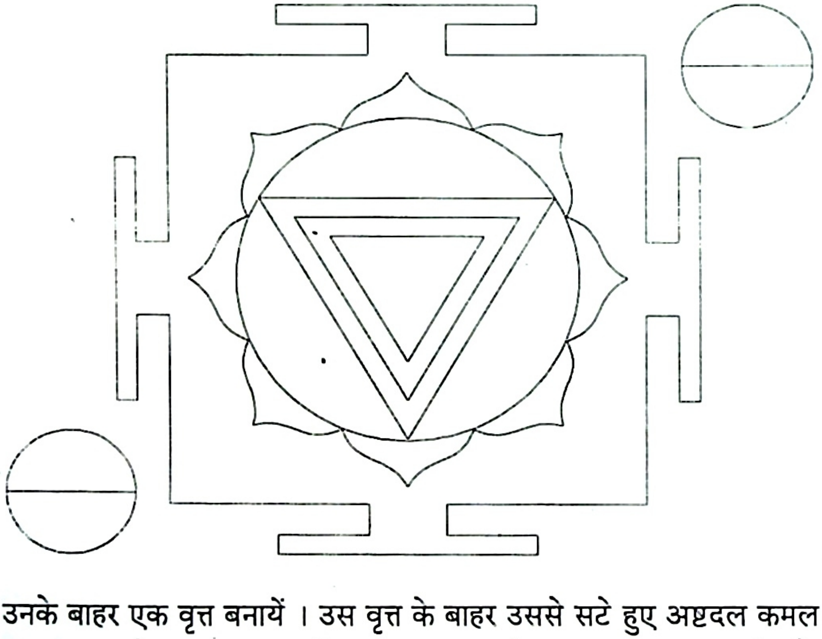

उनके बाहर एक वृत्त बनायें । उस वृत्त के बाहर उससे सटे हुए अष्टदल कमल बनाए । उनके बाहर चार द्वारों वाले भूपुर बनावे । भूपुर के बाहर पूर्व और ईशान कोण के मध्य में एक वृत्त बनाए । तब पश्चिम और नैर्ऋत्य कोण के

मध्य में भी एक ऐसा ही वृत बनाए । तब नवग्रह रङ्गों द्वारा इस यन्त्र के नौं कोणों को भरे । मध्य त्रिकोण की दाँईं और बाँईं ओर क्रमशः उजला और पीला रङ्ग भरे । उसके पिछले भाग को काला रङ्ग से रङ्गे । अष्टदलों को अष्ट दिक्पालों के रङ्गों से भरे । उजले, लाल और काले रङ्ग के चूर्ण से भूपुर को रङ्गे । हे देवि! भूपुर के बाहर स्थित दोनों वृत्तों के ऊपर और बीच के भागों को क्रमशः लाल और उजले रङ्ग का बनाए । सारे सन्धिस्थानों को इच्छानुसार रङ्गों से भरे । पूजन यन्त्र की आकृति इस प्रकार की होगी ।। 68-80 ।।

यत्कोष्ठे यो ग्रहः पूज्यो यत्पत्रे यश्च दिक्पतिः ।
यद्द्वारेऽवस्थिता ये च तत्क्रमं शृणु साम्प्रतम् ।। 81 ।।
मध्यकोणे यजेत्सूर्यं पार्श्वयोररुणं शिखाम् ।
पश्चात्प्रचण्डयोर्दण्डौ पूजयेदंशुमालिनः ।। 82 ।।
भानूर्ध्वकोणे पूर्वस्यामर्च्चयेद्रजनीकरम् ।
आग्नेये मङ्गलं याम्ये बुधं नैर्ऋतकोणके ।। 83 ।।
बृहस्पतिं वारुणे च दैत्याचार्यं प्रपूजयेत् ।
शनैश्चरन्तु वायव्ये कौबेरैशानयोः क्रमात् ।
राहुं केतुं यजेच्चन्द्रं परितस्तारकागणान् ।। 84 ।।

किस प्रकोष्ठ में किस ग्रह की, किस दल के किस दिक्पाल की पूजा करनी है तथा किस द्वार में किस देवता की स्थिति है, उनका क्रम बताता हूँ, सुनो! मध्य त्रिकोण में सूर्य की पूजा करे और उनके दोनों तरफ अरुण और शिखा की पूजा करे । सूर्य के पीछे भाग में प्रचण्ड और उदण्ड की पूजा करे । सूर्य के ऊर्ध्व कोण में पूर्व दिशा में चन्द्र की, अग्निकोण में मङ्गल की, दक्षिण दिशा में बुध की, नैर्ऋत्य कोण में वृहस्पति की, पश्चिम दिशा में शुक्र की, वायु कोण में शनि की, उत्तर दिशा में राहु की, ईशान कोण में केतु की और चन्द्र के चारो ओर नक्षत्रमण्डल की पूजा करे ।। 81-84 ।।

ग्रहों का ध्यान

सूरो रक्तः शशी शुक्लो मङ्गलोऽरुणविग्रहः ।
बुधजीवौ पाण्डुपीतौ श्वेतः शुक्रोऽसितः शनिः ।। 85 ।।
राहुकेतू विचित्राभौ ग्रहवर्णाः प्रकीर्तिताः ।
चतुर्भुजं रविं ध्यायेत्पद्मद्वयवराभयैः ।। 86 ।।
चिन्तयेच्छशिनं दानमुद्रामृतकराम्बुजम् ।

कुजमीषत्कुब्जतनुं हस्ताभ्यां दण्डधारिणम् ।
ध्यायेत्सोमात्मजं बालं भाललोलितकुन्तलम् ।। 87 ।।
यज्ञसूत्रान्वितं ध्यायेत्पुस्तकाक्षकरं गुरुम् ।
एवं दैत्यगुरूञ्चापि काणं खञ्जं शनैश्चरम् ।। 88 ।।
राहुकेतू शिरःकायौ विकृतौ क्रूरचेष्टितौ ।

1. सूर्य रक्त-वर्ण है । 2. चन्द्र का वर्ण श्वेत है । 3. मङ्गल का वर्ण लाल है । 4. बुध पाण्डु वर्ण के हैं । 5. वृहस्पति का वर्ण पीला है । 6. शुक्र श्वेत वर्ण के हैं । 7. शनि का वर्ण काला है । 8-9. राहु, केतु अनेक वर्ण के हैं । सूर्य के दो हाथों में लाल कमल और दो हाथों में वर और अभय है । उनका चतुर्भुज रूप ध्यातव्य है । चन्द्र के एक हाथ में वरमुद्रा और दूसरे में अमृतपात्र है । मङ्गल का कुछ कुबड़ा शरीर और दोनो हाथों में दण्डधारी के रूप में ध्यान करें । बुध के बालरूप ललाट पर घुंघराले लट का ध्यान करें । बृहस्पति यज्ञोपवीतयुक्त हैं । उनके हाथों में पुस्तक और अक्षमाला है । शुक्र का ध्यान भी ऐसा ही करे । शनि काने और लंगडे हैं। उनका रङ्ग काला है । राहु का विकृत क्रूरकर्मा मस्तक के रूप ध्यान करे एवं केतु का ध्यान विकृत क्रूरकर्मा धड़ के रूप में करे ।। 85-88 ।।

दिक्पालों का ध्यान

स्वैः स्वैर्ध्यानैर्ग्रहानिष्ट्वा यजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् ।। 89 ।।
दलेष्वष्टसु पूर्वादिक्रमतः साधकोत्तमः ।
सहस्राक्षं यजेदादौ पीतकौशेयवाससम् ।। 90 ।।
वज्रपाणिं पीतरुचिं स्थितमैरावतोपरि ।
रक्ताभं छागवाहस्थं शक्तिहस्तं हुताशनम् ।। 91 ।।
ध्यायेत्कालं लुलायस्थं दण्डिनं कृष्णविग्रहम् ।
निर्ऋतिं खड्गहस्तञ्च श्यामलं वाजिवाहनम् ।। 92 ।।
वरुणं मकरारूढं पाशहस्तं सितप्रभम् ।
ध्यायेत्कृष्णत्विषं वायुं मृगस्थञ्चाङ्कुशायुधम् ।। 93 ।।
कुबेरं कनकाकारं रत्नसिंहासनस्थितम् ।
स्तुतं यक्षगणैः सर्वैः पाशाङ्कुशकराम्बुजम् ।। 94 ।।
ईशानं वृषभारूढं त्रिशूलवरधारिणम् ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम् ।। 95 ।।

ध्यात्वा चैतान्क्रमादिष्ट्वा ब्रह्मानन्तौ पुराद्बहिः ।
ऊर्ध्वाधोवृत्तयोरर्च्यौ ततोऽर्च्या द्वारदेवताः ॥ 96 ॥
उग्रभीमौ प्रचण्डेशौ पूर्वद्वास्थाः प्रकीर्तिताः ।
जयन्तः क्षेत्रपालश्च नकुलेशो बृहच्छिराः ।
याम्यद्वारे पश्चिमे च वृकाश्वानन्ददुर्ज्जयाः ॥ 97 ॥
त्रिशिराः पुरजिच्चैव भीमनादो महोदरः ।
उत्तरद्वारपार्श्वेते सर्वे शस्त्रास्त्रपाणयः ॥ 98 ॥

उत्तम साधक इस प्रकार नौ ग्रहों का ध्यानपूर्वक पूजन करके अष्टदलों में इन्द्रादि दिक्पालों की पूर्वादि क्रम से पूजा करे । 1. इन्द्र का वर्ण पीला, हजार नेत्र, ऐरावत पर सवार, पीले रेशमी वस्त्रधारी, हाथ में व्रज लिये हुए रूप का ध्यान करके पूजा करे । 2. अग्नि का वर्ण लाल, छाग की सवारी और हाथों में शक्ति है । 3. यम का वर्ण काला, महिष वाहन और हाथ में दण्ड है । 4. निर्ऋति का वर्ण साँवला, अश्व वाहन और हाथ में खड्ग है । 5. वरुण का वर्ण शुक्ल, मकर वाहन और हाथ में पाश है । 6. वायु का वर्ण काला, मृग सवारी और हाथ में अंकुश है । 7. कुवेर का वर्ण स्वर्णिम, रत्न सिंहासन पर विराजमान, यक्षों से वन्दित, हाथों में पाश और अंकुश है । 8. वृषारूढ़ ईशान का वर्ण शुक्ल, व्याघ्रचर्म का वस्त्र, एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे हाथ में वरमुद्रा है । इन सबका ध्यान-पूर्वक यथाक्रम पूजन करके बाहर ऊर्ध्व और अधो वृत्त में क्रमश ब्रह्मा और अनन्त की पूजा करे । तब द्वारदेवताओं की पूजा करे । पूर्व द्वार पर उग्र, भीम, प्रचण्ड और ईश—इन चार की पूजा करें । दक्षिण द्वार पर जयन्त, क्षेत्रपाल, नकुलेश और बृहत् शिरा—इन चार की पूजा करे । पश्चिम द्वार पर वृक, अश्व, आनन्द एवं दुर्जय—इन चार की पूजा करे उत्तर द्वार पर त्रिशिरा, पुरुजित्, भीमनाद, महादेव—इन चार का पूजन करे । ये सभी द्वार-देवता शस्त्रधारी हैं ।। 89-98 ।।

ब्रह्मा और अनन्त का ध्यान

श्रूयतां ब्रह्मणो ध्यानमनन्तस्यापि सुव्रते! ।
रक्तोत्पलनिभो ब्रह्मा चतुरास्यश्चतुर्भुजः ॥ 99 ॥
हंसारूढो वराभीति-मालापुस्तकपाणिकः ॥ 100 ॥
हिमकुन्देन्दुधवलः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रपाणिवदनो ध्येयोऽनन्तः सुरासुरैः ॥ 101 ॥

हे सुव्रते! अब ब्रह्मा और अनन्त का ध्यान सुनो ।

ब्रह्मा—

रक्तोत्पलनिभो ब्रह्मा चतुरास्यः चतुर्भुजः ।
हंसारूढो वराभीतिमालापुस्तकपाणिकः ।।

ब्रह्मा लाल कमल के समान आभा वाले, चतुर्मुख, चतुर्भुज, हंस पर आसीन हैं । हाथों में वर, अभय, अक्षमाला और पुस्तक धारण किये हुए हैं ।

अनन्त—

हिमकुन्देन्दुधवलः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रपाणिवदनो ध्येयोऽनन्तः सुरासुरैः ।।

अनन्त का वर्ण वर्फ, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है । उनके हजार नयन, हजार चरण और हजार मुख हैं । सुर और असुर दोनों ही इनका ध्यान करते हैं ।। 99-101 ।।

वास्तु देवता और ग्रहों, दिक्पालों के मन्त्र

ध्यानपूजाक्रमश्चापि यन्त्रञ्च कथित प्रिये! ।
वास्त्वादिक्रमतो ह्येषां मन्त्रानपि शृणु प्रिये ।। 102 ।।
क्षकारो हव्यवाहस्थः षड्दीर्घस्वरसंयुतः ।
भूषितो नादबिन्दुभ्यां वास्तुमन्त्रः षडक्षरः ।। 103 ।।
तारं मायां तिग्मरश्मयेऽन्तमारोग्यदं वदेत् ।
वह्निजायां ततो दत्त्वा सूर्यमन्त्रं समुद्धरेत् ।। 104 ।।
कामो माया च वाणी च ततोऽमृतकरेति च ।
अमृतं प्लावयद्वन्द्वं स्वाहा सोममनुर्मतः ।। 105 ।।
ऐं ह्रां ह्रीं सर्वपदाद्दुष्टान्नाशय नाशय ।
स्वाहावसानो मन्त्रोऽयं मङ्गलस्य प्रकीर्त्तितः ।। 106 ।।
ह्रीं श्रीं सौम्यपदश्चोक्त्वा सर्वान्कामांस्ततो वदेत् ।
पूरयान्ते वह्निकान्तामेष सोमात्मजे मनुः ।। 107 ।।
तारेण पुटिता वाणी ततः सुरगुरो पदम् ।
अभीष्टं यच्छ यच्छेति स्वाहा मन्त्रो बृहस्पतेः ।। 108 ।।
शां शीं शूं शैं ततः शौं शः शुक्रमन्त्रः समीरितः।। 109 ।।
ह्रां ह्रां ह्रीं सर्वशत्रून्विद्रावय पदद्वयम् ।
मार्त्तण्डसूनवे पश्चान्नमो मन्त्रः शनैश्चरे ।। 110 ।।

रां ह्रौं भ्रैं ह्रीं सोमशत्रो शत्रून्विध्वंसयद्वयम् ।
राहवे नम इत्येष राहोर्मनुरुदाहृतः ॥ 111 ॥
क्रूं ह्रूं क्रैं क्रैं केतवे स्वाहा केतोर्मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ॥ 112 ॥
लं रं मृं स्त्रूं वं यमिति क्षं हौं ब्रींममिति क्रमात् ।
इन्द्राद्यनन्तदिक्पानां दशमन्त्राः समीरिताः ॥ 113 ॥

हे प्रिये! ध्यान, पूजा-विधि और यन्त्र का वर्णन हो चुका । अब वास्तु देवता से अनन्त तक के सब देवताओं के मन्त्रों को बतलाता हूँ ।

1. वास्तु देवता का मन्त्र—क्ष्रां, क्ष्रीं, क्ष्रूं, क्ष्रैं, क्ष्रौं, क्ष्रः ।

2. सूर्यमन्त्र—ॐ ह्रीं तिग्मरश्मे आरोग्यदाय स्वाहा ।

3. सोममन्त्र—क्लीं ह्रीं ऐं अमृतकरा अमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा ।

4. मङ्गलमन्त्र—ऐं ह्रां ह्रीं सर्वदुष्टान् नाशय नाशय स्वाहा ।

5. बुध का मन्त्र—ह्रीं श्रीं सौम्यसर्वान् कामान् पूरय स्वाहा ।

6. वृहस्पतिमन्त्र—ॐ ऐं ॐ सुरगुरो अभीष्टं यच्छ यच्छ स्वाहा ।

7. शुक्रमन्त्र—शां शीं शूं शैं शौं शः

8. शनिमन्त्र—ह्रां ह्रां ह्रीं ह्रीं सर्वशत्रून् विद्रावय विद्रावय मार्तण्डसूनवे नमः ।

9. राहुमन्त्र—रां ह्रीं भ्रौं ह्रीं सोमशत्रो शत्रून् विध्वंसय विध्वंसय राहवे नमः ।

10. केतुमन्त्र—क्रूं ह्रूं क्रैं केतवे स्वाहा ।

दश दिक्पाल-मन्त्र—1. लं इन्द्राय नमः । 2. रं अग्नये नमः । 3. मृं यमाय नमः । 4. स्त्रूं निर्ऋतये नमः । 5. वं वरुणाय नमः । 6. यं वायवे नमः । 7. क्षं कुवेराय नमः । 8. हौं ईशानाय नमः । 9. व्रीं ब्रह्मणे नमः । 10. अं अनन्ताय नमः ॥ 102-113 ॥

अन्य देवताओं के मन्त्र आदि अन्य विषय

अन्येषां परिवाराणां नाममन्त्राः प्रकीर्त्तिताः ।
अनुक्तमन्त्रे सर्वत्र विधिरेष शिवोदितः ॥ 114 ॥
नमोऽन्तमन्त्रे देवेशि! न नमो योजयेद्बुधः ।
स्वाहान्तेऽपि तथा मन्त्रे न दद्याद्वह्निवल्लभाम् ॥ 115 ॥
ग्रहादिभ्यः प्रदातव्यं पुष्पं वासश्च भूषणम् ।

तेषां वर्णानुरूपेण नान्यथा प्रीतये भवेत् ।। 116 ।।
कुशण्डिकोक्तविधिना वह्निं संस्थापयन्सुधीः ।
पुष्पैरुच्चावचैर्यद्वा समिद्भिर्होममाचरेत् ।। 117 ।।
शान्तिकर्मणि पुष्टौ च वरदो हव्यवाहनः ।
प्रतिष्ठायां लोहिताक्षः शत्रुहा क्रूरकर्मणि ।। 118 ।।
शान्तौ पुष्टौ महेशानि! तथा क्रूरेऽपि कर्मणि ।
ग्रहयागं प्रकुर्वाणो वाञ्छितार्थमवाप्नुयात् ।। 119 ।।
यथा प्रतिष्ठाकार्येषु देवार्च्चा पितृतर्पणम् ।
वास्तोर्यागे ग्रहाणाञ्च तद्वदेव विधीयते ।। 120 ।।
यद्येकस्मिन्दिने द्वित्रिः प्रतिष्ठायागकर्म च ।
मन्त्रेण तत्र देवार्चा पितृश्राद्धाग्निसंस्क्रियाः ।। 121 ।।

अन्य परिवार देवताओं के नाम ही उनके मन्त्र हैं । जहाँ मन्त्र का उल्लेख नहीं है, वहाँ नाम ही मन्त्र है । जिस मन्त्र के अन्त में 'नमः' लगा हो, उसमें 'नमः' न जोड़े । इसी प्रकार स्वाहान्त मन्त्र में 'स्वाहा' न जोड़े । नौ ग्रहों और दश दिक्पालों को उनके वर्ण के अनुरूप रङ्ग के पुष्प, वस्त्र और आभूषण दे; अन्यथा वे प्रसन्न नहीं होते । ज्ञानी साधक कुशण्डिकोक्त विधि से अग्निस्थापन करके विविध फूलों और समिधाओं से हवन करे । शान्ति और पुष्टि में वरद नामक अग्नि, प्रतिष्ठा कर्म में लोहिताक्ष नामक और क्रूर अभिचारादि कर्मों में शत्रुहा नामक अग्नि में हवन करे । हे महेशानि! पुष्टि, शान्ति और क्रूर कर्मों में ग्रहयाग करने से अभीष्ट फल प्राप्त होता है । प्रतिष्ठाकार्यों में, देवपूजा में, पितृतर्पण आभ्युदयिक श्राद्ध में जैसे कर्तव्य हैं, वैसे ही वास्तु यागादि करना हो तो उन सभी कार्यों के लिये एक ही बार देवपूजन, पितृश्राद्ध और अग्निसंस्कार करे ।। 114-121 ।।

जलाशय आदि के प्रोक्षणमन्त्र

जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनः ।
वाहनासनयानानि वासोऽलङ्करणानि च ।। 122 ।।
पानाशनीयपात्राणि देववस्तूनि यान्यपि ।
असंस्कृतानि देवाय न प्रदद्युः फलेप्सवः ।। 123 ।।
काम्ये कर्मणि सर्वत्र बुधः सङ्कल्पमाचरेत् ।
विधिवाक्यानुसारेण सम्पूर्णसुकृताप्तये ।। 124 ।।

संस्कृताभ्यर्चितं द्रव्यं नामोच्चारणपूर्वकम् ।
सम्प्रदानाभिधाञ्चोक्त्वा दत्त्वा सम्यक्फलं लभेत् ॥ 125 ॥
जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनाम् ।
कथ्यन्ते प्रोक्षणे मन्त्राः प्रयोज्या ब्रह्मविद्यया ॥ 126 ॥
जीवनाधार! जीवानां जीवनप्रद! वारुण ।
प्रोक्षणे तव तृप्यन्तु जलभूचरखेचराः ॥ 127 ॥
तृणकाष्ठादिसम्भूतं वासेयं ब्रह्मणः प्रिये ।
त्वां प्रोक्षयामि तोयेन प्रीतये भव सर्वदा ॥ 128 ॥
इष्टकादिसमुद्भूत! वक्तव्यन्त्विष्टकामये ॥ 129 ॥
फलैः पत्रैश्च शाखाद्यैश्छायाभिश्च प्रियङ्कराः ।
यच्छन्तु मेऽखिलान्कामान्प्रोक्षितास्तीर्थवारिभिः ॥ 130 ॥
सेतुस्त्वं भव सिन्धूनां पारदः पथिकप्रियः ।
मया सम्प्रोक्षितः सेतो! यथोक्तफलदो भव ॥ 131 ॥
संक्रम! त्वां प्रोक्षयामि लोकानां संक्रमं यथा ।
ददासीह तथा स्वर्गे संक्रमो मे प्रदीयताम् ॥ 132 ॥
आरामप्रोक्षणे मन्त्रो य एष कथितः प्रिये! ।
स एव शाखिसंस्कारे प्रयोक्तव्यो मनीषिभिः ॥ 133 ॥
प्रणवं वारुणञ्चास्त्रं बीजत्रितयमम्बिके ! ।
सर्वसाधारणद्रव्यप्रोक्षणे विनियोजयेत् ॥ 134 ॥
स्नापनार्हं वाहनं च स्नापयेद्ब्रह्मविद्यया ।
अन्यत्रैवार्घतोयेन कुशाग्रेण विशोधयेत् ॥ 135 ॥
प्राणप्रतिष्ठामारच्य तत्तद्वाहनसंज्ञया ।
पूजितोऽलङ्कृतो वाहो देयो भवति दैवते ॥ 136 ॥
जलाशये पूजनीयो वरुणो यादसाम्पतिः ।
गृहे प्रजापतिर्ब्रह्मारामे सेतौ च संक्रमे ।
पूज्यो विष्णुर्जगत्पाता सर्वात्मा सर्वदृग्विभुः ॥ 137 ॥

फल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को जलाशय, गृह, उपवन, सेतु सक्रम, वृक्ष, वाहन और अन्य दूसरी देय वस्तु को विना प्रोक्षण के देवता को समर्पित नहीं करना चाहिये । सभी काम्य कर्मों में पूरा फल पाने के लिये विधिवाक्य के अनुसार संकल्प करे । शोधित और अर्चित द्रव्य का नामोल्लेख कर जिसे दान देना है, उसके नाम का उच्चारण करके दान करने से यथेच्छ

फल मिलता है । जलाशय, गृह, उपवन, सेतु, संक्रम और वृक्ष के प्रोक्षण मन्त्र को बतलाता हूँ । इन सभी मन्त्रों का प्रयोग ब्रह्मविद्या गायत्री के साथ करना चाहिये ।

जलाशय-प्रोक्षण मन्त्र—जीवनाधारजीवानं जीवनप्रदवारुणप्रोक्षणे तव तृप्यन्तु जलचरभूचरखेचराः । हे जलाधार! हे प्राणियों के जीवनदाता! हे वारुण! तुम्हारे प्रोक्षण से जलचर, भूचर और खेचर सभी को तृप्ति प्राप्त हो ।

गृह-प्रोक्षण मन्त्र—श्लोक 128-129 गृहप्रोक्षण मन्त्र है । हे तृण-काष्ठादि से निर्मित रहने योग्य गृह! हे ब्रह्मा के प्रिय! तुम्हें मैं जल से प्रोक्षित करता हूँ । मुझे सदैव प्रसन्न रक्खो । ईंट का घर हो तो 'इष्टकादि-सम्भूतं' कहना चाहिये ।

उपवन-प्रोक्षण मन्त्र—श्लोक 130 उपवनप्रोक्षण मन्त्र है । फल, पत्तों, डालियों और छायाओं द्वारा प्रसन्न करने वाले हे उपवन ! तीर्थ जल से प्रोक्षित होकर मेरी सभी इच्छाओं को पूरा करो ।

सेतु-प्रोक्षण मन्त्र—श्लोक 131 सेतुप्रोक्षण मन्त्र है । हे सेतु! तुम संसार-सागर से पार करने वाले पथिकों के प्रिय हो । मुझसे प्रोक्षित होकर निर्दिष्ट फलों के दाता बनो ।

संक्रम-प्रोक्षण मन्त्र—श्लोक 132 संक्रम-प्रोक्षण मन्त्र है । हे संक्रम! तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ । इस संसार में जैसे लोगों को पार करते हो, वैसे ही मुझे भी स्वर्ग में गति प्रदान करो ।

हे प्रिये! उपवन-प्रोक्षण मन्त्र का ही प्रयोग वृक्षसंस्कार में करे । हे अम्बिके! सभी सामान्य द्रव्यों का प्रोक्षण मन्त्र 'ॐ वं फट्' है। स्नान कराने योग्य वाहन को गायत्री मन्त्र से स्नान कराये । स्नान कराने योग्य न हो तो अर्घ्य-जल से कुशाग्र द्वारा उसे शोधित करे । प्राणप्रतिष्ठा कर उस वाहन का नामोल्लेख करके, पूजा करके, सजाकर उसे देवता को प्रदान करे । जलाशय की प्रतिष्ठा में जल-जन्तु के अधिपति वरुणदेव, गृह की प्रतिष्ठा में ब्रह्मा-प्रजापति और उपवन-संक्रम-सेतु-प्रतिष्ठा में त्रिलोक रक्षक सर्वज्ञ प्रभु विष्णु पूजनीय हैं ।। 122-137 ।।

वास्तुयाग क्रम

विविधानि विधानानि कथितान्युक्तकर्मसु ।
क्रमो न दर्शितो येन मानवः कर्म साधयेत् ॥ 138 ॥
क्रमव्यत्ययकर्माणि बह्वायासकृतान्यपि ।
न यच्छन्ति फलं सम्यङ् नृणां कर्मानुजीविनाम् ॥ 139 ॥

श्रीसदाशिव उवाच

यदुक्तं परमेशानि! मातेव हितकारिणी! ।
निःश्रेयसं तल्लोकानां फलव्यापृतचेतसाम् ॥ 140 ॥
एतेषामुक्तकृत्यानामनुष्ठानं पृथक्पृथक् ।
वास्तुयागक्रमाद्देवि! कथयाम्यवधीयताम् ॥ 141 ॥

श्रीदेवी ने कहा—हे शिव! आपने विविध विधानों को बतलाया; परन्तु कर्मों का क्रम नहीं बतलाया । क्रमरहित कर्म बहुत प्रयत्न के साथ करने पर भी पूरा फल नहीं देते । श्रीसदाशिव ने कहा—हे परमेश्वरि! माता के समान हितैषिणी, तुमने क्रमानुसार कार्य करने के बारे में जो प्रश्न किया, वह लोगों के लिये बहुत मङ्गलकारक है । हे देवि! वास्तुयाग के सहित उन सभी कार्यों के अनुष्ठान का क्रम बतलाता हूँ ।। 138-141 ।।

गणेश-ध्यान-पूजन

पूर्वेऽह्नि नियताहारः श्वः प्रातः स्नानमाचरेत् ।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म गुरुं नारायणं यजेत् ॥ 142 ॥
ततः स्वकाममुद्दिश्य विधिदर्शितवर्त्मना ।
कृतसङ्कल्पको मन्त्री गणेशादीन्समर्च्चयेत् ॥ 143 ॥
बन्धूकाभं त्रिनेत्रं द्विरदवरमुखं नागयज्ञोपवीतं
शङ्खं चक्रं कृपाणं विमलसरसिजं हस्तपद्मैर्दधानम् ।
उद्यद्बालेन्दुमौलिं दिनकरकिरणोद्दीप्त वस्त्राङ्गशोभं
नानालङ्कारयुक्तं भजत गणपतिं रक्तपद्मोपविष्टम् ॥ 144 ॥
एवं ध्यात्वा यथाशक्ति पूजयित्वा गणेश्वरम् ।
ब्रह्माणं च ततो वाणीं विष्णुं लक्ष्मीं समर्च्चयेत् ॥ 145 ॥
शिवं दुर्गां ग्रहांश्चापि तथा षोडशमातृकाः ।
घृतधारास्वपि वसूनिष्ट्वा कुर्यात्पितृक्रियाम् ॥ 146 ॥

ततः प्रोक्तविधानेन मण्डलं वास्तुरक्षसः ।
निर्म्माय पूजयेत्तत्र वास्तुदैत्यं गणैः सह ।। 147 ।।
ततस्तु स्थण्डिलं कृत्वा वह्निं संस्कृत्य पूर्ववत् ।
धाराहोमान्तमाचर्य वास्तुहोमं समारभेत् ।। 148 ।।
यथाशक्त्याहुतीस्तस्मै परिवारगणाय च ।
तथा पूजितदेवेभ्यो दत्त्वा कर्म समापयेत् ।। 149 ।।
वास्तुयागे पृथक्कार्ये एष ते कथितः क्रमः ।
अनेनैव ग्रहाणां च यज्ञोऽपि विहितः प्रिये ।। 150 ।।
ग्रहाणामत्र मुख्यत्वान्नाङ्गत्त्वेन प्रपूजनम् ।
सङ्कल्पानन्तरं कार्यं वास्त्वर्च्चनमिति क्रमः ।। 151 ।।
गणेशाद्यर्चनं सर्वं वास्तुयागविधानवत् ।
ग्रहाणां यन्त्रमन्त्रौ च ध्यानं प्रागेव कीर्तितम् ।। 152 ।।

अनुष्ठान के एक दिन पहले आहार-संयम कर अगले दिन प्रातः स्नान करे । पूर्वाह्न कर्म करके गुरु और नारायण की पूजा करे । तब अपनी कामना का उल्लेख करते हुए विधिपूर्वक संकल्प कर गणेशादि की पूजा करे । गणेश-ध्यान श्लोक 144 में है । श्रीगणेश जी का वर्ण बन्धूक-पुष्प के जैसा लाल है । तीन नेत्र हैं । हाथी का मुखमण्डल है । साँप का जनेऊ है । चार करकंजों में शंख, चक्र, खड्ग और विकसित कमल है । मस्तक पर दूज का चाँद है, रविरश्मियों से उज्ज्वल वस्त्र हैं । शरीर पर भाँति-भाँति के आभूषण हैं । ये लाल कमल पर विराजमान हैं । ऐसे गणपति का मैं भजन करता हूँ । इस प्रकार गणेश का ध्यान करके यथाशक्ति उनकी पूजा करे । तब ब्रह्मा-सरस्वती और विष्णु-लक्ष्मी की पूजा करे । शिव, नवदुर्गा, षोडश मातृका और घृतढ़ारी से वसुगण की पूजा कर आभ्युदयिक कर्म करे । तब उक्त विधि से वास्तु राक्षस के मण्डल को बनाकर उसमें सपरिवार वास्तुदेव की पूजा करे । तब स्थण्डिल में कुशण्डिकोक्त विधि से अग्निसंस्कार और धाराहोम तक के कर्म करके वास्तुहोम आरम्भ करे । वास्तुदेव को, वास्तु के गणों को और पूजित देवताओं को यथाशक्ति आहुति देकर कर्म समाप्त करे ।

वास्तुयाग में कर्त्तव्य क्रम का वर्णन मैंने किया । हे प्रिये! ग्रहयज्ञ में भी यही क्रम रहता है । ग्रहयाग में ग्रहों की प्रधानता रहने से अंगरूप से उनकी

पूजा का निषेध हैं । अतः संकल्प के बाद अङ्गरूप में वास्तु दैत्य की पूजा होती हैं । यही विशेषता हैं । गणेश-देवपूजादि सभी कार्य वास्तुयाग के विधान के अनुसार होंगे । ग्रहों के यन्त्र. मन्त्र और ध्यान बता दिए गये हैं । प्रसङ्ग-क्रम से ग्रहयाग और वास्तुयाग के क्रम का वर्णन किया जायगा।। 142-152 ।।

जलाशय-संस्कार और उत्सर्ग

कूप-संस्कार

प्रसङ्गात्कथितौ भद्रे! ग्रहवास्तुक्रतुक्रमी ।
अथ प्रस्तुतकृत्यानामुच्यते कूपसंस्क्रिया ।। 153 ।।
सङ्कल्पं विधिवत्कृत्वा वास्तुपूजनमाचरेत् ।
मण्डले कलशे वापि शालग्रामे यथामति ।। 154 ।।
ततः पूज्यो गणपतिर्ब्रह्मा वाणी हरी रमा ।
शिवो दुर्गा ग्रहाश्चापि पूज्या दिक्पतयस्तथा ।। 155 ।।
मातरो वसवोऽष्टौ च ततः कार्या पितृक्रिया ।
प्राधान्यं वरुणस्यात्र स हि पूज्यो विशेषतः ।। 156 ।।
नानोपहारैर्वरुणमर्च्चयित्वा स्वशक्तितः ।
विधिवत्संस्कृते वह्नौ वारुणं होममाचरेत् ।। 157 ।।
पूजितेभ्यश्च देवेभ्यो दत्त्वा प्रत्येकमाहुतिम् ।
पूर्णाहुत्यन्तकृत्येन होमकर्म समापयेत् ।। 158 ।।
ततो ध्वजपताकास्रग्गन्धसिन्दूरचर्च्चितम् ।
उक्तप्रोक्षणमन्त्रेण प्रोक्षयेत्कूपमुत्तमम् ।। 159 ।।
ततः स्वकाममुद्दिश्य देवमुद्दिश्य वा नरः ।
सर्वभूतप्रीणनायोत्सृजेत्कूपजलाशयम् ।। 160 ।।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत्साधकाग्रणीः ।
सुप्रीयन्तां सर्वभूतां नभोभूतोयवासिनः ।। 161 ।।
उत्सृष्टे सर्वभूतेभ्यो मयैतज्जलमुत्तमम् ।
तृप्यन्तु सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः ।। 162 ।।
सामान्यं सर्वजीवेभ्यो मया दत्तमिदं जलम् ।
ये च केचिद्विपद्यन्ते स्वस्वकर्म विपाकतः ।। 163 ।।
तत्पापैर्न प्रलिप्येऽहं सफलास्तु मम क्रियाः ।
ततस्तु दक्षिणां कृत्वा कृतशान्त्यादिकक्रियः ।। 164 ।।
ब्राह्मणान्भोजयेत्कौलान्दीनानपि बुभुक्षितान् ।

जलाशयप्रतिष्ठासु सर्वत्रैष क्रमः शिवे ॥ 165 ॥
तडागादौ च कर्त्तव्या नागस्तम्भजलेचराः ॥ 166 ॥
मीनमण्डूकमकरकूर्माश्च जलजन्तवः ।
कार्या धातुमयाश्चैते कर्तृवित्तानुसारतः ॥ 167 ॥
मत्स्यौ स्वर्णमयौ कुर्यान्मण्डूकावपि हेमजौ ।
राजतौ मकरा कूर्ममिथुनं ताम्ररीतिकम् ॥ 168 ॥
एतैर्जलचरैः सार्द्धं तडागमपि दीर्घिकाम् ।
सागरञ्च समुत्सृज्य प्रार्थयन्नागमर्च्चयेत् ॥ 169 ॥

पूर्व प्रस्तावित कर्मों में से कूप-संस्कार की विधि का वर्णन करता हूँ । यथाविधि संकल्प करके मण्डल पर स्थापित घट या शालग्राम में यथारुचि वास्तु-पूजा करे । तब गणपति, ब्रह्मा-सरस्वती, हरि-लक्ष्मी, शिव-गौरी की पूजा करे । तब नवग्रह, दश दिक्पाल, मातृगण और अष्टवसुओं का पूजन करे । तब पितृकर्म करे । कूप-संस्कार में वरुण की प्रधानता है; अतः उनकी पूजा विशेष रूप से करे । यथाविधि संस्कृत अग्नि में वरुण देवता के लिये हवन करे । पूजित देवगण में से प्रत्येक को आहुति देकर पूर्णाहुति देवे । तब हवन समाप्त करे । तब ध्वज-पताका-माला-चन्दन-सिन्दूर से चर्चित उत्तम जलाशय को पूर्वोक्त प्रोक्षण मन्त्र से प्रोक्षित करे । तब अपनी कामना-पूर्ति के लिये या देवता की प्रसन्नता के लिये सभी समयों में सभी प्राणियों को प्रसन्न करने वाले कूपादि जलाशय का उत्सर्ग करे । श्रेष्ठ साधक हाथ जोड़कर प्रार्थना करे । श्लोक 161 का उत्तरार्द्ध, श्लोक 162, 163 और 164 का उत्तरार्द्ध प्रार्थनामन्त्र है । खेचर, भूचर, जलचर, सभी प्राणी प्रसन्न हों । सभी प्राणियों के लिये मैं इस उत्तम जल का उत्सर्ग करता हूँ । सभी प्राणी इस जल में अङ्गप्रक्षालनादि, पान, डुबकी लगाकर तृप्त हों । मैं इस जल का दान सभी जीवों के लिये करता हूँ । मैं इस भाव से दान करता हूँ कि इस जल पर सभी जीवों का समान अधिकार हो । अपने-अपने कर्मफल से जो कोई इसमें देह-त्याग करे, उसके पाप मुझे न लगें । मेरी क्रिया सफल हो ।

इसके बाद दक्षिणा देकर शान्ति कर्म करे । ब्राह्मण, कौल और भूखे दरिद्र लोगों को भोजन कराए । हे शिवे! सभी जलाशयों की प्रतिष्ठा का क्रम यही है । तडागादि की प्रतिष्ठा में नागस्तम्भ और जलचर का भी निर्माण होता है । मत्स्य, मण्डूक, मकर और कूर्म जल-जन्तु या जलचर जलाशयकर्त्ता

अपनी सम्पत्ति के अनुसार धातु का बनवाए । मछली का जोड़ा, मेढ़क का जोड़ा सोने का बनवाए । मकर का जोड़ा चाँदी का और कछुए का जोड़ा ताम्बे या पीतल का बनवाये । इन सभी जलचरों के साथ तड़ाग-दीर्घिका या सागर का उत्सर्ग करके 'सुप्रीयन्तां' इत्यादि श्लोकों से प्रार्थना करे । तब नागपूजा करे ।। 153-169 ।।

अनन्तो वासुकिः पद्मो महापद्मश्च तक्षकः ।
कुलीरः कर्कटः शंखः पाथसां रक्षका इमे ।। 170 ।।
इत्यष्टौ नागनामानि लिखित्वाश्वत्थपल्लवे ।
स्मृत्वा प्रणवगायत्र्यौ घटमध्ये विनिःक्षिपेत् ।। 171 ।।
चन्द्रार्कौ साक्षिणौ कृत्वा विलोड्यैकं समुद्धरेत् ।
तत्रोत्तिष्ठति यो नागस्तं कुटर्यात्तोयरक्षकम् ।। 172 ।।
स्तम्भमेकं समानीय विंशहस्तमितं शुभम् ।
सरलं दारूजं तलरुक्षितञ्च दरिद्रया ।। 173 ।।
स्नापयेत्तीर्थतोयेन व्याहृत्या प्रणवेन च ।
तत्र ह्रींश्रींक्षमाशान्तिसहितं नागमर्चयेत् ।। 174 ।।
नाग त्वं विष्णुशय्यासि महादेवविभूषणम् ।
स्तम्भमेनमधिष्ठाय जलरक्षां कुरुष्व मे ।। 175 ।।
इति प्रार्थ्य ततो नागं स्तम्भं मध्येजलाशयम् ।
समारोप्य तडागञ्च कर्त्ता कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।। 176 ।।
यूपश्चेत्स्थापितः पूर्वं तदा नागं घटेऽर्च्चयन् ।
तज्जलं तत्र निक्षिप्य शिष्टं कर्म समापयेत् ।। 177 ।।

1. अनन्त, 2. वासुकी, 3. पद्म, 4. महापद्म, 5. तक्षक, 6. कुलीर, 7. कर्कट तथा 8. शंख—ये आठ नाग जल के रक्षक हैं । पीपल के आठ पत्तों पर इन नागों के नाम लिखकर प्रणव और गायत्री का स्मरण करते हुए पत्तों को घट में डाल दे । चन्द्र और सूर्य को साक्षी करके घट के भीतर विलोड़न करके एक पत्ते को बाहर निकाले । उस पत्ते पर जिस नाग का नाम हो, उसी को जल का रक्षक बनाए । एक सीधा बीस हाथ लम्बा स्तम्भ लाकर उसमें तेल और हल्दी का लेप लगाकर उसे रंग दे । 'ॐ भुर्भवः स्वः' बोलते हुए उसे तीर्थ जल से धोए । उस स्थापित स्तम्भ में ह्रीं, श्रीं, क्षमा और शान्ति के साथ नाग की पूजा करे । तब प्रार्थना करे । श्लोक 175 प्रार्थना है । हे नाग! तुम विष्णु की शय्या और महादेव का अलंकार हो । इस स्तम्भ में स्थान

बनाकर मेरे जल की रक्षा करो । तब नागाधिष्ठित स्तम्भ को जलाशय के बीच में स्थापित करके कर्त्ता तड़ाग की प्रदक्षिणा करे । यह स्तम्भ यदि पहले से स्थापित हो तो नाग की पूजा घट में करके उस घट का जल तड़ाग में छोड़कर शेष कर्म समाप्त करे ।। 171-177 ।।

गृह-प्रतिष्ठा

एवं गृहप्रतिष्ठायां कृतसङ्कल्पको बुधः ।
वास्त्वादिवसुपूजान्तं पितृकर्म च कूपवत् ।। 178 ।।
विधायात्र विशेषेण यजेद्देवं प्रजापतिम् ।
प्राजापत्यञ्च हवनं कुर्यात्साधकसत्तमः ।। 179 ।।
गृहं पूर्वोक्तमन्त्रेण प्रोक्ष्य गन्धादिनार्चयन् ।
ईशानाभिमुखो भूत्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ।। 180 ।।
प्रजापतिश्च ते गेह! पुष्पमाल्यादिभूषितः ।
अस्माकं शुभवासाय सर्वथा सुखदो भव ।। 181 ।।
ततस्तु दक्षिणां कृत्वा शान्त्याशीर्वादमाचरेत् ।
विप्रान्कुलीनान्दीनांश्च भोजयेदात्मशक्तितः ।। 182 ।।
अन्यार्थन्तु प्रतिष्ठा चेत्तद्वासायात्र योजयेत् ।
देवताकृतगेहस्य विधानं शृणु शैलजे! ।। 183 ।।
इत्थं संस्कृत्य भवनं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ।
देवतासन्निधिं गत्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ।। 184 ।।
उत्तिष्ठ देवदेवेश भक्तानां वाञ्छितप्रद ।
आगत्य जन्मसाफल्यं कुरु मे करुणानिधे ।। 185 ।।

गृह-प्रतिष्ठा में पहले संकल्प करके वास्तु-पूजा से वसुधारा और आभ्युदयिक तक के कर्म करके वरुण के स्थान पर प्रजापति देव की विशेष पूजा करे । प्राजापत्य हवन करे । पूर्वोक्त मन्त्र से गृह को प्रोक्षित करके गन्धादि अर्पित करके ईशान की ओर मुख करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करे । श्लोक 181 प्रार्थनामन्त्र है । हे प्रजापति-स्वामी के गृह! तुम पुष्प-मालादि से भूषित होकर मेरे शुभ आवास के लिये सब प्रकार से सुखदायक हो । तब दक्षिणा तक के कर्म कर शान्ति और आशीर्वाद करे । अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण, कौल और दरिद्रों को भोजन कराए । हे शैलजे! यदि दूसरे के लिये गृह-प्रतिष्ठा हो तो संकल्प में 'अमुकस्य वासाय' अर्थात् 'अमुक के रहने के लिये' जोड़ ले । देवता के लिये निर्मित गृह की प्रतिष्ठा की विधि सुनो । उक्त प्रकार से गृह-

संस्कार कर शंख-तूर्यादि बजाते हुए देवता के पास जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे । लोक 185 प्रार्थना है । हे देवदेवेश! हे भक्तों के अभीष्टदायक! हे दयासागर! उठिये । आकर मेरे जन्म को सफल बनाइये ।।। 178-185 ।।

देवप्रतिष्ठा

इत्यभ्यर्थ्य गृहाभ्यर्णे देवमानीय साधकः ।
उपस्थाप्य गृहद्वारि पुरतो वाहनं न्यसेत् ॥ 186 ॥
त्रिशूलमथवा चक्रं विन्यस्य भवनोपरि ।
रोपयेन्मन्दिरेशाने सपताकं ध्वजं सुधीः ॥ 187 ॥
चन्द्रातपैः किङ्किणीभिः पुष्पस्त्रक्चूतपल्लवैः ।
शोभयित्वा गृहं सम्यक्च्छादयेद्दिव्यवाससा ॥ 188 ॥
उत्तराभिमुखं देवं वक्ष्यमाणविधानतः ।
स्नापयेद्विहितैर्द्रव्यैस्तत्क्रमं वच्मि ते श्रृणु ॥ 189 ॥
ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रान्ते मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
दुग्धेन स्नापयामि त्वां मातेव परिपालय ॥ 190 ॥
प्रोक्तबीजत्रयस्यान्ते तथा मूलं नियोजयन् ।
दध्ना त्वां स्नापयाम्यद्य भवतापहरो भव ॥ 191 ॥
पुनर्बीजत्रयं मूलं सर्वानन्दकरेति च ।
मधुना स्नापितः प्रीतो मामानन्दमयं कुरु ॥ 192 ॥
प्राग्वन्मूलं समुच्चार्य सावित्रीं प्रणवं स्मरन् ।
देवप्रियेण हविषा आयुः शुक्रेण तेजसा ।
स्नानं ते कल्पयामीश मामरोगं सदा कुरु ॥ 193 ॥
तद्वन्मूलञ्च गायत्रीं व्याहृतिं समुदीरयन् ।
देवेश! शर्करातोयैः स्नातो मे यच्छ वाञ्छितम् ॥ 194 ॥
तथा मूलं समुच्चार्य गायत्रीं वारुणं मनुम् ।
विधात्रा निर्मितैर्दिव्यैः प्रियैः स्निग्धैरलौकिकैः ।
नारिकेलोदकैः स्नानं कल्पयामि नमोऽस्तु ते ॥ 195 ॥
गायत्र्या मूलमन्त्रेण स्नापयेदिक्षुजै रसैः ॥ 196 ॥
कामबीजं तथा तारं सावित्रीं मूलमीरयन् ।
कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीचन्दनोदकैः ।
सुस्नातो भव सुप्रीतो भुक्तिमुक्ती प्रयच्छ मे ॥ 197 ॥

इत्यष्टकलशैः स्नानं कारयित्वा जगत्पतिम् ।
गृहाभ्यन्तरमानीय स्थापयेदासनोपरि ।। 198 ।।
स्नापनार्हा न चेदर्च्चा तद्यन्त्रे वापि तन्मनौ ।
शालिग्रामशिलायां वा स्नापयित्वा प्रपूजयेत् ।। 199 ।।
अशक्तौ मूलमन्त्रेण स्नापयेच्छुद्धपाथसाम् ।
अष्टभिः कलशैर्यद्वा पञ्चभिः सप्तभिस्तथा ।। 200 ।।
घटप्रमाणं प्रागेव कथितं चक्रपूजने ।
सर्वत्रागमकृत्येषु स एव विहितो घटः ।। 201 ।।

इस प्रकार प्रार्थना करके साधक देवता को गृह के निकट लाकर स्थापनपूर्वक उसके आगे वाहन को स्थापित करे । गृह के ऊपर त्रिशूल या चक्र स्थापित करे । मन्दिर के ईशान कोण में पताकायुक्त ध्वजारोपण करे । चन्द्रातप, घण्टी, पुष्प-माला और आम के पत्तों से गृह अच्छी तरह सजाकर वस्त्र द्वारा आच्छादित करे । आगे वर्णित विधि से विहित द्रव्यों से उत्तराभिमुख स्थापित देव को स्नान कराए ।

1. दुग्ध स्नान—ऐं ह्रीं श्रीं मूलमन्त्र दुग्धने स्नापयामि त्वां मातेव परिपालय । तुम्हें दूध से स्नान कराता हूँ । माता के समान मेरा पालन करो ।

2. दधि स्नान—ऐं ह्रीं श्रीं मूलमन्त्र दध्ना त्वां स्नापयाम्यद्य भव तापहरो भव । दही से तुम्हें आज नहलाता हूँ । संसार के दुःखहारी बनो ।

3. मधु स्नान—ऐं ह्रीं श्रीं मूलमन्त्र मधुना स्नापितः प्रीतो मामानन्दमयं कुरु । मधु से स्नान कराता हूँ । प्रसन्न हो, मुझे आनन्दमय करो ।

4. घृतस्नान—ऐं ह्रीं श्रीं मूलमन्त्र गायत्री ॐ देवप्रियेण हविषा आयु शुक्रेण तेजसा स्नानं ते कल्पयामीश मामरोगं सदा कुरु । हे ईश! हे देवप्रिय! आयु-वीर्य-तेज-स्वरूप घृत से तुम्हें स्नान कराता हूँ, मुझे सदा निरोग रक्खो ।

5. शर्करा स्नान—ऐं ह्रीं श्रीं मूलमन्त्र व्याहृति गायत्रीं देवेश शर्करा-तोयैः स्नातो मे यच्छ वाञ्छितम् । हे देवेश! शर्करा-जल से स्नान करो । मेरा अभीष्ट फल प्रदान करो ।

6. नारियल जलस्नान—ऐं ह्रीं श्रीं मूलं गायत्रीं वं विधात्रा निर्मितैर्दिव्यैः प्रियैः स्निग्धैरलौकिकैः नारिकेलोदकैः स्नानं कल्पयामि नमोऽस्तु ते । ब्रह्मा

द्वारा निर्मित दिव्य प्रिय स्निग्ध और अलौकिक नारिकेल-जल से तुम्हें स्नान कराता हूँ । तुम्हें नमस्कार है ।

7. इक्षुरस स्नान—गायत्रीं मूलमन्त्र इक्षुजैः रसैः स्नापयामि । ईख के रस से तुम्हें स्नान कराता हूँ ।

8. कर्पूरादि स्नान—क्लीं ॐ गायत्री मूलमन्त्र कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरी-चन्दनोदकैः सुस्नातो भव सुप्रीतो भुक्तिमुक्ती प्रयच्छ मे । कपूर, अगर, कुंकुम, कस्तूरी और चन्दनयुक्त जल से सुस्नात होकर प्रसन्न हों और भोग तथा मोक्ष प्रदान करें ।

इस प्रकार 8 कलशों से स्नान कराकर जगत्पति को मन्दिर के भीतर लाकर आसन के ऊपर स्थापित करे । देवप्रतिमा यदि स्नान कराने के योग्य न हो तो यन्त्र में या देवता के मूल मन्त्र में या शालग्राम में स्नान कराकर पूजा करे । दुग्धादि से उक्त प्रकार का स्नान कराने में यदि असमर्थ हो तो यथाशक्ति शुद्ध जल से पूर्ण आठ सात या पाँच कलश से स्नान कराए । चक्रपूजा के प्रसंग में कलश का माप बतलाया गया है । आगमोक्त सभी कर्मों में उसी प्रकार के घट विहित हैं । ।। 186-201 ।।

षोडशोपचार पूजन

ततो यजेन्महादेवं स्वस्वपूजाविधानतः ।
तत्रोपचारान्वक्ष्यामि शृणु देवि परात्परे ।। 202 ।।
आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्कस्तथाचम्यं स्नानीयं वस्त्रभूषणे ।। 203 ।।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं तथा ।
देवार्च्चनासु निर्दिष्टा उपचाराश्च षोडश ।। 204 ।।

इसके बाद अपनी-अपनी पूजाविधि के अनुसार महादेव की पूजा करे । उस पूजा के सभी उपचारों को बतलाता हूँ, हे परात्परे! सुनो । षोडशोपचार पूजन में ये सब आते हैं—1. आसन, 2. स्वागत, 3. पाद्य, 4. अर्घ्य, 5. आचमनीय, 6. मधुपर्क, 7. पुनराचमनीय, 8. स्नानीय, 9. वस्त्र, 10. भूषण, 11. गन्ध, 12. पुष्प, 13. धूप, 14. दीपक, 15. नैवेद्य, 16. वन्दना ।। 202-204 ।।

दशोपचार पूजन

पाद्यमर्घ्यञ्चाचमनं मधुपर्काचमौ तथा ।
गन्धादिपञ्चकं चैते उपचारा दश स्मृताः ।। 205 ।।

दशोपचार पूजन में इन दश उपचारों से पूजन होता है—1. पाद्य, 2. अर्घ्य, 3. आचमनीय, 4. मधुपर्क, 5. पुनराचमनीय, 6. गन्ध, 7. पुष्प, 8. धूप, 9. दीप, 10. नैवेद्य ।। 205 ।।

पञ्चोपचार पूजन

गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं चापि कालिके ।
पञ्चोपचाराः कथिता देवतायाः प्रपूजने ।। 206 ।।
अस्त्रेणार्घ्याम्भसा द्रव्यं प्रोक्ष्य धेनुं प्रदर्शयन् ।
सम्पूज्यगन्धपुष्पाभ्यां द्रव्याख्यानं समुल्लिखेत् ।। 207 ।।
वक्ष्यमाणं मनुं स्मृत्वा मूलं च देवताभिधाम् ।
सचतुर्थीं समुच्चार्य्य त्यागार्थ वचनं पठेत् ।। 208 ।।
निवेदनविधिः प्रोक्तो देवे देयेषु वस्तुषु ।
अनेन विधिना विद्वान्द्रव्यं दद्याद्दिवौकसे ।। 209 ।।

पञ्चोपचार पूजन में पाँच उपचारों से पूजा होती हैं—1. गन्ध, 2. पुष्प, 3. धूप, 4. दीप, 5. नैवेद्य ।

'फट्' अस्त्रमन्त्र से अर्घ्यपात्र से अभिषेक करके धेनुमुद्रा दिखाने के बाद गन्ध-पुष्प से पूजा कर देय द्रव्य का नामोल्लेख करे । आगे वर्णित मन्त्र और मूल मन्त्र का स्मरण कर चतुर्थी विभक्तियुक्त देवता के नाम का उच्चारण करके त्यागार्थ वचन का पाठ करे । देवता को देय वस्तुओं के निवेदन की यही विधि है । इसी के अनुसार देवता को उपचार प्रदान करे ।। 206-209 ।।

उपचार-प्रदान मन्त्र

आद्यार्च्चनविधौ पूर्वं पाद्यार्घ्यादिनिवेदनम् ।
अर्पणं कारणादीनां सर्वमेव प्रदर्शितम् ।। 210 ।।
अनुक्तमन्त्रा ये तत्र तानेवात्र शृणु प्रिये ।
आसनाद्युपचाराणां प्रदाने विनियोजयेत् ।। 211 ।।
सर्वभूतान्तरस्थाय सर्वभूतान्तरात्मने ।
कल्पयाम्युपवेशार्थमासनं ते नमो नमः ।। 212 ।।

उक्तक्रमेण देवेशि प्रदायासनमुत्तमम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्वागतं प्रार्थयेत्ततः ॥ 213 ॥
देवाः स्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं यस्य वाञ्छन्ति दर्शनम् ।
सुस्वागतं स्वागतम्मे तस्मै ते परमात्मने ॥ 214 ॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सफलाः क्रियाः ।
स्वागतं यत्त्वया तन्मे तपसां फलमागतम् ॥ 215 ॥
देवमामन्त्र्य सम्प्रार्थ्य स्वागतप्रश्नमम्बिके ।
विहितं पाद्यमादाय मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ 216 ॥
यत्पादजलसंस्पर्शाच्छुद्धिमाप जगत्त्रयम् ।
तत्पादाब्जप्रोक्षणार्थं पाद्यं ते कल्पयाम्यहम् ॥ 217 ॥
परमानन्दसन्दोहो जायते यत्प्रसादतः ।
तस्मै सर्वात्मभूताय आनन्दार्घ्यं समर्पये ॥ 218 ॥
जातीलवङ्गकङ्कोलैर्जलं केवलमेव वा ।
प्रोक्षितार्चितमादाय मन्त्रेणानेन चार्पयेत् ॥ 219 ॥
यदुच्छिष्टमपस्पृष्टं शुद्धिमेत्यखिलं जगत् ।
तस्मै मुखारविन्दाय आचमनं कल्पयामि ते ॥ 220 ॥
मधुपर्कं समादाय भक्त्यानेन समर्पयेत् ॥ 221 ॥
तापत्रयविनाशार्थमखण्डानन्दहेतवे ।
मधुपर्कं ददाम्यद्य प्रसीद परमेश्वर ॥ 222 ॥
अशुचिः शुचितामेति यत्स्पृष्टस्पर्शमात्रतः ।
अस्मिंस्ते वदनाम्भोजे पुनराचमनीयकम् ॥ 223 ॥
स्नानार्थं जलमादाय प्राग्वत्प्रोक्षितमर्च्चितम् ।
निधाय देवपुरतो मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ 224 ॥
यत्तेजसा जगद्व्याप्तं यतो जातमिदं जगत् ।
तस्मै ते जगदाधार स्नानार्थं तोयमर्पये ॥ 225 ॥
स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम् ।
अन्यद्रव्यप्रदानान्ते दद्यात्तोयं सकृत्सकृत् ॥ 226 ॥
वस्त्रमानीय देवाग्रे शोधितं पूर्ववर्त्मना ।
धृत्वा कराभ्यामुत्तोल्य पठेदेतं मनुं सुधीः ॥ 227 ॥
सर्वावरणहीनाय मायाप्रच्छन्नतेजसे ।
वाससी परिधानाय कल्पयामि नमोऽस्तु ते ॥ 228 ॥
नानाभरणमादाय स्वर्णरौप्यादिनिर्मितम् ।

प्रोक्ष्यार्चयित्वा देवाय दद्यादेतं समुच्चरन् ॥ 229 ॥
विश्वाभरणभूताय विश्वशोभैकयोनये ।
मायाविग्रहभूषार्थं भूषणानि समर्पये ॥ 230 ॥
गन्धतन्मात्रया सृष्टा येन गन्धधराधरा ।
तस्मै परात्मने तुभ्यं परमं गन्धमर्पये ॥ 231 ॥
पुष्पं मनोहरं रम्यं सुगन्धं देवनिर्मितम् ।
मया निवेदितं भक्त्या पुष्पमेतत्प्रगृह्यताम् ॥ 232 ॥
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।
आघ्रेयः सर्वभूतानां धूपो घ्राणाय तेऽर्प्यते ॥ 233 ॥
सुप्रकाशो महादीप्तः सर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ 234 ॥
नैवेद्यं स्वादुसंयुक्तं नानाभक्ष्यसमन्वितम् ।
निवेदयामि भक्त्येदं जुषाण परमेश्वर ॥ 235 ॥
पानार्थं सलिलं देव कर्पूरादिसुवासितम् ।
सर्वतृप्तिकरं स्वच्छमर्पयामि नमोऽस्तु ते ॥ 236 ॥
ततः कर्पूरखदिरलवङ्गैलादिभिर्युतम् ।
ताम्बूलं पुनराचम्य दत्त्वा वन्दनमाचरेत् ॥ 237 ॥

1. आसन—सर्वभूतान्तरस्थाय सर्वभूतान्तरात्मने । कल्पयाम्युपवेशार्थमासनं ते नमो नमः । सभी प्राणियों के अन्तर में स्थित और सभी प्राणियों के अन्तरात्मा-स्वरूप तुम्हें बैठने के लिये आसन देता हूँ । तुम्हें बार-बार नमस्कार है ।

2. स्वागत—हाथ जोड़कर स्वागत प्रार्थना करे—देवाः स्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं यस्य वाञ्छन्ति दर्शनम् । सुस्वागतं स्वागतं मे तस्मै ते परमात्मने।। अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सफला क्रियाः । स्वागतं यत् त्वया तन्मे तपसा फलमागतम् ।। सभी देवता अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये जिनके दर्शन की अभिलाषा रखते हैं, उस परमात्मा-रूप तुम्हारा मैं स्वागत करता हूँ । आज मेरा जन्म, जीवन और सारा कर्म सफल है; क्योंकि तुम्हारे स्वागत के रूप में मेरी तपस्या का फल ही मुझे मिला है ।

3. पाद्य—यत् पादजलसंस्पर्शाच्छुद्धिमाप जगत्त्रयं तत् पादाब्जप्रोक्षणार्थं पाद्यं ते कल्पयाम्यहम् ।। जिन चरणों के जल के स्पर्श से तीनों लोक शुद्ध होते हैं, तुम्हारे उन चरणों को धोने के लिये मैं पाद्य तुम्हें समर्पित करता हूँ ।

4. अर्घ्य—परमानन्दसन्दोहो जायते यत्प्रसादतः । तस्मै सर्वात्मभूताय आनन्दार्घ्यं समर्पये ।। जिनकी प्रसन्नता से परमानन्द की प्राप्ति होती है, वैसे तुम आत्मास्वरूप को मैं अर्घ्य देता हूँ ।

5. आचमनीय—प्रोक्षित और अर्चित जाती, लवंग, कंकोल से वासित जल या केवल शुद्ध जल लेकर इस मन्त्र का उच्चारण करे— यदुच्छिष्टमुपस्पृष्टं शुद्धिमेत्यखिलं जगत् । तस्मै मुखारविन्दाय आचमं कल्पयामि ते ।। जिसके जूठन के स्पर्श से सारा जगत् शुद्ध होता है, तुम्हारे उसी मुखकमल के लिये मैं आचमन देता हूँ ।

6. मधुपर्क—दही, घी और मधु लेकर भक्तिपूर्वक उसे आगे के मन्त्र से अर्पित करे—तापत्रयविनाशार्थमखण्डानन्दहेतवे । मधुपर्कं ददाम्यद्य प्रसीद परमेश्वर ।। तीनों दुःखों के नाश के लिये अखण्डानन्द-कारणस्वरूप तुम्हें मैं मधुपर्क देता हूँ । हे परमेश्वर! प्रसन्न होइये ।

7. पुनराचमनीय—अशुचिः शुचितामेति यत् स्पृष्टस्पर्शमात्रतः । तस्मिंस्तं वदनाम्भोजे पुनराचमनीयकम् ।। जिसे छूकर स्पर्शमात्र से अपवित्र भी पवित्र हो जाता है, तुम्हारे उसी मुखकमल में पुनः आचमन अर्पित करता हूँ ।

8. स्नानीय—स्नान हेतु पूर्ववत् प्रोक्षित और अर्चित जल देवता के सामने रखकर इस मन्त्र का पाठ करे— यत्तेजसा जगद् व्याप्तं यतो जातमिदं जगत् । तस्मै ते जगदाधार स्नानार्थं तोयमर्पये ।। जिनके तेज से जगत् व्याप्त है, जिनसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है । हे जगदाधार! उन्हीं तुमको स्नान के लिये जल देता हूँ । स्नान-वस्त्र और नैवेद्य देने के वाद आचमन दिया जाता है । अन्य द्रव्यों को देने के बाद एक-एक बार जल प्रदान करना चाहिये ।

9. वस्त्र—हाथों में दो वस्त्र लेकर पूर्ववत् शोधित करके इस मन्त्र का उच्चारण करे—सर्वावरणहीनाय मायाप्रच्छन्नतेजसे । वाससी परिधानाय कल्पयामि नमोऽस्तु ते ।। सब प्रकार के आवरणों से रहित, अविद्या से छिपे हुए तेज वाले तुम्हें उत्तरीय के साथ वस्त्र देता हूँ । तुम्हें नमस्कार है ।

10. आभूषण—सोना, चाँदी आदि से निर्मित विविध आभूषणों का प्रोक्षण और अर्चन करके इस मन्त्र का उच्चारण करे—विश्वावरणभूताय विश्वशोभैकयोजये । मायाविग्रहभूषार्थं भूषणानि समर्पये ।। विश्व के आभूषणस्वरूप

एवं विश्व की शोभा के एकमात्र कारण तुम्हारे मायामय शरीर को सजाने के लिये आभूषण देता हूँ ।

11. गन्ध—गन्धतन्मात्रया सृष्टा येन गन्धधरा धरा । तस्मै परात्मने तुभ्यं परमं गन्धमर्पये ।। जिनके द्वारा गन्धतन्मात्रा से गन्धवती धरती रची गई है, उन्हीं परमात्मास्वरूप तुम्हें परम गन्ध देता हूँ ।

12. पुष्प—पुष्पं मनोहरं रम्यं सुगन्धं देवनिर्मितम् । मया निवेदिता भक्त्या पुष्पमेतत् प्रगृह्यताम् ।। मनोहर, सुगन्धित, देवों, द्वारा निर्मित पुष्पों को भक्तिपूर्वक देता हूँ । ग्रहण करो ।

13. धूप—वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः । आघ्रेयः सर्वभूतानां धूपो घ्राणाय तेऽर्पये ।। वनस्पति का दिव्य रस, गन्धयुक्त, अति मनोहर, सभी प्राणियों के सूंघने के योग्य धूप तुम्हारे सूंघने के लिये देता हूँ ।

14. दीपक—सुप्रकाशो महादीप्तः सर्वतस्तिमिरापहः । स बाह्याभ्यन्तरज्योतिः दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। सुन्दर प्रकाश वाला, अतिदीप्ति वाला, सभी दिशाओं के अँधेरे को दूर करने वाला, बाहर और भीतर ज्योतिर्मय करने वाला यह दीपक ग्रहण करो ।

15. नैवेद्य—नैवेद्यं स्वादुसंयुक्तं नानाभक्ष्यसमन्वितम् । निवेदयामि भक्त्येदं जुषाण परमेश्वर ।। स्वादिष्ट, विविध खाने योग्य वस्तु से युक्त यह नैवेद्य भक्ति के साथ देता हूँ । हे परमेश्वर! इसे ग्रहण करो ।

पानीय—पानार्थं सलिलं देव! कर्पूरादिसुवासितम् । सर्वं तृप्तिकरं स्वच्छमर्पयामि नमोऽस्तु ते ।। हे देव! कपूर आदि से सुगन्धित, पूर्ण तृप्तिकारक निर्मल जल पीने के लिये देता हूँ । तुम्हें नमस्कार है ।

16. ताम्बूल—कर्पूरखदिरलवंगैलादिभिर्युतं ताम्बूलं निवेदयामि । कपूर, कत्था, लवङ्ग आदि से युक्त पान देता हूँ ।

पुनः आचमनीय देकर वन्दना करे । 210-237 ।।

उपचाराधारदाने साधारद्रव्यमुल्लिखेत् ।
दद्याद्वा पृथगाधारं तत्तन्नाम समुच्चरन् ।। 238 ।।
इत्थमर्चितदेवाय दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ।
साच्छादनं गृहं प्रोक्ष्य पठेदेतं कृताञ्जलिः ।। 239 ।।

गेहं त्वं सर्वलोकानां पूज्यं पुण्ययशःप्रदम् ।
देवतास्थितिदानेन सुमेरुसदृशं भव ॥ 240 ॥
त्वं कैलासश्च वैकुण्ठस्त्वं ब्रह्मभवनं गृह ।
यत्त्वया विधृतो देवस्तस्मात्त्वं सुरवन्दितः ॥ 241 ॥
यस्य कुक्षौ जगत्सर्वं वरीवर्त्ति चराचरम् ।
मायाविधूतदेहस्य तस्य मूर्त्तेर्विधारणात् ॥ 242 ॥
देवमातृमयस्त्वं हि सर्वतीर्थमयस्तथा ।
सर्वकामप्रदो भूत्वा शान्तिं मे कुरु ते नमः ॥ 243 ॥
इत्यभ्यर्थ्य त्रिरभ्यर्च्य गृहं चक्रादिसंयुतम् ।
आत्मनः काममुद्दिश्य दद्याद्देवाय साधकः ॥ 244 ॥
विश्वावासाय वासाय गृहं ते विनिवेदितम् ।
अङ्गीकुरु महेशान कृपया सन्निधीयताम् ॥ 245 ॥
इत्युक्त्वार्पितगेहाय देवाय दत्तदक्षिणः ।
शंखतूर्य्यादिघोषैस्तं स्थापयेद्वेदिकोपरि ॥ 246 ॥
स्पृष्ट्वा देवपदद्वन्द्वं मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
स्थां स्थीं स्थिरो भवेत्युक्त्वा वासस्ते कल्पितो मया ।
इति देवं स्थिरीकृत्य भवनं प्रार्थयेत्पुनः ॥ 247 ॥
गृह देवनिवासाय सर्वथा प्रीतिदो भव ।
उत्सृष्टे त्वयि मे लोकाः स्थिराः सन्तु निरामयाः ॥ 248 ॥
द्विसप्तातीतपुरुषान्द्विसप्तानागतानपि ।
मां च मे परिवारांश्च देवधाम्नि निवासय ॥ 249 ॥
यजनात्सर्वयज्ञानां सर्वतीर्थनिषेवणात् ।
यत्फलं तत्फलं मेऽद्य जायतां त्वत्प्रसादतः ॥ 250 ॥
यावद्वसुन्धरा तिष्ठेद्यावदेते धराधराः ।
यावद्दिवानिशानाथौ तावन्मे वर्त्ततां कुलम् ॥ 251 ॥

उपचार का आधार देते समय 'साधारं' तेज आधारसहित यथासम्भव कहकर द्रव्य का नाम लेकर उस आधार का नाम लेकर उसे अलग से प्रदान करे । इस प्रकार पूजित देवता को तीन पुष्पाञ्जलियाँ देकर आच्छादनयुक्त गृह का प्रोक्षण कर हाथ जोड़कर निम्न मन्त्र पढ़े । श्लोक 240-243 प्रार्थनामन्त्र है । हे गृह! तुम सब लोकों के पूज्य, पुण्य और यशदाता देवता को स्थिति देकर सुमेरु के समान बनो । हे गृह! तुम कैलास हो, तुम वैकुण्ठ हो, तुम ब्रह्मभवन हो; क्योंकि तुम देवता को धारण करते हो । देवता तुम्हारी वन्दना

करते हैं । जिनके पेट में सारा संसार है, माया के शरीर धारण करने वाले उसी ब्रह्म की मूर्त्ति को धारण करने से तुम देवमाता के समान हो और सभी तीर्थों से युक्त हो । तुम सभी मनोकामनाओं की पूर्तिकर्ता होकर मुझे शान्ति दो । तुम्हें नमस्कार है । गृह को तीन बार नमस्कार करके साधक अपनी अभिलाषा-पूर्ति के लिये चक्रादियुक्त उस गृह को देवता को समर्पित करे । श्लोक 245 निवेदन-मन्त्र है । विश्वासस्वरूप रहने के लिये तुम्हें यह गृह निवेदित करता हूँ । हे महेशान! इसे ग्रहण करें और कृपया इसमें सन्निहित हों । इस प्रकार गृह को अर्पण करके देवता को दक्षिणा देकर शंख-तूर्यादि बजाते हुए वेदी पर देवस्थापन करे । देवता के दोनों पैर छूकर इस प्रकार कहे—मूलं स्थां स्थीं स्थिरी-भव वासस्ते कल्पितो मया । तुम्हारे आवास को मैंने बनाया है. इसमें स्थिर हों । इस मन्त्र से देवता को स्थिर करके पुनः गृह की प्रार्थना करे । 248 से 251 श्लोक प्रार्थनारूप है । हे गृह! तुम देव-निवास के लिये सब प्रकार से प्रीतिदायक बनो । तुम्हें देने से मेरे लिये सभी लोक पुण्यप्रदायक बनें । मेरे पिछले चौदह पुरखों और अगले चौदह वंशजों सहित मुझे और मेरे परिवारजनों को देवलोकवासी बनाओ । सभी यज्ञों और सभी तीर्थों के अटन से जो फल मिलते हैं, वे सब आज तुम्हारी प्रसन्नता से मुझे मिलें । जब तक पृथ्वी-पर्वत-सूर्य-चन्द्र हैं तब तक मेरा कुल वर्तमान रहे ।। 238-251 ।।

वाहन-दान और मन्त्र

वृषभोत्सर्ग

**इति प्रार्थ्य गृहं प्राज्ञः पुनर्देवं समर्चयन् ।
दर्पणाद्यन्यवस्तूनि ध्वजं चापि निवेदयेत् ।। 252 ।।
ततस्तु वाहनं दद्याद्यस्मिन्देवे यथोदितम् ।
शिवाय वृषभं दत्त्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ।। 253 ।।
वृषभ! त्वं महाकायस्तीक्ष्णशृङ्गोऽरिघातकः ।
पृष्ठे वहसि देवेशं पूज्योऽसि त्रिदशैरपि ।। 254 ।।
क्षुरेषु सर्वतीर्थानि रोम्णि वेदाः सनातनाः ।
निगमागमतन्त्राणि दशनाग्रे वसन्ति ते ।। 255 ।।
त्वयि दत्ते महाभाग! सुप्रीतः पार्वतीपतिः ।
वसां ददातु कैलासे त्वं मां पालय सर्वदा ।। 256 ।।**

इस प्रकार गृह की प्रार्थना करके पुनः देवार्चन करे । तब दर्पणादि अन्य वस्तुएँ और ध्वज प्रदान करे । तब देवता के योग्य वाहन का दान करे । महादेव को वृषभ देकर हाथ जोड़कर वृषभ की प्रार्थना करे । श्लोक 254 से 256 प्रार्थनामन्त्र हैं। हे वृषभ! तुम विशाल शरीर वाले. तेज सींग वाले और शत्रुघाती हो । तुम देवेश को पीठ पर बैठाते हो । अतः देवों द्वारा भी पूज्य हो । तुम्हारे खुरों में सर्वतीर्थ, रोमों में चारों सनातन वेद और दाँतों के अग्रभाग में निगमागम तन्त्र रहते हैं । हे महाभाग! तुम्हारे दिये जाने से पार्वती के पति प्रसन्न होकर कैलास में मुझे आवास दें । तुम सदा मेरा पालन करो ।। 252-256 ।।

सिंह का दान

सिंहं दत्त्वा महादेव्यै गरुडं विष्णवे तथा ।
यथा स्तूयान्महेशानि! तन्मे निगदत शृणु ।। 257 ।।
सुरासुरनियुद्धेषु महाबलपराक्रमः ।
देवानां जयदो भीमो दनुजानां विनाशकृत् ।। 258 ।।
सदा देवीप्रियोऽसि त्वं ब्रह्माविष्णुशिवप्रियः ।
देव्यै समर्पितो भक्त्या जहि शत्रून्नमोऽस्तु ते ।। 259 ।।

महादेवी को सिंह और विष्णु को गरुड़ देकर उन वाहनों की स्तुति जिस प्रकार की जाती है, उसका वर्णन करता हूँ । हे सिंह! देवासुर संग्राम में तुम महाबली. पराक्रमी हो. देवों के जयदाता हो. भयंकर और असुर-विनाशक हो । देवों. ब्रह्मा, विष्णु, शिव के तुम सदा प्रिय हो । देवी के लिये भक्तिपूर्वक अर्पित होकर तुम मेरे सभी शत्रुओं का नाश करो ।। 257-259 ।।

गरुड़ का दान

गरुत्मन्! पतगश्रेष्ठ! श्रीपतिप्रीतिदायक ।
वज्रचञ्चो! तीक्ष्णनख! तव पक्षा हिरण्मयाः ।
नमस्तेऽस्तु खगेन्द्राय पक्षिराज! नमोऽस्तु ते ।। 260 ।।
यथा करपुटेन त्वं संस्थितो विष्णुसन्निधौ ।
तथा मामरिदर्पघ्न! विष्णोरग्रे निवासय ।। 261 ।।
त्वयि प्रति जगन्नाथः प्रीतः सिद्धिं प्रयच्छति ।
देवाय दत्तद्रव्याणां दद्याद्देवाय दक्षिणाम् ।। 262 ।।

हे गरुत्मन्! हे पक्षिराज! हे नारायण-प्रीतिप्रद! हे वज्रचोंच! हे तीक्ष्णनाव!

तुम्हारे पंख स्वर्णिम वर्ण के हैं । हे खगेन्द्र! हे पक्षिराज! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है । हे अरिमर्दन! तुम जैसे विष्णु के पास हाथ जोड़कर बैठते हो, वैसे ही मुझे भी विष्णु के पास बैठाओ । तुम्हारे प्रसन्न होने से जगन्नाथ प्रसन्न होकर सिद्धि देते हैं ।। 260-262 ।।

तथा कर्मफलञ्चापि भक्त्या तस्मै समर्पयेत् ।। 263 ।।
नृत्यैर्गीतैश्च वादित्रैः सामात्य सहबान्धवः ।
वेश्मप्रदक्षिणं कृत्वा देवं नत्वाऽऽशयेद्द्विजान् ।। 264 ।।
देवागारप्रतिष्ठायां य एष कथितः क्रमः ।
आरामसेतुसंक्रामशाखिनामीरितोऽपि सः ।। 265 ।।
विशेषेणात्र कृत्येषु पूज्यो विष्णुः सनातनः ।
पूजा होमस्तथा सर्वगृहदानविधानवत् ।। 266 ।।
अप्रतिष्ठितदेवाय नैव दद्याद्गृहादिकम् ।
प्रतिष्ठितेऽर्चिते देवे पूजादानं विधीयते ।। 267 ।।

देवता के लिये देय द्रव्य दक्षिणा देवता को प्रदान करे । इसी प्रकार भक्तिपूर्वक कर्मफल भी देवता को समर्पित करे । नाच, गान और बाजा बजवाते हुए बान्धवों के साथ गृह की प्रदक्षिणा करे । देवता को प्रणाम कर सभी ब्राह्मणों को भोजन कराये । देवगृह की प्रतिष्ठा में जिस क्रम का वर्णन हुआ है, वही क्रम उपवन, सेतु, संक्रम और वृक्ष की प्रतिष्ठा में भी पालनीय हैं । इन सभी कर्मों में सनातन विष्णु ही पूज्य हैं । पूजा, हवन और अन्य सभी कर्मों को गृहदान की विधि के समान करे । अप्रतिष्ठित और अर्चित देव के लिये ही पूजा-दान विहित हैं ।। 263-267 ।।

महाकाली की प्रतिष्ठा

अथ तत्र श्रीमदाद्याप्रतिष्ठाक्रम उच्यते ।
येन प्रतिष्ठिता देवी तूर्णं यच्छति वाञ्छितम् ।। 268 ।।
तद्दिने साधकः प्रातः स्नातः शुचिरुदङ्मुखः ।
सङ्कल्पं विधिवत्कृत्वा यजेद्द्वास्त्वीश्वरं ततः ।। 269 ।।
गृहदिक्पतिहेरम्बाद्यर्चनं पितृकर्म च ।
विधाय साधको विप्रैः प्रतिमासन्निधिं व्रजेत् ।। 270 ।।
प्रतिष्ठितगृहे यद्वा कुत्रचिच्छोभनस्थले ।
आनीयार्चामर्चयित्वा स्नापयेत्साधकोत्तमः ।। 271 ।।

भस्मना प्रथमं स्नानं ततो वल्मीकमृत्स्नया ।
वराहदन्तिदन्तोत्थमृत्तिकाभिस्ततः परम् ।
वेश्याद्वारमृदा चापि प्रद्युम्नह्रदजातया ॥ 272 ॥
ततः पञ्चकषायेण पञ्चपुष्पैस्त्रिपत्रकैः ।
कारयित्वा गन्धतैलैः स्नापयेत्प्रतिमां सुधीः ॥ 273 ॥
वाट्यालबदरीजम्बुबकुलाः शाल्मलिस्तथा ।
एते निगदिताः स्नाने कषायाः पञ्चभूरुहाः ॥ 274 ॥
करवीरं तथा जाती चम्पकं सरसीरुहम् ।
पाटलीकुसुमञ्चापि पञ्चपुष्पं प्रकीर्तितम् ॥ 275 ॥
बर्बुरा तुलसी बिल्वं पत्रत्रयमुदाहृतम् ॥ 276 ॥
एतेषु प्रोक्तद्रव्येषु जलयोगो विधीयते ।
पञ्चामृते गन्धतैले तोययोगं विवर्जयेत् ॥ 277 ॥
सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं मूलमुच्चरन् ।
एतद्द्रव्यस्य तोयेन स्नापयामि नमो वदेत् ॥ 278 ॥
ततः प्रागुक्तविधिना दुग्धाद्यैरष्टभिर्घटैः ।
कवोष्णसलिलैश्चापि स्नापयेत्प्रतिमां बुधः ॥ 279 ॥
सितगोधूमचूर्णेन तिलकल्केन वा शिवाम् ।
शालितण्डुलचूर्णेन मार्जयित्वा विरूक्षयेत् ॥ 280 ॥
तीर्थाम्भसामष्टघटैः स्नापयित्वा सुवाससा ।
सम्मार्जिताङ्गीं प्रतिमां पूजास्थानं समानयेत् ॥ 281 ॥
अशक्तौ शुद्धतोयानां पञ्चविंशतिसंख्यकैः ।
कलशैः स्नापयेदर्चां भक्त्या साधकसत्तमः ॥ 282 ॥
स्नाने स्नाने महादेव्याः शक्त्याः पूजनमाचरेत् ॥ 283 ॥
ततो निवेश्य प्रतिमामासने सुपरिष्कृते ।
पाद्यार्घ्याद्यैरर्चयित्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥ 284 ॥
नमस्ते प्रतिमे! तुभ्यं विश्वकर्मविनिर्मिते ।
नमस्ते देवतावासे! भक्ताभीष्टप्रदे ! नमः ॥ 285 ॥
त्वयि सम्पूजयाम्याद्यां परमेशीं परात्पराम् ।
शिल्पदोषावशिष्टाङ्गं सम्पन्नं कुरु ते नमः ॥ 286 ॥

हे देवि! अब आद्या की प्रतिष्ठा का क्रम बतलाता हूँ । इसके अनुसार प्रतिष्ठित देवी शीघ्र ही वाञ्छित फल देती हैं । आद्या की प्रतिष्ठा के दिन

साधक स्नान कर शुद्ध होकर, विधिवत् संकल्प करके वास्तु देव की पूजा करे । ग्रह, दिक्पाल और गणेशादि पूजा और आभ्युदयिक पितृकर्म करके साधक सभी ब्राह्मणों के साथ प्रतिमा के समीप जाये । प्रतिष्ठित गृह में या किसी सुन्दर स्थान में साधक उत्तम प्रतिमा को लाकर पूजा करके स्नान कराये । पहले भस्म से, तब दीमक-गृह की मिट्टी से, तब वाराहदन्त और हस्तिदन्त से उत्पाटित मिट्टी से स्नान कराए । तब पञ्चकाषाय और त्रिपत्र से स्नान कराये । वाट्याल, बेर, जामुन, मौलसिरी और सेमर के पुष्प को पञ्चकाषाय कहते हैं । कनैल, बेला, चम्पा, कमल और गुलाब को पञ्चपुष्प कहा जाता है । बर्वुरा, तुलसी और बेलपत्र को त्रिपत्र कहते हैं । इन सभी द्रव्यों को जल में घोलकर स्नान कराना चाहिये । किन्तु पञ्चामृत और गन्ध तैल में जल न मिलाये । व्याहृतिसहित प्रणव गायत्री और मूल मन्त्र का उच्चारण करके कहना चाहिये कि मैं अमुक द्रव्य के जल से तुम्हें स्नान कराता हूँ । तुम्हें नमस्कार है । काली जी का स्नान-मन्त्र होता है—ॐ भुर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा एतद् द्रव्यस्य तोयेन स्नापयामि नमः ।

तदनन्तर पूर्वोक्त विधि से दुग्धादि के आठ घटों से और कुछ उष्ण जल से मूर्त्ति को स्नान कराये । श्वेत गेहूँ-चूर्ण, तिलकल्क या शालि तण्डुल-चूर्ण से मार्जन करके मूर्त्ति को सुखाये । तीर्थ-जलपूर्ण आठ घटों से स्नान कराकर वस्त्र से पोंछकर स्वच्छ अङ्गों वाली मूर्त्ति को सजाकर पूजास्थल में ले आये । यदि तीर्थजल का संग्रह न कर सके तो पच्चीस घड़े शुद्ध जल से भक्तिपूर्वक प्रतिमा को स्नान कराये । यदि समर्थ हो तो प्रति स्नान के बाद पूजा करे । तब सुन्दर आसन पर प्रतिमा को स्थित करके पाद्यार्घ्यादि से पूजा करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करे । श्लोक 285 और 286 प्रार्थना-मन्त्र हैं । हे विश्वकर्मा द्वारा निर्मित प्रतिमे ! तुम्हें नमस्कार है । हे देवतावासे ! तुम्हें नमस्कार है । हे भक्ताभीष्टप्रदे ! तुम्हें नमस्कार है । तुममें आद्या परात्परा परमेश्वरी की पूजा करता हूँ । शिल्पदोष से बचे अङ्ग को सम्पन्न करो । तुम्हें नमस्कार है ।। 268-286 ।।

ततस्तत्प्रतिमामूर्ध्नि पाणिं विन्यस्य वाग्यतः ।
अष्टोत्तरशतं मूलं जप्त्वा गात्राणि संस्पृशेत् ।। 287 ।।

षडङ्गमातृकान्यासं प्रतिमाङ्गे प्रविन्यसन् ।
षड्दीर्घभाजा मूलेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ 288 ॥
तारमायारमाद्यैश्च ङेनमोऽन्तैर्बिन्दुसंयुतैः ।
अष्टवर्गैर्देवताङ्गे वर्णन्यासं प्रकल्पयेत् ॥ 289 ॥
मुखे स्वरान्कवर्गञ्च कण्ठदेशे न्यसेद्बुधः ।
चवर्गमुदरे दक्षबाहौ टाद्यक्षराणि च ॥ 290 ॥
तवर्गञ्च वामबाहौ दक्षवामोरुयुग्मयोः ।
पवर्गञ्च यवर्गञ्च शवर्गं मस्तके न्यसेत् ॥ 291 ॥
वर्णन्यासं विधायेत्थं तत्त्वन्यासं समाचरेत् ॥ 292 ॥
पादयोः पृथिवीतत्त्वं तोयतत्त्वञ्च लिङ्गके ।
तेजस्तत्त्वं नाभिदेशे वायुतत्त्वं हृदम्बुजे ॥ 293 ॥
आस्ये गगनतत्त्वञ्च चक्षुषो रूपतत्त्वकम् ।
घ्राणयोर्गन्धतत्त्वञ्च शब्दतत्त्वं श्रुतिद्वये ॥ 294 ॥
जिह्वायां रसतत्त्वञ्च स्पर्शतत्त्वं च विन्यसेत्-।
मनस्तत्त्वं भ्रुवोर्मध्ये सहस्रदलपङ्कजे ॥ 295 ॥
शिवतत्त्वं ज्ञानतत्त्वं परतत्त्वं तथोरसि ।
जीवप्रकृतितत्त्वे च विन्यसेत्साधकाग्रणीः ।
महत्तत्त्वमहङ्कारतत्त्वं सर्वाङ्गके क्रमात् ॥ 296 ॥
तारमायारमाद्येन ङेनमोऽन्तेन विन्यसेत् ॥ 297 ॥
सबिन्दुमातृकावर्णपुटितं मूलमुच्चरन् ।
नमोऽन्तं मातृकास्थाने मन्त्रन्यासं प्रयोजयेत् ॥ 298 ॥
सर्वयज्ञमयं तेजः सर्वभूतमयं वपुः ।
इयं ते कल्पिता मूर्त्तिरत्र त्वां स्थापयाम्यहम् ॥ 299 ॥

शान्त होकर प्रतिमा के मस्तक पर हाथ रखकर 108 बार मूल मन्त्र का जप करके प्रतिमा के सारे शरीर का स्पर्श करे । तब मूर्त्ति के अङ्गों में षडङ्ग न्यास और मातृका न्यास करे । तब आकारादि षड्दीर्घ स्वरों से युक्त मूल मन्त्र से षडंग न्यास करे । जैसे—

आं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा हृदयाय नमः ।

ईं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा शिरसे स्वाहा ।

इसी प्रकार शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र-न्यास करे । तब 'ॐ ह्रीं श्रीं' पहले लगाकर वर्ग के अन्त में 'नमः' लगाकर न्यास करे । जैसे —

1. ॐ ह्रीं श्रीं अं आं..........अं अः नमः मुखे ।
2. ॐ ह्रीं श्रीं कं खं गं घं ङं नमः कण्ठदेशे ।
3. ॐ ह्रीं श्रीं चं छं जं झं ञं नमः उदरे ।
4. ॐ ह्रीं श्रीं टं ठं डं ढं णं नमः दक्षबाहवे ।
5. ॐ ह्रीं श्रीं तं थं दं धं नं नमः वामबाहुमध्ये ।
6. ॐ ह्रीं श्रीं पं फं बं भं मं नमः दक्षिण उरुमध्ये ।
7. ॐ ह्रीं श्रीं यं रं लं वं नमः वाम उरुमध्ये ।
8. ॐ ह्रीं श्रीं शं षं सं हं लं क्षं नमः शिरसे ।

इस प्रकार वर्णन्यास करके तत्त्वन्यास करे । जैसे—

1. ॐ ह्रीं श्रीं पृथ्वीतत्त्वाय नमः पादौ ।
2. ॐ ह्रीं श्रीं जलतत्त्वाय नमः लिङ्गे ।
3. ॐ ह्रीं श्रीं तेजस्तत्त्वाय नमः नाभिदेशे ।
4. ॐ ह्रीं श्रीं वायुतत्त्वाय नमः हृदये ।
5. ॐ ह्रीं श्रीं आकाशतत्त्वाय नमः मुखे ।
6. ॐ ह्रीं श्रीं रूपतत्त्वाय नमः उभयनेत्रे ।
7. ॐ ह्रीं श्रीं गन्धतत्त्वाय नमः उभयनासाछिद्रे ।
8. ॐ ह्रीं श्रीं शब्दतत्त्वाय नमः उभये कर्णे ।
9. ॐ ह्रीं श्रीं रसतत्त्वाय नमः जिह्वादेशे ।
10. ॐ ह्रीं श्रीं स्पर्शतत्त्वाय नमः त्वचादेशे ।
11. ॐ ह्रीं श्रीं मनस्तत्त्वाय नमः भ्रूमध्ये सहस्रदले ।
12. ॐ ह्रीं श्रीं शिवतत्त्वाय नमः हृदये ।
13. ॐ ह्रीं श्रीं ज्ञानतत्त्वाय नमः हृदये ।
14. ॐ ह्रीं श्रीं परतत्त्वाय नमः हृदये ।
15. ॐ ह्रीं श्रीं जीवतत्त्वाय नमः हृदये ।
16. ॐ ह्रीं श्रीं प्रकृतितत्त्वाय नमः हृदये ।
17. ॐ ह्रीं श्रीं महत्तत्त्वाय नमः सर्वाङ्गे ।
18. ॐ ह्रीं श्रीं अहङ्कारतत्त्वाय नमः सर्वाङ्गे।

बिन्दुयुक्त मातृका वर्णों से पुटित 'नमः' पदान्त मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए मातृका स्थानों में मन्त्रन्यास करे । जैसे—

अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अं नमो ललाटे ।

आं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा आं नमो मुखे ।

इं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इं नमो दक्षिणनेत्रे ।

इसी प्रकार शेष 48 वर्णों से पुटित करके न्यास करे ।

किस वर्ण का न्यास किस स्थान में होगा? मुद्रा कैसी होगी? किस उङ्गली के साथ किस उङ्गली को मिलाकर या किस उङ्गली से कौन से स्थान का स्पर्श होगा? यह पुस्तक के पञ्चम उल्लास के श्लोक 113 से 118 में देखना चाहिये । न्यास के बाद प्रार्थना करे । श्लोक 299 में यह प्रार्थना है । तुम्हारा तेज सर्वयज्ञमय है । शरीर सर्वभूतमय है । तुम्हारी यह मूर्त्ति कल्पित हुई है । इसमें तुम्हें मैं स्थापित करता हूँ ।। 287-299 ।।

ततः पूजाविधानेन ध्यानमावाहनादिकम् ।
प्राणप्रतिष्ठां सम्पाद्य पूजयेत्परदेवताम् ।। 300 ।।
देवगेहप्रदानेन ये ये मन्त्राः समीरिताः ।
त एवात्र प्रयोक्तव्या मन्त्रलिङ्गेन पूजने ।। 301 ।।
विधिवत्संस्कृते वह्नावर्चितेभ्योऽर्चिताहुतिः ।
आवाह्य देवीं सम्पूज्य जातकर्माणि साधयेत् ।। 302 ।।
जातनाम्नी निष्क्रमणमन्नप्राशनमेव च ।
चूडोपनयनं चैते षट्संस्काराः शिवोदिताः ।। 303 ।।
प्रणवं व्याहृतिं चैव गायत्रीं मूलमन्त्रकम् ।
सामन्त्रणाभिधानं ते जातकर्मादिनाम च ।। 304 ।।
सम्पादयाम्यग्निकान्तां समुच्चार्य विधानवित् ।
पञ्चपञ्चाहुतीर्दद्यात्प्रतिसंस्कारकर्मणि ।। 305 ।।
दत्तनाम्नाहुतिशतं मूलोच्चारणपूर्वकम् ।
देव्यै दत्ताहुतेरंशं प्रतिमामूर्ध्नि निःक्षिपेत् ।। 306 ।।
प्रायश्चित्तादिभिः शेषं कर्म सम्पादयन्सुधीः ।
भोजयेत्साधकान्विप्रान्दीनानाथांश्च तोषयेत् ।। 307 ।।
उक्तकर्मस्वशक्तश्चेत्पाथसां सप्तभिर्घटैः ।
स्नापयित्वार्च्चयेच्छक्त्या श्रावयेन्नामदेवताम् ।। 308 ।।

इति ते श्रीमदाद्यायाः प्रतिष्ठा कथिता प्रिये ।
एवं दुर्गादिविद्यानां महेशादिदिवौकसाम् ।। 309 ।।
चलतः शिवलिङ्गस्य प्रतिष्ठायामयं विधिः ।
प्रयोक्तव्यो विधानज्ञैर्मन्त्रेणामोहपूर्वकम् ।। 310 ।।

इति श्रीमहानिवार्णतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे आद्याकालीप्रतिष्ठानुष्ठाने वास्तु-ग्रहयागजलाशयादिप्रतिष्ठादेवगृहदानाद्यादिसर्वं-देवादिप्रतिष्ठाकथनं नाम त्रयोदशोल्लासः

❖

पूजा-विधि के अनुसार ध्यान-आवाहनादि प्राणप्रतिष्ठा तक के कर्म करके देवता की पूजा करे । देवगृह के दान में जिन मन्त्रों का वर्णन है । उन्हीं सबका प्रयोग इस पूजा में करे । विधिवत् संस्कृत अग्नि में सभी अर्चित देवताओं को आहुति देकर देवी का आवाहन करके जातकर्मादि करे । 1. जातकर्म, 2. नामकरण, 3. निष्क्रमण, 4. अन्नप्राशन, 5. चूड़ाकरण, 6. उपनयन—छः संस्कार शिवोक्त हैं । प्रणव-व्याहृति, गायत्री, मूल मन्त्र, सम्बोधनान्त नाम, संस्कार का नाम 'सम्पादयामि स्वाहा' यह कहकर पाँच-पाँच आहुतियाँ प्रदान करे । जैसे—ॐ भुर्भुवः स्वाहा तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ह्लीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा श्रीमद् आद्ये कालिके ते जातकर्म सम्पादयामि स्वाहा । इससे पाँच आहुतियाँ देकर शेष पाँच संस्कारों को इसी प्रकार करे । पूर्वोक्त नामोल्लेख करते हुए मूल मन्त्र उच्चारण कर देवी को सौ आहुतियाँ देकर आहुति का अंश प्रतिमा के मस्तक पर डाले । प्रायश्चित्तादि अवशेष कर्म करके साधकों को भोजन कराये । अनाथ और दीनों को सन्तुष्ट करे । उक्त कर्म करने में यदि असमर्थ हो तो सात घड़े जल से मूर्त्ति को स्नान कराकर यथाशक्ति पूजा करके देवी को नाम सुनाये । हे प्रिये! यही विधि श्रीमद् आद्या की प्रतिष्ठा की है । इसी प्रकार दुर्गादि सभी विद्याओं और महेशादि सभी देवों की प्रतिष्ठा करे । सचल शिवलिंग की प्रतिष्ठा में भी इसी मन्त्र से इसी विधि का प्रयोग सन्देहरहित होकर करे ।। 300-310 ।।

आद्या काली-प्रतिष्ठा-क्रम में वास्तु-ग्रहयाग-जलाशयादिप्रतिष्ठा-देवगृहदानादि सर्वदेवादिप्रतिष्ठा कथन नामक त्रयोदश उल्लास सम्पूर्ण

❖

चतुर्दश उल्लास

शिवलिङ्ग-स्थापन चतुर्विध अवधूत-विवरण

अचल लिङ्गप्रतिष्ठा की विधि और माहात्म्य

श्रीदेव्युवाच

आद्यशक्तेरनुष्ठानात्कृपया भूरिसाधनम् ।
कथितं मे कृपानाथ! तृप्तास्मि तव भावतः ।। 1 ।।
सचलस्येशलिङ्गस्य प्रतिष्ठाविधिरीरितः ।
अचलस्य प्रतिष्ठायां किं फलं विधिरेव कः ।। 2 ।।
कथ्यतां जगतां नाथ! सविशेषेण साम्प्रतम् ।
इदं हि परमं तत्त्वं प्रष्टुं वद वृणोमि कम् ।। 3 ।।
त्वत्तः को वास्ति सर्वज्ञो दयालुः सर्वविद्विभुः ।
आशुतोषो दीननाथो ममानन्दविवर्द्धनः ।। 4 ।।

श्रीसदाशिव उवाच

शिवलिङ्गस्थापनस्य माहात्म्यं किं ब्रवीमि ते ।
यत्स्थापनान्महापापैर्मुक्तो याति परं पदम् ।। 5 ।।
स्वर्णपूर्णमहीदानाद्वाजिमेधायुतार्ज्जनात् ।
निस्तोये तोयकरणाद्दीनार्त्तपरितोषणात् ।। 6 ।।
यत्फलं लभते मर्त्त्यस्तस्मात्कोटिगुणं फलम् ।
शिवलिङ्गप्रतिष्ठायां लभते नात्र संशयः ।। 7 ।।
लिङ्गरूपी महादेवो यत्र तिष्ठति कालिके ।
तत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च सेन्द्रास्तिष्ठन्ति देवताः ।। 8 ।।
सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि दृष्टादृष्टानि यानि च ।
पुण्यक्षेत्राणि सर्वाणि वर्त्तन्ते शिवसन्निधौ ।। 9 ।।
लिङ्गरूपधरं शम्भुं परितो दिग्विदिक्षु च ।
शतहस्तप्रमाणेन शिवक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ।। 10 ।।

ईशक्षेत्रं महापुण्यं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।
यत्रामरा विराजन्ते सर्वतीर्थानि सर्वदा ।। 11 ।।
क्षणमात्रं शिवक्षेत्रे यो वसेद्भावतत्पर: ।
स सर्वपापनिर्मुक्तो यात्यन्ते शङ्करालयम् ।। 12 ।।
अत्र यत्क्रियते कर्म स्वल्पं वा बहुलं तथा ।
प्रभावाद्धूर्जटेस्तस्य तत्तत्कोटिगुणं भवेत् ।। 13 ।।
यत्र तत्र कृतात्पापान्मुच्यते शिवसन्निधौ ।
शैवक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपसमं प्रिये ।। 14 ।।
पुरश्चर्य्यां जपं दानं श्राद्धं तर्पणमेव च ।
यत्करोति शिवक्षेत्रे तदानन्त्याय कल्पते ।। 15 ।।
पुरश्चर्य्याशतं कृत्वा ग्रहे शशिदिनेशयो: ।
यत्फलं तदवाप्नोति सकृज्जप्त्वा शिवान्तिके ।। 16 ।।
गयागङ्गाप्रयागेषु कोटिपिण्डप्रदो नर: ।
यत्प्राप्नोति तदत्रैव सकृत्पिण्डप्रदानत: ।। 17 ।।
अतिपातकिनो ये च महापातकिनश्च ये ।
शैवतीर्थे कृतश्राद्धास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।। 18 ।।
लिङ्गरूपी जगन्नाथो देव्या श्रीदुर्गया सह ।
यत्रास्ति तत्र तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।। 19 ।।
स्थापितेशस्य माहात्म्यं किञ्चिदेतत्प्रकाशितम् ।
अनादिभूतभूतेशमहिमा वागगोचर: ।। 20 ।।
महापीठे तवार्च्चायामस्पृश्यस्पर्शदूषणम् ।
विद्यते सुव्रते! नैतल्लिङ्गरूपधरे हरे ।। 21 ।।
यथा चक्रार्च्चने देवि! कोऽपि दोषो न विद्यते ।
शिवक्षेत्रे महातीर्थे तथा जानीहि कालिके ।। 22 ।।
बहुनात्र किमुक्तेन तवाग्रे सत्यमुच्यते ।
प्रभाव: शिवलिङ्गस्य मया वक्तुं न शक्यते ।। 23 ।।
अयुक्तवेदिकं लिङ्गं युक्तं वेदिकयापि वा ।
साधक: पूजयेद्भक्त्या स्वाभीष्टफलसिद्धये ।। 24 ।।

श्रीदेवी ने कहा कि हे कृपानाथ! आद्या कालिका के प्रसङ्ग में आपने कृपा करके बहुत से साधनों का वर्णन किया है । मैं आपके भाव से तृप्त हूँ । आपने सचल शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा-विधि को बतलाया है, किन्तु अचल लिङ्ग की प्रतिष्ठा किस प्रकार होती है और उसके स्थापना का फल क्या है? उसे विशेष

रूप से कहिये । हे जगन्नाथ! इस परमतत्त्व की जिज्ञासा के लिये मैं किसके पास जाऊँ? आपसे बढ़कर दयालु, सर्वज्ञ, प्रभु, आशुतोष, दीनानाथ और मुझे आनन्द देने वाला और कौन है?

सदाशिव ने कहा कि शिवलिङ्ग की स्थापना का माहात्म्य तुमसे क्या कहूँ । उसकी स्थापना से मनुष्य महापाप से छूटकर परम पद को प्राप्त करता है । सोने से भरी पृथ्वी का दान, दस हजार अश्वमेध यज्ञ करने, निर्जल प्रदेश में जलाशय बनवाने, दीन और आतुर जनों को सन्तुष्ट करने से जो फल प्राप्त होते हैं, उससे करोड़गुना अधिक फल शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा करने से मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है । हे कालिके! जहाँ लिङ्गरूपी महादेव रहते हैं, वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रसहित अन्यान्य देवगण वास करते हैं । साढ़े तीन करोड़ तीर्थ और गुप्त एवं प्रकाशित सभी पुण्यक्षेत्र शिव के निकट रहते हैं । लिङ्गरूपी शिव के सब ओर सौ हाथ तक के क्षेत्र को शिवक्षेत्र कहा जाता है । यह शिवक्षेत्र महापुण्यप्रदायक और सब तीर्थों से श्रेष्ठ होता है । इसमें देवगण और सभी तीर्थ विराजमान रहते हैं । जो मनुष्य क्षण भर भी शिवभावपरायण होकर शिवक्षेत्र में रहता है, वह सब पापों से छूटकर शिवलोक में जाता है । इस क्षेत्र में थोड़ा या बहुत जो भी कर्म किया जाता है, वह महादेव के प्रभाव से करोड़गुना बढ़ जाता है । जहाँ-तहाँ किए गए पापों से तो छुटकारा मिल जाता है, किन्तु शिव के समीप शिवक्षेत्र में किया गया पाप वज्रलेप के समान होता है, उससे छुटकारा नहीं मिलता । पुरश्चरण, जप, दान, श्राद्ध एवं तर्पण आदि जो कोई कर्म शिवक्षेत्र में किया जाता है, उसका फल अनन्त होता है । चन्द्र या सूर्यग्रहण में सौ पुरश्चरण करने जो फल मिलता है, वह शिव के पास एक बार ही जप करने से मिल जाता है । गया, गंगा, प्रयाग में करोड़ पिण्डदान करने से जो फल मिलता है, वह शिवक्षेत्र में एक बार पिण्डदान करने से मिल जाता है । जो अति पापी या महापापी होते हैं, उनको भी इस शिवक्षेत्र में एक बार ही श्राद्ध करने से परमगति मिल जाती है । लिङ्गरूपी जगन्नाथ श्रीदुर्गा के साथ जिस स्थान में रहते हैं, उस स्थान में चौदहो भुवन वास करते हैं । स्थापित महादेव के कुछ माहात्म्य का वर्णन मैंने किया । महादेव के जो अनादि लिङ्ग हैं, उनकी महिमा का वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता । हे सुव्रते! महापीठों में तुम्हारी पूजा में छुआछूत का दोष है; परन्तु लिङ्गरूपी महेश्वर में यह

दोष नहीं है । हे देवि! हे कालिके!! चक्रार्चन काल में जैसे कोई दोष नहीं होता, उसी प्रकार महातीर्थस्वरूप शिवक्षेत्र में स्पर्शदोष नहीं होता । इसके बारे में मैं अधिक क्या कहूँ? तुमसे सच्ची बात कहता हूँ कि शिवलिङ्ग के पूर्ण प्रभाव को व्यक्त करना मेरी शक्ति से बाहर है । शिवलिङ्ग गौरी-पट्ट से संयुक्त हो या न हो, साधक को अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिये भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करनी चाहिये ।। 1-24 ।।

अधिवास

प्रतिष्ठापूर्वसायाह्ने देवतां योऽधिवासयेत् ।
सोऽश्वमेधायुतफलं लभते साधकोत्तमः ।। 25 ।।
मही गन्धः शिला धान्यं दूर्वा पुष्पं फलं दधि ।
घृतं स्वस्तिकसिन्दूरं शङ्खकज्जलरोचनाः ।। 26 ।।
सिद्धार्थं काञ्चनं रौप्यं ताम्रं दीपञ्च दर्पणम् ।
अधिवासविधौ विंशद्द्रव्याण्येतानि योजयेत् ।। 27 ।।
प्रत्येकं द्रव्यमादाय मायया ब्रह्मविद्यया ।
अनेनामुष्य पदतः शुभमस्त्वधिवासनम् ।। 28 ।।
इति स्पृशेत्साध्यभालं मह्याद्यैः सर्ववस्तुभिः ।
ततः प्रशस्तिपात्रेण त्रिधैवमधिवासयेत् ।। 29 ।।
अनेन विधिना देवमधिवास्य विधानवित् ।
गृहदानविधानेन दुग्धाद्यैः स्नापयेत्ततः ।। 30 ।।
सम्मार्ज्य वाससा लिङ्गं स्थापयित्वासनोपरि ।
पूजानुष्ठानविधिना गणेशादीन् समर्च्चयेत् ।। 31 ।।
प्रणवेन करन्यासौ प्राणायामं विधाय च ।
ध्यायेत्सदाशिवं शान्तं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।। 32 ।।

जो साधक देवता की प्रतिष्ठा के एक दिन पहले सन्ध्या में देवता का अधिवास करता है, वह दश हजार अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है । अधिवास के 20 द्रव्य प्रशस्त माने गये हैं । वे हैं—1. मही, 2. गन्ध, 3. शिला, 4. धान्य, 5. दूर्वा, 6. फूल, 7. फल, 8. दही, 9. घी, 10. स्वस्तिक, 11. सिन्दूर, 12. शंख, 13. काजल, 14. गोरोचन, 15. श्वेत सरसो, 16. सोना, 17. चाँदी, 18. ताम्बा, 19. दीपक, 20. दर्पण । इनमें से एक-एक द्रव्य को लेकर इस प्रकार कथन करे —ह्रीं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि

धियो यो नः प्रचोदयात् अनेन द्रव्येण अमुष्य देवतस्य शुभमधिवासनमस्तु । उक्त मन्त्र द्वारा मही आदि प्रत्येक वस्तु को देवता के ललाट से स्पर्श कराये । इसी प्रकार प्रशस्ति पात्र द्वारा तीन बार अधिवास करे । इस विधि से देवता का अधिवास करके गृहप्रतिष्ठा विधि से दुग्धादि से उस देवता को स्नान कराये । स्नान के बाद वस्त्र से शिवलिङ्ग का मार्जन करे । आसन पर स्थापित करे । पूजानुष्ठान की विधि से गणेशादि देवताओं का अर्चन करे । प्रणव से करांगन्यास और प्राणायाम करके कोटि चन्द्र के समान प्रभा वाले शान्तस्वरूप सदाशिव का ध्यान करे ।। 25-32 ।।

सदाशिव का ध्यान

व्याघ्रचर्मपरीधानं नागयज्ञोपवीतिनम् ।
विभूतिलिङ्गसर्वाङ्गं नागालङ्कारभूषितम् ।। 33 ।।
धूम्रपीतारुणश्वेतरक्तैः पञ्चभिराननैः ।
युक्तं त्रिनयनं बिभ्रज्जटाजूटधरं विभुम् ।। 34 ।।
गङ्गाधरं दशभुजं शशिशोभितमस्तकम् ।
कपालं पावकं पाशं पिनाकं परशुं करैः ।। 35 ।।
वामैर्दधानं दक्षैश्च शूलं वज्राङ्कुशं शरम् ।
वरञ्च बिभ्रतं सर्वैर्देवैर्मुनिवरैः स्तुतम् ।। 36 ।।
परमानन्दसन्दोहोल्ल सत्कुटिललोचनम् ।
हिमकुन्देन्दुसङ्काशं वृषासनविराजितम् ।। 37 ।।
परितः सिद्धगन्धर्वैरप्सरोभिरहर्निशम् ।
गीयमानमुमाकान्तमेकान्तशरणप्रियम् ।। 38 ।।

इन छः श्लोकों में शिव जी का ध्यान है । सदाशिव का वस्त्र वाघम्बर है । नाग का जनेऊ है । सारे शरीर में भस्म रमा है । नागों के आभूषण शोभित हैं । उनके पाँच मुखों का वर्ण धूम्र, पीला, लाल, उजला और रक्तिम है । तीन नेत्र हैं । शिर पर जटाजूट है । जटा में गंगा है । दश हाथ हैं । ललाट पर दूज का चाँद है । बाँयें पाँच हाथों में कपाल, अग्नि, पाश, धनुष और फरसा है । दाँयें पाँच हाथों में त्रिशूल, व्रज, अंकुश, वाण और वरमुद्रा है । वे सभी देवों में श्रेष्ठ हैं । मुनियों द्वारा वन्दित हैं । उनके बाँके नेत्र परमानन्द से उल्लसित हैं । उनका वर्ण वर्फ, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान श्वेत है । वाहन वृषभ है । चारो दिशाओं में स्थित सिद्धों गन्धर्वों और अप्सराओं द्वारा

स्तूयमान हैं । उमा के पति हैं । शरणागत भक्तों के एकमात्र प्रिय सदाशिव का ध्यान करता हूँ ।। 33-38 ।।

शिवबीजमन्त्र

इति ध्यात्वा महेशानं मानसैरुपचारकैः ।
सम्पूज्यावाह्य तल्लिङ्गे यजेच्छक्त्या विधानवित् ।। 39 ।।
आसनाद्युपचाराणां दाने मन्त्राः पुरोदिताः ।
मूलमन्त्रमहं वक्ष्ये महेशस्य महात्मनः ।। 40 ।।
माया तारः शब्दबीजं सन्ध्यर्णान्ताक्षरान्वितम् ।
अर्द्धेन्दुबिन्दुभूषाढ्यं शिवबीजं प्रकीर्तितम् ।। 41 ।।

इस प्रकार सदाशिव का ध्यान करके मानसिक उपचारों से उनकी पूजा करे । उसी लिङ्ग पर उनका आवाहन करके यथाशक्ति उनकी पूजा करे । आसनादि सभी उपचारों के मन्त्रों को पहले बतलाया जा चुका है । अब महेश्वर का मूल मन्त्र बतलाता हूँ । माया 'ह्रीं', प्रणव 'ॐ', शब्दबीज 'ह' और चन्द्रबिन्दु के संयोग से यह मन्त्र होता है— ह्रीं ॐ ह्रौं । इसे ही शिवबीज कहते हैं ।। 39-41 ।।

गौरीपट्ट का शोधन

सुगन्धिपुष्पमाल्येन वाससाच्छाद्य शङ्करम् ।
निवेश्य दिव्यशय्यायां वेदीमेवं विशोधयेत् ।। 42 ।।
वेद्यां प्रपूजयेद्देवीमेवमेव विधानतः ।
माययात्र करन्यासौ प्राणायामं समाचरेत् ।। 43 ।।
उद्यद्भानुसहस्रकान्तिममलां वह्न्यर्कचन्द्रेक्षणां
मुक्तायन्त्रितहेमकुण्डललसत्स्मेराननाम्भोरुहाम् ।
हस्ताब्जैरभयं वरञ्च दधतीं चक्रं तथाब्जं दधत्
पीनोत्तुङ्गपयोधरां भयहरां प्रीताम्बरां चिन्तये ।। 44 ।।
इति ध्यात्वा महादेवीं पूजयेन्निजशक्तितः ।
ततस्तु दशदिक्पालान्वृषभञ्च समर्च्चयेत् ।। 45 ।।
भगवत्या मनुं वक्ष्ये येनाराध्या जगन्मयी ।। 46 ।।
मायां लक्ष्मीं समुच्चार्य सान्तं षष्ठस्वरान्वितम् ।
बिन्दुयुक्तं तदन्ते च योजयेद्वह्निवल्लभाम् ।। 47 ।।

सुगन्धित पुष्प-माला और वस्त्र से शिवलिङ्ग को ढ़ँककर दिव्य शय्या पर

स्थापित करे । तब गौरीपट्ट का शोधन करे । गौरीपट्ट पर देवी का पूजन इस प्रकार करे । पहले 'ह्रीं' बीज से करन्यास करे, तब प्राणायाम करे । तब देवी का ध्यान करे । श्लोक 44 देवी का ध्यानमन्त्र है ।

देवी की कान्ति उदीयमान हजार सूर्यों के समान है । वे निर्मल हैं । अग्नि, सूर्य और चन्द्र—तीन नेत्र हैं । मुस्कानयुक्त मुखकमल मोतीजटित स्वर्णकुण्डलों से शोभायमान है । उनके चार हाथों में चक्र, पद्म, वर और अभय मुद्रा है । दोनों स्तन मोटे और उत्तुङ्ग हैं । ऐसी भयहारिणी, पीतवस्त्रा भगवती का मैं ध्यान करता हूँ । इस प्रकार ध्यान करके महादेवी का पूजन यथाशक्ति करे । दश दिक्पालों और वृषभ की पूजा करे । जिस मन्त्र से भगवती की आराधना करनी चाहिये, उसे बताता हूँ । माया 'ह्रीं', लक्ष्मी 'श्रीं' और षष्ठस्वर से युक्त 'ह' में चन्द्रबिन्दु जोड़कर 'हूँ' उच्चारण करे । अन्त में 'वह्निजाया स्वाहा' जोड़े । इस प्रकार 'ह्रीं श्रीं हूँ स्वाहा' मन्त्र बनता है ।। 42-47 ।।

सर्वदेव बलि

पूर्ववत्स्थापयन्देवीं सर्वदेवबलिं हरेत् ।
दधियुक्तं माषभक्तं शर्करादिसमन्वितम् ।। 48 ।।
ऐशान्यां बलिमादाय वारुणेन विशोधयेत् ।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाभ्यां मन्त्रेणानेन चार्पयेत् ।। 49 ।।
सर्वे देवाः सिद्धगणा गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
पिशाचा मातरो यक्षा भूताश्च पितरस्तथा ।। 50 ।।
ऋषयो येऽन्यदेवाश्च बलिं गृह्णन्तु संयताः ।
परिवार्य्य महादेवं तिष्ठन्तु गिरिजामपि ।। 51 ।।

पूर्ववत् देवी को स्थापित करके सब देवों के लिये शक्करमिश्रित दहीयुक्त उड़द के भात की बलि प्रदान करे । इस बलि को ईशान कोण में रखकर वरुणबीज 'वं' से शुद्ध करे । गन्ध-पुष्प से उसकी पूजा करके निम्न मन्त्र से उसका उत्सर्ग करें। श्लोक 50-51 बलिप्रदान मन्त्र हैं । सभी देव, सिद्धगण, ऋषि और अन्य देवगण संयत होकर बलि ग्रहण करें । यह सब महादेव और महादेवी गिरिजा के चारो ओर विराजें ।। 48-51 ।।

शिवस्थापन

ततो जपेन्महादेव्या मन्त्रमेतं यथेप्सितम् ।
गीतवाद्यादिभिः सद्भिर्विदध्यान्मङ्गलक्रियाम् ।। 52 ।।

अधिवासं विधायेत्थं परेऽह्नि विहितक्रियः ।
सङ्कल्पं विधिवत्कृत्वा पञ्चदेवान्प्रपूजयेत् ॥ 53 ॥
मातृपूजां वसोर्धारां वृद्धिश्राद्धं समाचरन् ।
महेशद्वारपालांश्च यजेद्भक्त्या समाहितः ॥ 54 ॥
नन्दी महाबलः कीशवदनो गणनायकः ।
द्वारपालाः शिवस्यैते सर्वे शस्त्रास्त्रपाणयः ॥ 55 ॥
ततो लिङ्गं समानीय वेदीरूपां च तारिणीम् ।
मण्डले सर्वतोभद्रे स्थापयेद्वा शुभासने ॥ 56 ॥
अष्टभिः कलशैः शम्भुं मनुना त्र्यम्बकेन च ।
स्नापयित्वार्चयेद्भक्त्या षोडशैरुपचारकैः ॥ 57 ॥
वेदीं च मूलमन्त्रेण तद्वत्संस्थाप्य पूजयन् ।
कृताञ्जलिपुटः साधुः प्रार्थयेच्छङ्करं शिवम् ॥ 58 ॥
आगच्छ भगवञ्छम्भो ! सर्वदेवनमस्कृत ।
पिनाकपाणे! सर्वेश! महादेव! नमोऽस्तु ते ॥ 59 ॥
आगच्छ मन्दिरे देव ! भक्तानुग्रहकारक ।
भगवत्या सहागच्छ कृपां कुरु नमो नमः ॥ 60 ॥
मातर्देवि ! महामाये ! सर्वकल्याणकारिणि ।
प्रसीद शम्भुना सार्द्धं नमस्तेऽस्तु हरप्रिये ॥ 61 ॥
आयाहि वरदे देवि ! भवनेऽस्मिन्वरप्रदे ।
प्रीता भव महेशानि ! सर्वसम्पत्करी भव ॥ 62 ॥
उत्तिष्ठ देवदेवेशि स्वैः स्वैः परिकरैः सह ।
सुखं निवसतां गेहे प्रीयतां भक्तवत्सलौ ॥ 63 ॥

तब महादेवी के मन्त्र 'ह्रीं श्रीं हूँ स्वाहा' का यथाशक्ति जप करे । उत्तम गीत, बाजा से उत्सव मनाए । इस प्रकार अधिवास कर अगले दिन नित्य क्रिया कर यथाविधि संकल्प करके पञ्चदेवों का पूजन करे । मातृका पूजन, वसुधारा और वृद्धिश्राद्ध करके भक्तिपूर्वक महेश्वर की और नन्दी आदि द्वारपालों की पूजा करे । 1. नन्दी, 2. महाबल, 3. कीशवदन, 4. गणनायक—ये शिव के द्वारपाल हैं । ये सभी अस्त्र-शस्त्रधारी हैं । तब वेदीरूप तारिणी और शिवलिङ्ग को लाकर सर्वतोभद्र मण्डल में या उत्तम आसन पर स्थापित करे । तब 'ह्रीं ॐ ह्रौं त्र्यम्बकं यजामहे' का पाठ करते हुए आठ कलश जल से महादेव को स्नान कराकर षोडशोपचार से पूजा करे । तब 'ह्रीं श्रीं हूँ स्वाहा'

से वेदी को स्थापित कर उस पर लिङ्ग को स्थापित करे और पूजा करे । तब हाथ जोड़कर मङ्गलमय शिव की प्रार्थना करे । श्लोक 59-63 प्रार्थनामन्त्र है ।

हे भगवन् शम्भो! हे सब देवों से नमस्कृत! हे पिनाकपाणे! हे सर्वेश! हे महादेव! आओ तुम्हें नमस्कार है । हे देव! तुम मन्दिर में आओ । हे भक्तों पर कृपा करने वाले! कृपया भगवती के साथ आओ । तुम्हें बारम्बार नमस्कार है । हे महामाये! हे सर्वकल्याणकारिणि! हे हरप्रिये! हे मातः! हे देवि! महेश्वर के साथ तुम प्रसन्न होओ, तुम्हें नमस्कार । हे वरदे! हे देवि! इस भवन में आओ । हे वरदायिनि! प्रसन्न होओ । हे महेश्वरि! मुझे सब सम्पत्तियाँ प्रदान करो । हे देव! हे देवेशि! अपने-अपने परिवार के साथ उठो । तुम दोनों भक्तवत्सल इस गृह में सुख से निवास करो और प्रसन्न होओ ।। 52-63 ।।

इति प्रार्थ्य शिवं देवीं मङ्गलध्वनिपूर्वकम् ।
प्रदक्षिणं त्रिधा वेश्म कारयित्वा प्रवेशयेत् ।। 64 ।।
पाषाणखनिते गर्त्ते इष्टकारचितेऽपि वा ।
अधस्त्रिभागलिङ्गस्य रोपयेन्मूलमुच्चरन् ।। 65 ।।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्पृथ्वी च सागरः ।
तावदत्र महादेव स्थिरो भव नमोऽस्तु ते ।। 66 ।।
मन्त्रेणानेन सुदृढं कारयित्वा सदाशिवम् ।
उत्तराग्रां तत्र वेदिं मूलेनैव प्रवेशयेत् ।। 67 ।।
स्थिरा भव जगद्धात्रि ! सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
यावद्दिवानिशानाथौ तावदत्र स्थिरा भव ।। 68 ।।
अनेन सुदृढीकृत्य लिङ्गं स्पृष्ट्वा पठेदिमम् ।। 69 ।।
व्याघ्रा भूतपिशाचाश्च गन्धर्वाः सिद्धचारणाः ।
यक्षा नागाश्च वेताला लोकपाला महर्षयः ।। 70 ।।
मातरो गणनाथाश्च विष्णुर्ब्रह्मा बृहस्पतिः ।
यस्य सिंहासने युक्ता भूचराः खेचरास्तथा ।। 71 ।।
आवाहयामि तं देवं त्र्यक्षमीशानमव्ययम् ।
आगच्छ भगवन्नत्र ब्रह्मनिर्मितयन्त्रके ।। 72 ।।
ध्रुवाय भव सर्वेषां शुभाय च सुखाय च ।
ततो देवप्रतिष्ठोक्तविधिना स्नापयञ्छिवम् ।। 73 ।।
प्राग्वद्ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूजयेत्प्रिये ।
विशेषमर्घ्यं संस्थाप्य समर्च्य गणदेवताः ।

पुनर्ध्यात्वा महेशानं पुष्पं लिङ्गोपरि न्यसेत् ।। 74 ।।
पाशाङ्कुशपुटा शक्तिर्यादिसान्ताः सबिन्दुकाः ।
हौं हं स इति मन्त्रेण तत्र प्राणान्निवेशयेत् ।
चन्दनागुरुकाश्मीरैर्विलिप्य गिरिजापतिम् ।। 75 ।।
यजेत्प्रागुक्तविधिना षोडशैरुपचारकैः ।
जातनामादिसंस्कारान्कृत्वा पूर्वविधानवत् ।। 76 ।।
समाप्य सर्वं विधिवद्वेद्यां देवीं महेश्वरीम् ।
अभ्यर्च्य तत्र देवस्य मूर्तीरष्टौ प्रपूजयेत् ।। 77 ।।

इस प्रकार महेश्वर और महेश्वरी की प्रार्थना कर मङ्गल ध्वनि करते हुए तीन बार मन्दिर की प्रदक्षिणा कर उन्हें मन्दिर में प्रवेश कराये । तब मूल मन्त्र जपते हुए निम्न मन्त्र से पाषाण-खनित गर्त्त में या मिट्टी से बने गर्त्त के मध्य में लिङ्ग के नीचे का तीन भाग रोपित करे । इस मन्त्र से प्रार्थना करे । श्लोक 66 प्रार्थना है । जब तक चन्द्र और सूर्य हैं, जब तक पृथ्वी और सागर हैं तब तक हे महादेव! तुम इस स्थान में स्थिर होकर रहो, तुम्हें नमस्कार है । इस मन्त्र से सदाशिव को दृढ़ रूप से स्थापित करके मूल मन्त्र जपते हुए उत्तरमुखी गौरीपट्ट को उनके ऊपर रक्खे और श्लोकमन्त्र 68 का पाठ करे । हे सृष्टिस्थितिसंहारकारिणि! हे जगद्धात्रि! तुम स्थिर होओ । जब तक सूर्य और चन्द्र हैं तब तक इस स्थान में स्थिर रहो । इस प्रकार यन्त्र को सुदृढ़ करके लिङ्ग को स्पर्श किए हुए श्लोक 70-72 का पाठ करे । व्याघ्र, भूत, पिशाच, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, यक्ष, नाग, वेताल, लोकपाल, महर्षि, मातायें, गणपति, विष्णु, ब्रह्मा, वृहस्पति, भूचर, खेचर जिनके सिंहासन से युक्त हैं, उन अव्यय, त्रिलोचन, ईशान का मैं आवाहन करता हूँ । हे भगवन्! ब्रह्मनिर्मित इस यन्त्र में आइये और सभी प्राणियों के लिये सुख तथा मङ्गलदायक होइये । देवप्रतिष्ठा में वर्णित विधि से शिव को स्नान कराए । हे प्रिये! पूर्ववत् ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करे । विशेषार्घ्य स्थापित कर गणदेवताओं की पूजा करके पुनः ,ध्यान कर लिङ्ग पर पुष्प चढ़ाये । पाश 'आं' एवं अंकुश 'क्रों' से पुटित माया 'ह्रीं' का उच्चारण कर यं से सं तक के सात अक्षरों को अनुस्वारयुक्त क़र उनका पाठ कर अन्त में 'हौं हंसः' मन्त्रोच्चार कर उक्त लिङ्ग में प्राणप्रतिष्ठा करे । मन्त्र है—आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः शिव जीव इह स्थितः शिव प्राण इह स्थितः शिव सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितः । चन्दन,

अगर, कुंकुम से गिरिजापति के अङ्गों को चर्चित कर पूर्वोक्त विधि से षोड़शोपचार पूजन करे । तब पूर्ववर्णित विधि से जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार करके वेदी पर देवी महेश्वरी की पूजा करने के बाद उस पर देवदेव अष्टमूर्ति की पूजा करे ।। 64-77 ।।

अष्टमूर्ति-पूजन

शर्वः क्षितिः समुद्दिष्टा भवो जलमुदाहृतम् ।
रुद्रोऽग्निरुग्रो वायुः स्याद्भीम आकाशशब्दितः ।। 78 ।।
पशोः पतिर्यजमानो महादेवः सुधाकरः ।
ईशानः सूर्य इत्येता मूर्त्तयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।। 79 ।।
प्रणवादिनमोऽन्तेन प्रत्येकाह्वानपूर्वकम् ।
पूर्वादीशानपर्य्यन्तमष्टमूर्त्तीः क्रमाद्यजेत् ।। 80 ।।
इन्द्रादिदिक्पतीनिष्ट्वा ब्राह्म्यद्याश्चाष्टमातृकाः ।
वृषं वितानं गेहादि दद्यादीशाय साधकः ।। 81 ।।
ततः कृताञ्जलिर्भक्त्या प्रार्थयेत्पार्वतीपतिम् ।। 82 ।।

आदि में प्रणव 'ॐ' और अन्त में 'नमः' लगाकर प्रत्येक मूर्त्ति का आवाहन कर पूर्व से ईशान कोणों तक आठो मूर्त्तियों का पूजन इस प्रकार करे । आठ मूर्तियाँ—1. शर्व, 2. भव, 3. रुद्र, 4. उग्र, 5. भीम, 6. पशुपति, 7. सोम, 8. सूर्य हैं ।

1. हे शर्व! हे क्षितिमूर्ते! इहागच्छ! इहागच्छ । इह तिष्ठ, इह तिष्ठ । इह सन्निधेहि, इह सन्निधेहि । इह सम्मुखीभव, इह सम्मुखीभव । इह सन्निरुद्धो भव, इह सन्निरुद्धो भव । मम पूजां गृहाण ॐ शर्वाय क्षितिमूर्त्तये नम पाद्यं सर्मपयामि अर्घ्यं समर्पयामि इत्यादि । इसी प्रकार नाम बदल कर शेष सात मूर्त्तियों की भी पूजा करे । पूजन मन्त्र इस प्रकार के होंगे—2. भवाय जलमूर्त्तये नमः । 3. रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः । 4. उग्राय वायुमूर्त्तये नमः । 5. भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः । 6. पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः । 7. महादेवाय सोममूर्त्तये नमः । 8. ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः । इसके बाद इन्द्रादि दश दिक्पालों और ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं की पूजा कर वृषभ, वितान, गृह आदि सबों का महेश्वर के लिये उत्सर्ग करे । तब हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक पार्वतीपति महादेव से प्रार्थना करे ।। 78-82 ।।

प्रार्थना आदि

गृहेऽस्मिन्करुणासिन्धो! स्थापितोऽसि मया प्रभो ।
प्रसीद भगवञ्छम्भो ! सर्वकारणकारण ।। 83 ।।
यावत्ससागरा पृथ्वी यावच्छशिदिवाकरौ ।
तावदस्मिन्गृहे तिष्ठ नमस्ते परमेश्वर ।। 84 ।।
गृहेऽस्मिन्यस्य कस्यापि जीवस्य मरणं भवेत् ।
न तत्पापैः प्रलिप्येऽहं प्रसादात्तव धूर्जटे ।। 85 ।।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य गृहं व्रजेत् ।
प्रभाते पुनरागत्य स्नापयेच्चन्द्रशेखरम् ।। 86 ।।
शुद्धैः पञ्चामृतैः स्नानं प्रथमं प्रतिपादयेत् ।
ततः सुगन्धितोयानां कलशैः शतसंख्यकैः ।। 87 ।।
सम्पूज्य तं यथाशक्त्या प्रार्थयेद्भक्तिभावतः ।। 88 ।।
विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् ।
सम्पूर्णमस्तु तत्सर्वं त्वत्प्रसादादुमापते ।। 89 ।।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्पृथ्वी च सागराः ।
तावन्मे कीर्तिरतुला लोके तिष्ठतु सर्वदा ।। 90 ।।
नमस्त्र्यक्षाय रुद्राय पिनाकवरधारिणे ।
विष्णुब्रह्मेन्द्रसूर्याद्यैरर्चिताय नमो नमः ।। 91 ।।
ततस्तु दक्षिणां दत्त्वा भोजयेत्कौलिकान्द्विजान् ।
भक्ष्यैः पेयैश्च वासोभिर्दरिद्रान्परितोषयेत् ।। 92 ।।
प्रत्यहं पूजयेद्देवं यथाविभवमात्मनः ।
स्थावरं शिवलिङ्गं तु न कदापि विचालयेत् ।। 93 ।।
अचलस्येशलिङ्गस्य प्रतिष्ठा कथितेति ते ।
सङ्क्षेपात्परमेशानि ! सर्वागमसमुद्धृता ।। 94 ।।

श्लोक 83-85 प्रार्थनामन्त्र है । हे दयासागर! मैंने तुम्हें इस गृह में स्थापित किया है । हे प्रभो! तुम सभी कारणों के कारण हो । हे भगवन् शम्भो! प्रसन्न होओ । हे परमेश्वर! जब तक सागरों सहित पृथ्वी है, जब तक सूर्य-चन्द्र हैं तब तक तुम इस गृह में रहो । तुम्हें नमस्कार है । हे धूर्जटे! इस गृह में जिस-किसी जीव की मृत्यु हो, तुम्हारी कृपा से उसका पाप मुझे न लगे । इसके बाद प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे और घर जाये । अगले दिन प्रातः वहीं आकर चन्द्रशेखर को स्नान कराए । तब यथाशक्ति पूजा करके प्रार्थना करे ।

श्लोक 89-91 प्रार्थना के मन्त्र हैं । हे उमापति! इस पूजा में जो कुछ विधिहीन, क्रियाहीन, भक्तिहीन हुआ हो, वह सब तुम्हारी कृपा से पूर्ण हो । जब तक सूर्य-चन्द्र हैं, पृथ्वी और सागर हैं तब इस संसार में मेरा अनुपम यश बना रहे । श्रेष्ठ पिनाकधारी त्रिनेत्र रुद्र को नमस्कार है । ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सूर्यादि द्वारा पूजित महेश्वर को बारम्बार नमस्कार है । दक्षिणा देकर कौलिकों और ब्राह्मणों को भोजन कराये । तब दरिद्रों को भक्ष्य, भोज्य, पेय द्रव्यों और वस्त्रों से सन्तुष्ट करे । प्रतिदिन महेश्वर की पूजा यथाशक्ति करे; किन्तु स्थावर शिवलिङ्ग को स्थान से कभी न हटाये । हे परमेश्वरि! सभी आगमों से उद्धृत कर संक्षेप में अचल शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा की विधि का वर्णन मैंने किया ।। 83-94 ।।

अकस्मात् पूजा रुक जाने पर कर्त्तव्य

श्रीदेव्युवाच

यद्यकस्माद्देवतानां पूजाबाधो भवेद्विभो ।
विधेयं तत्र किं भक्तैस्तन्मे कथय तत्त्वतः ।। 95 ।।
अपूजनीयाः कैर्दोषैर्भवेयुर्देवमूर्त्तयः ।
त्याज्या वा केन दोषेण तदुपायश्च भण्यताम् ।। 96 ।।

श्रीसदाशिव उवाच

एकाहमर्चनाबाधे द्विगुणं देवमर्चयेत् ।
दिनद्वये तद्द्विगुणं तद्द्वैगुण्यं दिनत्रये ।। 97 ।।
ततः षण्मासपर्यन्तं यदि पूजा न सम्भवेत् ।
तदाष्टकलशैर्देवं स्नापयित्वा यजेत्सुधीः ।। 98 ।।
षण्मासात्परतो देवं प्राक्संस्कारविधानतः ।
पुनः सुसंस्कृतं कृत्वा पूजयेत्साधकाग्रणीः ।। 99 ।।
खण्डितं स्फुटितं व्यङ्गं संस्पृष्टं कुष्ठरोगिणा ।
पतितं दुष्टभूम्यादौ न देवं पूजयेद्बुधः ।। 100 ।।
हीनाङ्गस्फुटितं भग्नं देवं तोये विसर्जयेत् ।
स्पर्शादिदोषदुष्टं तु संस्कृत्य पुनरर्चयेत् ।। 101 ।।
महापीठेऽनादिलिङ्गे सर्वदोषविवर्जिते ।
सर्वदा पूजयेत्तत्र स्वं स्वमिष्टं सुखाप्तये ।। 102 ।।
यद्यत्पृष्टं महाभागे ! नृणां कर्मानुजीविनाम् ।
निःश्रेयसाय तत्सर्वं सविशेषं प्रकीर्त्तितम् ।। 103 ।।

विना कर्म न तिष्ठन्ति क्षणार्द्धमपि देहिनः ।
अनिच्छन्तोऽपि विवशाः कृष्यन्ते कर्म वायुना ।। 104 ।।
कर्मणा सुखमश्नन्ति दुःखमश्नन्ति कर्मणा ।
जायन्ते च प्रलीयन्ते वर्त्तन्ते कर्मणो वशात् ।। 105 ।।
अतो बहुविधं कर्म कथितं साधनान्वितम् ।
प्रवृत्तयेऽल्पबोधानां दुश्चेष्टितनिवृत्तये ।। 106 ।।

भगवती ने पूछा कि हे विभो! यदि अकस्मात् किसी दिन देवता की पूजा न हो सके तो भक्तों को क्या करना चाहिये? जिस दोष से देवमूर्त्ति अपूज्य और त्याज्य हो जाती है, वह भी मुझे बताइये । श्रीसदाशिव ने कहा कि यदि किसी दिन पूजा न हो सके तो अगले दिन उस देवमूर्त्ति की पूजा दुगुनी करे । दो दिनों तक पूजा न हो सके तो चौगुनी और तीन दिनो तक पूजा न हो सके तो आठगुनी पूजा करे । यदि छः महीने तक पूजा न हो सके तो आठ कलश जल से देवमूर्त्ति को स्नान कराकर पूजा करे । यदि छः मास से अधिक समय तक पूजा न हो सके तो पूर्वोक्त संस्कार विधि से देवमूर्त्ति को पुनः सुसंस्कृत करके पूजा करे । जो देवमूर्त्ति टूटी हो, छिद्र वाली हो, कुष्ठरोगी द्वारा छू गयी हो या अङ्गहीन हो उसे जल में विसर्जित कर दे । जो मूर्त्ति दूषित होकर भूमि पर गिर पड़ी हो, उसकी पूजा न करे । अङ्गहीन, टूटी, छिद्र वाली मूर्त्ति का विसर्जन जल में करे; किन्तु स्पर्शादि दोषों से दूषित मूर्त्ति का पुनः संस्कार करके पूजा कर सकते हैं । महापीठ में जो अनादि लिङ्ग होता है, उसमें अस्पृश्य स्पर्शादि दोष नहीं लगते । अतः सुख पाने के लिये उनमें सदा अपने अभीष्ट देवता की पूजा करे । हे महामाये! कर्म के अनुसार जीवित रहने वाले मनुष्यों के कल्याण के लिये तुमने जो-जो पूछा, मैंने तुम्हें वह सब बतला दिया । मनुष्य विना कर्म के एक क्षण भी नहीं रह सकते । इच्छा न होते हुए भी वे विवश होकर कर्मरूपी वायु से आकृष्ट होते हैं । कर्मों से ही वे सुख पाते हैं, दुख भोगते हैं, जन्म पाते हैं, मृत्यु प्राप्त करते हैं और कर्मों के वश में रहकर ही वे जीवित रहते हैं । इसीलिये मैंने अल्पज्ञ मनुष्यों की प्रवृत्ति के लिये और दुष्प्रवृत्ति के निवारण के लिये साधनसहित बहुत से कर्मों का वर्णन किया है । जो अनेक जन्मों में बहुत से कर्म करके तत्त्वज्ञानी हो गये हैं, उनके लिये नहीं; बल्कि जो संसारी अविद्या से पूर्ण हैं, उन्हीं के लिये इन सभी कर्मों का निर्देश दिया है ।। 95-106 ।।

कर्मफल

यतो हि कर्म द्विविधं शुभञ्चाशुभमेव च ।
अशुभात्कर्मणो यान्ति प्राणिनस्तीव्रयातनाम् ।। 107 ।।
कर्मणोऽपि शुभाद्देवि ! फलेष्वासक्तचेतसः ।
प्रयान्त्यायान्त्यमुत्रेह कर्मशृङ्खलयन्त्रिताः ।। 108 ।।
यावन्न क्षीयते कर्म शुभं वाशुभमेव वा ।
तावन्न जायते मोक्षो नृणां कल्पशतैरपि ।। 109 ।।
यथा लोहमयैः पाशैः पाशैः स्वर्णमयैरपि ।
तथा बद्धा भवेज्जीवः कर्मभिश्चाशुभैः शुभैः ।। 110 ।।
कुर्वाणः सततं कर्म कृत्वा कष्टशतान्यपि ।
तावन्न लभते मोक्षं यावज्ज्ञानं न विन्दति ।। 111 ।।

कर्म दो प्रकार के हैं—शुभ और अशुभ । अशुभ कर्म करने से प्राणियों को बहुत-सी यातनाओं को भोगना पड़ता है । वे परलोक में आते-जाते रहते हैं । शुभ या अशुभ कर्मों का क्षय न होने पर सौ कल्पों तक भी मनुष्य की मुक्ति नहीं होती । जैसे लोहे या सोने का जंजीर बन्धन होता है, वैसे ही जीव अशुभ या शुभ कर्मों से बँधा रहता है । जव तक ज्ञान नहीं होता तब तक निरन्तर कर्मानुष्ठान करके या अनेक प्रकार के कष्टों को उठाकर भी मनुष्य को मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता है ।। 107-111 ।।

ज्ञान का माहात्म्य

ज्ञानं तत्त्वविचारेण निष्कामेनापि कर्मणा ।
जायते क्षीणतमसां विदुषां निर्मलात्मनाम् ।। 112 ।।
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं मायया कल्पितं जगत् ।
सत्यमेकं परं ब्रह्म विदित्वैवं सुखी भवेत् ।। 113 ।।
विहाय नामरूपाणि नित्ये ब्रह्मणि निश्चले ।
परिनिश्चिततत्त्वो यः स मुक्तः कर्मबन्धनात् ।। 114 ।।
न मुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवासशतैरपि ।
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहभृत् ।। 115 ।।
आत्मा साक्षी विभुः पूर्णः सत्योऽद्वैतः परात्परः ।
देहस्थोऽपि न देहस्थो ज्ञात्वैव मुक्तिभाग्भवेत् ।। 116 ।।
बालक्रीडनवत्सर्वं रूपनामादिकल्पनम् ।
विहाय ब्रह्मनिष्ठो यः स मुक्तो नात्र संशयः ।। 117 ।।

मनसा कल्पिता मूर्तिर्नृणां चेन्मोक्षसाधनी ।
स्वप्नलब्धेन राज्येन राजानो मानवास्तथा ।। 118 ।।
मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तावीश्वरबुद्धय: ।
क्लिश्यन्तस्तपसा ज्ञानं विना मोक्षं न यान्ति ते ।। 119 ।।
आहारसंयमक्लिष्टा यथेष्टाहारतुन्दिला: ।
ब्रह्मज्ञानविहीनाश्चेन्निष्कृतिं ते व्रजन्ति किम् ।। 120 ।।
वायुपर्णकणातोयव्रतिनो मोक्षभागिन: ।
सन्ति चेत्पन्नगा मुक्ता: पशुपक्षिजलेचरा: ।। 121 ।।

ज्ञानी निर्मल आत्मा पण्डितों के तत्त्वविचार या निष्काम कर्मानुष्ठान से ही ज्ञान प्राप्त होता है । ब्रह्मा से लेकर तृणों तक सारा ब्रह्माण्ड माया से कल्पित है और मिथ्या है । केवल एक परम ब्रह्म ही सत्य है । यह ज्ञात होने पर आनन्द मिलता है । जो अपने नाम और वाणी इत्यादि के मिथ्या ज्ञान को त्याग कर अविद्या से परे हो जाता है, नित्य निश्चल ब्रह्म के तत्त्व का निरूपण करता है, वह कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है । जप-हवन या सौ-सौ उपवास करने से भी मोक्ष नहीं मिलता, परन्तु ब्रह्मैवाहं अर्थात् 'ब्रह्म ही मैं हूँ' का भावनात्मक ज्ञान होने से देही को मोक्ष मिलता है । आत्मा साक्षी है । शुभाशुभ का द्रष्टा विभु है । सर्वव्यापक पूर्ण अद्वितीय परात्पर है । शरीर में रहते हुए भी देहधर्म से अलिप्त है । ऐसा ज्ञान होने से प्राणी मोक्ष का अधिकारी होता है । जो मनुष्य नाम-रूपादि कल्पना को बाल्य क्रीडा के समान छोड़कर ब्रह्मनिष्ठ होता है, वह निर्वाण पाता है; इसमें सन्देह नहीं है । मन:कल्पित मूर्त्ति यदि मनुष्यों को मोक्षदायिनी होती तो मनुष्य स्वप्न में प्राप्त राज्य से ही वास्तविक राजा बन जाते । आद्या आदि की शास्त्रोक्त मूर्त्ति मोक्षदायिनी होती है, ऐसा पहले बतलाया गया है । किन्तु यहाँ तात्पर्य यह है कि मनमानी मूर्त्ति मोक्षदा नहीं होती । मिट्टी, पत्थर, धातु या काष्ठादि की मूर्त्ति को ईश्वर मानने वाले तप करके कष्ट ही उठाते हैं । तप से ज्ञान होने पर ही वे मोक्ष पाते हैं । मनुष्य आहार-संयम करके चाहे कष्ट उठायें या यथेष्ट आहार करके मोटे-ताजे बनें; यदि ब्रह्मज्ञान से रहित हैं तो उनका निस्तार किसी प्रकार से नहीं हो सकता । जो केवल वायु पीकर या पत्ते खाकर या कणभक्षण कर या केवल जल पीकर व्रत करते हैं, वे यदि उससे ही मोक्ष पा जायँ तो सर्प, पशु, पक्षी, जल-जन्तु सभी को मोक्ष की प्राप्ति हो जाय । केवल आहार के नियमरूपी सत्कर्म करने से मोक्ष नहीं मिलता; अपितु विविध व्रतों, अनेक उपवासों और

अनेक जन्मों की आराधना से चित्त की शुद्धि होने पर जब तत्त्वज्ञान होता है तब मोक्ष मिलता है ।। 112-121 ।।

उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः ।
स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बहिःपूजाऽधमाधमा ।। 122 ।।
योगो जीवात्मनोरैक्यं पूजनं सेवकेशयोः ।
सर्वं ब्रह्मेति विदुषो न योगो न च पूजनम् ।। 123 ।।
ब्रह्मज्ञानं परं ज्ञानं यस्य चित्ते विराजते ।
किं तस्य जपयज्ञाद्यैस्तपोभिर्नियमव्रतैः ।। 124 ।।
सत्यं विज्ञानमानन्दमेकं ब्रह्मेति पश्यतः ।
स्वभावाद् ब्रह्मभूतस्य किं पूजाध्यानधारणा ।। 125 ।।
न पापं नैव सुकृतं न स्वर्गो न पुनर्भवः ।
नापि ध्येयो न वा ध्याता सर्वं ब्रह्मेति जानतः ।। 126 ।।
अयमात्मा सदा मुक्तो निर्लिप्तः सर्ववस्तुषु ।
किं तस्य बन्धनं कस्मान्मुक्तिमिच्छन्ति दुर्धियः ।। 127 ।।
स्वमायारचितं विश्वमवितर्क्यं सुरैरपि ।
स्वयं विराजते तत्र ह्यप्रविष्टः प्रविष्टवत् ।। 128 ।।
बहिरन्तर्यथाकाशं सर्वेषामेव वस्तुनाम् ।
तथैव भाति सद्रूपो ह्यात्मा साक्षी स्वरूपतः ।। 129 ।।
न बाल्यमस्ति वृद्धत्वं नात्मनो यौवनं जरा ।
सदैकरूपश्चिन्मात्रो विकारपरिवर्जितः ।। 130 ।।
जन्मयौवनवार्द्धक्यं देहस्यैव न चात्मनः ।
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति मायाप्राकृतबुद्धयः ।। 131 ।।
यथा शरावतोयस्थं रविं पश्यन्त्यनेकधा ।
तथैव मायया देहे बहुधात्मानमीक्षते ।। 132 ।।
यथा सलिलचाञ्चल्यं मन्यन्ते तद्गते विधौ ।
तथैव बुद्धेश्चाञ्चल्यं पश्यन्त्यात्मन्यकोविदाः ।। 133 ।।
घटस्थं यादृशं व्योम घटे भग्नेऽपि तादृशम् ।
नष्टे देहे तथैवात्मा समरूपो विराजते ।। 134 ।।
आत्मज्ञानमिदं देवि ! परं मोक्षैकसाधनम् ।
जानन्निहैव मुक्तः स्यात्सत्यं सत्यं न संशयः ।। 135 ।।
न कर्मणा विमुक्तः स्यान्न सन्तत्या धनेन वा ।
आत्मनात्मानमाज्ञाय मुक्तो भवति मानवः ।। 136 ।।

प्रियो ह्यात्मैव सर्वेषां नात्मनोऽस्त्यपरं प्रियम् ।
लोकेऽस्मिन्नात्मसम्बन्धाद्भवन्त्यन्ये प्रियाः शिवे ।। 137 ।।
ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता त्रितयं भाति मायया ।
विचार्यमाणे त्रितये आत्मैवैकोऽवशिष्यते ।। 138 ।।
ज्ञानमात्मैव चिद्रूपो ज्ञेयमात्मैव चिन्मयः ।
विज्ञाता स्वयमेवात्मा यो जानाति स आत्मवित् ।। 139 ।।
एतत्ते कथितं ज्ञानं साक्षान्निर्वाणकारणम् ।
चतुर्विधावधूतानामेतदेव परं धनम् ।। 140 ।।

ब्रह्म ही सत्य है, अन्य सभी मिथ्या हैं—यही भाव उत्तम है । ध्यान का भाव मध्यम हैं। स्तव और जप का भाव अधम है । बाह्य पूजा अधम से अधम है । पहले बाह्य पूजा, तब मानसिक पूजा-स्तुति, तब ध्यान क्रमशः इन सबको करता हुआ साधक ब्रह्मसद्भाव तत्त्वज्ञान-रूपी श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त करता है । जीव और आत्मा के ऐक्य को ही 'योग' कहते हैं । सेवक के ईश्वर के साथ ऐक्य को 'पूजा' कहते हैं । सब कुछ ब्रह्म ही है । 'सर्वं ब्रह्म'—ऐसा ज्ञान जिसे होता है, उसके लिये योग और पूजा कुछ नहीं है । जिसके हृदय में परम ज्ञान ब्रह्मज्ञान विराजमान है, उसके लिये जप-यज्ञादि, तप-नियम-व्रतादि किसी की आवश्यकता नहीं है । जो सर्वज्ञ, सत्यस्वरूप, विज्ञान-स्वरूप, आनन्द-स्वरूप, अद्वितीय ब्रह्म को साक्षात् कर लेता है, वह स्वभावतः ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है । उसके लिये पूजा-धारणा-ध्यान कुछ नहीं है । जिसे ज्ञात हो जाता है कि 'सर्वं ब्रह्म' अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है, उसके लिये पाप-पुण्य, स्वर्ग, पुनर्जन्म, ध्येय, ध्याता, कुछ भी महत्त्व नहीं रखते । यह आत्मा सदैव मुक्त है, किसी से लिप्त नहीं होती । उसे कोई बन्धन नहीं है । बन्धन से मुक्ति के लिये इच्छा दुर्बुद्धि लोग करते हैं । यह संसार ब्रह्म की माया से निर्मित है । देवता भी इसे नहीं समझ सकते । इस जगत् में परम ब्रह्म प्रविष्ट न होकर भी प्रविष्ट-जैसा स्वयं विराजमान रहता है ।

जैसे सभी वस्तुओं के भीतर और बाहर आकाश है, वैसे ही सत्स्वरूप और साक्षीस्वरूप आत्मा स्वरूप से सर्वत्र प्रकाशमान है । आत्मा का न जन्म है, न बाल्यावस्था है, न युवावस्था है और न वृद्धावस्था है । वह सदैव एक रूप, चिन्मय और विकार-रहित है । जन्म-यौवन और वृद्धावस्था देह की ही होती है, आत्मा की नहीं होती । माया से बुद्धि के ढके रहने के कारण लोग

यह देखकर भी नहीं देखते। जैसे अनेक प्यालों में स्थित जल में अनेक सूर्य दिखाई देते हैं, वैसे ही माया के प्रभाव से अनेक शरीरों में अनेक आत्मायें दिखाई देती हैं। जैसे जल के हिलने से उसमें प्रतिविम्बित चन्द्र हिलता दिखाई देता है, वैसे ही अज्ञानी व्यक्ति की बुद्धि के चञ्चल होने से वे आत्मा को भी चञ्चल समझ जाते हैं। जैसे घट के फूटने पर भी घटस्थ आकाश पूर्ववत् रहता है, वैसे ही देह के नष्ट होने पर भी आत्मा सदा समभाव में विराजमान रहती है। हे देवि! यही ज्ञान मोक्ष का परम कारण है। जिसे इस प्रकार का ज्ञान हो जाता है, वह इसी लोक में जीवन्मुक्त होकर रहता है। इसमें सन्देह नहीं है। मनुष्य कर्म से मुक्त नहीं होता, सन्तान उत्पन्न करके मुक्त नहीं होता और धन से भी मुक्त नहीं होता। वह अपने द्वारा अपने को जानकर ही मुक्त होता है। सभी जीवों को आत्मा परम प्रिय है। आत्मा से बढ़कर प्रिय अन्य कोई वस्तु नहीं है। हे शिवे! इस लोक में अन्य व्यक्ति आत्मसम्बन्ध होने के कारण ही प्रिय होता है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता—ये तीन माया से ही प्रतीत होते हैं, इन तीनों के तत्त्व का विचार करने पर केवल आत्मा ही शेष रहती है। चिन्मय आत्मा ही ज्ञान है। चिन्मय आत्मा ही ज्ञेय वस्तु है। स्वयं आत्मा ही ज्ञाता है। ऐसा ज्ञान जिसे होता है, वही आत्मज्ञानी है। यह मैंने तुमसे साक्षात् मोक्ष के कारणस्वरूप ज्ञान का उपदेश किया है। यह चतुर्विध अवधूतों का परम धन है ।। 121-140 ।।

चार प्रकार के अवधूत

श्रीदेव्युवाच

द्विविधावाश्रमौ प्रोक्तौ गार्हस्थो भैक्षुकस्तथा।
किमिदं श्रूयते चित्रमवधूताश्चतुर्विधा: ।। 141 ।।
श्रुत्वा वेदितुमिच्छामि तत्त्वत: कथय प्रभो।
चतुर्विधावधूतानां लक्षणं सविशेषत: ।। 142 ।।

श्रीसदाशिव उवाच

ब्रह्ममन्त्रोपासका ये ब्राह्मणक्षत्त्रियादय: ।
गृहाश्रमे वसन्तोऽपि ज्ञेयास्ते यतय: प्रिये ।। 143 ।।
पूर्णाभिषेकविधिना संस्कृता ये च मानवा: ।
शैवावधूतास्ते ज्ञेया: पूजनीया: कुलार्चिते ।। 144 ।।

ब्राह्मावधूताः शैवाश्च स्वाश्रमाचारवर्तिनः ।
विदध्युः सर्वकर्माणि मदुदीरितवर्त्मना ॥ 145 ॥
विना ब्रह्मार्पितं चैते तथा चक्रार्पितं विना ।
निषिद्धमन्नं तोयं च न गृह्णीयुः कदाचन ॥ 146 ॥
ब्राह्मावधूतकौलानां कौलानामभिषेकिणाम् ।
प्रागेव कथितो धर्म आचारश्च वरानने !॥ 147 ॥
स्नानं सन्ध्याशनं पानं दानं च दाररक्षणम् ।
सर्वमागममार्गेण शैवब्राह्मावधूतयोः ॥ 148 ॥
उक्तावधूतो द्विविधः पूर्णापूर्णविभेदतः ।
पूर्णः परमहंसाख्यः परिव्राडपरः प्रिये ॥ 149 ॥
कृतावधूतसंस्कारो यदि स्याज्ज्ञानदुर्बलः ।
तदा लोकालये तिष्ठन्नात्मानं स तु शोधयेत् ॥ 150 ॥
रक्षन्स्वजातिचिह्नं च कुर्वन्कर्माणि कौलवत् ।
सदा ब्रह्मपरो भूत्वा साधयेज्ज्ञानमुत्तमम् ॥ 151 ॥
ओं तत्सन्मन्त्रमुच्चार्य सोऽहमस्मीति चिन्तयन् ।
कुर्यादात्मोचितं कर्म सदा वैराग्यमाश्रितः ॥ 152 ॥
कुर्वन्कर्माण्यनासक्तो नलिनीदलनीरवत् ।
यतेतात्मानमुद्धर्तुं तत्त्वज्ञानविवेकतः ॥ 153 ॥

श्रीभगवती ने कहा कि आपने पहले गृहस्थ और भिक्षुक—इन दो आश्रमों का कथन किया है । अब कहते हैं कि अवधूत आश्रम चार प्रकार का है । इससे मुझे आश्चर्य हो रहा है कि यह क्या है ? हे प्रभो! चार प्रकार के अवधूतों के लक्षण विशेष रूप से बताइये । मैं उन्हें सुनकर उनका तत्त्व जानना चाहती हूँ ।

श्रीसदाशिव ने कहा कि हे प्रिये! जो भी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि ब्रह्ममन्त्र के उपासक हैं, वे गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी 'यति' कहे जाते हैं । हे कुलार्चिते! जो मनुष्य पूर्णाभिषेक विधि से संस्कृत होते हैं, उन्हें शैवावधूत कहते हैं और वे सभी के पूज्य हैं । ब्राह्मावधूत और शैवावधूत अपने आश्रम और आचार का पालन करते हुए मेरे द्वारा निर्धारित मार्ग पर चलते हैं और सभी कर्मों को करते हैं । ब्राह्मावधूत ब्रह्मार्पित द्रव्य के सिवा कोई भी निषिद्ध अन्न और जल ग्रहण नहीं करते । हे वरानने! ब्राह्म कौलों और अभिषिक्त

कौलों के आचार तथा धर्म का कथन पहले हो गया है । स्नान, सन्ध्या, भोजन, पान, दान, स्त्रीरक्षा आदि सभी कर्मों का अनुष्ठान शैवावधूत और ब्राह्मावधूत आगम के अनुसार करते हैं । उक्त शैवावधूत और ब्राह्मावधूत दो प्रकार के होते हैं—पूर्ण और अपूर्ण । हे प्रिये! पूर्ण शैवावधूत और ब्राह्मावधूत का नाम 'परमहंस' है । अपूर्ण शैवावधूत और ब्राह्मावधूत को 'परिव्राट्' कहते हैं । जो मनुष्य अवधूत संस्कार से संस्कृत हैं, वे यदि ज्ञान के विषय में दुर्वल हैं, उनमें पूर्ण अद्वैतभाव उत्पन्न नहीं होता तो वे लोकालय में रहकर आत्मशोधन करें । जिस प्रकार एकमद्वितीयं ज्ञान उत्पन्न हो, उसी प्रकार का आचरण करें । वे अपने जाति-चिह्न, शिखा-सूत्रादि की रक्षा करें । वे कौल के समान सभी कर्मों का अनुष्ठान करें । निरन्तर ब्रह्मनिष्ठ होकर ज्ञानसाधन करें । वे सदा वीतराग होकर 'ॐ तत् सत्' कहते हुए 'सोऽहमस्मि' का चिन्तन कर अपने उपयोगी कर्मों का अनुष्ठान करें । वे पद्मपत्रस्थित जल के समान अनासक्त हृदय होकर सभी कर्मों का अनुष्ठान करें । तत्त्वज्ञान के विचार से अपना उद्धार करने के लिये मोक्ष-प्राप्ति के लिये यत्न करें ।। 141-153 ।।

ॐ तत्सत् का माहात्म्य

ओं तत्सदिति मन्त्रेण यो यत्कर्म समाचरेत् ।
गृहस्थो वाप्युदासीनस्तस्याभीष्टाय तद्भवेत् ।। 154 ।।
जपो होमः प्रतिष्ठा च संस्काराद्यखिलाः क्रियाः ।
ओं तत्सन्मन्त्रनिष्पन्नाः सम्पूर्णाः स्युर्न संशयः ।। 155 ।।
किमन्यैर्बहुभिर्मन्त्रैः किमन्यैर्भूरिसाधनैः ।
ब्राह्मेणानेन मन्त्रेण सर्वकर्माणि साधयेत् ।। 156 ।।
सुखसाध्यमबाहुल्यं सम्पूर्णफलदायकम् ।
नास्त्येतस्मान्महामन्त्रादुपायान्तरमम्बिके ।। 157 ।।
गृहप्रवेशे देहे वा लिखित्वा धारयेदिमम् ।
गेहस्तस्य महातीर्थं देहः पुण्यमयो भवेत् ।। 158 ।।
निगमागमतन्त्राणां सारात्सारतरो मनुः ।
ओं तत्सदिति देवेशि ! तवाग्रे सत्यमीरितम् ।। 159 ।।
ब्रह्माविष्णुमहेशानां भित्त्वा तालुशिरःशिखाः ।
प्रादुर्भूतोऽयमों तत्सत्सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ।। 160 ।।
चतुर्विधानामन्नानामन्येषामपि वस्तुनाम् ।

मन्त्रान्यैः शोधनेनालं स्याच्चेदेते न शोधितम् ।। 161 ।।
पश्यन्सर्वत्र सद्रूपं जपंस्तत्सन्महामनुम् ।
स्वेच्छाचारः शुद्धचित्तस्स एव भुवि कौलराट् ।। 162 ।।
जपादस्य भवेत्सिद्धो मुक्तः स्यादर्थचिन्तनात् ।
साक्षाद् ब्रह्मसमो देही सार्थमेनं जपेन्मनुम् ।। 163 ।।
त्रिपदोऽयं महामन्त्रः सर्वकारणकारणम् ।
साधनादस्य मन्त्रस्य भवेन्मृत्युञ्जयः स्वयम् ।। 164 ।।
युग्मं युग्मपदं वापि प्रत्येकपदमेव वा ।
जप्त्वैतस्य महेशानि! साधकः सिद्धिभाग्भवेत् ।। 165 ।।

गृहस्थ या उदासीन 'ॐ तत्सत्' मन्त्र से जिस कार्य का अनुष्ठान करेगा, उसी से उसका वह कर्म अभीष्ट फलदायक होगा । जप-होम-प्रतिष्ठा-संस्कार आदि सभी कर्म 'ॐ तत्सत्' मन्त्र से सम्पन्न होने से ही पूरे होते हैं । इसमें सन्देह नहीं है । अन्य बहुत से मन्त्रों या साधनों की क्या आवश्यकता? ॐ तत्सत् ब्रह्ममन्त्र से ही सभी कर्मों को सम्पन्न करे । यह मन्त्र सुखसाधक है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है । यह मन्त्र पूर्ण फलप्रदायक है । हे अम्बिके! इस महामन्त्र के सिवा अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं है । जो गृह के द्वार पर या शरीर पर ॐतत्सत् मन्त्र को लिखकर धारण करता है, उसका घर महातीर्थ के समान और शरीर पुण्यमय होता है । हे देवि! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि 'ॐ तत्सत्' निगम, आगम और सभी तत्त्वों का सार है । सब मन्त्रों में श्रेष्ठ यह ब्रह्मा-विष्णु और महेश के तालु, मस्तक और ब्रह्मरन्ध्र को भेदकर प्रादुर्भूत हुआ है । यदि इस मन्त्र से चर्व्य, चोष्य, भक्ष्य, लेह्य चारों प्रकार के अन्नों का या अन्य वस्तुओं का शोधन किया जाय तो फिर अन्य किसी वैदिक या तान्त्रिक मन्त्र से उसे शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं है । जो सर्वत्र सत्स्वरूप ब्रह्म को देखता है, जो ॐ तत्सत् महामन्त्र का जप करता है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है और जो स्वेच्छाचारी होता है, वही पृथ्वी पर श्रेष्ठ कौल होता है । ॐ तत्सत् मन्त्र का जप करने से मनुष्य सिद्ध हो जाता है । इसके अर्थ का चिन्तन करने से मुक्त होता है । जो अर्थचिन्तन के साथ इसका जप करता है, वह मानव शरीरधारी होते हुए भी साक्षात् ब्रह्म के समान होता है । यह त्रिपद महामन्त्र है । सब कारणों का कारण है । इस मन्त्र का साधन करने से साधक स्वयं मृत्युञ्जय होता है । हे महेश्वरि! इस त्रिपद मन्त्र के दो-दो पदों या एक-एक पद का जप करने से साधक सिद्ध होता है ।। 154-165 ।।

परमहंस के कर्तव्य

शैवावधूतसंस्कारविधूताखिलकर्मणः ।
नापि देवेन वा पित्र्ये नार्षे कृत्येऽधिकारिता ॥ 166 ॥
चतुर्णामवधूतानां तुरीयो हंस उच्यते ।
त्रयोऽन्ये योगभागाढ्या मुक्ताः सर्वे शिवोपमाः ॥ 167 ॥
हंसो न कुर्यात्स्त्रीसङ्गं न वा धातुपरिग्रहम् ।
प्रारब्धमश्नन्विहरेन्निषेधविधिवर्जितः ॥ 168 ॥
त्यजेत्स्वजातिचिह्नानि कर्माणि गृहमेधिनाम् ।
तुरीयो विचरेत्क्षोणीं निःसङ्कल्पो निरुद्यमः ॥ 169 ॥
सदात्मभावसन्तुष्टः शोकमोहविवर्जितः ।
निर्निकेतस्तितिक्षुः स्यान्निःशङ्को निरुपद्रवः ॥ 170 ॥
नार्पणं भक्ष्यपेयानां न तस्य ध्यानधारणाः ।
मुक्तो विरक्तो निर्द्वन्द्वो हंसाचारपरो यतिः ॥ 171 ॥
इति ते कथितं देवि ! चतुर्णां कुलयोगिनाम् ।
लक्षणं सविशेषेण साधूनां मत्स्वरूपिणाम् ॥ 172 ॥

जो शैवावधूत संस्कार से संस्कृत हैं, उनके लिये अन्य कोई काम्य कर्म नहीं है । अतः वे देव कर्म, आर्य कर्म या पितृकर्म करने के अधिकारी नहीं हैं । चतुर्विध अवधूतों में से चौथे पूर्ण ब्राह्मावधूत को हंस कहते हैं । अन्य त्रिविध अवधूत योग और भोग करते हैं । परन्तु चारों ही प्रकार के अवधूत मुक्त हैं और शिवतुल्य हैं । हंस अर्थात् पूर्ण ब्राह्मावधूत स्त्रीसंसर्ग या धनसञ्चय नहीं कर सकता । वह विधि-निषेध से रहित होकर प्रारब्ध भोगने वाला बनकर विहार करता है । यह चतुर्थ परमहंस अपने जातिचिह्न, शिखा-सूत्र, तिलक आदि को छोड़ देता है । वह गृहस्थ के कार्य भी नहीं करता, वह सङ्कल्पहीन और उद्यमहीन होकर भूतल पर विचरता है । वह सदा आत्मभावना में ही सन्तुष्ट रहता है । वह शोक और मोह से अभिभूत नहीं होता । उसके रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं होता । वह तितिक्षायुक्त, शंकाहीन और निरुपद्रव रहता है । वह किसी को भक्ष्य या पेय द्रव्य नहीं देता । उसे ध्यान-धारणा नहीं करना है । वह मुक्त, विरक्त, निर्द्वन्द्व, हंसाचारपरायण और यति होता है । हे देवि! मैंने तुमसे चतुर्विध कुलयोगियों के लक्षणों का वर्णन विशेष रूप से किया । ये सभी साधु हैं और मेरे ही स्वरूप हैं ॥ 166-172 ॥

कौल-माहात्म्य

एतेषां दर्शनस्पर्शादालापात्परितोषणात् ।
सर्वतीर्थफलावाप्तिर्जायते मनुजन्मनाम् ॥ 173 ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यक्षेत्राणि यानि च ।
कुलसंन्यासिनां देहे सन्ति तानि सदा प्रिये ॥ 174 ॥
ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च ते पुण्यास्ते कृताध्वराः ।
यैरर्चिताः कुलद्रव्यैर्मानवैः कुलसाधवः ॥ 175 ॥
अशुचिर्याति शुचितामस्पृश्यः स्पृश्यतामियात् ।
अभक्ष्यमपि भक्ष्यं स्याद्येषां संस्पर्शमात्रतः ॥ 176 ॥
किराताः पापिनः क्रूराः पुलिन्दा यवनाः खसाः ।
शुद्ध्यन्ति येषां संस्पर्शात्तान्विना काऽन्यमर्च्चयेत् ॥ 177 ॥
कुलतत्त्वैः कुलद्रव्यैः कौलिकान्कुलयोगिनः ।
येऽर्च्चयन्ति सकृद्भक्त्या तेऽपि पूज्या महीतले ॥ 178 ॥
कौलधर्मात्परो धर्मो नास्त्येव कमलानने ।
अन्त्यजोऽपि यमाश्रित्य पूतः कौलपदं व्रजेत् ॥ 179 ॥
करिपादे विलीयन्ते सर्वप्राणिपदा यथा ।
कुलधर्मे निमज्जन्ति सर्वे धर्मास्तथा प्रिये ॥ 180 ॥
अहो पुण्यतमाः कौलास्तीर्थरूपाः स्वयं प्रिये! ।
ये पुनन्त्यात्मसम्बन्धान्म्लेच्छश्वपचपामरान् ॥ 181 ॥
गङ्गायां पतिताम्भांसि यान्ति गाङ्गेयतां यथा ।
कुलाचारे विशन्तोऽपि सर्वे गच्छन्ति कौलताम् ॥ 182 ॥
यथार्णवगतं वारि न पृथग्भावमाप्नुयात् ।
तथा कुलाम्बुधौ मग्ना न भवेयुर्जनाः पृथक् ॥ 183 ॥
विप्राद्यन्त्यजपर्य्यन्ता द्विपदा येऽत्र भूतले ।
ते सर्वेऽस्मिन्कुलाचारे भवेयुरधिकारिणः ॥ 184 ॥
आहूताः कुलधर्मेऽस्मिन्ये भवन्ति पराङ्मुखाः ।
सर्वधर्मपरिभ्रष्टास्ते गच्छन्त्यधमां गतिम् ॥ 185 ॥
प्रार्थयन्ति कुलाचारं ये केचिदपि मानवाः ।
तान्वञ्चयन्कुलीनोऽपि रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ 186 ॥
चाण्डालं यवनं नीचं मत्वा स्त्रियमवज्ञया ।
कौलं न कुर्याद्यः कौलः सोऽधमो यात्यधोगतिम् ॥ 187 ॥
शताभिषेकाद्यत्पुण्यं पुरश्चर्याशतैरपि ।

तस्मात्कोटिगुणं पुण्यमेकस्मिन्कौलिके कृते ।। 188 ।।
ये ये वर्णाः क्षितौ सन्ति यद्यद्धर्ममुपाश्रिताः ।
कौला भवन्तस्ते पाशैर्मुक्ता यान्ति परं पदम् ।। 189 ।।
शैवधर्माश्रिताः कौलास्तीर्थरूपाः शिवात्मकाः ।
स्नेहेन श्रद्धया प्रेम्णा पूज्या मान्याः परस्परम् ।। 190 ।।
बहुनात्र किमुक्तेन तवाग्रे सत्यमुच्यते ।
भवाब्धितरणे सेतुः कुलधर्मो हि नापरः ।। 191 ।।
छिद्यन्ते संशयाः सर्वे क्षीयन्ते पापसञ्चयाः ।
दह्यन्ते कर्मजालानि कुलधर्मनिषेवणात् ।। 192 ।।
सत्यव्रता धर्मनिष्ठाः कृपयाहूय मानवान् ।
पावयन्ति कुलाचारैस्ते ज्ञेयाः कौलिकोत्तमाः ।। 193 ।।

मनुष्य यदि इन कुलयोगियों का दर्शन करे, स्पर्श करे या बात करे या सन्तुष्ट करे तो उन्हें सभी तीर्थों के दर्शन का फल प्राप्त होगा । हे प्रिये! पृथ्वी पर जितने तीर्थ और पुण्यक्षेत्र हैं, वे सभी कुलसंन्यासी के शरीर में विद्यमान रहते हैं । जो लोग कुलसाधुओं का अर्चन कुलद्रव्य से करते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं, पवित्र हैं । उन्हें सभी यज्ञों का फल प्राप्त होता है । कुलयोगियों को छूने से अपवित्र भी पवित्र होता है, अछूत भी छूने के योग्य होता है । अभक्ष्य वस्तु भी भक्ष्य हो जाती हैं । जिस कुलयोगी के स्पर्श से किरात, पापी क्रूर, पुलिन्द, यवन, खल लोग भी पवित्र हो जाते हैं, उसे छोड़कर अन्य किसकी पूजा करनी चाहिये । जो लोग कुलयोगियों और कौलों की पूजा एक बार भी कुलतत्त्व और कुलद्रव्यों से भक्तिपूर्वक करते हैं, वे स्वयं भी पृथ्वी पर पूज्य हो जाते हैं । हे कमलानने! कौल धर्म से श्रेष्ठ धर्म कोई दूसरा नहीं है; क्योंकि अन्त्यज व्यक्ति भी इस धर्म का आश्रय लेकर पवित्र होकर कौल पद को प्राप्त करता है । हे प्रिये! जैसे सभी प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पद-चिह्न में समा जाते हैं, वैसे ही सभी धर्म कुलधर्म में विलीन हो जाते हैं । हे प्रिये! स्वयं तीर्थस्वरूप कौलगण पवित्रतम हैं तो इसमें क्या आश्चर्य है? वे अपने सम्पर्क से म्लेच्छ, स्वपच और पापियों को भी पवित्र बना देते हैं । जैसे गङ्गाजल में गिरा अन्य जल भी गङ्गाजल हो जाता है, वैसे ही कुलाचार में प्रविष्ट सभी जातियों के लोग कौल बन जाते हैं । जैसे समुद्र में मिला जल अलग नहीं होता, वैसे ही कुलसागर में मग्न मनुष्य उससे अलग नहीं होता । इस

भूमण्डल में ब्राह्मण से अन्त्यज तक जितने दो पैर वाले प्राणी हैं, वे सभी कुलाचार के अधिकारी हैं । जो कुलधर्म में बुलाए जाने पर नहीं आता, वह सब धर्मों से भ्रष्ट होकर अधम गति को पाता है । जो मनुष्य कौलाचार के लिये प्रार्थना करते हैं, उन्हें यदि कोई कौल भी ठग ले तो वह रौरव नरक में जाता है । यदि कोई कौल कौलधर्मावलम्बी बनने के इच्छुक व्यक्ति को स्त्री, नीच, चाण्डाल या यवन जानकर अवज्ञा करता है, उसे कौल नहीं बनाता तो वह कौलों में अधम माना जाता है । अन्त में उसकी अधोगति होती है । एक सौ अभिषेकों से या सौ पुरश्चरणों से जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे करोड़गुना अधिक पुण्य एक व्यक्ति को कौल बनाने से मिलता है । भूमण्डल में जो-जो वर्ण हैं और जितने धर्मावलम्बी हैं, उनमें से जो कौल होते हैं वे ही पाशमुक्त होकर परम पद को प्राप्त करते हैं । शिवोक्त धर्मावलम्बी कौलगण साक्षात् शिवस्वरूप और तीर्थस्वरूप हैं । स्नेह, श्रद्धा और प्रेम द्वारा वे एक-दूसरे का पूजन और सम्मान करते हैं । मैं अधिक क्या कहूँ? तुमसे सत्य कहता हूँ कि इस संसार-सागर को पार करने के लिये कुलधर्म ही सेतु के समान है । इसके सिवा संसार-सागर से पार करने वाला कोई दूसरा उपाय नहीं है । कुलधर्म के सेवन से सभी संशय कट जाते हैं, सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और कर्मसमूह जल जाते हैं । जो सत्यव्रती और ब्रह्मनिष्ठ हैं, वे कृपावश मनुष्यों को बुलाकर कुलाचार से पवित्र करते हैं । वे ही सब महात्मा और श्रेष्ठ कौलिक माने जाते हैं ।। 173-193 ।।

महानिर्वाणतन्त्र का माहात्म्य

इति ते कथितं देवि! सर्वकर्मविनिर्णयम् ।
महानिर्वाणतन्त्रस्य पूर्वार्द्धं लोकपावनम् ।। 194 ।।
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवान् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सोऽन्तनिर्वाणमाप्नुयात् ।। 195 ।।
सर्वागमानां तन्त्राणां सारात्सारं परात्परम् ।
तन्त्रराजमिदं ज्ञात्वा जायते सर्वशास्त्रवित् ।। 196 ।।
किं तस्य तीर्थभ्रमणैः किं यज्ञैर्जपसाधनैः ।
जानन्नैतन्महातन्त्रं कर्मपाशैर्विमुच्यते ।। 197 ।।
स विज्ञः सर्वशास्त्रेषु सर्वधर्मविदां वरः ।
स ज्ञानी ब्रह्मवित्साधुर्यस्तु तद्वेत्ति कालिके !।। 198 ।।

अलं वेदैः पुराणैश्च स्मृतिभिः संहितादिभिः ।
किमन्यैर्बहुभिस्तन्त्रैर्ज्ञात्वेदं सर्वविद्भवेत् ।। 199 ।।
आसीद् गुह्यतमं यन्मे साधनं ज्ञानमुत्तमम् ।
तव प्रश्नेन तन्त्रेऽस्मिंस्तत्सर्वं सुप्रकाशितम् ।। 200 ।।
यथा त्वं ब्रह्मणः शक्तिर्मम प्राणाधिका परा ।
महानिर्वाणतन्त्रं मे तथा जानीहि सुव्रते ! ।। 201 ।।
यथा नगेषु हिमवांस्तारकासु यथा शशी ।
भास्वांस्तेजःसु तन्त्रेषु तन्त्रराजमिदं तथा ।। 202 ।।
सर्वधर्ममयं तन्त्रं ब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ।
पठित्वा पाठयित्वापि ब्रह्मज्ञानी भवेन्नरः ।। 203 ।।
विद्यते यस्य भवने सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
न तस्य वंशे देवेशि! पशुर्भवति कर्हिचित् ।। 204 ।।
अज्ञानतिमिरान्धोऽपि मूर्खः कर्मजडोऽपि वा ।
शृण्वन्नेतन्महातन्त्रं कर्मबन्धाद्विमुच्यते ।। 205 ।।
एतत्तन्त्रस्य पठनं श्रवणं पूजनं तथा ।
वन्दनं परमेशानि ! नृणां कैवल्यदायकम् ।। 206 ।।
उक्तं बहुविधं तन्त्रमेकैकाख्यानसंयुतम् ।
सर्वधर्मान्वितं तन्त्रं नातः परतरं क्वचित् ।। 207 ।।
पातालचक्रभूचक्रज्योतिश्चक्रसमन्वितम् ।
परार्द्धमस्य यो वेत्ति स सर्वज्ञो न संशयः ।। 208 ।।
परार्द्धसहितं ग्रन्थमेनं जानन्नरो भवेत् ।
त्रिकालवार्त्तां त्रैलोक्यवृत्तान्तं कथितुं क्षमः ।। 209 ।।
सन्ति तन्त्राणि बहुधा शास्त्राणि विविधान्यपि ।
महानिर्वाणतन्त्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।। 210 ।।
महानिर्वाणतन्त्रस्य माहात्म्यं किं ब्रवीमि ते ।
विदित्वैतन्महातन्त्रं ब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ।। 211 ।।

इति श्रीमहानिवार्णतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे पूर्वकाण्डे शिवलिङ्गस्थापन-
चतुर्विधावधूतविवरणकथनं नाम चतुर्दशोल्लासः

❖

हे देवि! मैंने तुम्हें लोकपावन, सर्वधर्म-निर्णायक महानिर्वाणतन्त्र का पूर्वार्द्ध सुनाया । जो इसे ध्यान से सुनता है या मनुष्यों को सुनाता है, वह सभी पापों से छूटकर अन्त में मोक्ष पाता है । सभी आगमों और तन्त्रों में परात्पर

और सारात्सार इस तन्त्रराज को जानकर मनुष्य सब शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है । जिसे यह निर्वाणतन्त्र ज्ञात है, उसे तीर्थभ्रमण, यज्ञ-जपसाधन करने की आवश्यकता नहीं है । वह केवल महानिर्वाणतन्त्र के ज्ञान से ही कर्मों के पाश से मुक्ति पा जाता है । हे कालिके! जो इस महानिर्वाणतन्त्र को जानता है, वह सब शास्त्रों का ज्ञाता, सभी श्रेष्ठ धर्मज्ञ लोगों के बीच श्रेष्ठ एवं वही साधु, ज्ञानी और ब्रह्मज्ञ है । वेद-पुराण-स्मृति-संहिता आदि और अन्यान्य बहुत तन्त्रों को जानने की क्या आवश्यकता है? केवल इसी महानिर्वाणतन्त्र के ज्ञात होने से वह सर्वज्ञ हो जाता है । जो सारे साधन और उत्तम ज्ञान अत्यन्त गोपनीय थे, उन्हें मैंने तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार इसमें सुन्दर रूप से प्रकाशित कर दिया है । हे सुव्रते! तुम जैसे ब्रह्मशक्ति हो, मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, वैसे ही इस महानिर्वाणतन्त्र को भी मेरे प्राणों से अधिक प्रिय जानना चाहिये । जैसे सभी पर्वतों में हिमालय, नक्षत्रों में चन्द्रमा एवं तेज वाले पदार्थो में सूर्य श्रेष्ठ है; वैसे ही तन्त्रों में यह तन्त्रराज श्रेष्ठ है । यह तन्त्र सर्वधर्ममय और ब्रह्मज्ञान का एकमात्र साधन है । जो इस साधन को करता है या कराता है, वह ब्रह्मज्ञानी होता है । हे देवेशि! सभी तन्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठतम यह तन्त्र जिसके घर में रहता है, उसके वंश में कभी कोई पशु नहीं होता । जो अज्ञान से अन्धा मूर्ख क्रमसाधन में जड़ है, वह भी यदि इस तन्त्र को सुनता है तो वह कर्मपाश से मुक्त जाता है । हे परमेश्वरि, इस महातन्त्र का पाठ, श्रवण, पूजन, वन्दन मनुष्य के लिये कैवल्यदायक है । एक-एक आख्यान से युक्त अनेक तन्त्र का इसमें कथन हुआ है, जो सब धर्मो से युक्त है; किन्तु इससे श्रेष्ठ दूसरा कोई तन्त्र नहीं है । इस महानिर्वाणतन्त्र के उत्तरार्द्ध में पातालचक्र और ज्योतिश्चक्र से समन्वित भूचक्र दिया गया है । जिसे उत्तरार्द्ध ज्ञात है, वह सर्वज्ञ होता है; इसमें सन्देह नहीं है । जो मनुष्य परार्द्धसहित इस तन्त्र को जानता है, वह त्रिकाल-वार्त्ता और त्रैलोक्य-वृत्तान्त का वर्णन करने में समर्थ होता है । अनेक प्रकार के तन्त्र हैं, बहुत प्रकार के शास्त्र हैं; परन्तु कोई भी तन्त्र या शास्त्र इस महानिर्वाणतन्त्र के सोलह अंशों में से एक अंश के भी बराबर नहीं है । मैं इस तन्त्र के माहात्म्य का वर्णन क्या करूँ? इस महातन्त्र का ज्ञान होने से साधक को ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त होता है ।। 194-211।।

शिवलिङ्गस्थापन-चतुर्विधावधूतविवरणकथन नामक
चतुर्दश उल्लास सम्पूर्ण

❖

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थ
(हिन्दी टीका सहित)

श्री एस.एन. खण्डेलवाल द्वारा अनुदित
- सर्वोल्लासतन्त्र
- नीलसरस्वतीतन्त्र
- भूतडामरतन्त्र
- सिद्धनागार्जुनतन्त्र
- अन्नदाकल्पतन्त्र
- राधातन्त्र
- सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्र
- कालीतन्त्र-रुद्रचण्डीतन्त्र
- तोडलतन्त्र-निर्वाणतन्त्र
- आगमतत्त्ववि[illegible] ४ भाग सम्पूर्ण
- श्रीसाम्बपुरा[illegible]

श्री श्यामाकान्त [illegible] लिखित एवं अनुदित
- श्रीविद्या-साध[illegible] २ भाग सम्पूर्ण)
- भारतीय शक्ति[illegible]
- ब्रह्मास्त्रविद्या [illegible]मुखी-साधना
- काश्मीर शैवद[illegible] स्पन्दशास्त्र
- मुद्राविज्ञान एवं साधना
- कामकलाविलास
- वरिवस्यारहस्य
- स्पन्दकारिका

श्री सुधाकर मालवीय द्वारा अनुदित
- रुद्रयामल (१-२ भाग)
- शारदातिलक (१-२ भाग)
- मन्त्रमहोदधि
- सौन्दर्यलहरी

श्री कपिलदेवनारायण द्वारा अनुदित
- लक्ष्मीतन्त्र (१-२ भाग)
- तन्त्रराजतन्त्र (१-२ भाग)
- श्रीविद्यार्णवतन्त्र (१-५ भाग)
- देवीरहस्य : (रुद्रयामलतन्त्रोक्त)(१-२ भाग)
- महानिर्वाणतन्त्र
- रेणुकातन्त्र-प्रचण्डचण्डिकातन्त्र
- बृहत्तन्त्रसार (१-२ भाग)

श्री राधेश्याम चतुर्वेदी द्वारा अनुदित
- तन्त्रालोक (१-५ भाग)
- स्वच्छन्दतन्त्र (१-२ भाग)
- नेत्रतन्त्र
- कामाख्यातन्त्र
- महाकालसंहिता : (कामकला-कालीखण्ड)
- महाका[illegible] : (गुह्यकाली-खण्ड) (१-[illegible]

श्री जगदी[illegible] मिश्र द्वारा अनुदित
- त्रिपुरार[illegible] [illegible]नखण्ड एवं माहात्म्य[illegible]
- त्रिपुरा[illegible]

श्री परम[illegible] द्वारा अनुदित
- तन्त्रसार (१-२ भाग)
- कुलार्णवतन्त्र
- नित्योत्सव : (श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ

श्री रामप्रिय पाण्डेय द्वारा लिखित
- श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति
- श्रीमहाविद्यापुरश्चरणपद्धति
- सार्द्धनवचण्डीपुरश्चरण
- कालसर्पयोग-शान्तिप्रयोग
- श्रीप्रत्यंगिरा-पुनश्चर्या

अन्य पुस्तकें
- विज्ञानभैरव : बापूलाल आँजना
- सिद्धसिद्धान्तपद्धति : द्वारकादास शास्त्री
- श्रीकृष्ण की तान्त्रिक पूजा (तान्त्रिक अनुष्ठान-परक ग्रन्थ) : विष्णु के. आचार्य
- शङ्कराचार्य तान्त्रिकसाधना : रामचन्द्रपुरी

वितरक
चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
४६९७/२, २१-ए, अंसारी रोड़,
दरियागंज नई दिल्ली - ११०००२
फोन न. ०११-२३२८६५३७, ३२९९६३९१

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के - ३७/११७ गोपाल मंदिर लेन
वाराणसी-२२१००१
फोन न. ०५४२-२३३५२६३, २३३५२६४